। प्रथम परिछेद		११० तक
। द्वितिये	-"-	२०५ तक
। तीसरा	-"-	३६० तक
। चौथा	-"-	६४० तक



श्रीः ।

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीस्वामि-
चिद्घनानंदसरस्वतीजीप्रणीत-

तत्त्वानुसन्धान ।

भाषा वार्तिक ।

जिसमें
आत्मज्ञाननिरूपण वर्णित है ।
उसीको
खेमराज श्रीकृष्णदासने
बम्बई
निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रण यन्त्रालयमें
मुद्रित कर प्रकाशित किया ।

संवत् १९८१, शक १८४६.

भावनगरके दिवाणसाहेब
गौरीशंकर उदेशंकर

श्रीमत्स्वामी

चिद्घनानन्द गिरिजी

श्रीमत्स्वामी गोविंदानन्द गिरिजी

हार्दिक धन्यवाद ।



श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य आत्मज्ञानी ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वामी चिद्घनानंद सरस्वतीजीको हम कोटिशः हार्दिक धन्यवाद देते हैं जिन्होंने लोकोपकारार्थ और प्राकृत भाषा प्रेमियोंके हितार्थ श्रुति स्मृतियोंका सुंदर सार ले "तत्त्वानुसंधान" नामक सुभग ग्रंथ रच कर अतिदुस्तर दुर्बोध मोक्षका मार्ग खोल दिया. केवल आत्मज्ञानसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है. वही आत्मज्ञान मुमुक्षुओंके लाभार्थ पूर्ण रूपसे इसमें पूर्ण कर दिया. संस्कृत वेदांत ग्रंथोंमें जो जो पदार्थ आत्मज्ञानके उपयोगी निरूपण किये हैं वही सर्व पदार्थ इस भाषा ग्रंथमें उक्त श्रीस्वामीजीने निरूपण किये हैं इससे अधिकारी पुरुषोंको इस पुस्तकके श्रवण मननसे आत्मज्ञान अवश्यमेव प्राप्त होगा इसमें क्या विलक्षणता है. प्रथम यह ग्रंथ अन्यत्र छपा था परन्तु उक्त श्रीबड़े स्वामीजीके स्थानापन्न गोविन्दानन्दजी महाराजजीने हमपर बडा अनुग्रह करके शुद्ध कर इसके छापनेका सम्पूर्ण अधिकार हमारे "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालय बंबईको प्रदान कर दिया, अतः यह छप कर आप मोक्षार्थियोंके दृष्टिगोचर है ।

आपका कृपापात्र—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालयाध्यक्ष-बंबई.

प्रस्तावना।

इस संसारविषे मोक्षतैं परे दूसरा कोई पदार्थ अधिक नहीं है किन्तु मोक्ष ही सर्वतें अधिक है। काहेतैं मोक्षकूं प्राप्त हुआ यह अधिकारी पुरुष पुनः जन्म मरणादिरूप संसारकूं प्राप्त होता नहीं, यह वार्त्ता लोकविषे प्रसिद्ध है। तथा 'न स पुनरावर्तते' यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते। अनावृत्तिः शब्दात्' इत्यादिक श्रुति स्मृति सूत्र करिकै भी सिद्ध है। यातैं इन अधिकारी पुरुषोंने ता मोक्षकूं ही संपादन कऱ्या चाहिये। जिस करिकै पुनः जन्म मरणादिरूप संसारकी प्राप्ति नहीं होवै। तहां इस जीवात्माकी जो अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक आपणे सच्चिदानंद ब्रह्मरूपतैं स्थिति है ताका नाम मोक्ष है। ब्रह्मलोकादिकोंकी प्राप्ति मोक्षरूप नहीं है। जिस कारणतैं 'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते।' इस श्रुतिने इस लोककी न्याई ते ब्रह्मलोकादिक भी नाशवान् कहे हैं और 'आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन।' इस गीतावचन करिकै श्रीभगवान्नें भी ते ब्रह्मलोकादिक लोक पुनरावृत्तिवाले कहे हैं यातैं तिन लोकोंकी प्राप्ति मोक्षरूप नहीं है। सो उक्त मोक्ष इन अधिकारी पुरुषोंकूं एक आत्मज्ञान करिकै ही प्राप्त होवै है अन्य किसी कर्म उपासनादिक उपाय करिकै प्राप्त होता नहीं। काहेतैं 'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय' इत्यादिक श्रुतियोंने केवल आत्मज्ञानतैं ही मोक्षकी प्राप्ति कथन करी है और 'नास्त्यकृतः कृतेन। न कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः' इत्यादिक श्रुतियोंने कर्म उपासनादिकोंतैं मोक्षकी प्राप्तिका निषेध कऱ्या है यातैं एक आत्मज्ञान ही

ता मोक्षकी प्राप्तिका साधन है। तहां ब्रह्मतैं अभिन्न रूप करिकै जो आपणे आत्माका 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका ज्ञान है ताका नाम आत्मज्ञान है। इस प्रकारके आत्मज्ञान करिकै ही सो उक्त मोक्ष प्राप्त होवै है। जीव ब्रह्मके भेदज्ञानतैं सो मोक्ष प्राप्त होता नहीं। काहेतैं 'उदरमंतरं कुरुतेऽथ तस्य भयं भवति। द्वितीयाद्वै भयं भवति' इत्यादिक श्रुतियोंने भेददर्शी पुरुषकूं भयकी प्राप्ति कथन करी है। तथा 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इत्यादिक श्रुतियोंने ता भेददर्शी पुरुषकूं पुनः पुनः जन्म मरणकी प्राप्ति कथन करी है और ' अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुः ' इत्यादिक श्रुतियोंने ता भेददर्शी पुरुषकूं पशु कह्या है यातैं ता भेदज्ञानकूं मोक्षकी साधनता संभवती नहीं। उलटा इन उक्त श्रुतियों तैं जन्म मरणरूप संसारकी ही साधनता सिद्ध होवै है । और ' प्रज्ञानं ब्रह्म । अहं ब्रह्मास्मि। तत्त्वमसि। अयमात्मा ब्रह्म ' इत्यादिक श्रुतियोंने तथा 'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि ' इत्यादिक स्मृति वचनोंने ता जीव ब्रह्मका अभेद ही कथन कर्‍या है यातैं 'अहं ब्रह्मास्मि ' या प्रकारका जीव ब्रह्मका अभेदज्ञान ही ता मोक्षका साधन सिद्ध होवै है। सो मोक्षका साधनरूप आत्मज्ञान इन अधिकारी पुरुषोंकूं ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रके श्रवण मनन निदिध्यासन करिकै ही प्राप्त होवै है यातैं ता मोक्षकी इच्छावाले अधिकारी पुरुषोंने श्रवणादिक साधनों करिकै सो आत्मज्ञान अवश्य संपादन कर्‍या चाहिये और जे पुरुष प्रमाद करिकै ता आत्मज्ञानकूं नहीं संपादन करै हैं तिन पुरुषोंकूं 'न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।' इस श्रुतिने जन्म मरणादिरूप महान् हानिकी प्राप्ति कथन करी है। तथा ' यो वा एतदक्षरं

गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः' इस श्रुतिने आत्मज्ञानतैं रहित पुरुषकूं कृपण कह्या है। अर्थात् जैसे लोकप्रसिद्ध कृपण पुरुष प्राप्त हुए धनके उपभोगतैं रहित होवै है तैसे अज्ञानी पुरुष भी नित्य प्राप्त ब्रह्मानंदरूप धनके साक्षात्काररूप उपभोगतैं रहित होणेतैं कृपण ही है और जो अधिकारी पुरुष श्रवणादिक साधनों करिकै ता आत्मज्ञानकूं संपादन करे है तिस अधिकारी पुरुषकूं 'अथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः' इस श्रुतिने ब्राह्मण कह्या है। तथा गीताविषे श्रीभगवानने भी 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' इस वचन करिकै ता ज्ञानवान् पुरुषकूं आपणा आत्मा ही कह्या है। यातैं इन अधिकारी पुरुषोंने मोक्षकी प्राप्तिवासतैं सो आत्मज्ञान श्रवणादिकों करिकै अवश्य संपादन करणे योग्य है। या कारणतैं ही वेदविषे 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' इस श्रुतितैं आत्मज्ञानकी अवश्य कर्त्तव्यताकूं कहिकै ता आत्मज्ञानकी प्राप्ति वासतैं 'श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः' इस श्रुतितैं श्रवण मनन निदिध्यासन यह तीन साधन विधान करे हैं यातैं सब वेदोंका साक्षात् वा परंपरातैं ता आत्मज्ञानविषे ही तात्पर्य है। तहां वेदके कर्मकांडका तौ अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ता आत्मज्ञानविषे तात्पर्य है और उपासनाकांडका चित्तकी एकाग्रता द्वारा तात्पर्य है और उपनिषद् रूप ज्ञानकांडका तौ साक्षात् ही ता आत्मज्ञानविषे तात्पर्य है। इस प्रकार मनु भगवान् याज्ञवल्क्य पराशर आदिक ऋषियोंने जे धर्मशास्त्ररूप स्मृतियां करी हैं तथा श्रीव्यास भगवान्ने जे ब्रह्मसूत्र तथा इतिहास पुराण करे हैं तिन सर्वोंका भी ता ब्रह्मात्म एकत्व ज्ञानविषे ही तात्पर्य है। तथा वाल्मीकि ऋषिने भी वासिष्ठ रामायणविषे अनेक इतिहासोंकरिकै इस आत्मज्ञानका ही निरूपण कऱ्या है। ऐसे

अनादि श्रुति स्मृति आदिकोंकरिकै सिद्ध आत्मज्ञानकूं ही श्रीभगवान् शंकराचार्यने उपनिषद्भाष्यविषे तथा सूत्रभाष्यविषे तथा गीताभाष्यविषे अति स्पष्टकरिकै निरूपण कऱ्या है। यह वार्त्ता श्रीव्यास भगवानने शिवपुराणविषे भी कथन करी है। तहां श्लोक 'व्याकुर्वन् व्याससूत्रार्थं श्रुतेरर्थं यथोचिवान्।श्रुतेर्न्याय्यः स एवार्थः शंकरः सवितानना:।' अर्थ-वेदोंके अन्यथा अर्थकूं निश्चय करिकै अनर्थकूं प्राप्त हुए लोकोंकूं देखिकै सर्वदेवताओं करिकै प्रार्थना कऱ्या हुआ श्री भगवान् शंकर पृथिवीविषे श्रीशंकराचार्यरूप अवतारकूं धारण करिकै श्री व्यास भगवान्कृत ब्रह्मसूत्रोंका व्याख्यान करते हुए जिस प्रकारका श्रुतियोंका अर्थ करते भये हैं सोई ही श्रुतियोंका अर्थ समीचीन है। तिसतैं अन्य प्रकारका अर्थ समीचीन नहीं है इति। और ता भगवान् शंकराचार्यकी शिष्यपरंपराविषे अनेक विद्वान् संन्यासी तथा अनेक विद्वान् ब्राह्मण हुए हैं तिनोंने तिन सूत्र भाष्यादिकों उपरि टीकाग्रंथ करे हैं। तथा स्मृति इतिहास पुराण आदिकों उपरि टीकाग्रंथ करे हैं तथा स्वतंत्र अनेक प्रकरण ग्रंथ कऱ्ये हैं। ते ग्रंथ इदानीं कालविषे भी सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। तिन ग्रंथोंविषे भी सो जीव ब्रह्मका अभेदज्ञान ही सिद्ध कऱ्या है। तहां कै एक ग्रंथ तौ इतर मतोंके खंडनपूर्वक स्वमतके स्थापन करणेहारे रचे हैं। जैसे चित्सुखी, अद्वैतसिद्धि, संक्षेप शारीरक, स्वाराज्यसिद्धि, वेदांतपरिभाषा, सिद्धांतलेश, अद्वैतकौस्तुभ, भेदधिक्कार इत्यादिक ग्रंथ हैं और कै एक ग्रंथ तौ केवल स्वमतके स्थापन करणेहारे रचे हैं। जैसे पंचदशी, वेदांतसार, अपरोक्षानुभूति, वाक्य-

वृत्ति, वाक्यसुधा, जीवन्मुक्ति, विवेकचूडामणि, आत्मबोध, तत्त्वबोध इत्यादिक ग्रंथ हैं। इस प्रकार अधिकारी पुरुषोंके बुद्धिके तारतम्यताके अनुसार विद्वान् पुरुषोंने अत्यंत विस्तरवाले तथा थोड़े विस्तारवाले तथा अत्यंत कठिन तथा अत्यंत सुगम ऐसे अनेक वेदांतग्रंथ करे हैं। तिन सर्व ग्रंथकर्त्ता पुरुषोंका इन अधिकारी पुरुषोंके आत्मज्ञान करावणेविषे ही तात्पर्य है अर्थात् कोई प्रकार करिकै भी इन अधिकारी पुरुषोंकूं आत्माका साक्षात्कार होवै है जिस करिकै मोक्षकूं प्राप्त होवै और जे अधिकारी पुरुष श्रद्धा भक्तिपूर्वक तिन ग्रंथोंका विचार करे हैं तिन अधिकारी पुरुषोंकूं ता आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति अवश्य करिकै होवै है। परंतु ते सर्व ग्रंथ संस्कृत वाणीविषे हैं यातैं सर्व अधिकारी पुरुषोंकी तिन ग्रंथोंके विचारविषे प्रवृत्ति होइ सके नहीं, किंतु व्याकरण काव्य कोश आदिक साधन ग्रंथोंके अभ्यासवाले पुरुषोंकी ही तिन संस्कृत ग्रंथोंके विचारविषे प्रवृत्ति होवै है और जे अधिकारी पुरुष शरीरकी अति अवस्थातैं अथवा कोई व्याधि आदिक निमित्ततैं तिन व्याकरणादिकोंके संपादन करणेविषे समर्थ नहीं हैं और आत्मज्ञानकी उत्कट इच्छा है तिन मुमुक्षु जनोंके बोधवासतैं महात्मा जनोंने तिस तिस देशकी भाषाविषे वेदांतके ग्रंथ करे हैं। तिन भाषाग्रंथोंके विचार करणेतैं तिन अधिकारी पुरुषोंकूं सो आत्मसाक्षात्कार अवश्य होवै है। काहेतैं संस्कृत वेदांतग्रंथोंविषे आत्मज्ञानके उपयोगी जे जे पदार्थ निरूपण करे हैं ते सर्व पदार्थ तिन भाषाग्रंथोंविषे भी निरूपण करे हैं। तिन पदार्थोंविषे किंचित्मात्र भी विलक्षणता नहीं है यातैं तिन भाषाग्रंथोंके विचारतैं अधिकारी पुरुषोंकूं सो आत्म-

ज्ञान अवश्य होवै है किंवा तिस तिस देशविषे संस्कृत ग्रंथोंके अध्यापक पुरुष जभी श्रोता पुरुषोंके प्रति तिस संस्कृतवाक्यका उच्चारण करिके ता वाक्यका स्वदेशकी भाषाविषे अर्थ कहे हैं तभी ही ता श्रोता पुरुषकूं ता वाक्यके अर्थका बोध होवै है। केवल संस्कृत वाक्यके पाठमात्रतैं ता श्रोताकूं बोध होता नहीं । या प्रकारकी पठन पाठनकी रीति इदानींकालविषे सर्वत्र प्रसिद्ध है । यातैं सो विद्वान् पुरुषकृत संस्कृत वाक्योंका देशभाषाविषे व्याख्यान जैसे श्रोता पुरुषोंके बोधका हेतु होवै है तैसे विद्वान् पुरुषकृत संस्कृत वाक्योंके व्याख्यानरूप ते भाषाग्रंथ भी अधिकारी पुरुषोंके बोधका हेतु अवश्य होवैंगे। किंवा भाषाग्रंथोंके विचारकूं आत्मज्ञानकी हेतुता केवल उक्त युक्ति करिके ही सिद्ध नहीं है किंतु प्रत्यक्ष अनुभव करिकै भी सिद्ध है। जो हृषीकेशादिके स्थानोंविषे कितनेक महात्मा लोक केवल भाषाग्रंथोंका ही विचार करे हैं । परंतु तिन महात्मा लोकोंविषे ज्ञाननिष्ठा तथा दैवी संपदाके गुण तथा वेदांतशास्त्रके पद पदार्थका ज्ञान परिपूर्ण देखणेविषे आवै है, यातैं जैसे संस्कृत वेदांतके ग्रंथ अधिकारी पुरुषोंके आत्मज्ञानके हेतु हैं तैसे भाषा वेदांतग्रंथ भी अधिकारी पुरुषोंके आत्मज्ञानके ही हेतु हैं। इस प्रकारके अभिप्राय करिकै ही महात्मा पुरुषोंने तिस तिस देशविषे स्थित अधिकारी पुरुषोंके बोधवास्तैं तिस तिस देशकी भाषाविषे वेदांतके ग्रंथ करे हैं । यातैं अधिकारी पुरुषोंके बोधका हेतु होणेतैं तिन भाषाग्रंथोंकी रचना भी सफल है। इस प्रकारका विचार करिकै श्रीभावनगर राजधानी मुख्य प्रधान श्रीब्रह्मनिष्ठ गौरीशंकरने गुर्जर देशकी भाषाविषे एक स्वरूपानुसंधान नामा ग्रंथ रच्या है तथा छपाइके प्रसिद्ध कऱ्या है । तिस ग्रंथ विषे श्रुति स्मृति आचा-

योंके वाक्य प्रमाण देके पंचकोशादिक सर्व वेदांतकी प्रक्रिया लिखी हैं तथा उपनिषद्भाष्य,सूत्रभाष्य,गीताभाष्य आदिकोंके संक्षेपतैं तात्पर्यार्थ निरूपण कन्या है यातैं सो स्वरूपानुसंधान ग्रंथ भी मुमुक्षु जनोंकूं विचारविषे बहुत उपयोगी है और पूर्व श्रीस्वामी चिद्घनानंदगिरिनै सर्व मुमुक्षुजनोंके हितवासतैं भगवद्गीताकी गूढार्थदीपिका नामा भाषाटीका करी थी। तिसकूं भी उन्होंने ही छपाइके प्रसिद्ध कन्या था और अबी श्रीस्वामी सच्चिदानंद सरस्वती नामयुक्त संन्यास आश्रमकूं धारण करिके स्थित तिनोंने ही सर्व मुमुक्षुजनोंके हितवासतैं यह तत्त्वानुसंधान ग्रंथ छपाइके प्रसिद्ध कन्या है तथा अन्य भी कई संस्कृतभाषा ग्रंथ छपाइके प्रसिद्ध करे हैं ऐसे स्वधर्मविषे स्थित तथा ब्रह्मविद्याके प्रवर्त्तक पुरुष जगत्‌विषे दुर्लभ हैं इति ॥

जगद्धितैषी-

स्वामी चिद्घनानंद सरस्वती.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

तत्त्वानुसंधान ग्रंथारंभ ।



श्रीगुरोश्चरणद्वंद्वं नुमो व्यासमुखान्मुनीन् ॥
विघ्नहर्तॄन्गणेशादीन्पंडितांश्च विमत्सरान् ॥ १ ॥
नत्वाथ शङ्कराचार्यमुख्यान्सर्वान्गरीयसः ॥
ग्रंथं तत्त्वानुसंधानं वर्णयामि यथामति ॥ २ ॥

श्रीगुरुवोंके दोनों चरणोंकूं तथा श्रीव्यास भगवानतैं आदि लैके वसिष्ठ सनकादिक सर्वमुनियोंकूं तथा विघ्नोंके नष्ट करणेहारे श्रीगणेशतैं आदि लैके श्रीमहादेव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, देवी इत्यादिक सर्वदेवतावोंकूं तथा मत्सरादिक सर्व दोषोंते रहित पंडित जनोंकूं मैं नमस्कार करूं हूं ॥ १ ॥ किंवा श्रीमहादेवका अवताररूप जो श्रीशंकराचार्य है तिसतैं आदि लैके जितनेक तिनोंके शिष्य प्रशिष्यादिक संप्रदायविषे स्थित श्रीसुरेश्वराचार्य श्रीपद्मपादाचार्य श्रीतोटकाचार्य श्रीहस्तामलकाचार्य श्रीसर्वज्ञ महामुनि श्रीचित्सुखाचार्य इत्यादिक वृद्ध महात्मा हैं तिन सबोंकूं नमस्कार करिकै मैं इस प्राकृत तत्त्वानुसंधाननामा ग्रंथकूं यथामति वर्णन करूं हूं इति ॥ २ ॥

अब संस्कृत तत्त्वानुसंधानग्रंथके कर्त्ता श्रीमहादेवसरस्वतीनें ता ग्रंथकी निर्विघ्न समाप्तिवासते जो मंगल कर्या है ताकूं इहां लिखे हैं॥

'ब्रह्माहं यत्प्रसादेन मयि विश्वं प्रकल्पितम् ॥
श्रीमत्स्वयंप्रकाशाख्यं प्रणौमि जगतां गुरुम् ॥१॥
देहो नाहं श्रोत्रवागादिकानि नाहंबुद्धिर्नाहमध्या-

समूलम् ॥ नाहं सत्यानन्दरूपश्चिदात्मा माया साक्षी कृष्ण एवाहमस्मि' ॥ २ ॥

अब इन दो श्लोकोंविषे प्रथमश्लोकका अर्थ निरूपण करे हैं जिस गुरुके प्रसाद करिकै मैं ब्रह्मरूप हूँ तथा यह सर्व विश्व मेरेविषे कल्पित है ऐसा जो श्रीमत्स्वयंप्रकाश सरस्वती नामा हमारा गुरु है तथा अधिकारीजन रूप सर्व जगत्का गुरु है तिस सद्गुरुकूं मैं नमस्कार करूं हूं। इति अब इसी श्लोकका विस्तारतें अर्थनिरूण करे है। तहां उक्त श्लोकविषे ब्रह्माहं इस वचनविषे स्थित ब्रह्म शब्द करिकै मायातें रहित अखंड चेतन्यका ग्रहण करना और अहं शब्द करिकै स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीन शरीरोंतें रहित प्रत्यक् चैतन्यका ग्रहण करणा और ब्रह्म अहं इन दोनों पदोंका समानाधिकरण्य है सो पदोंका सामानाधिकरण्य अर्थके अभेदस्थलविषे ही होवै है यातें ब्रह्माहं इस वचन करिकै ग्रंथकारने तत्त्वमसि अहंब्रह्मास्मि इत्यादिक महावाक्यों का अर्थरूप ब्रह्म आत्माका अभेद इस तत्त्वानुसंधान प्रकरणका विषय सूचन कर्या और तिस ब्रह्मात्माके अभेदज्ञानतें अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा जा परमानंदकी प्राप्ति है, सो इस ग्रंथका प्रयोजन सूचन कर्या और ता परमानंदके प्राप्तिकी इच्छावाला जो विवेकादिक चतुष्टय साधन संपन्न पुरुष है सो इस ग्रंथका अधिकारी सूचन कर्या और विषयग्रंथादिकोंका परस्पर प्रतिपाद्य प्रतिपादक भावादि रूप संबंध भी सूचन कर्या सो दिखावै हैं तहां ब्रह्मात्म एकत्वरूप विषयका तथा ग्रंथका परस्पर प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव संबंध है तहां यह वेदांत तो प्रतिपादक है और सो उक्त विषय प्रतिपाद्य है। तहां जो प्रतिपादन करनेवाला होवैहै सो प्रतिपादक कह्याजावैहै और जो प्रतिपादन करणेकू योग्य होवै है सो प्रतिपाद्य कह्या जावै है और फलका तथा अधिकारीका परस्पर प्राप्यप्रापक भाव संबंध है तहां अज्ञानकी

निवृत्ति उपलक्षित परमानंदकी प्राप्तिरूप फल तो प्राप्य है और उक्त अधिकारी प्रापक है। तहां जो वस्तु प्राप्त होनेकूं योग्य होवे सो वस्तु प्राप्य कह्या जावे है और जिस पुरुषकूं सो वस्तु प्राप्त होवे है सो पुरुष प्रापक कह्या जावे है और अधिकारीका तथा विचारका परस्पर कर्तृकर्तव्यभाव संबंध है तहां उक्त अधिकारी तो कर्ता है और विचार कर्तव्य है तहां करनेवालेकूं कर्ता कहे हैं और करनेयोग्य अर्थकूं कर्तव्य कहे हैं और ज्ञानका तथा ग्रंथका परस्पर जन्य जनक भाव संबंध है तहां विचारद्वारा ग्रंथ ज्ञानका जनक होवे है और सो ज्ञानजन्य होवे है तहां उत्पत्ति करनेवालेका नाम जनक है और उत्पन्न होनेहारे कार्यका नाम जन्य है इसतें आदि लैके और भी संबंध जानि लेने । तहां विषय १ प्रयोजन २ अधिकारी ३ संबंध ४ यह चारि अनुबंध विवेकी पुरुषोंकी ग्रंथ विषयक प्रवृत्तिके हेतु होवै हैं।अर्थात इन चारि अनुबंधोंकू जानिकै ही बुद्धिमान् पुरुष ग्रंथविषे प्रवृत्त होवै है।या कारणतैं ही ग्रंथकारने ब्रह्माहं इस वचन करिकै सूचन करेहुए ते अनुबंध इहां स्पष्ट करिकै निरूपण करे हैं और ता ग्रंथकारने ब्रह्माहं इस वचन करिकै साक्षात्‌तौ ग्रंथकी निर्विघ्न समाप्ति वासतैं तत्त्वानुसंधान रूप मंगल ही कथन कऱ्या है इहां ब्रह्म आत्माका जो एकत्व है सोई ही तत्त्व है ता तत्त्वका जो स्मरण है ताका नाम तत्त्वानुसंधान है।शंका– ता तत्त्वानुसंधानकी मंगलरूपता विषे कौन प्रमाण है ? समाधान- व्यासादिक मुनियोंने स्मृति वचनोंविषे ता परमात्माके स्मरणकूं मंगलरूपता कथन करी है तहां स्मृति 'स्मृतेःसकलकल्याण भाजनं यत्र जायते। पुरुषस्तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्' ॥ १॥ अर्थ–यह पुरुष जिस हरिके स्मरण कियेहुए सर्वकल्याणोंका भाजन होवे है तिस जन्मतैं रहित नित्य हरिके शरणकूं मैं अधिकारीजन

प्राप्त हूं इति॥ १॥अन्यस्मृति 'सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममंग-
लम्। येषां हृदिस्थो भगवान्मंगलायतनो हरिः' ॥ २॥अर्थ-जिन
पुरुषोंके हृदयविषे सर्वमंगलोंका आश्रयभूत भगवान् हरि स्थित है
तिन पुरुषोंकूं सर्व कालविषे सर्व कार्योंविषे अमंगल नहीं है किन्तु
सर्वदा सर्वकार्योंविषे मंगल ही है इति॥२॥अन्यस्मृति 'अशुभानि
निराचष्टे तनोति शुभसंततिम्। स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मगलं
विदुः'॥३॥अर्थ-जो ब्रह्म आपने स्मरणमात्र करिके इन अधिकारी
पुरुषोंके सर्व अशुभोंकूं निवृत्त करे है तथा सर्व शुभोंकू विस्तार करे है
तिस ब्रह्मकूं वेदवेत्ता पुरुष मंगलरूप जाने है इति॥३॥ अन्यस्मृति
'हरिर्हरतिपापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्ये-
व हि पावकः'॥४॥अर्थ-जैसे विना इच्छाते स्पर्श करा हुआ भी
अग्नि दाह ही करे है तैसे दुष्ट चित्तवाले पुरुषोंने भी स्मरण करा
हुआ हरि तिन पुरुषोंके पापोंकूं नाश ही करे है इति॥४॥इत्यादिक
स्मृति वचनोंने ता परमात्माकेस्मरणरूप तत्त्वानुसंधान विषे मंगलरू-
पता ही कथन करी है,यातें ब्रह्माहं इस तत्वानुसंधानविषे मंगलरूपता
संभवै है। शंका-ब्रह्माहं इस वचनकरिके कथन करा जोब्रह्म आत्माकी
एकत्वसे संभवता नहीं काहेतें सो ब्रह्म तथा जीवात्मादोनों परस्पर
विरुद्ध धर्मों करिके युक्त हैं और जे पदार्थ परस्पर विरुद्ध धर्मवाले
होवेहैं तिन पदार्थोंकी एकताहोती नहीं जैसे उष्णस्पर्शवाले अग्निका
तथा शीतस्पर्शवाले बर्फका एकत्व होता नहीं तैसे ता जीव ब्रह्मका
भी एकत्व संभवता नहीं।तहां 'यः सर्वज्ञःसर्ववित्'इत्यादिक श्रुति
स्मृतिवचनों करिके सो ब्रह्म तो जगत् कल्पनाका अधिष्ठानरूपतथा
सर्वज्ञरूप जान्या जावै है और 'अनीशया शोचति मुह्यमानः'
इत्यादिक श्रुति स्मृतिवचनों करिके सो जीवात्मा ता ब्रह्मतें विपरीत
अल्पज्ञत्वादिक धर्मवाला जान्या जावै है और मैं ब्रह्म नहीं हूं या

प्रकारका प्रत्यक्ष अनुभव सर्वलोककूं होवे है । अनुभव भी जीव ब्रह्मके भेदकूं ही सिद्ध करे है । सो यातैं ब्रह्माहं इस वचन करिकै कथन करी जीव ब्रह्मकी एकता संभवती नहीं।ऐसी वादीकी शंकाके लिये कहे हैं 'मयि विश्वं प्रकल्पितम्' इति । मैं अंतःकरण उपलक्षित साक्षी आत्माविषे यह गिरि नदी आदिक भेद करिकै भिन्न ब्रह्मांडपर्यंत सर्व विश्व कल्पित कहिये अध्यस्त हैं। यहां यह तात्पर्य है। अहं शब्दका वाच्य अर्थ जो जीव है ता जीवकी ब्रह्मशब्दके वाच्य अर्थसे विलक्षणताके हुए भी ता अहं शब्दका लक्ष्य अर्थ जो अंतःकरणादिकोंका साक्षी प्रत्यक् आत्मा है ता प्रत्यक् आत्माका मायाउपलक्षित ब्रह्मके साथ नाममात्रतैं ही भेद है वास्तवतैं तिन दोनों लक्ष्य अर्थोंका अभेद ही है यातें जैसे ब्रह्मविषे जगत् कल्पनाका अधिष्ठानपणा है तैसे प्रत्यक् आत्माविषे भी जगत्कल्पनाका अधिष्ठानपणा संभवै है यातें ता उक्त विरोधके अभावतैं तिन दोनों लक्ष्य अर्थोंकी एकता संभवै है । यह वार्ता श्रुति विषे भी कथन करी है,तहां श्रुति-'मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।मयिसर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम्'। अर्थ--सर्व जगत् मैं प्रत्यक् आत्माविषे ही उत्पन्न होवै है तथा मेरेविषे ही यह सर्व जगत् स्थित है तथा मेरेविषे ही यह सर्व जगत् लयभावकूं प्राप्त होवै है यातैं ब्रह्मकी न्याई सर्व जगत्कल्पनाका अधिष्ठान होणेतैं मैं प्रत्यक् आत्मा अद्वितीय ब्रह्मरूप ही हूं इति यह श्रुति अंतःकरण उपलक्षित प्रत्यक साक्षी आत्माविषे सर्व जगत्की कल्पनाकूं दिखाइके ता प्रत्यक्आत्माका ब्रह्मके साथ अभेदकूं ही बोधन करे है, यातैं ब्रह्माहं इस वचन करिकै जो ग्रंथकारने जीवात्मा ब्रह्मका अभेद कथन कऱ्या है सो सर्व प्रकारतें अविरुद्ध है। किंवा'मयि विश्वं प्रकल्पितम्' इस वचनकरिकै ग्रंथकारनें प्रपंचविषे मिथ्यापणा भी सूचन कऱ्या है, सो प्रपंचका मिथ्यापणा अनेक

श्रुतियों करिके सिद्ध है। तथा अनुमान प्रमाण करिकैभी सिद्ध है,ता अनुमानका यह आकार है।'व्यावहारिकः प्रपंचः मिथ्या दृश्यत्वात् शुक्तिरूप्यवत्' अर्थ—व्यावहारिक प्रपंच मिथ्या होणेकूं योग्य है, दृश्यरूप होणेतें,जो जो पदार्थ दृश्य होवे है सो सो पदार्थ मिथ्या ही होवे है जैसे शुक्तिविषे प्रतीत हुआ रूप्य दृश्य होणेतें मिथ्या ही है इति। किंवा पूर्व भेदवादीने मैं ब्रह्म नहीं हूं यहजो जीव ब्रह्मके भेदका ग्राहक प्रत्यक्ष कह्या था, ता वादीसे यह पूँछना चाहिये। सो तुमारा प्रत्यक्ष अंतःकरणादि विशिष्ट आत्माविषे ब्रह्मके भेदकूं ग्रहण करे है अथवा शुद्ध आत्माविषे ब्रह्मके भेदकूं ग्रहण करे है। तहां सो वादी जो प्रथम पक्ष अंगीकार करै सो हमारेकूं भी इष्ट है। अर्थात् ता विशिष्ट आत्माका ब्रह्मके साथ अभेद हम भी अंगीकार करते नहीं। और सो वादीजो दुसरा पक्ष अंगीकार करे सो संभवता नहीं।काहेतें सो शुद्धआत्मा अतींद्रिय है अर्थात् इंद्रियजन्य ज्ञानका विषय नहीं है, ऐसे शुद्धआत्माके ग्रहण करणेवास्ते चक्षु आदिक इंद्रियोंकी प्रवृत्ति कदाचित् भी नहीं होवेगी। जबी ता भेदका धर्मीरूप शुद्ध आत्मा इंद्रियों करिके ग्रहण नहीं हुआ तबी ता शुद्ध आत्माके आश्रित सो ब्रह्मका भेद इंद्रियों करिके कैसे ग्रहण होवेगा किंतु नहीं ग्रहण होवैगा। जिस कारणतें धर्मीके तथा प्रतियोगीके ज्ञानतें विना ता भेदका ज्ञान होता नहीं,किंतु धर्मी प्रतियोगीके ज्ञान हुए ही ता भेदका ज्ञान होवे है।जैसे'घटः पटो न' इस प्रतीतितें घटविषे प्रतीत भया जो पटका भेद है ता भेदका सो घट तौ धर्मी होवै है और सो पट प्रतियोगी होवे है। ता घटरूप धर्मीके तथा पटरूप प्रतियोगीके ज्ञान हुए ही ता घटविषे पटके भेदका ज्ञान होवै है,तैसे तुमने शुद्ध आत्माविषे अंगीकार कऱ्या जो ब्रह्मका भेद है ता भेदका भी सो शुद्ध आत्मा तौ धर्मी होवैगा और सो ब्रह्म प्रतियोगी होवेगा। ता धर्मी

प्रतियोगीके ज्ञानते विना ता भेदका ज्ञान होवेगा नहीं और ता भेदका सो शुद्ध आत्मारूप धर्मी तथा ब्रह्मरूपप्रतियोगी दोनों अतींद्रिय हैं । यातें ता धर्मी प्रतियोगीके प्रत्यक्षतें विना ता भेदका प्रत्यक्ष कैसे होवेगा किंतु नहीं होवेगा यातें जीव ब्रह्मके भेदका ग्राहक प्रत्यक्ष प्रमाण है यह वादीका कहना केवल मनोरथमात्र है इति। किंवा विचार करिके देखिये तो किसी भी भेदकी कहीं स्थिति संभवती नहीं। काहेतें जो वादी ता भेदकूं अंगीकार करे है ता वादीसे यह पूँछना चाहिये सो भेद अभिन्न धर्मीविषे रहे है अथवा भिन्न धर्मीविषे रहे है। इहां भेदतें रहितका नाम अभिन्न है और भेदवालेका नाम भिन्न है । तहां सो वादी जो प्रथम पक्ष अंगीकार करे तो एक तो व्याघात दोषकी प्राप्ति होवे है काहेतें परस्परविरुद्ध धर्मोंका जो एक अधिकरणविषे समुच्चय है ताका नाम व्याघात है। जैसे प्रसंगविषे भेदते रहितपना तथा भेद यह दोनों परस्पर विरुद्ध हैं, अर्थात् जहां भेद रहे है तहां भेदरहितपना नहीं रहे है और जहां भेदरहितपना रहे है तहां भेद नहीं रहे है, ऐसे विरुद्ध धर्मोंका एक अधिकरणविषे समुच्चय माननेमें सो व्याघात दोष स्पष्ट ही प्रतीत होवे है और दूसरा भेदरहित धर्मीविषे भेदकूं ग्रहणकरणेहारेप्रत्यक्षज्ञानविषेभ्रमरूपताकी प्राप्ति होवेगी। यातें अभिन्न धर्मीविषे भेदका वर्तन संभवता नहीं और सो वादी ता उक्त दोनों दोषोंकी निवृत्ति करनेवासते सो भेद भिन्न धर्मीविषे रहे है यह द्वितीयपक्ष जो अंगीकार करे तो वादीसेयह पूँछना चाहिये। सो भेद अपनेकरिके भिन्न कन्ये हुए धर्मीविषे आप रहे है, अथवा किसी दूसरे भेदकरिकेभिन्न कन्ये हुए धर्मीविषे सो भेद रहे है। तहां सो वादी जो प्रथमपक्ष अंगीकार करे तो आत्माश्रय दोषकी प्राप्ति होवेगी । काहेतें अपनी उत्पत्तिविषे जो अपनी अपेक्षा है अथवा अपनी स्थितिविषे जोअपनीअपेक्षा है अथवाअपने ज्ञानविषे

जो अपनी अपेक्षा है ताका नाम आत्माश्रय है।जैसे इहां प्रसंगविषे तिस भेदविशिष्ट धर्मींविषे तिसभेदकी स्थि तिमाननेविषे सो अपनी स्थितिविषे अपनी अपेक्षारूप आत्माश्रय दोष स्पष्ट ही प्रतीत होवे है । यातैं तिस भेदविशिष्ट धर्मींविषे तिस भेदका वर्तना संभवे नहीं और ता आत्माश्रय दोषके निवृत्तकरणेवासते सो वादी किसी दूसरे भेद कारिकेभिन्न करेहुए धर्मींविषे सो भेद रहे है यह दूसरा पक्ष जो अंगीकार करे तो वादीसे यह पूँछना चाहिये। सो दूसरा भी अभिन्न धर्मींविषे रहे है,अथवा भिन्नधर्मींविषे रहे है। तहां सो वादी जो प्रथम पक्ष अंगीकार करै तौ पूर्वकी न्याईं पुनः व्याघात दोषकी प्राप्तिहोवेगी ता व्याघात दोषकी निवृत्ति करने वासते सो वादी जो द्वितीय पक्ष अंगीकार करे तो वादीसे यह पूँछना चाहिये सो दूसरा भेद भी अपनेकरिके भिन्न करे हुए धर्मींविषे आप रहे हैंअथवा ता प्रथम भेद करिकै भिन्न करे हुए धर्मींविषे सो दूसरा भेद रहे है अथवा किसी तीसरे भेदकरिकेभिन्न करे हुए धर्मींविषेसोदूसरा भेद रहे हैं तहां प्रथम पक्षविषे तो पूर्वकी न्याईं पुनः आत्माश्रय दोषकी प्राप्ति होवेगी और दूसरेपक्षविषे अन्योन्याश्रय दोषकीप्राप्तिहोवेगी।काहेतें दोपदार्थोंकूं आपणी उत्पत्तिविषे अथवा अपनी स्थितिविषे अथवा अपनेज्ञानविषे जो परस्पर अपेक्षा है ताका नाम अन्योन्याश्रय है। जैसे यहां प्रसंगविषे प्रथम भेदकूं अपनी स्थितिवासते दूसरे भेदकी अपेक्षा होवे है और ता दूसरे भेदकूं अपनी स्थितिवासते प्रथम भेदकी अपेक्षा होवे है। यातैं प्रथम भेदविशिष्ट धर्मींविषे ता दूसरे भेदकी स्थिति माननेविषे सो अन्योन्याश्रय दोष स्पष्ट ही प्रतीत होवे है और ता अन्योन्याश्रय दोषकी निवृत्ति करनेवासते सो वादी जो तीसरा पक्ष अंगीकार करे अर्थात् किसी तीसरे भेद करिके भिन्न करेहुए धर्मींविषे सो दूसरा भेद रहे है यह तीसरा पक्ष जो वादी

अंगीकार करै ता वादीसैं यह पूँछना चाहिये सो तीसरा भेद भी अभिन्न धर्मीविषे रहे है अथवा भिन्न धर्मीविषे रहे है। तहां प्रथम पक्षविषे तौ पूर्वकी न्याईं पुनः व्याघात दोषकी प्राप्ति होवैंगी ता दोषकी निवृत्तिवासतै सो वादी जो द्वितीय भिन्न पक्ष अंगीकार करै ता वादीसैं यह पूँछना चाहिये सो तीसरा भेद भी आपणेकरिके भिन्न कऱ्ये हुए धर्मीविषे आप रहे हैं अथवा ता दूसरे भेद करिकै भिन्न कऱ्ये हुए धर्मीविषे सो तीसरा भेद रहे है, अथवा किसी चतुर्थ भेद करिकै भिन्न कऱ्ये हुए धर्मिविषे सो तीसरा भेद रहे है। तहां प्रथम पक्षविषे तौ पूर्वकी न्याईं पुनः आत्माश्रय दोषकी प्राप्ति होवैंगी और द्वितीय पक्षविषे भी पूर्वकी न्याईंपुनःअन्योंन्याश्रय दोपकीप्राप्ति होवैंगी और तृतीय पक्षविषे चक्रिका दोषकी प्राप्ति होवैंगी। काहेतैं प्रथमकूं अपेक्षित जो द्वितीय है ता द्वितीयकूं अपेक्षित जो तृतीय है तिन तृतीयादिकोंकूं जो पुनः ता प्रथमकी अपेक्षा है ताका नाम चक्रिकाहै। जैसे इहां प्रसंगविषे ता प्रथम भेदकूं आपणी स्थितिविषे दूसरे भेदकी अपेक्षा है और ता दूसरे भेदकूं अपणी स्थितिविषे तीसरे भेदकी अपेक्षा है और ता तीसरे भेदकूं आपणी स्थितिविषे पुनः ताप्रथम भेदकी अपेक्षा है,इस रीतिसे चतुर्थ पंचमादिकोंविषे भी पुन प्रथमकी अपेक्षातैं चक्रिका दोषकी ।प्राप्ति जानिलेणी और ता चक्रिका दोपकी निवृत्ति वासत सो वादी जो चतुर्थ पक्ष अंगीकार करै अर्थात् सो तीसरा भेद किसी चतुर्थ भेद करिकै भिन्न कऱ्येहुए धर्मीविषे रहे है यह चतुर्थ पक्ष अंगीकार करै तौ अनवस्था दोषकी प्राप्ति होवैंगी। काहेतैं सो चतुर्थ भेद भी पूर्व उक्त व्याघात आत्माश्रय अन्योन्याश्रय चक्रिका आदिक दोपोंकी प्राप्तिके भयतैंअभिन्नधर्मीविषे वा स्वविशिष्ट धर्मीविषे वा तृतीय भेदविशिष्ट धर्मीविषे वा प्रथमभेद-

विशिष्ट धर्मीविषे रहैगा नहीं, किन्तु किसी पञ्चमभेदविशिष्ट धर्मी विषे ही रहैगा आगेतैं सो पञ्चम भेद भी किसी षष्ठ भेदविशिष्ट धर्मीविषे ही रहैगा। इस प्रकार आगे आगे भेदोंकी धारा मानणे विषेअनवस्थ दोषकी प्राप्ति होवैगी । तहां पर्यवसानतैं रहित जो पूर्व पूर्वकूं उत्तरउत्तरकी अपेक्षा है ताका नाम अनवस्था है तहां व्याघात आत्माश्रय अन्योन्याश्रय चक्रका अनवस्था इन दोषोंको संस्कृत लक्षणन्याय प्रकाशके षष्ठ परिच्छेदविषे तर्कनिरूपणविषे हमने विस्तारतैं कथन कर्‍ये हैं जिसकूं जिज्ञासा होवै तिसने तहां जानिलेणे इस प्रकारतैं जीव ब्रह्मके भेदके असंभव हुए ब्रह्माहं इस वचन करिकै सो तत्त्वानुसंधानरूप मंगल संभवै है इति । शंका-ब्रह्माहं इस तत्त्वानुसंधानरूप मंगल करिके ही ग्रंथकी निर्विघ्नपरिसमाप्ति संभव होइ सकै है यातैं ग्रंथकारने 'गुरुं प्रणौमि' इस वचन करिकै पुनः गुरुको नमस्कार किसवासतै कर्‍या है? समाधान-इस पुरुषकूं सो तत्त्वानुसन्धान ब्रह्मवेत्ता गुरुकी भक्तितैं विना प्राप्तहोता नहीं, किंतु गुरुकी भक्तिकरिकै ही सो तत्त्वानुसन्धान प्राप्त होवे है। यह वार्त्ताश्रुतिविषे भी कथन करी हैतहां श्रुति-'यस्य देवे परा-भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः' अर्थ-जिस अधिकारी पुरुषकी परमात्मादेवविषे परम भक्ति होवे है और जैसी परमात्मादेवविषे परम भक्ति होवे है तैसी ही जभी ब्रह्मवेत्ता गुरुविषेपरमभक्ति होवे है तभी ही तिस महात्मा अधिकारी पुरुषकूं यह वेदांतप्रतिपादित जीवब्रह्मका एकत्वादिरूप अर्थ बुद्धिविषे प्रकाशमान होवे है, ता गुरु भक्तितैं रहित पुरुषकूं ते वेदांत प्रतिपादित । अर्थ कदाचित् भीप्रकाशमान होते नहीं इति। इस श्रुतिनैं ता गुरुभक्तिकूं ता तत्त्वानुसन्धानके प्रति अंतरंग साधनता कथन करी है या कारणतैं ही ग्रंथकारने सो गुरुका नमस्कार रूप भक्ति यहां करी है इति प्रथमश्लोक व्याख्या ॥१॥

अथ द्वितीयश्लोक व्याख्या। तहां प्रथम श्लोकविषे ब्रह्माहं इस वचन करिकै अनुसंधान कऱ्या जो ब्रह्मात्मतत्त्व तिस ब्रह्मात्मतत्त्वकूं ही इस द्वितीय श्लोकविषे अहं शब्दार्थके विवेचनपूर्वक इष्टदेवतावाचक कृष्णशब्दतैं कथन करिकै पुनः अनुसंधान करे हैं।'देहो नाहमिति' स्वप्नविषे यह स्थूल देह प्रतीत होता नहीं और मैं तो ता स्वप्नविषे भी साक्षीरूप करिकै प्रकाशमान हूँ, यातैं मैं स्थूल देह नहीं हूँ। शंका—'स्थूलोऽहं कृशोऽहं मनुष्योऽहं'या प्रकारका अनुभव सर्व प्राणियोंकूं होवे है,ता अनुभवतैं यह स्थूल देह ही आत्मा सिद्ध होवे है। काहेतैं सर्व शास्त्रवालोंके मतविषे अहं शब्दका अर्थ तथा अहंप्रतीतिका विषय आत्मा ही होवे है और उक्त रीतिसे सा अहंप्रतीतिकी विषयता स्थूलत्व कृशत्व मनुष्यत्व आदिक धर्मविशिष्ट स्थूल देहविषे ही प्रतीत होवे है और ता स्थूल देहतैं भिन्न कोई आत्मा प्रतीतभी होता नहीं और स्वप्नविषे भी स्थूलोऽहं या प्रकारका अनुभव सर्व लोकोंकूं होवे है यातैं यह स्थूल देह ही आत्मा है। समाधान—इस स्थूल शरीरकी उत्पत्ति तथा विनाश सर्व लोकोंकूंप्रत्यक्ष प्रतीत होवे है और जो वस्तु उत्पत्ति विनाशवाली होवे है सो वस्तुअनात्मा ही होवे है। जैसे घटादिक वस्तु उत्पत्ति विनाशवाले होनेतैं अनात्मा ही है तैसे यह स्थूल शरीर भी उत्पत्ति विनाशवाला होनेतैं अनात्मा ही होवेगा। किंवा इस स्थूल शरीरकूं ही जो आत्मा मानिये तो कृतनाश अकृताभ्यागम इन दोनों दोषोंकी प्राप्ति होवैगी तहां कऱ्ये हुए पुण्य पाप कर्मका जो सुख दुःखरूप फलके भोगतैं विना ही नाश है ताका नाम कृतनाश है और नहीं कऱ्ये हुए पुण्य पाप कर्मके सुख दुःखरूप फलकी जो प्राप्ति है ताका नामअकृताभ्यागम है।तहां इस स्थूल देहकूं ही जो आत्मा मानिये तो इस देहरूप आत्माके नाश हुए ता देहतैं भिन्न भोक्ता आत्माके अभावतैं ता देह-

कृत पुण्य पाप कर्मका फलके भोगतैं विना ही नाश होवेगाऔर अभी नवीन उत्पन्न भया जो देहरूप आत्मा है तिसने पूर्व कोई पुण्य पाप कर्म कर्या नहीं और तिसकूं भी जन्मकालतैं लेके ही सुख दुःखरूप फलकी प्राप्ति तौ होवै है सा फलकी प्राप्ति ता पुण्य पाप कर्मतैं विना ही माननी होवैगी सो कर्ये हुए कर्मका फलके भोगतैं विना ही नाश मानना तथा कर्ये हुए कर्मके फलकीप्राप्ति माननीसर्व शास्त्रतैं विरुद्ध है। यद्यपि प्रायश्चित्तादिकोंकरिके तथा तत्त्वज्ञान-करिके ता पुण्य पाप कर्मका फल भोगतैं विना ही नाश शास्त्रोंविषे कह्या है,तथापि तिन शास्त्र उक्त प्रायश्चित्तादिक उपायोंतैं विना ही जो फल भोगतैं विना कर्मोंका नाश है ताका नाम कृतनाश है यातैं यह स्थूल देह आत्मा नहीं है किंवा ता देहात्मवादीने या स्थूल देहकी आत्मताविषे जो 'स्थूलोऽहं कृशोऽहं' इत्यादिक प्रत्यक्ष अनुभव कह्या था सो अनुभव तौ 'लोहितः स्फटिकः' इस अनुभवकी न्याईं भ्रमरूप है अर्थात् जैसे 'लोहितः' स्फटिकः यह अनुभव लोहितपणे तैं रहित शुक्ल स्फटिकविषे ता लोहितपणेकूं विषय करता हुआ भ्रम-रूप है तैसे सो उक्त अनुभव भी स्थूल कृशादि भावतैं रहित आत्मा-विषे स्थूल कृशादि भावकूं विषय करता हुआ भ्रमरूप ही है यातैं सो उक्त अनुभव ता स्थूल देहकी आत्माकूं सिद्ध करि सकै नहीं जिस कारणतैं यथार्थ अनुभव ही अर्थका साधक होवै है किंवा ता देहात्मवादीने जो यह कह्या था कि इस स्थूल देहतैं भिन्न कोई आत्मा प्रतीत होता नहीं सो यह कहना भी असंगत है काहेतैं मेरा देह रोगी है मेरा देह निरोग है या प्रकारका अनुभव सर्व लोगोंकूं होवै है ता अनुभवतैं देहका द्रष्टा साक्षी आत्मा ता देहतैं भिन्न ही सिद्ध होवै है और श्रुति स्मृति इतिहास पुराण युक्ति विद्वान् पुरुषोंका अनुभव इन सर्व प्रमाणोंकरिकै भी या स्थूल देहतैं भिन्न ही

आत्मा सिद्ध होवे है। ऐसे अनेक प्रमाणसिद्ध आत्माका निषेध संभवता नहीं। किंवा ता देहात्मवादीनें जो स्वप्नविषे भी स्थूलोऽहं इस अनुभवतें स्थूल देहकी सिद्धि करी थी सो भी असंगत है काहेतें 'स्थूलोऽहं' यह जो स्वप्नविषे अनुभव होवेहै सो अनुभव जाग्रत् अवस्थाके स्थूलोऽहं इस प्रकारके अनुभवजन्य संस्कारोंकरिकै जन्य होवै है यातें सो स्वप्नका अनुभव ता जाग्रत् के स्थूल देहकूं विषय करता नहीं किंतु सो अनुभव स्वप्नके वासनामय शरीरकूं ही विषय करे है। जो कदाचित् सो स्वप्नका अनुभव जाग्रत्‌के स्थूल देहकूं ही विषय करता होवै तौ काशीविषे सोया हुआ पुरुष स्वप्नविषे रामकृत सेतुविषे रामनाथकूं अनुभव करता हुआ जभी जाग्रतकूं प्राप्त होवै तभी सो पुरुष तिस रामसेतुविषे ही स्थित होणा चाहिये, काशीविषे स्थित नहीं होणा चाहिये। सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं यातें स्वप्नविषे इस स्थूल शरीरका अभाव ही होवै है और आत्मा तौ ता स्वप्नविषे भी तिन स्वप्न पदार्थोंका द्रष्टा साक्षीरूप करिकै अनुभव होवै है यातें मैं स्थूल देह नहीं हूं यह उक्त अर्थ संभवै है इति। शंका–पूर्व उक्त दोषोंतें स्थूल देहकूं आत्मरूपता मत होवो तथापि चक्षु आदिक इंद्रिय ही आत्मा है काहेतें 'काणोऽहं' मूकोऽहं' इस प्रकारका अनुभव लोकविषे देखणेमें आवै है, ता अनुभवतें काणत्वमूकत्वादिक धर्मविशिष्ट चक्षुआदिक इंद्रियोंविषे ही आत्मरूपता सिद्ध होवै है और वेदविषे भी प्राणका तथा इंद्रियोंका आपणी आपणी श्रेष्ठता विषे परस्पर संवाद कथन कर्‍या है सो परस्पर संवाद चेतनोंका ही होवै है जड पदार्थोंका होता नहीं और चेतन आत्मा ही होवै है यातें ता प्रमाण संवाद श्रुतितें भी चक्षुआदिक इंद्रिय ही आत्मा सिद्ध होवे है, यातें ते इंद्रिय ही आत्मा है। समाधान–जैसे स्थूल देह आत्मा नहीं है, तैसे ते चक्षुआदिक इंद्रिय भी आत्मा नहीं हैं काहेतें चक्षु इंद्रिय करिकै मैं रूपकूं देखता हूँ

और श्रोत्र इंद्रियकरिकै मैं शब्दकूं श्रवण करता हूं या प्रकारका अनुभव सर्व लोकोंकूं होवै है, ता अनुभवतैं तिन चक्षुआदि इंद्रियोंकूं दर्शनादिक क्रियाके प्रति करणरूपता ही सिद्ध होवै है और जो जो पदार्थ क्रियाके प्रति करण होवै है सो सो पदार्थ अनात्मा ही होवै है। जैसे छेदनक्रियाके प्रति करणरूप होणेतैं कुठारादिकआत्मा ही है तैसे दर्शनादिक क्रियाके प्रति करण रूप होणेतैं ते चक्षु आदिक इंद्रिय भी अनात्मा ही होवैंगे। इतने करिकै यह अनुमान बोधन कर्या 'इंद्रियाणि अनात्माकरणत्वात्, कुठारवत् किंवा जैसे छेदनादिक क्रियाका पुरुष कर्त्ता होवै है तैसे ता इंद्रिय आत्मवादीने सो इंद्रियरूपआत्मा ही तिन दर्शनादिक क्रियाओंका कर्त्ता मानणा होवैगा सो अत्यंत विरुद्ध है काहेतैं लोकविषे जो पदार्थ जिस क्रियाके प्रति करण होवै है सो पदार्थ तिस क्रियाके प्रतिकर्त्ता होता नहीं और जो पदार्थ जिस क्रियाके प्रति कर्त्ता होवै है सो पदार्थ तिस क्रियाके प्रति करण होता नहीं किंतु सो करण तथा कर्त्ता भिन्न भिन्न ही होवै है जैसे छेदनरूपक्रियाके प्रति करणरूप कुठारकूं कर्त्तारूपता नहीं है और ता छेदनरूप क्रियाके प्रति कर्त्तारूप पुरुषकूं करणरूपता नहीं है किंतु सो कुठाररूप करण तथा पुरुषरूप कर्त्ता भिन्न भिन्न ही हैं और तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंकूं दर्शनादिक क्रियाके प्रति करणरूपता तौ पूर्व उक्तअनुभवकरिकै सिद्ध ही है यातैं एक ही चक्षु आदिक इंद्रियकूं एक ही दर्शनादिरूप क्रियाके प्रति करणपणा तथा कर्त्तापणा मानणा प्रत्यक्षप्रमाणतैं विरुद्ध है या कारणतैं भी ते इंद्रिय आत्मा नहीं हैं किंवा जो वादी इंद्रियोंकूंही आत्मा माने हैं ता वादीके मतविषे एक ही शरीरविषे चक्षुःश्रोत्रादिरूप अनेक आत्मा सिद्ध होवैंगे और ते चक्षुःश्रोत्रादिक सर्व इंद्रिय एक ही पदार्थकूं ग्रहण करते नहीं किंतु रूपशब्दादिक भिन्न भिन्न अर्थोंकूं ही ग्रहण करे हैं। यातैं पूर्व दिशाविषे स्थितरूपके दर्शनवासतै

चक्षु इंद्रिय इस शरीरकूं ता पूर्व दिशाविषे आकर्षण करैगा और पश्चिम दिशाविषे स्थित शब्दके श्रवण करनेवासतै श्रोत्र इंद्रिय इस शरीरकूं ता पश्चिम दिशाविषे आकर्षण करैगा। इस प्रकार दूसरे त्वगादिक इंद्रिय भी तिस तिस दक्षिणादिक दिशाविषे स्थित स्पर्शादिकोंके ग्रहण करणेवासतै इस शरीरकूं तिस तिस दक्षिणादिक दिशाविषे आकर्षण करैंगे यातैं जैसे अनेक गजोंकरिके आकर्षण करा हुआ कदली वृक्ष शीघ्र ही नाशकूं प्राप्त होवै है तैसे परस्परविरुद्ध अभिप्रायवाले चक्षु आदिक इंद्रियोंने तिसतिस दिशाविषे आकर्षण करया हुआ यह शरीर भी नाशकूं प्राप्त होवैगा या कारणतैं भी ते इंद्रिय आत्मा नहीं है। किंवा एक ही शरीरविषे जो इंद्रियरूप बहुत आत्मा मानिये तो जो मैं पूर्व रूपकूं देखता भया सोई मैं अभी स्पर्शकूं ग्रहण करता हूं इस अनुभवका भी बोध होवैगा काहेतैं यह उक्त अनुभवरूप द्रष्टा आत्माके तथा स्पर्श कर्त्ता आत्माके एकताकूं ही विषय करै है और तुम्हारे मतविषे ता चक्षु इंद्रियरूप आत्माकी तथा त्वक् इन्द्रियरूप आत्माकी एकता है नहीं यातैं तुम्हारे मतविषे ता उक्त अनुभवका मिथ्यात्वरूप बोध होवैगा। किंवा ता इंद्रिय आत्मवादीने इंद्रियोंकी चेतनरूपताविषे जो प्राणसंवाद प्राणकह्या था सो संवाद तौ तिन इंद्रियोंके अभिमानी देवताविषयक है इंद्रियविषयक नहीं है यातैं ता संवादतैं भी इंद्रियोंकी आत्मता सिद्ध होवै नहीं। किंवा स्थूल देहकी न्याईं चक्षुआदिक इंद्रियोंका भी उत्पत्ति विनाश होवै है ऐसे उत्पत्ति विनाशवान् इंद्रियोंकूं आत्मा मानणेविषे पूर्व उक्त स्थूल देहकी न्याईं इहां भी कृतनाश अकृताभ्यागम यह दोनों दोष प्राप्त होवै हैं या कारणतैं भी यह इंद्रिय आत्मा नहीं है और 'काणोऽहं मूकोऽहं' यह उक्त अनुभव तौ 'लोहितः स्फटिकः' इस अनुभवकी न्याईं भ्रमरूप है यातैं ता अनुभवतैं भी

तिन इंद्रियोंकी आत्मरूपता सिद्ध होवैनहीं और मेरा चक्षु मंद दृष्टि-वाला है इत्यादिक अनुभवतैं तिन चक्षु आदिक इंद्रियोंका द्रष्टा आत्मा तिन चक्षु आदिक इंद्रियोंते भिन्न ही प्रतीत होवे है और श्रुति स्मृति इतिहास पुराण इत्यादिकोंने भी तिन इंद्रियोंते भिन्न ही आत्मा कथन कर्‌या है यातैं ते चक्षु आदिक इंद्रिय आत्मा नहीं हैं इति। शंका–उक्त दोषोंतैं इंद्रियोंकूं आत्मरूपता मत होवो तथापि प्राण ही आत्मा है काहेतैं 'क्षुत्पिपासावान् अहम्' याप्रकारका लोकोंका अनुभव क्षुधा पिपासा धर्मविशिष्टप्राणकी ही आत्मरूपता सिद्ध करे है और 'अन्योऽन्तरात्मा प्राणमयः' यह श्रुति भी प्राणकूं ही आत्मा कहे है और स्वप्न सुषुप्तिविषे तिन इंद्रियों के लय हुए भी सो प्राण विद्यमान है यातैं सो प्राण ही आत्मा है । समाधान–वायुका विकार होणेतैं सो प्राण बाह्य वायुकी न्याईं आत्मा नहीं है और 'क्षुत्पिपासावान् अहम्' यह उक्त अनुभव तौ 'लोहितः स्फटिकः' इस अनुभवकी न्याईं भ्रमरूप हैयातैं ता अनुभवतैं भी प्राणकीआत्मरूपता सिद्ध होवैनहीं और प्राणकी आत्मताविषे जो तुमने श्रुति कही थी ता श्रुतिका प्राणकी आत्मता बोधनविषे तात्पर्य नहीं है किंतु मुमुक्षुजनोंके प्रति सोपानक्रम करिकै शुद्धआत्माके जनावणेविषे ही तात्पर्य है।जो कदाचित् ता श्रुतिका प्राणकीआत्मताविषे ही तात्पर्य होवै तौ 'अन्योऽन्तरात्मा मनोमयः' यह श्रुतिता प्राणतैं भी अंतर दूसरे मनोमयकी आत्मरूपताकूं कथन करनेहारी असंगत होवैगी । जिस प्रकारतैं इनश्रुतियोंका शुद्ध आत्माके जनावणेविषे तात्पर्य है सो प्रकार आत्मपुराणके दशम अध्यायविषे मैंनेविस्तारतैं निरूपण कर्‌या है सो तहांसे जानि लेना यातैं सो प्राण भी आत्मा नहीं है इस उक्त सर्व अभिप्रायकूं मनविषे राखिकै ग्रंथकार कहे हैं 'श्रोत्रवागादिकानि नाहं इति' अर्थ–श्रोत्रवागादिक भी मैं नहीं हूं । श्रोत्र इंद्रियकरिकै चक्षु आदिक सर्व इंद्रि-

योंका ग्रहण करणा और वाक् इंद्रियकरिके हस्त पादादिक सर्व कर्म इंद्रियोंका ग्रहण करना और आदिशब्दकरिके वायुरूप मुख्य प्राणका ग्रहण करणा, यातैं यह अर्थ सिद्ध भया मैं श्रोत्रादिक पंचज्ञानइंद्रियरूप भी नहीं हूं तथा वागादिक पंच कर्मइंद्रियरूप भी नहीं हूं तथा पंचप्राणरूप भी नहीं हूं जिस कारणतैं स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाविषे तिन इंद्रिय प्राणोंका लय होय जावै है और मैं आत्मा तौ ता स्वप्न सुषुप्तिविषे भी द्रष्टा साक्षीरूपकरिके विद्यमान हूं यद्यपि स्वप्नसुषुप्तिविषे अन्य पुरुषोंकी दृष्टिकरिके सो प्राण प्रतीत होवै है तथापि ता सोये हुए पुरुषकी दृष्टिकरिके सो प्राण तहां प्रतीत होता नहीं यातैं स्वप्न सुषुप्तिविषे ता प्राणका लय कथन कऱ्या है इति। शंका–उक्त दोषोंते तिन इंद्रियोंकूं तथा प्राणकूं आत्मरूपता मत होवो तथापि विज्ञान ही आत्मा है। काहेतैं अहं कर्त्ता अहं भोक्ता यह लोकोंका अनुभव कर्तृत्व भोक्तृत्व धर्म-विशिष्ट विज्ञानकी हीआत्मरूपताकूं सिद्ध करे है 'और अन्योऽन्त-रात्मा ज्ञानमयः' यह श्रुति भी ता विज्ञानकूं ही आत्मा कहे हैं यातैं सो विज्ञान ही आत्मा है ऐसी शंकाके प्राप्त हुए कहे हैं। 'बुद्धिर्नाहमिति' अर्थ–मैं बुद्धि भी नहीं हूं। इहां बुद्धि शब्द-करिकै अंतःकरणकी वृत्तिका ग्रहण करणा सा बुद्धि अंतःकरणका भी उपलक्षण जानणी यातैं यह अर्थ सिद्ध भया मैं अंतः-करण तथा अंतःकरणकी वृत्ति दोनों नहीं हूं। काहेतैं श्रुतिविषे आकाशादिक भूतोंके सत्त्व अंशतैं अंतःकरणकी उत्पत्ति कथन करी है यातैं भूतोंका विकार होणेतैं सो अंतःकरण घटादिकोंकी न्याईं जड ही है और सुषुप्तिविषे ता अंतःकरणका लय ही देख्या है, जो लयवाला होवे है सो आत्मा होवै नहीं यातैं सो अंतःकरण आत्मा नहीं है और अहं कर्त्ता अहं भोक्ता यह उक्त अनुभव तौ 'लोहितः स्फटिकः' इस अनुभवकी न्याईं भ्रमरूप है, यातैं ता अनुभवतैं

भी अंतःकरणकी आत्मरूपता सिद्ध होवै नहीं और 'अन्योऽतरात्मा विज्ञानमयः' इस श्रुतिका भी ता विज्ञानमयकी आत्मताविषे तात्पर्य नहीं है जिसकारणते 'अन्योंऽतरात्माऽऽनंदमयः' यह श्रुति ता विज्ञानमयतैं भी अंतर दूसरे आनंदमयकूँही आत्मा कहे है, यातैं ता श्रुतितैं भी ता विज्ञानमयकी आत्मरूपता सिद्ध होवै नहीं यातैं अंतःकरण तथा अंतःकरणकी वृत्ति आत्मा नहीं है। इस कहणेकरिकै मनोमय कोशका भीआत्मपणा खंडन कन्या। जिस कारणतैं बुद्धिकी न्याईं सो मन भी ता अंतःकरणकी वृत्ति ही है इति। शंका–उक्त दोषोंतैं ता विज्ञानमयकू आत्मरूपताके अभाव हुए भी सर्व अध्यासका कारण तथा आनंदमय शब्दका वाच्य अर्थ जो अज्ञान है सो अज्ञान ही आत्मा है। काहेतैं 'अज्ञोऽहं' यह अनुभव ता अज्ञानकी ही आत्मताकूं सिद्ध करे है और 'अन्योंऽतरात्माऽऽनन्दमयः' यह श्रुति भी ता आनदमयकूं ही आत्मा कहे है ऐसी शंकाके प्राप्त हुए कहे हैं 'अध्यासमूलं नाहम् इति'। अर्थ–मैं अध्यासका मूल भी नहीं हूं। इहां तिस धर्मतैं रहित पदार्थविषे जा तत् धर्मवेत्ता बुद्धिरूपविपर्यय है जिस विपर्ययकूं मिथ्या ज्ञान कहे हैं ताका नाम अध्यास है। जैसे आत्मत्वधर्मतैं रहित देह इंद्रियादिकोंविषे जा आत्मत्वबुद्धि है तथा रजतत्व धर्मतैं रहित शुक्तिविषे जा रजतत्वबुद्धि है ताका नाम अध्यास है। यह अध्यास द्वितीय परिच्छेदविषे विस्तारकरिकै निरूपण करैंगे। तिस अध्यासका मूल कहिये कारण जो अज्ञान है सो अज्ञान भी मैं नहीं हूं। काहेतैं सो अज्ञान महावाक्यजन्य ज्ञानकरिकै निवृत्त होइ जावै है तथा सो अज्ञान देहादिकोंकी न्याईं जड ही है और समाधि अवस्थाविषे तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकूं सो अज्ञान प्रतीत होता नहीं यातैं सो अज्ञान भी आत्मा नहीं है और अज्ञोऽहं यह उक्त अनुभव तौ 'लोहितः स्फटिकः'

इस अनुभवकी न्याईं भ्रमरूप है यातैं ता अनुभवतैं भी अज्ञानकी आत्मरूपता सिद्ध होवै नहीं और 'ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा' यह श्रुति ता आनंदमयकोषतैं भिन्न ता आनंदमयकोषके अधिष्ठानरूप तथा साक्षीरूप आत्माकूं प्रतिपादन करे हैं यातैं 'अन्योंऽतरात्माऽऽनंदमयः' इस उक्त श्रुतिका ता आनंदमयकी आत्मताविषे तात्पर्य नहीं है यातैं ता श्रुतितैं भी ता आनंदमयकी आत्मता सिद्ध होवै नहीं यातैं सो अज्ञान भी आत्मा नहीं है इति। तहां शरीर इंद्रिय प्राण मन बुद्धि इनोंकूं यथाक्रमतैं आत्मा माननेहारे वादियोंके मतोंका विस्तारतैं प्रतिपादन तथा खंडन न्यायप्रकाशके द्वितीय परिच्छेदविषे आत्मनिरूपणविषे हमनें निरूपण कर्‍या है यातैं ते मत इहां संक्षेपते निरूपण करे हैं। शंका-जबी पूर्व उक्तरीतिसे देह इंद्रियादिकोंकी आत्मरूपता तुमारेकूं अंगीकार नहीं है तबी तुम्हारे मतविषे कौन आत्मा है जिस आत्माका 'अहं ब्रह्मास्मि' इसप्रकारते ब्रह्मरूपत्व तुम अनुभव करो हो ऐसी शंकाके प्राप्त हुए कहे हैं। 'सत्येति' अज्ञानका तथा ता अज्ञानके कार्यका जो साक्षी है सोई ही हमारे मतविषे आत्मा है और सो साक्षी आत्मा ही अहं इस प्रकारतैं अनुभव होवै है तिस साक्षी आत्माका ही 'अहं ब्रह्मास्मि' इस प्रकारतैं ब्रह्मरूपत्व हम अनुभव करे हैं। शंका-ता साक्षी आत्माविषे जिस ब्रह्मरूपताकूं तुम अनुभव करते हो सो ब्रह्म कौन है ऐसी शंकाके प्राप्त हुए कहे हैं 'कृष्ण एवाहमस्मि इति' अर्थ—कृष्ण ही परब्रह्म है। तहां स्मृति-'कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्चनिर्वृतिवाचकः। तयोरैक्यं परब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते'। अर्थ—कृष् यह शब्द सत्ताका वाचक होवै है और ण यह शब्द आनंदका वाचक होवै है, ता सत्ता आनंद दोनोंका जो एकत्व है सो परब्रह्म है। सो परब्रह्म ही कृष्ण इस नामकरिके कह्या जावै है इति। यह स्मृति परब्रह्मकूं ही कृष्णनामकरिके कथन करे है यातैं 'कृष्ण एवाहमस्मि' इस वचनका ब्रह्म ही मैं हूं यह अर्थ सिद्ध भया। इहां यह अभिप्राय है। 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्रावि-

शत्। अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि। स एष इह प्रविष्ट आनखाग्रेभ्यः' अर्थ-सो परमात्मा देव इस जगत्कूं रचिके आप ही तिस जगत्विषे प्रवेश करता भया और इस आपणे जीवरूपतैं जगत्विषे प्रवेश करिकै मैं परमात्मा नाम रूपकूं प्रगट करौं और सो परमात्मा ही इन संघातोंविषे नखोंके अग्रभाग पर्यंत प्रवेश करता भया इति। इत्यादिक श्रुतियां इस अर्थकूं कथन करे हैं। वास्तवतैं जन्म मरणादिक सर्व विकारोंतैं रहित तथा नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव ऐसा जो आत्मा है सो आत्मा अनादि अनिर्वचनीय मायाशक्तिकरिकै आकाशतैं आदि लेकै स्थूल शरीर पर्यंत सर्व जगत्कूं उत्पन्न करिकै पुनः तिस जगत्विषे प्रवेश करिकै तिस जगत्का साक्षी हुआ भी अविवेकतैं तिस जगत्के धर्मोंकूं आपणेविषे आरोपण करिकै मैं कर्ता हूं मैं भोक्ता हूं मैं मनुष्य हूं मैं ब्राह्मण हूं इस प्रकारके संसारकूं अनुभव करे है। सोई ही आत्मा जबी कोई पूर्वके पुण्य कर्मके प्रभावतैं साधनसंपन्न होइकै श्रुति आचार्यके प्रसादतैं विवेकरूपकूं प्राप्त होवे है तबी ता विवेकतैं तिस कर्तृत्व भोक्तृत्वादिरूप संसारकूं परित्याग करिकै तथा आपणे णस्वरूपके साक्षात्कारतैं ता मायाकूं नाश करिकै आपणे परमानंद स्वरूपकूं अनुभव करे है यातैं इस साक्षी आत्माकी ब्रह्मरूपताविषे कोई भी विरोध नहीं है। इस अर्थकूं आगे भी स्पष्ट करिकैं निरूपण करेंगे। अब आपणा आत्मारूप करिकै साक्षात्कार करणे योग्य ब्रह्मके स्वरूप लक्षणकूं तथा तटस्थ लक्षणकूं निरूपण करे हैं। 'सत्यानंदरूपश्चिदात्मा मायासाक्षी' इति। अर्थ-सो परब्रह्म सत्यरूप है तथा आनंदरूप है तथा चिदात्मरूप है तथा मायाका साक्षी है। इहां मायासाक्षी इस पद करिकै ता ब्रह्मका तटस्थ लक्षण कथन कर्‍या। तहां जगत्के उपादानकारणभूत माया-

कूं जो साक्षात् प्रकाश करे है सो मायासाक्षी कह्या जावै है। इस मायाका स्वरूप आगे कथन करेंगे और सत्यादिक पदोंकरिकै ता ब्रह्मका स्वरूप लक्षण कथन कर्‍या है, तहां तीन कालविषे जाका बाध नहीं होवै है सो सत्य कह्या जावैं है और जो निरतिशय सुखरूप होवै है सो आनंद कह्या जावै है और जो ज्ञानस्वरूप होवैं है सो चिदात्मा कह्या जावै है, इस प्रकारका सत्य आनंद चिदात्मा सो ब्रह्म ही है। इहां ब्रह्मविषे भ्रांतिकरिकै प्राप्त जो मिथ्यावस्तुका तादात्म्य है ताकी सत्य इस विशेषण करिकै निवृत्ति करी और ब्रह्मविषे भ्रांतिकरिकै प्राप्त जो दुःखका तथा ता दुःखके साधनोंका तादात्म्य है ताकी आनंद इस विशेषणकरिकै निवृत्ति करी और ब्रह्मविषे भ्रांतिकरिकै प्राप्त जो जडका तादात्म्य है ताकी चिदात्मा इस विशेषणकरिकै निवृत्ति करी यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। सत्यरूप होणेतैं सो ब्रह्म मिथ्या वस्तुरूप नहीं और आनन्दरूपहोणेतैं सो ब्रह्म दुःख तत्साधनरूप नहीं और चिदात्मारूप होणेतैं सो ब्रह्म जडरूप नहीं। ऐसा सत् चित् आनंदस्वरूप सर्वका साक्षी परमात्मा मैं हूँ। जिस कारणतैं 'तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादिक श्रुति वचन इस जीवात्माकूं ब्रह्मरूप ही कहे हैं। इति द्वितीय श्लोक व्याख्या ॥ २ ॥ शंका—पूर्व दो श्लोकों करिकै ब्रह्माहं या प्रकारका तत्त्वानुसंधानरूप मंगल कर्‍या सो ग्रंथके आरंभविषे मंगल करणा योग्य नहीं है काहेतैं जिसके करणेविषे कोई प्रमाण होवै हैं तथा जिसके करणेका कोई प्रयोजन होवैं है सोई करणे योग्य होवैं हैं और मंगलके करणेविषे कोई प्रमाण नहीं है तथा कोई प्रयोजन भी नहीं है सो दिखावैं हैं। तहां ता मंगलाचरणविषे प्रत्यक्ष प्रमाण तौ संभवता नहीं काहेतैं सो मंगलाचरणकी कर्तव्यता धर्माधर्मकी न्याई अतीइन्द्रिय है ता अतीन्द्रिय अर्थविषे इंद्रियरूप प्रत्यक्ष प्रमाण संभवता नहीं किंवा कोईक नास्तिकादिकोंके ग्रंथकी

मंगलाचरणतैं विना ही समाप्ति देखणेविषे आवे है और कोईकग्रंथ-
की तौ ता मंगलके किये हुए भी समाप्ति देखणेविषे आवती नहीं।यह
व्यतिरेकव्यभिचारज्ञान तथा अन्वयव्यभिचारज्ञान ता मंगल-
विषे ग्रंथसमाप्तिके कारणताज्ञानका प्रतिबंधक है । यातैं ता मंगल-
विषे ग्रंथसमाप्तिकी कारणता ता प्रत्यक्ष प्रमाण करिके जानणेकूं
ही अशक्य है और ता मंगलाचरणविषे अनुमान प्रमाण भी संभ-
वता नहीं। काहेतैं जो हेतु जिस साध्यकी व्याप्तिवाला होवे है
सो हेतु ही तिस साध्यकी सिद्धि करे है । जैसे वह्निरूप साध्यकी
व्याप्तिवाला होणेतैं धूमरूप हेतु ता वह्निरूप साध्यकी सिद्ध करे
है तैसे ता मंगलकी कर्त्तव्यतारूप साध्यके व्याप्तिवाला कोई हेतु-
रूप लिंग है नहीं, ता हेतुरूप लिंगतैं विना अनुमान होवे नहीं
और ता मंगलाचरणविषे वेदरूप शब्द भी प्रमाण नहीं है । काहेतैं
ता मंगलाचरणकी कर्त्तव्यताका बोधक कोई वेदवाक्य इस कालविषे
प्रत्यक्ष देखणेविषे आवता नहीं और ता मंगलाचरणविषे अर्थाप-
त्तिप्रमाण भी संभवता नहीं । काहेतैं जो कदाचित् ता मंगलाचर-
णतैं विना ग्रंथकी समाप्ति नहीं होती तौ सा ग्रंथकी समाप्ति ता
मंगलाचरणतैं विना अनुपपन्न हुई ता मंगलाचरणकी कल्पना करा-
वनी । जैसे दिनविषे नहीं भोजन करणेहारे पुरुषका पीनत्व रात्रि-
भोजनते विना अनुपपन्न हुआ ता रात्रिभोजनकी कल्पना करावे है
परंतु सा ग्रंथकी समाप्ति तौ ता मंगलते विना ही देखणेविषे आवे है
यातैं ता मंगलाचरणविषे अर्थापत्ति प्रमाण भी संभवता नहीं किंवा
जैसे ता मंगलाचरणविषे कोई प्रमाण नहीं है तैसे ता मंगलाचर-
णका कोई प्रयोजन भी देखणेविषे आवता नहीं।तहाँ ग्रंथकी समाप्ति
तौ ता मंगलाचरणतैं विना भी देखणेविषे आवे है यातैं सा ग्रन्थकी
समाप्ति भी ता मंगलाचरणकाप्रयोजन नहींहै।जो जिसतैं विनाकदा-
चित् भी नहीं होवे है सोई ही तिसका प्रयोजन होवे है और जिस

पुरुषविषे स्वतःसिद्ध विघ्नोंकाअत्यंताभाव है तिस पुरुषविषे कऱ्या हुआ भी सो मंगलाचरण विघ्नध्वंसका जनक होता नहीं याते सो विघ्नोंका ध्वंस भी ता मंगलाचरणका प्रयोजन नहीं है। जिसके हुए जो अवश्य होवै है सोई ही तिसका प्रयोजन होवै है और ग्रंथकी समाप्ति विघ्नोंका ध्वंस इनदोनोंतें भिन्न दूसरा कोई मंगलाचरणका प्रयोजन शास्त्रकारोंनें मान्या नहीं यातें प्रमाण प्रयोजन दोनोंके अभावतें सो मंगलाचरण करणेकूं योग्य नहीं है। समाधान—ग्रंथके आरंभविषे सो मंगलाचरण अवश्य करणेयोग्य है तहां ता मंगलाचरणविषे वादीने जो प्रमाणका अभाव कह्या था सो भीअसंगत है, जिस कारणतें 'निर्विघ्नसमाप्तिकामो मंगलमाचरेत्'यह श्रुति ही ता मंगलाचरणविषे प्रमाण है। यद्यपि इदानीं कालविषे किसी भी वेदकी शाखाविषे यह श्रुति प्रत्यक्ष देखणेविषे आवती नहीं तथापि शिष्टाचारत्वरूप हेतुतें ता श्रुतिका अनुमान होवै है। ता श्रुतिघटित कोईक वेदकी शाखा उच्छिन्न होइ गई है यातें इदानींकालविषे सा श्रुति प्रत्यक्ष देखणेविषे आवती नहीं, ऐसी कल्पना होवै है। ता अनुमानका यह आकार है। 'मंगलं वेदबोधिताभीष्टोपायताकम्, अलौकिकाविगीतशिष्टाचारत्वात् दर्शादिवत्'। अर्थ—वेदने बोधन करी है निर्विघ्न समाप्तिरूप इष्टकी उपायता जिसविषे ताका नाम वेदबोधित अभीष्ट उपायताक है, ऐसा वेदबोधित अभीष्टका उपाय मंगल है। अलौकिक तथा अविगीत ऐसा जो शिष्ट पुरुषोंका आचार है ता आचाररूप होणेतें जो जो अलौकिक अविगीत शिष्टाचार होवै है सो सो वेदबोधित इष्टका उपाय ही होवै है जैसे दर्शपूर्णमासकर्म अलौकिक अविगीत शिष्टाचाररूप है। यातें 'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत' इस वेद वाक्य करिकै बोधित स्वर्गरूप इष्टका उपाय भी है। तैसे यह मंगल भी अलौकिक अविगीत शिष्टाचाररूप है यातैं वेदबोधित निर्विघ्न

समाप्तिरूप इष्टका उपाय भी अवश्य होवेगा, इहां मंगल पक्ष है और वेदबोधित इष्ट अर्थकी उपायता साध्य है और अलौकिक अविगीत शिष्टाचारत्व हेतु है और दर्श पूर्णमासादिकसंरूप दृष्टांत है; यह अनुमानकी रीति आगे भी जानिलेणी। तहां प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंके तथा अनुमानके अंगभूत पक्ष दृष्टांतादिकोंके लक्षण द्वितीय परिच्छेदविषे कथन करेंगे इहां हेतुविषे स्थित अलौकिक अविगीत शिष्ट इन तीनों पदोंका यह अर्थ है। शास्त्रकी आज्ञातैं विना ही केवलरागकरिकै प्राप्त जे आहारादिक हैं तिनोंका नाम लौकिक है तिन लौकिक व्यवहारोंतैं जो भिन्न होवै सोअलौकिक कह्या जावै है और जो आचार नरकादिरूप बलवान् अनिष्टका अजनक हुआ स्वर्गादिरूप इष्टका साधन होवै है सो आचार अविगीत कह्या जावै है। और जो पुरुष वेदोंकी प्रमाणताकूं अंगीकार करे है सो पुरुष शिष्ट कह्या जावै है इति। इस प्रकारके अनुमान करिकै सिद्ध जा उक्त श्रुति है ता श्रुति प्रमाणतैं ही ता मंगलकूं निर्विघ्न ग्रंथसमाप्तिकी कारणता निश्चय होवै है यातैं जिन नास्तिकादिकोंके ग्रंथकी मंगलाचरणतैं विना ही समाप्ति देखणेविषे भी आवै है तिन नास्तिकादिकोंविषे भी ता ग्रंथ समाप्तिरूप कार्यतैं जन्मांतरके मंगलाचरणका अनुमान कऱ्या जावै है सो जन्मांतरका मंगलाचरण ही ता ग्रंथ समाप्तिका कारण है यातैं सो पूर्वउक्त व्यतिरेक व्यभिचार संभवता नहीं और जहां मंगलके किये हुए भी ग्रंथकी समाप्ति नहीं भई तहां तिस ग्रंथकर्ता पुरुषविषे विघ्नोंका बाहुल्य जानणा अथवा कोई अति बलवान् विघ्न जानणा। तिन बहुत विघ्नोंकी निवृत्ति तथा ता अतिबलवान् विघ्नकी निवृत्ति बहुत मंगलों करिकै तथा अतिबलवान् मंगल करिकै ही होवै है सो इस प्रकारका विघ्ननिवर्तक मंगल तिन ग्रंथोंविषे है नहीं यातैं सो पूर्व उक्त अन्वय व्यभिचार भी इहां प्राप्त होवै नहीं। इसप्रकार ता मंगलाचरणविषे उक्त

श्रुति प्रमाणके संभव हुए तथा निर्विघ्न ग्रंथसमाप्तिरूप प्रयोजनके संभव हुए ग्रंथके आरंभविषे सो मंगलाचरण अवश्य करणे योग्य है और कोईक ग्रंथकार तौ ग्रंथसमाप्तिके प्रतिबंधक विघ्नोंका ध्वंस ही ता मंगलाचरणका प्रयोजन माने हैं। इस मंगलवादका विस्तारतैं निरूपण तौ न्यायप्रकाशके प्रथम परिच्छेदविषे हमने कऱ्या है यातैं इहां सक्षेपतैं निरूपण कऱ्या है जिसकूं अधिक जानणेकी इच्छा होवे तिसने तहांसैं जानि लेणा इति॥

अथ ग्रन्थारंभः।

तहां श्रीमत् शंकराचार्यकृत भाष्यसहित जो श्रीव्यास भगवान्‌कृत सूत्रोंका समूह रूप शारीरक मीमांसा शास्त्र है ताकेविषे 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस प्रथम सूत्रकरिके विवेकादिक चतुष्टय साधनसंपत्तितैं अनंतर अधिकारी पुरुषोंके प्रति ब्रह्मज्ञानकी इच्छा विधान करी है। तहां विचार कऱ्येहुएतत्त्वमसि आदिका वाक्यकरिकै जन्य तथा जीव ब्रह्मके एकत्वकूं विषय करणेद्वारा जो अहंब्रह्मास्मि या प्रकारका फल रूप ज्ञान है सो ज्ञान ही ता इच्छाका कर्म है और सो मोक्षका हेतु फल रूपज्ञान तत्त्वंपदार्थके ज्ञानके अधीन है। जिसकारणतैं पदार्थ ज्ञानतैं रहित पुरुषकूं वाक्यार्थ ज्ञान होता नहीं, किंतु पदार्थ ज्ञानवाले पुरुषकूं ही सो वाक्यार्थ ज्ञान होवै है और सो वाक्यार्थज्ञानका हेतुभूत पदार्थ ज्ञान भी ता तत्त्वंपदार्थके विचार अधीन है। ता तत्त्वंपदार्थके विचारतैं विना सो पदार्थज्ञान होता नहीं यातैं ता उक्त सूत्रनैं अर्थतैं ता विचारकी कर्तव्यता ही विधान करी है। अर्थात् साधनचतुष्टयसंपत्तितैं अनंतर इस अधिकारी पुरुषनैं ब्रह्मका विचार करणा यह ता सूत्रका अर्थ सिद्ध होवैं है। तहां सो विचार भी दो प्रकारका होवै है एक तो प्रधान विचार होवै है, दूसरा सहकारी विचार होवै है। तहां 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारके वाक्यार्थज्ञान करिकै प्राप्त होणेकूं अतिवाञ्छित

होणेतें ब्रह्म प्रधान है। ऐसे ब्रह्मका जो विचार है सो विचार प्रधान विचार कह्या जावे हैं और सो ब्रह्मका विचार समन्वय आदिकोंके विचारते विना संभवता नहीं। याते समन्वय अविरोध साधन फल इन चारोंके जे विचार हैं ते विचार सहकारी विचार कहे जावे हैं। तहां उपनिषद्रूप वेदांतोंविषे स्थित जो वाक्य हैं, तिन वाक्योंका ब्रह्म आत्माके अभेदकी प्रतिपादकतारूप करिके जो तात्पर्य है ताका नाम समन्वय है ता समन्वयका विचार ता शारीरक मीमांसा शास्त्रके प्रथम अध्यायविषे कऱ्या है और श्रुतिके विरोध हुए स्मृति आदिकोंकूं तथा प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंकूं आभासरूपता होणेतें ता वेदांत समन्वय-का तिन स्मृति प्रत्यक्षादिक प्रमाणांतरोंके साथि जो विरोधका अभाव है ताका नाम अविरोध है। सो अविरोधका विचार भी ता शारीरक मीमांसा शास्त्रके द्वितीय अध्यायविषे कऱ्या हैं और ज्ञानकी प्राप्तिके जे उपाय हैं तिनोंका नाम साधन है। ते साधन भी अंतरंग बहिरंग इस भेद करिकैं दो प्रकारके होवे हैं। तिन दोनों प्रकारके साधनोंका विचार ता शारीरक मीमांसा शास्त्रके तृतीय अध्याय-विषे कऱ्या है। तिन साधनों करिकै प्राप्त होणेयोग्य जो अर्थ है ताका नाम फल है। सो फल भी पर अपर इस भेद करिकैं दो प्रकारका होवे है। तिस दो प्रकारके फलका विचार ता शारीरक मीमांसा शास्त्रके चतुर्थ अध्यायविषे कऱ्या है। इस प्रकारके समन्व-यादिक चारोंके विचारकूं सहकारी विचार कहेहैं। तहां तिन साधनोंके मध्यविषे जो तत्त्वमसि आदिक महावाक्योंके अर्थका विचार है तिस विचारकूं ब्रह्मज्ञानके प्रति अंतरंगसाधनता है और तिस वाक्यार्थ विचारका तत्त्वंपदार्थका विचार सहकारी है। यातें तिस तत्त्वंपदा-र्थके विचारकूं भी ता ब्रह्मज्ञानके प्रति अंतरंग साधनता ही है । या कारणतें इस ग्रंथके आदिविषे प्रथम ता तत्त्वंपदार्थके विचारकूं ही निरूपण करे हैं। तात्पर्य यह है, कि चतुष्टय साधन संपन्न अधिकारी

पुरुषकूं मोक्षकी प्राप्ति तत्त्वमसि आदिक महावाक्यके अर्थ ज्ञानतें ही होवै है और ता वाक्यार्थज्ञानकी प्राप्ति तत्त्वंपदार्थके ज्ञानतें ही होवै है और ता पदार्थ ज्ञानकी प्राप्ति तत्त्वंपदार्थके विचारतें ही होवै है। यातैं सो तत्त्वंपदार्थका विचार मुमुक्षु जनकूं अवश्य कर्‌या चाहिये। शंका—लोकविषे तथा शास्त्रविषे सुखकी प्राप्तिकूं तथा दुःखकी निवृत्तिकूं ही पुरुषार्थरूपता देखी है सो पुरुषार्थ ही संपादन करणे योग्य होवे है और सो तत्त्वंपदार्थका ज्ञान तौ सुखकी प्राप्तिरूप भी नहीं है तथा दुःखकी निवृत्तिरूप भी नहीं है यातैं अपुरुषार्थरूप होणेतैं सो पदार्थ ज्ञान संपादन करणे योग्य नहीं है। समाधान—यद्यपि ता पदार्थ स्वरूपतैं पुरुषार्थरूप नहीं है तथापि ता पुरुषार्थका साधन जो महावाक्यार्थज्ञान है ता वाक्यार्थज्ञानके प्रति ता पदार्थज्ञानकूं हेतुता है यातैं ता वाक्यार्थज्ञानद्वारा ता पुरुषार्थका साधन होणेतैं सो पदार्थ-ज्ञान अवश्य संपादन करणे योग्य है। शंका—जिस मोक्षवास्ते तुम तत्त्वंपदार्थका निरूपण करतेहो सो मोक्ष क्या वस्तु है? तहां अज्ञानकी निवृत्तिका नाम मोक्ष है अथवा ब्रह्मभावका नाम मोक्ष है। तहां प्रथम पक्ष जो अंगीकार करो सो संभवता नहीं काहेतैं सो अज्ञानकी निवृत्तिरूप मोक्ष ब्रह्मके स्वरूपते भिन्न ही होवेगा ता करिके 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इस श्रुतिका विरोध होवेगा। यद्यपि ता ब्रह्मतैं भिन्न दूसरा कोई भाव पदार्थ नहीं है, सा अज्ञानकी निवृत्ति अभावरूप है। यातैं ताके विद्यमान हुए भी ब्रह्मकी अद्वितीयरूपता निवृत्त होवै नहीं इस रीतीसे भावाद्वैतपरता करिके ता श्रुतिका विरोध होता नहीं तथापि ब्रह्मतैं भिन्न भाव अभावरूप सर्व प्रपंचका निषेध करणेहारे अद्वैत पदका संकोच करिके केवल भावपदार्थोंके निषेधपरत्व मानणेविषे कोई प्रमाण है नहीं किंवा तुमारे मतविषे ब्रह्मते भिन्न सर्व पदार्थोंकूं कल्पितपणा ही अंगीकार कर्‌या है। यातै ब्रह्मतैं भिन्न होणेतैं सा अविद्याकी निवृत्ति भी कल्पित ही होवेगी और जो जो पदार्थ

कल्पित होवै हैं सो सो पदार्थ शुक्ति रजतकी न्याईं मिथ्या ही होवै है। यातैं ता अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्षकूं भी कल्पितपणे करिकै अनित्यपणा ही प्राप्त होवैगा। किंवा तुमारे मतविषै सा अविद्या भी कल्पित ही मानी है और कल्पित वस्तुका अभाव भी कल्पित ही होवै है। यातैं ता कल्पित अविद्याकी निवृत्ति भी कल्पित ही होवेगी और कल्पित वस्तुकूं सत्यरूपता संभवती नहीं या कारणतैं भी ता अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्षकूं अनित्यपणा ही प्राप्त होवैगा और ता मोक्षका अनित्यपणा तुमारेकूं भी इष्ट नहीं है। जिस कारणतैं सर्व मोक्षवादियोंने मोक्षका नित्यपणा ही अंगीकार करता है। कोई भी मोक्षवादी मोक्षकूं अनित्य मानता नहीं जो कदाचित् मोक्ष भी अनित्य होता होवै तो मुक्त पुरुषोंकी भी पुनः उत्पत्ति होणी चाहिये। और 'न स पुनरावर्त्तते, यद्गत्वा न निवर्तते तद्धाम परमं मम' इत्यादिक श्रुति स्मृतियोंने ता मुक्तपुरुषके पुनः उत्पत्तिका निषेध कर्‍या है। यातैं अविद्याकी निवृत्तिकूं मोक्षरूपता संभवै नहीं और ब्रह्मभावका नाम मोक्ष है यह द्वितीय पक्ष जो अंगीकार करो सो भी संभवता नहीं। काहेतैं सो ब्रह्मभाव अनादि होणेतैं नित्य सिद्ध है जो पदार्थ नित्य सिद्ध होवै है सो पदार्थ किसी साधन करिकैं साध्य होवै नहीं अनित्य पदार्थ ही साधन करिकै साध्य होवै है। यातैं ता ब्रह्मभावरूप मोक्षकूं आत्मज्ञान करिकै साध्यपणा नहीं होवैगा और तुमोंनैं मोक्षकूं आत्मज्ञान करिकै साध्य मान्या है यातैं ता ब्रह्मभावकूं भी मोक्षरूपता संभवै नहीं। इस प्रकार मोक्षके अनिरूपण हुए ता मोक्षकी साधनतारूप करिकै महावाक्यार्थ ज्ञानकी प्रयोजनवत्ता भी निरूपण करणेकूं अशक्य है। समाधान—हमारे मतविषै अविद्याकी निवृत्ति ही मोक्ष है सा अविद्याकी निवृत्ति ब्रह्मतैं भिन्न नहीं है किंतु अधिष्ठानब्रह्मरूप ही है काहेतैं कल्पित वस्तुका अभाव अधिष्ठानतैं भिन्न

होता नहीं । जैसे कल्पित सर्प रजतादिकोंका अभाव रज्जु शुक्ति आदिक अधिष्ठानतैं भिन्न होता नहीं किंतु अधिष्ठान रूपही होवैहै तैसे ता कल्पित अविद्याकी निवृत्ति भी अधिष्ठान ब्रह्म रूप ही है। शंका- ता अविद्यानिवृत्तिरूप मोक्ष कूं जो ब्रह्मरूप मानोगे तौ ता ब्रह्मरूप मोक्षकूं ज्ञान करिकै साध्यपणा नहीं होवेगा और तू मोनै मोक्षकूं ज्ञान करिकै साध्य मान्या है। समाधान-ज्ञानकरिकै मोक्ष साध्य है इहां साध्य शब्दकरिकै हमारेकूं जन्यपणा विवक्षित नहीं है। अर्थात् ज्ञान करिकै मोक्ष जन्य होवैहै ऐसा हमारेकूं विवक्षित नहीं है। जिस कारणतैं अनादिसिद्ध होणेतैं ता ब्रह्मभावकी उत्पत्ति ही संभवती नहीं किंतु ता साध्य शब्दकरिकै हमारेकूं अभिव्यक्तिमात्र विवक्षित है अर्थात् ज्ञानकरिकै ता मोक्षकी अभिव्यक्तिमात्र होवै है यह हमारेकूं विवक्षित है तहां 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारके ज्ञानकरिकै जो द्वैतभ्रमकी निवृत्ति है तथा अखंड एकरस आनंदकी स्फूर्ति है यह ही ता मोक्षकी अभिव्यक्ति है यातैं अहं ब्रह्मास्मि या प्रकारके वाक्यार्थ ज्ञानकूं ता मोक्षका साधनपणा संभवै है । ऐसा वाक्यार्थज्ञान तत्त्वंपदार्थके ज्ञानकरिकै ही होवै है और सो पदार्थज्ञान ता तत्त्वंपदार्थके निरूपण करिकै ही होवै है यातैं प्रथम तत्पदार्थका निरूपण करे है। तहां असाधारण धर्मरूप जो लक्षण है तथा प्रत्यक्षादिरूप जो प्रमाण है तिन दोनोंकरिकै ही वस्तुकी सिद्धि होवै है। ता लक्षण प्रमाणतैं विना वस्तुकी सिद्धि होती नहीं । इस प्रकारके न्यायकूं अंगीकार करिकै प्रथम ता तत्पदार्थका लक्षण कहे हैं। तहां तिस ब्रह्मरूप तत्पदार्थका लक्षण दो प्रकारका होवै है। एक तौ तटस्थ लक्षण होवै है और दूसरा स्वरूप लक्षण होवै है। तहां 'कादाचित्कत्वे सति व्यावर्त्तकं तटस्थलक्षणम् ।' अर्थ- जो लक्षण आपणे लक्ष्यविषे कदाचित् वर्तता हुआ ता आपणे लक्ष्यकूं अन्य पदार्थोंतैं भिन्न करे है सो लक्षण तटस्थ लक्षण कह्या।

जावें है। जैसे पृथिवीका गंधवत्त्व लक्षण तटस्थ लक्षण है। तहां महाप्रलयविषे सर्व कार्यका नाश होवै है। याते नैयायिकोंके मतविषे सो गंधगुण ता महाप्रलयविषे परमाणुरूप पृथिवीविषे रहता नहीं और नैयायिकोंके मतविषे जिस क्षणविषे द्रव्य उत्पन्न होवै है तिस क्षणविषे ता द्रव्यविषे रूपादिक गुण उत्पन्न होते नहीं किंतु द्वितीय क्षणविषे ते रूपादिक गुण उत्पन्न होवैहैं ता प्रथम क्षणविषे सो द्रव्य निर्गुण ही उत्पन्न होवै है। इस अर्थविषे युक्ति तो न्यायप्रकाशके द्वितीय परिच्छेदके आदिविषे विस्तारतैं कथन करी है सो तहांसैं जानिलेणी। यातैं पृथिवीके उत्पत्ति क्षणविषे भी सो गंधगुण ता पृथिवी विषे रहता नहीं किंतु मध्यकालविषे ही सोगंधगुण ता पृथिवी विषे रहे हैं। यातैं सो गंधगुण कादाचित्क है और सो गंधगुण आपणे आश्रयभूत पृथिवीकूं दूसरे जलादिक पदार्थोंतैं भिन्न भी करावै है। यातैं कादाचित्क होणेतैं तथा व्यावर्त्तक होणेतैं सो गंधवत्त्व ता पृथिवीका तटस्थ लक्षण ही है। इस प्रकार तत्पदार्थरूप ब्रह्मका भी 'सृष्टिस्थितिलयकारणत्त्व' यह तटस्थ लक्षण है। इहां सृष्टि शब्दकरिकै जगत्के उत्पत्तिका ग्रहण करणा और स्थिति शब्दकरिकै जगत्के पालनका ग्रहण करणा और लय शब्दकरिकै जगत्के प्रलयका ग्रहण करणा। सो जगत्के उत्पत्ति स्थिति लयका कारणत्व ब्रह्मविषे सर्वदा रहता नहीं। किंतु मायाकी अधिष्ठानता कालविषे ही रहे हैं। यातैं सो सृष्टिस्थितिलयका कारणत्व कादाचित्क है और सांख्य नैयायिकादिकोंने जगत्का कारणरूपकरिकै कल्पना कऱ्ये जे प्रधान परमाणु आदिक हैं तिनोंतैं ता लक्ष्यरूप ब्रह्मकूं भिन्न भी करावैं है यातैं व्यावर्तक भी है। इस प्रकार कादाचित्क होणेतैं तथा व्यावर्त्तक होणेतैं सो सृष्टि स्थिति लयका कारणत्व ब्रह्मका तटस्थलक्षण कह्या जावै है। अब ता लक्षणविषे स्थित पदोंका प्रयोजन कहे हैं। तहां लयकारणत्व इतना

मात्र ही जो ता ब्रह्मका तटस्थ लक्षण करते तौ ब्रह्मकूं केवल जगत्का उपादान कारणपणा ही सिद्ध होता। काहेतें जो कार्य जिस कारणविषे लय होवै है तिस कार्यके प्रति तिस कारणकूं केवल उपादान कारणपणा ही देख्या है। जैसे घटके लयका कारण मृत्तिका ता घटका केवल उपादान कारण होवै है निमित्त कारण होवै नहीं। तैसे ता ब्रह्मतैं भिन्न ही कोई जगत्का निमित्त कारण अंगीकार करणा होवैगा। ता करिकै 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इस श्रुतिका विरोध होवैगा ता दोषके निवृत्त करणेवासतै ता लक्षणविषे स्थिति कारणत्व कह्या है किंवा स्थिति लय कारणत्व इतना मात्र ही जो ब्रह्मका तटस्थ लक्षण करते तौ जैसे घटकी उत्पत्तिके दंडादिक निमित्त कारण होवैं हैं तैसे ता ब्रह्मतैं भिन्न ही कोई जगत्का निमित्तकारण होवैगा। ता करिकै पुनः ता अद्वैत श्रुतिका विरोध होवैगा। ता दोषकी निवृत्ति करणेवास्ते ता लक्षणविषे सृष्टिकारणत्व कह्या है किंवा सृष्टि स्थिति कारणत्व इतना मात्र ही जो ब्रह्मका तटस्थ लक्षण करते तौ जैसे कुलालकूं घटके प्रति निमित्त कारणता है तैसे ता ब्रह्मकूं भी केवल जगत्का निमित्त कारणपणा ही होवैगा, उपादान कारण कोई अन्य ही होवैगा ता करिकै वेदांत सिद्धांतका विरोध होवैगा। ता दोषके निवृत्त करणेवासते ता लक्षणविषे लय कारणत्व कह्या है। इस प्रकार सृष्टि स्थिति लय इन तीनोंका कारणत्वरूप तटस्थ लक्षणके कहणे करिकै ब्रह्मकूं जगत्का अभिन्न निमित्त उपादानपणा सिद्ध होवै है। अर्थात् एक ही ब्रह्म जगत्का उपादान कारण तथा निमित्त कारण है। या कहणेतैं ब्रह्मका यह तटस्थ लक्षण सिद्ध भया। 'जगत्कर्तृत्वे सति जगदुपादानत्वम्' अर्थ जगत्के कर्तृत्वविशिष्ट जो जगत्का उपादानपणा है यह ही ब्रह्मका तटस्थ लक्षण है। तहां जगत् उपादानत्व इतना मात्र ही जो ब्रह्मका तटस्थ लक्षण करते तौ मायाविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। काहेतें शुद्ध ब्रह्मकूं तौ जगत्की उपा-

दानता है नहीं किंतु मायाविशिष्ट ब्रह्मकूं ही जगत्की उपादानता है और विशिष्टविषे वर्तणेद्वारा धर्म विशेषणविषे भी अवश्य रहे है। यातैं ता ब्रह्मका विशेषणरूप मायाकूं भी सो जगत्का उपादान कारणपणा अवश्य होवैगा और 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' यह श्रुति भी ता मायाकूं जगत्का उपादान कारणपणा कहे है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतैं ता लक्षणविषे जगत् कर्तृत्व यह पद कथन कऱ्या है। तहां कार्यके उपादानका जो अपरोक्ष ज्ञान है तथा ता कार्यके करणेकी जो इच्छा है तथा ता इच्छाजन्य जो प्रयत्नरूप कृति है यह तीनों जिसविषे रहे हैं सोई ही कर्त्ता कह्या जावै है। जैसे कुलालादिक ता ज्ञान इच्छा प्रयत्नवाले होणेतैं घटादिक कार्योंके कर्त्ता कह्ये जावै हैं। इस प्रकारका कर्त्तापणा चेतनविषे ही संभवै है जड मायाविषे संभवता नहीं। यातैं जगत्कर्तृत्व पदके कहणेतैं ता मायाविषें ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा जगत् कर्तृत्व इतना मात्र ही जो ब्रह्मका तटस्थ लक्षण करते तौ नैयायिकोंनें जगत्का केवल कर्तारूप करिकै मान्या जो ईश्वर है ताके विषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतैं ता लक्षणविषे जगत् उपादानत्व यह पद कथन कऱ्या है। तहां ते नैयायिक परमाणुवोंकूं तौ जगत्का उपादान कारण माने हैं और ईश्वरकूं जगत्का कर्ता माने हैं। इस प्रकार नैयायिकोंने जगत्के उपादानका तथा कर्ताका भेद ही अंगीकार कऱ्या है और हम सिद्धांतियोंने तौ ब्रह्मकूं जगत्का अभिन्न निमित्त उपादान कारण मान्या है। यातैं जगत् उपादानत्व इस पदके कहणेतैं ता नैयायिक अभिमत ईश्वरविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति। शंका—सो अतिव्याप्तिवाला लक्षण ही आपणे लक्ष्यकी सिद्धिकूं नहीं करता। समाधान—लक्षणके अतिव्याप्ति १

अव्याप्ति २ असंभव ३ यह तीन दोष होवै हैं। तिन तीनों दोषों विषे एक भी दोष जिस लक्षणविषे रहे है, सो लक्षण दुष्ट कह्या जावै है, ता दुष्ट लक्षणतैं ता लक्ष्यकी सिद्धि होव नहीं और तिन तीनों दोषोंतैं जो लक्षण रहित होवै है सो लक्षण अदुष्ट कह्या जावै है, ता अदुष्ट लक्षणतैं ही ता लक्ष्यकी सिद्धि होवै है। यातैं ता लक्षण-विषे पदोंका निवेश करिकै ता अतिव्याप्ति आदिक दोषकी निवृत्ति अवश्य करी चाहिये तहां जो लक्षण आपणे लक्ष्यविषे वर्त्तता हुआ अलक्ष्यविषे भी वर्त्तै है सो लक्षण अतिव्याप्ति दोषवाला होवै है। जैसे गौका शृंगित्वलक्षणता गौरूप लक्ष्यविषे वर्त्तता हुआ महिष अजादिरूप अलक्ष्यविषे भी वर्त्तै है यातैं सो गौका शृंगित्व लक्षण अतिव्याप्ति दोषवाला है और जो लक्षण आपणे लक्ष्यके एक देशविषे वर्त्तै है सो लक्षण अव्याप्ति दोषवाला होवै है। जैसे गौका कपिलत्व लक्षण कोई कौवोंविषे रहे है, सर्व गौवोंविषे रहता नहीं यातैं सो कपिलत्व लक्षण अव्याप्ति दोषवाला है और जो लक्षण आपणे लक्ष्यमात्रविषे ही नहीं रहे है, सो लक्षण असंभव दोषवाला होवै है। जैसे गौका एकशफत्व लक्षण कोई भी गौविषे रहता नहीं यातैं असंभव दोषवाला है। 'शफ नाम खुरका है' और जिस पदार्थका जो लक्षण करिये तिस लक्षणका सो पदार्थ लक्ष्य कह्या जावै है। यातैं अतिव्याप्ति आदिक सर्व दोषोंते रहित होणेतैं सो उक्त ब्रह्मका तटस्थ लक्षण समीचीन है इति।

शंका—एक ही ब्रह्मकूं जगत्का उपादानपणा तथा कर्त्तापणा संभवता नहीं। काहेतैं लोकविषे ऐसा देखनेमें आवता नहीं। जैसे घटका कर्त्ता जो कुलाल है सो ता घटका उपादान कारण होता नहीं और ता घटका उपादान कारण जो मृत्तिपड है सो ता घटका कर्त्ता होता नहीं किंतु सो मृत्तिपड तौ ता घटका उपादान कारण ही होवै है और

सो कुलाल ता घटका कर्त्ता ही होवै है इस प्रकार घटादिक कार्यों-विषे उपादान कारणका तथा कर्त्ताका भेद ही देखणेविषे आवै है और दृष्ट अर्थके अनुसार ही अदृष्ट अर्थकी कल्पना होवै है। दृष्ट अर्थतैं विरुद्ध अदृष्ट अर्थकी कल्पना होवै नहीं और एक ही ब्रह्मकूं जगत्का उपादान तथा कर्त्ता मानणा यह भी अदृष्ट अर्थकी कल्पना है। सो दृष्ट अर्थतैं विना कैसे संभवैगी किंतु नहीं संभवैगी। यातैं दृष्टविरोधतैं एक ही ब्रह्मकूं जगत्का उपादान तथा कर्त्ता मानणा असंगत है। किंतु ईश्वरकूं तौ जगत्का कर्त्ता मान्या चाहिये और ता ईश्वरतैं भिन्न परमाणु आदिकोंकूं ता जगत्का उपादान कारण मान्या चाहिये। इस अर्थविषे सो दृष्ट विरोध होवै नहीं किंतु घटादि कार्योंविषे सो उपादान कर्त्ताका भेद सर्वलोकोंकूं प्रसिद्ध ही है यह कहणेतैं यह अनुमान सिद्ध भया। 'इदं जगत् भिन्ननिमित्तोपादानकं कार्यत्वात् घटादिवत्' अर्थ–यह जगत् उपादान कारणके तथा कर्त्तारूप निमित्त कारणके भेदवाला है, कार्य होणेतैं घटादिक कार्योंकी न्याईं इति। किंवा जो तुम यह कहो कि ब्रह्मकूं जगत्का अभिन्न निमित्त उपादानपणा हम नहीं कल्पना करते किन्तु 'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय' यह श्रुति ही ता अर्थकूं बोधन करे है। सो यह तुमारा कहणा भी संभवता नहीं। काहेतैं पूर्व उक्त रीतिसैं दृष्ट अर्थके विरोध हुए ता श्रुतिका सो उक्त अर्थ संभवता नहीं, किन्तु अन्य ही अर्थ संभवै है। यातैं ब्रह्मकूं जगत्का अभिन्न निमित्त उपादानपणा संभवै नहीं। समाधान–'तदैक्षत बहुस्यां सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय' अर्थ--सो परमात्मा देव मैं बहुतरूप होवों या प्रकारका संकल्प करता भया और सो परमात्मा देव मैं बहुत रूप होइकै उत्पन्न होवों या प्रकारकी कामना करता भया इति। इस श्रुतिने एक ही ब्रह्मकूं बहुत रूप होणेकी कामना कथन करी है, सो कामना चेतनका ही धर्म होवै है। जडक

धर्म होवे नहीं यातैं ता श्रुतिके बलतैं चेतन ब्रह्मकूं ही जगत्का उपादानपणा तथा कर्तापणा निश्चय होवे है और तात्पर्यके निश्चयात्मक जे उपक्रम उपसंहारादिक षट् लिंग हैं तिन लिंगों करिके सर्व वेदांतवाक्योंका अद्वितीय ब्रह्मविषे ही तात्पर्यनिर्णय कर्या है यातैं ता उक्तअनुमान करिके ता श्रुति अर्थका बोध होइ सके नहीं । उलटा श्रुतिके विरोध हुएते प्रत्यक्ष अनुमानादिकप्रमाण ही आभासरूपताकूं प्राप्त होवे है । उपक्रमादिक षट्लिंगोंका स्वरूप आगे द्वितीय परिच्छेदविषे कहेंगे । किंवा ता वादीने जो पूर्व यह कह्या था लोकविषे किसी भी कारणकूं कार्यका अभिन्न निमित्त उपादानपणा दीखता नहीं। यातैं जगत्के उपादानकारणका तथा निमित्तकारणका भेद ही अंगीकार कर्या चाहिये सो यह वादीका कहना भी असंगत है। काहेतैं लोकविषे भी ऊर्णनाभि आदिक जंतुविषेकूं स्वरचित तंतुरूप कार्यके प्रति अभिन्न निमित्त उपादान कारणपणा ही देखनेविषे आवे है। अर्थात् सो ऊर्णनाभि जंतु ता तंतुरूप कार्यके प्रति आप ही उपादानकारण होवे है तथा आप ही कर्त्तारूप निमित्त कारण होवे है । किंवा जैसे नैयायिकोंके मतविषे घट ईश्वर दोनोंका जो संयोग संबंध है सो संयोग समवायसंबंध करिकै ता घट ईश्वर दोनोंविषे उत्पन्न होवे है । यातैं ता ईश्वरकूं ता संयोगके प्रति उपादान कारणपणा भी है। औरसो ईश्वर कार्यमात्रके प्रति निमित्त कारण होवे है । यातैं ता संयोगरूप कार्यके प्रति सो ईश्वरनिमित्तकारण भी है। इस प्रकारतैं नैयायिकोंने जैसे ता संयोगरूप कार्यके प्रति ईश्वरकूं अभिन्ननिमित्त उपादानकारणता अंगीकार करी है तैसे हम सिद्धांती भी ब्रह्मकूं जगत्की अभिन्ननिमित्त उपादानकारणता अंगीकार करे हैं । यातैं सो पूर्व उक्त दृष्टविरोध भी प्राप्त होवै नहीं। यातैं सो जगत्का अभिन्ननिमित्त उपादानकारणत्व ब्रह्मका तटस्थ लक्षण संभवे है यह सिद्ध भया इति । शंका—यह

उक्त ब्रह्मका तटस्थ लक्षण तभी संभवै जभी कोई प्रमाण करिकै ता ब्रह्मविषे जगत्की कारणता सिद्ध होवै है। ता कारणताकी सिद्धतैं विना सो उक्त लक्षण संभवता नहीं। समाधान—ता ब्रह्मकूं जगत्के उत्पत्ति स्थिति लयकी कारणता साक्षात् श्रुतिप्रमाण करि कही सिद्ध है। तथा व्यास भगवानके सूत्र करिकै भी सिद्ध है। तहां श्रुति—'यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयंत्यभिसंविशंति' अर्थ-जिस ब्रह्मतैं यह सर्वभूत उत्पन्न होवै हैं और उत्पन्न हुए यह सर्व भूत जिस ब्रह्म करिकै जीवनकूं प्राप्त होवै हैं और मृत्युकूं प्राप्त हुए यह सर्व भूत जिस ब्रह्मविषे लय भावकूं प्राप्त होवै हैं इति। तहां सूत्र—'जन्माद्यस्य यतः' अर्थ—जिस सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् कारणतैं इस आकाशादिक प्रपंचके जन्म स्थिति लय होवै हैं सोई ही ब्रह्म है इति। तहां इतनैं पर्यंत ब्रह्मका तटस्थ लक्षण निरूपण कऱ्या और ता तटस्थ लक्षणके ज्ञान हुए भी जब पर्यंत ता ब्रह्मके स्वरूप लक्षणका ज्ञान नहीं होवै है तब पर्यंत सो ब्रह्म यथावत् स्वरूप करिकै जान्या जावै नहीं यातैं ता तत्पदार्थ रूप ब्रह्मका अब स्वरूप लक्षण कहे हैं। तहां 'स्वरूपं सत् व्यावर्त्तकं स्वरूपलक्षणम्'। अर्थ—जो लक्षण आपणे लक्ष्यका स्वरूप भूत हुआ ता आपणे लक्ष्यकूं अन्य पदार्थोंसे भिन्न करावै है सो लक्षण-स्वरूप लक्षण कह्या जावै है। जैसे पृथिवीका पृथिवीत्व स्वरूप लक्षण है। तहां जाति व्यक्ति दोनोंका सिद्धांतविषे तादात्म्य ही अंगीकार कऱ्या है। यातैं ता पृथिवीत्व जातिका भी ता पृथिवी व्यक्तिके साथि तादात्म्य ही है। यातैं सा पृथिवीत्व जाति ता पृथिवीका स्वरूपभूत हुई ता पृथिवीकूं जलादिक इतर पदार्थोंतैं भिन्न करावै है। यातैं सा पृथिवीत्व जाति ता पृथिवीका स्वरूप लक्षण है। तैसे सत्य ज्ञान आनंद यह तीनों ब्रह्मके स्वरूप लक्षण हैं। तहां ते सत्यादिक तीनों ता ब्रह्मका स्वरूपभूत हुए ता ब्रह्मकूं असत्

जड दुःखरूप जगत्तैं भिन्न करावे हैं । यातैं तिन सत्यादिकों विषे ब्रह्मका स्वरूप लक्षणपणा संभवै है । शंका—सत्यादिकोंकूं जो ब्रह्मका स्वरूप मानोगे तौ तिन सत्यादिकों विषे ब्रह्मका लक्षणपणा नहीं होवैगा । तथा ता ब्रह्मविषे ता सत्यादिक लक्षणका लक्ष्यपणा नहीं होवेगा । जिस कारणतैं सो लक्ष्यलक्षणभाव भेदके अधीन ही होवै है अभेदविषे सो लक्ष्यलक्षणभाव होता नहीं । जो कदाचित् अभेदविषे भी सो लक्ष्यलक्षणभाव होता होवै तौ पृथिवी भी पृथिवीका लक्षण होना चाहिये तथा ब्रह्म ही ब्रह्मका लक्षण होना चाहिये । समाधान—ते सत्यादिक यद्यपि वास्तवतैं ब्रह्मका स्वरूप ही हैं तथापि तिन सत्यादिकोंविषे ब्रह्मका कल्पित भेद हम अंगीकार करै हैं । ता कल्पित भेदकूं अंगीकार करिके ही ता ब्रह्मका तथा सत्यादिकोंका लक्ष्यलक्षणभाव संभवै है यह वार्त्ता वृद्ध पुरुषोंने भी कही है । तहां श्लोक—'आनंदो विषयानुभवो नित्यत्वं चेति संति धर्माः ब्रह्मणोऽपृथक्त्वेपि पृथगिवावभासंत इति' अर्थ—आनंद ज्ञान नित्यता यह तीनों धर्म ब्रह्मके हैं ते तीनों धर्म वास्तवतैं ब्रह्मतैं अपृथक् हुए भी पृथक् हुएकी न्याईं प्रतीत होवै हैं इति । शंका—ते सत्यादिक धर्म जो वास्तवतैं ब्रह्मतैं अपृथक् ही होवैं तौ तिन सत्यादिकोंकी ब्रह्मतैं पृथक् होइके प्रतीति किस कारणतैं होवै है । समाधान—अंतःकरण तथा ता अंतःकरणके धर्मरूप उपाधिके वशतैं तिन सत्यादिकोंकी ता ब्रह्मतैं पृथक् प्रतीति बनिसकै है सो दिखावै हैं तहां—बाधाभावविशिष्ट चैतन्य सत्य पदका वाच्य अर्थ है और वृत्तिअवच्छिन्न चैतन्य ज्ञान पदका वाच्य अर्थ है और प्रीति आदिक वृत्तिअवच्छिन्न चैतन्य आनंद पदका वाच्य अर्थ है यातैं तिन सत्यादिकोंका तथा ब्रह्मका वास्तवतैं भेदके अभाव हुए भी उपाधिकृत भेदके विद्यमान हुए सो लक्ष्यलक्षणभाव संभवै है और ते सत्यादिक पद भागत्याग लक्षणा करिकै अखंड

ब्रह्मकूं ही बोधन करे हैं यातें ता लक्षण वाक्यतें सत्यादिकोंका तथा ब्रह्मका गुण गुणीभाव सिद्ध होवै नहीं और तिन सत्यादिक पदोंके वाच्य अर्थका भेद पूर्व कथन कर्‍या है यातें तिन सत्यादिक पदोंविषे पर्यायता भी होवै नहीं। अब ता लक्षण वाक्यविषे स्थित सत्यादिकपदोंके प्रयोजनका निरूपण करे हैं तहां 'सत्यं ब्रह्म' इतनामात्र ही जो ता ब्रह्मका स्वरूपलक्षण करते तौ नैयायिकोंने अंगीकार करी जा सत्ताजाति है तिसविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती तथा ता लक्ष्य ब्रह्मकूं जडपणेकी प्राप्ति होती, ता दोषके निवृत्त करनेवासते ता लक्षणविषे ज्ञान यह पद कथन कर्‍या है तहां ता सत्ता जातिविषे ज्ञानरूपता है नहीं यातें ता सत्ताविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं तथा ब्रह्मविषे भी जडपणा होवै नहीं। किंवा 'ज्ञानं ब्रह्म' इतना मात्रही जो ब्रह्मका लक्षण करते तौ नैयायिकोंने अंगीकार कर्‍या जो आत्माका ज्ञान गुण है ताकेविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती तथा ता लक्ष्यब्रह्मकूं अनित्यपणा तथा अपुरुषार्थपणा प्राप्त होता ता दोषके निवृत्त करणेवासते ता लक्षणविषे आनंद यह पद कथन कर्‍या है तहां ता ज्ञान गुणविषे आनंदरूपता है नहीं यातें ता ज्ञान गुणविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं तथा ता लक्ष्यब्रह्मकूं अपुरुषार्थरूपता भी होवै नहीं। किंवा 'आनंदो ब्रह्म' इतनामात्र ही जो ब्रह्मका लक्षण करते तौ विषयजन्य सुखविषे ता लक्षणकीअतिव्याप्ति होती और ता लक्ष्य ब्रह्मकूं जडपणा भी प्राप्त होता ता दोषके निवृत्ति करणेवासते ता लक्षण विषे ज्ञान यह पद कथन कर्‍या है। ता विषयसुखविषे ज्ञानरूपता है नहीं यातें ताके विषे अतिव्याप्ति होवै नहीं तथा ता लक्ष्य ब्रह्मकूं जडपणा भी होवै नहीं और ता लक्ष्य ब्रह्मके अनित्यपणेके निवृत्त करणेवासते सत्य यह पद कथन कर्‍या है इस प्रकारके प्रयोजनवाले होणेतें ते सत्यादिक तीनों पद सार्थक हैं यातें सत्य

ज्ञान आनंद यह तीनों धर्म मिलके ब्रह्मका स्वरूप लक्षण होवै है इति। शंका-तिन सत्यादिकोंकूं ब्रह्मका स्वरूपलक्षणपणा तभी सिद्ध होवै जभी ता ब्रह्मकी सत्यादिरूपता किसी प्रमाण करके सिद्ध होवै है। समाधान-ता ब्रह्मका सच्चिदानन्दरूपता विषे साक्षात् श्रुति भगवती ही प्रमाण है तथा व्यासभगवानका सूत्र ही प्रमाण है।तहां श्रुति 'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म आनंदो ब्रह्म' अर्थ-ब्रह्म सत्यरूप है तथा ज्ञानरूप है तथा अनंतरूप है तथा आनंदरूप है इति। यहां अंत नाम परिच्छेदका है सोजिसविषे नहीं विद्यमान होवै ताका नाम अनंत है अर्थात् देशपरिच्छेद कालपरिच्छेद वस्तुपरिच्छेद इन तीन परिच्छेदरूप अंततैं जो रहित होवै ताका नाम अनंत है। ऐसी अनंतरूपता ब्रह्मविषे ही है। यह वार्ता अन्य शास्त्रविषे भी कही है। तहां श्लोक-'न व्यापित्वाद्देशतोऽतो नित्यत्वान्नापि कालतः। न वस्तुतोऽपि सार्वात्म्यादानंत्यं ब्रह्मणि त्रिधा' अर्थ-ब्रह्म सर्वदेशविषे व्यापक है यातैं ता ब्रह्मका देशतैं भी अंत नहीं है और सो ब्रह्म नित्य है यातैं ता ब्रह्मका कालतैं भी अंत नहीं है और सो ब्रह्म सर्वका आत्मा रूप है यातैं ता ब्रह्मका वस्तुतैं भी अंत नहीं है। इस रीतिसे ता ब्रह्मविषे तीन प्रकारका अनंतपणा है इति। तहां व्याससूत्र-'आनंदादयः प्रधानस्य' अर्थ-आनंद सत्यज्ञान इत्यादिक गुण ब्रह्मके स्वरूपभूत हुए ता ब्रह्मके लखावणेहारे हैं यातैं निर्गुण ब्रह्मके ध्यान वासते तिन आनंदादिक गुणोंका वेदकी सर्व शाखाओंविषे उपसंहार करणे योग्य है इति। इस उक्त श्रुति सूत्र करिके ता ब्रह्मकी सत्यज्ञानादि रूपता सिद्ध है। यातैं तिन सत्य ज्ञानादिकोंविषे ब्रह्मका स्वरूपलक्षणपणा संभवै है इति। शंका-इस स्वरूप लक्षणके संभव हुए भी पूर्व कथन कर्या जो जगत्के उत्पत्ति स्थिति लयका कारणत्वरूप ब्रह्मका तटस्थ लक्षण सो संभवता नहीं। काहेतैं ब्रह्मकूं तुमोंने जगत्का उपादानकारण तथा निमित्तकारण मान्या है ताकेविषे प्रथम

उपादान कारणपणा ही ब्रह्मकूं संभवता नहीं। काहेते सो उपादान कारण आरंभ १ परिणामी २ विवर्त्ताऽधिष्ठान ३ इन भेद करके तीन प्रकारका होवै है। तिन तीनोंविषे ब्रह्मकूं कौन उपादान कारण तुम मानते हो तहां तुम्हारे मतविषे सो ब्रह्म एक अद्वितीयरूप है यातैं ता ब्रह्मकूं जगतका आरंभकपणा संभवता नहीं। परस्पर युक्त अनेक द्रव्योंकूं ही आरंभकपणा होव है। जैसे नैयायिकोंके मतिविषे परस्पर संयुक्त अनेक परमाणुओंकूं जगत्का आरंभकपणा है और 'साक्षीचेताः केवलो निर्गुणश्च' 'निष्कलं निष्क्रियं शांतं अविकार्योऽयमुच्यते' इत्यादिक श्रुति स्मृतियोंने सो ब्रह्मकूं निर्गुण निष्क्रय निरवयव कह्या है यातैं ता ब्रह्मकूं परिणामी उदानपणा भी संभवता नहीं। जिस कारणतैं गुण कियावाले सावयव दुग्धादिक ही दधि आदिक परिणामकूं प्राप्त होवै हैं और तीसरा विवर्त्ताऽधिष्ठानत्व रूप उपादानपणा भी ब्रह्मकूं संभवता नहीं। काहेतैं 'घटः सन् पटः सन्' इस प्रकार घटपटादिक प्रपंचका सत्यरूप करके ही लोकोंकूं अनुभव होवै है। ऐसे सत्यप्रपंचकूं ब्रह्मकी विवर्त्तरूपता करके मिथ्यापणा कल्पना करनेविषे कोई भी प्रमाण नहीं है और ता प्रपंचके मिथ्यापणेतैं विना ता ब्रह्मकूं विवर्त्ताऽधिष्ठानपणा संभवता नहीं, यातैं उक्त तीन प्रकारके उपादानपणे विषे कोई प्रकारकी उपादानपणा ता ब्रह्मकूं संभवता नहीं, किंवा ता ब्रह्मकूं जगत्का कर्त्तापणा भी संभवता नहीं। काहेतैं कार्यकी उत्पत्तिके अनुकूल ज्ञान इच्छा प्रयत्न यह तीन जिसविषे रहे हैं सो कर्त्ता होवै है यह पूर्व कह आये हैं–तहां ते ब्रह्मके ज्ञान इच्छा प्रयत्न तीनों नित्य हैं अथवा अनित्य हैं, जो कहो नित्य हैं, तो सर्व कालविषे जगत्की उत्पत्ति ही होणी चाहिये, कोई भी कालविषे जगत्का प्रलय नहीं होणा चाहिये, ता करके प्रलयके प्रतिपादन करणेहारे शास्त्रका विरोध होवेगा और जो कहो ते ज्ञानादिक अनित्य हैं तो जगत्की न्याईं ते

ज्ञान इच्छादिक भी कार्यरूप ही होवेंगे, यातैं तिन ज्ञानादिकोंकूं ब्रह्मका आश्रितपणा नहीं होवैगा जिस कारणतैं ब्रह्मकूं पूर्व अपरिणामीपणा ही कथन करि आये हैं इस प्रकार ता ब्रह्मविषे उपादानपणेके तथा कर्त्तापणेके असंभव हुए अभिन्ननिमित्त उपादान कारणता भी संभवै नहीं। यातैं पूर्व कथन कर्‌या जगत्‌के उत्पत्ति स्थिति लयको कारणतारूप ब्रह्मका तटस्थलक्षण असंगत है और कारणतैं विना कार्यकी उत्पत्ति होती नहीं। यातैं इस जगत्‌रूप कार्यका भी ता ब्रह्मतैं भिन्न कोई कारण मान्या चाहिये। सो ऐसा कारण सत्त्व रज तम यह तीन गुणरूप प्रधान है। ता प्रधानतैं ही महत्तत्त्वादिक क्रम करके यह जगत् उत्पन्न होवे है। तिस प्रधानकूं परिणामीरूप होणेतैं जगत्‌के जन्मादिकोंकी कारणता संभवै है और आत्मारूप पुरुष तौ असंग है तथा निर्विकार है यातैं ता पुरुषविषे जगत्‌की कारणता संभवती नहीं। इस प्रकारकी शंका करणेहारे सांख्यियोंके खंडन करणेवासते ता उक्त तत् पदार्थका विभाग करे हैं। सो तत् पदका अर्थ दो प्रकारका होवै है। एक तो वाच्य अर्थ होवे है, दूसरा लक्ष्य अर्थ होवे है तहां जो अर्थ जिस पदकी शक्तिवृत्ति करके जान्या जावै है सो अर्थ तिस पदका वाच्य अर्थ कह्या जावे है और जो अर्थ जिस पदकी लक्षणा वृत्ति करिके जान्या जावे है सो अर्थ तिस पदका लक्ष्य अर्थ कह्या जावै है। ता शक्ति लक्षणाका स्वरूप आगे द्वितीय परिच्छेदविषे कहेंगे, तहां माया उपहित चैतन्य तौ तत् पदका वाच्य अर्थ और मायातैं रहित शुद्ध चैतन्य तत् पदका लक्ष्य अर्थ है। इहां यह तात्पर्य है—यद्यपि मायातैं रहित निर्विकार शुद्ध ब्रह्मकूं जगत्‌का उपादानपणा संभवता नहीं तथापि माया उपहित ब्रह्मकूं सो उपादानपणा संभवैहै सो उपादानपणा भी आरंभकतारूप वा परिणामितारूप नहीं है, किंतु विवर्त्ताऽधिष्ठानत्वरूप है तहां अधिष्ठान वस्तुका जो अवास्तवतैं अन्यथा

भाव है ताका नाम विवर्त है जैसे रज्जु शुक्ति आदिक अधिष्ठानका अवास्तवतैं सर्परजतादि रूप अन्यथा भाव है तैसे ता ब्रह्मका भी यह जगत् अवास्तवतैं अन्यथा भाव है ऐसे जगत् रूपविवर्तका अधिष्ठानपणा ता माया उपहित ब्रह्मकूं संभवै है। किंवा 'घटः सन् पटःसन्' इत्यादिक अनुभवतैं जगत्का सत्यपणा ही सिद्ध होवै है यातैं ता जगत्विषे ब्रह्मके विवर्तपणे करके मिथ्यापणा संभवता नहीं। यह जो पूर्ववादीने कथन करचा था सो भी असंगत है काहेतैं सो उक्त अनुभव तौ तिन घटपटादिकोंविषे अधिष्ठान चैतन्यके सत्यपणेकूं ही विषय करे है, कोई घटादिकोंके सत्यपणेकूं विषय करता नहीं। यातैं सो अनुभव ता प्रपंचके मिथ्यापणेका बाधक नहीं है। और 'नेह नानास्ति किंचन' यह श्रुति ब्रह्मतैं भिन्न सर्व प्रपंचका निषेध करे है। यातैं ता प्रपंचकी स्वतःसत्ता संभवती नहीं और ता वादीने जो जगत्के मिथ्यापणेविषे प्रमाणका अभाव कह्या था सो भी संगत है। जिस कारणतैं 'वाचारंभणं विकारो नामधेयं' यह श्रुति ही साक्षात् जगत्के मिथ्यापणेकूं कथन करे है। किंवा ता ब्रह्मकूं जगत्का उपादानपणा अवश्य मान्या चाहिये। काहेतैं 'यत्प्रयंत्यभिसंविशंति' यह श्रुति तिस ब्रह्मविषे ही जगत्के लयकूं कथन करे है और जिस कार्यका जिस कारणविषे लय होवे है तिस कार्यका सो कारण उपादान ही होवे है। जैसे घटादिक कार्यका मृत्तिकादिक कारणविषे ही लय होवे है यातैं ता घटादिक कार्यका सो मृत्तिकादिक कारण उपादान ही देखणेविषे आवै है तैसे श्रुतिप्रतिपादित जगत्के लयका आधार होणेतै ता ब्रह्मकूं जगत्का उपादानपणा अवश्य मान्या चाहिये किंवा 'बहुस्यां प्रजायेय' इस श्रुतिने ब्रह्मका ही बहुत होणा कथन करया है और लोकविषे मृत्तिकादिक उपादान कारणोंका ही घट शरावादिरूपतैं बहुत होणा देखनेविषे आवे है या कारणतैं

भी ता ब्रह्मकूं जगत्का उपादानपणा संभवै है, किंवा सांख्यवादीने जो प्रधानकूं जगत्का उपादन मान्या था सो संभवता नहीं। काहेतें सो प्रधान जगत्का उपादान कारण है इस अर्थविषे कोई भी प्रमाण नहीं है, अर्थात् कोई भी श्रुतिविषे त्रिगुणात्मक प्रधानकूं जगत्का उपादानपणा कह्या नहीं। किंतु 'आत्मनआकाशः संभूतः' इत्यादिक सर्व श्रुतियोंविषे चेतन ब्रह्मकूं ही जगत्का उपादानपणा कथन कऱ्या है। यद्यपि इस उक्त श्रुतितैं आत्माकूं ही उपादानता प्रतीत होवै है ब्रह्मकूं उपादानता प्रतीत होती नहीं तथापि 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' इत्यादिक श्रुतियोंविषे ब्रह्मका ही जीवभावकरिके जगतविषे प्रवेश कथन कऱ्या है यातें यह आत्मा ब्रह्मतें भिन्न ही है किन्तु सो ब्रह्म ही आत्मरूप है यातें यह आत्मा जगतका उपादान कारण है इस कहणेतें भी ता ब्रह्मकूं ही उपादानता सिद्ध होवे है। किंवा 'तदैक्षत सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय' इत्यादिक श्रुतियोंविषे बहुत रूप होणेहारे कारणनिष्ठ ईक्षणका कर्त्तापणा तथा कामनाका कर्तापणा कथन कऱ्या है तिसतें भी ब्रह्मकूं ही उपादानता सिद्ध होवे है। ता प्रधानकूं उपादानता सिद्ध होवै नहीं। काहेतें सो ईक्षण कामनाका कर्त्तापणा चेतनका ही धर्म होवै है, जडका धर्म होता नहीं और सो तुम्हारा प्रधान भी जड है। यातें ता प्रधानविषे सो ईक्षण कामनाका कर्त्तापणा संभवता नहीं तातें ता ब्रह्मकूं ही जगत्का उपादानपणा है ता प्रधानकूं नहीं है यह सिद्ध भया। किंवा जैसे ता माया उपहित ब्रह्मकूं जगत्का उपादानपणा संभवै है तैसे जगत्का कर्त्तापणा भी ता माया उपहित ब्रह्मकूं ही संभवै है सो पूर्व कथन करि आये हैं और ता माया उपहित ईश्वरके ज्ञान इच्छा प्रयत्न यह तीनों जन्य होवैं हैं तथा अनित्य होवे हैं ऐसे ज्ञान इच्छा प्रयत्नका आश्रयपणा यद्यपि निर्विकार शुद्ध ब्रह्मकूं संभवता नहीं तथापि ता माया उपहित ब्रह्मकूं तीनोंका आश्रयपण

संभवै है। जिस कारणतैं ता माया उपहित ब्रह्मकूं ही सर्वविवर्त्त जगत्का अधिष्ठानपणा है यातैं सो पूर्व उक्त दोष प्राप्त होवै नहीं। यातैं सो पूर्व उक्त अभिन्न निमित्त उपादान कारणत्व ब्रह्मका तटस्थ लक्षण संभवै है, यह सिद्ध भया इति। शंका—जिस माया करके उपहित हुआ ब्रह्म जगत्का कारण होवै है सो माया क्या वस्तु है अर्थात् ता मायाका स्वरूप तथा लक्षण तथा प्रमाण तीनों निरूपण होइ सकते नहीं, यातैं सो माया कोई वस्तु नहीं है। अब ता मायाके स्वरूप लक्षण प्रमाण इन तीनोंके असंभवकूं यथाक्रमतैं निरूपण करै हैं। तहां सो माया सत्य है अथवा मिथ्या है, तहां प्रथम सत्य पक्षविषे भी सो माया ब्रह्मते भिन्न है अथवा अभिन्न है तहां प्रथम भिन्नपक्ष जो अंगीकार करोगे तो 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इस श्रुतिका विरोध होवैगा, काहेते यह श्रुति ब्रह्मकूं अद्वितीय कहै है। सो ब्रह्मकी अद्वितीय रूपता ब्रह्मतैं भिन्न सत्य मायाके विद्यमान हुए संभवती नहीं। किंवा 'असंगो नहि सज्जते' इत्यादिक श्रुतियोंविषे ब्रह्मकूं असंग कहा है। ऐसे असंग ब्रह्मका कोईके साथ भी सम्बन्ध संभवता नहीं, ता संबधतैं विना ब्रह्मविषे माया उपहितपणा ही संभवता नहीं, किंवा ता ब्रह्मका मायाके साथ कौन संबंध है, संयोगसंबंध है, अथवा समवायसंबंध है, अथवा तादात्म्य संबंध है, अथवा भेदाऽभेद संबंध है। तहां प्रथम संयोग पक्ष तौ संभवता नहीं, काहेतैं सो संयोग अव्याप्यवृत्ति होणेतैं सावयव द्रव्योंका ही धर्म होवै है। जैसे पक्षीका जो वृक्षके साथ संयोग है सो संयोग सर्व वृक्षविषे रहता नहीं किंतु ता वृक्षके कोईक शाखारूप देशविषे ही सो संयोग रहै है मूलादिक देशविषे रहता नहीं यातैं सो संयोग अव्याप्यवृत्ति है या कारणतैं ही सो संयोग ता पक्षी वृक्ष रूप सावयवद्रव्यका ही धर्म है और ब्रह्म तौ निरवयव है। यातैं ता ब्रह्मका मायाके साथ संयोग संबंध संभवता नहीं और दूसरा

समवाय पक्ष भी संभवता नहीं। जिस कारणतें सो समवाय संबंध तुम्हारे मतविषे अंगीकार ही नहीं है। और गुण गुणी क्रिया क्रियावान् जाति व्यक्ति अवयव अवयवी इन्होंका ही समवाय संबंध होवे है, ते गुण गुणी भावादिक ब्रह्ममायाविषे हैं नहीं। यातें ता ब्रह्मका मायाके साथ सो समवाय संबंध संभवता ही नहीं और तीसरा तादात्म्य पक्ष भी संभवता नहीं। काहेतें भेदतें रहित पदार्थोंका ही सो तादात्म्य होवे है और ब्रह्म माया दोनों परस्पर भेदवाले हैं। यातें तिन दोनोंका परस्पर तादात्म्य संभवता नहीं और चतुर्थ भेदाभेद पक्ष भी संभवता नहीं काहेतें ते भेद अभेद दोनों परस्पर विरुद्ध होणेतें एक अधिकरणविषे रहते नहीं। इस प्रकार ब्रह्मका मायाके साथ संबंधके अनिरूपण हुए ता ब्रह्मविषे माया उपहितपणा संभवता नहीं और सो माया ब्रह्मतें अभिन्न है यह द्वितीय पक्ष जोअंगीकार करो सो भी संभवता नहीं। काहेतें ब्रह्म तौ चेतन है और माया जड है ता जड चेतनका अभेद संभवता नहीं और सो माया मिथ्या है यह आद्य द्वितीय पक्ष जो अंगीकार करो सो भी संभवता नहीं। काहेतें ता मायाके मिथ्या हुए ता मायाविशिष्ट ईश्वरकूं भी मिथ्यापणा प्राप्त होवैगा और ता ईश्वरकूं भी जो मिथ्या मानोगे तौ ता ईश्वरके ज्ञानतें मोक्षकी प्राप्तिकूं कथन करणेहारा मोक्षशास्त्र ही अप्रमाण होवैगा जिस कारणतें मिथ्या वस्तुके ज्ञान करिके मोक्षकी प्राप्ति संभवती नहीं। इस उक्त प्रकारतें ता मायाका स्वरूप दुर्निरूप्य है और ता मायाके दुर्निरूप्य हुए ता मायाका लक्षणभी दुर्निरूप्य ही है। काहेतें धर्मीके विद्यमान हुए ही ताकेधर्मोंका विचार होवैहै जभी सो धर्मीही दुर्निरूप्य होवैहै तभी ता धर्मीका असाधारणधर्मरूप लक्षण तौअत्यंत दुर्निरूप्य होवे है और ता मायाके दुर्निरूप्य हुए ता मायाका प्रमाण भी दुर्निरूप्य ही है। जिस कारणतें विषयतें विना कोई भी प्रमाणकी

प्रवृत्ति होती नहीं । इस प्रकार स्वरूप लक्षण प्रमाण इन तीनों करिके मायाकूं दुर्निरूप्य हुए ता माया उपहित चैतन्यकूं तत्पदका वाच्यार्थपणा संभवता नहीं। ऐसी शंकाके प्राप्त हुए अब स्वरूप लक्षण प्रमाण इन तीनों सहित मायाके निरूपण करणे वास्ते प्रथम ताके उपोद्घात करिके दृष्टांत सहित परमात्माविषे सामान्यतैं अध्यासकूं निरूपण करे हैं । तहां आगे प्रतिपादन करणे योग्य अर्थकूं बुद्धिविषे राखिके तिस अर्थकी सिद्धिवासतैं जो पूर्व अन्य अर्थका कथन है ताका नाम उपोद्घात है । तहां जैसे शुक्ति रज्जु आदिकोंविषे रजत सर्पादिक कल्पित होवैं हैं तैसे चेतनविषे अचेतन कल्पित है। शंका--चेतनविषे अचेतन कल्पित है इस अर्थ--विषे कौन प्रमाण है ? समाधान-इस अर्थविषे श्रुताऽर्थापत्ति ही प्रमाण है तहां श्रवण करे हुए वाक्यार्थकी अनुपपत्ति करिके जो अर्थांतरकी कल्पनाहै ताका नाम श्रुताऽर्थापत्ति है सो प्रकार दिखावैं हैं।तहां–'इदं सर्वं यदयमात्मा।आत्मैवेदं सर्वम्।ब्रह्मैवेदं सर्वम्।पुरुष एवेदं विश्वम्।सर्वंखल्विदं ब्रह्म।वासुदेवःसर्वम्।नारायणःसर्वमिदंपुराणः' इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृति वाक्योंविषे चेतनतैं भिन्न करिकेअचेतनका अभाव ही प्रतिपादन कऱ्या है।तहां इन उक्त श्रुतिवचनोंविषे 'इदं सर्वं' इस वचन करिके तौ प्रत्यक्षादिक प्रमाण करिके सिद्ध यह आकाशादिक जड जगत् कथन कऱ्या है और आत्मा ब्रह्म पुरुष वासुदेव नारायण इन शब्दों करिके अद्वितीय तथा सर्वका साक्षी तथा प्रत्यक्रूप ऐसा परमात्मा कथन कऱ्या है । तहां प्रथम श्रुतिविषे प्रपंचका वाचक जो 'इदंसर्वं'यह शब्द है तथा परमात्माका वाचक जो आत्मा यह शब्द है तिन दोनों शब्दोंका सामानाधिकरण्य प्रतीत होवै है। तहां जड जगत्का तथा चेतन आत्माका वास्तवतैं एकपणा संभवता नहीं । यातैं चेतन अचेतनका अभेद प्रतिपादकत्वरूप मुख्य सामानाधिकरण्य तौ तहां

संभवता नहीं किंतु जैसे 'योऽयं चोरः स स्थाणुः' इस वचनविषे चोर स्थाणु इन दोनों शब्दोंका बोध सामानाधिकरण्य है। तैसे ता उक्त श्रुतिविषे आत्मा सर्व इन दोनों पदोंका भी बोध सामानाधिकरण्य ही है। अर्थात् जैसे दृष्टांत वाक्यविषे चोर स्थाणु इन दोनों पदोंके सामानाधिकरण्यतैं स्थाणुतैं भिन्न करिके चोरका अभाव प्रतीत होवै है तैसे दार्ष्टांतिक श्रुतिवाक्यविषे भी आत्मा सर्व इन दोनों पदोंके सामानाधिकरण्यतैं आत्मातैं भिन्न करिके सर्व जड जगत्का अभाव ही प्रतीत होवै है अर्थात् प्रपञ्चाभाववान् आत्मा या प्रकारका बोध ता श्रुतिवाक्यतैं होवै है। तहां सो जड प्रपंच कारण भाव तभी संभवै है, जभी ता जड प्रपञ्चकूं ब्रह्मविषे कल्पित मानिये। ता प्रपंचके कल्पितपणेतैं विना सो प्रपञ्चका अभाव सम्भवता नहीं। यातैं सो श्रुति उक्त जड प्रपञ्चका अभाव आपणे प्रतियोगी भूत जड प्रपंचके कल्पितपणेतैं विना अनुपपन्न हुआ ता जड प्रपंचके कल्पितपणेकूं कल्पना करावै है। इस प्रकारकी श्रुतार्थापत्ति करके ही चेतनविषे अचेतनका कल्पितपणा निश्चय होवै है। इस प्रकारका अर्थ पूर्व उक्त दूसरे श्रुति स्मृतिवचनोंका भी जानिलेणा-इति। शंका–पूर्व चेतनविषे अचेतनकूं कल्पित कह्या। तहां चेतन कौन वस्तु है तथा अचेतन कौन वस्तु है। समाधान–नित्य शुद्ध मुक्त सत्य परमानंद अद्वय ऐसा जो ब्रह्म है सो चेतन कह्या जावै है और अज्ञानतैं आदि लेके जितनाक जड समूह है सो अचेतन कह्या जावै है। अब ता ब्रह्मके नित्यादिक सप्त विशेषणोंका फल तथा तिनोंविषे श्रुतिप्रमाण कथन करे हैं। तहां ब्रह्मविषे वास्तवतैं कोई भी अनात्म वस्तुका तादाम्य नहीं है। तथापि भ्रांति करके ता ब्रह्मविषे अनात्म वस्तुका तादात्म्य प्रतीत होवै है। ता भ्रांतिसिद्ध तादात्म्यकूं ते नित्यादिक विशेषण निवृत्ति करे हैं॥ ताके विषे भी कार्य प्रपंचके तादात्म्यकूं नित्य यह विशेषण निवृत्त

करे है । सो ब्रह्मका नित्यपणा 'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः' इत्यादिक श्रुति प्रमाण करके ही सिद्ध है और ता कार्य प्रपञ्चके धर्मोंके तादात्म्यकूं शुद्ध यह विशेषण निवृत्त करे है।सो ब्रह्मका शुद्धपणा 'अकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धं' इत्यादिक श्रुति प्रमाण करके ही सिद्ध है । तहां राग द्वेषादिक विकारोंतें जो रहितपणा है यह ही ता ब्रह्मविषे शुद्धपणा है और कारणभूत अज्ञानके तादात्म्यकूं बुद्ध यह विशेषण निवृत्त करे है।तहां सर्वदा एकरस ज्ञानरूपताका नाम बुद्धपणा है । सो ब्रह्मका बुद्धपणा 'प्रज्ञानघनः' इत्यादिक श्रुति प्रमाण करिके ही सिद्धि है और अज्ञानकृत आवरणादिकोंके तादात्म्यकूं मुक्त यह विशेषण निवृत्त करे है। तहां बंधतें रहितपणेका नाम मुक्तपणा है । सो ब्रह्मका मुक्तपणा 'विमुक्तश्च विमुच्यते' इत्यादिक श्रुति प्रमाण करिके ही सिद्ध है और मिथ्यापणेकूं सत्य यह विशेषण निवृत्त करे है । तहां तीन कालविषे जाका बोध नहीं होवे सो सत्य कह्या जावे है । सो ब्रह्मका सत्यपणा 'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म' 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इत्यादिक श्रुति प्रमाण करके ही सिद्ध है और आनंद यह विशेषण ता ब्रह्मके पुरुषार्थपणेकूं कथन करे है। सो ब्रह्मकी आनंदरूपता 'आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात्,विज्ञानमानंदं ब्रह्म' इत्यादिक श्रुतिप्रमाण करके ही सिद्ध है और अद्वय यह विशेषण ता ब्रह्मकी अखंड एकरसताकूं कथन करे हैं । तहां नहीं विद्यमान है द्वैत जिसविषे ताका नाम अद्वय है अर्थात् भेदवादियोंने कल्पनाकरे जे पंच भेद हैं तिनोंतें रहितका नाम अद्वय है। ते पंच भेद ये हैं । जीवोंका परस्पर भेद १ जीव ईश्वर दोनोंका परस्पर भेद २ घटादिक जड पदार्थोंका परस्पर भेद ३ ईश्वरका तथा जड़ जगत्का परस्पर भेद ४ जीवका तथा जड जगत्का परस्पर भेद ५ इस प्रकार जीव ईश्वरादिरूप प्रतियोगियोंके भेद करके ते भेद पञ्च प्रकारके होवे हैं ते सर्व भेद कल्पित हैं । यातें तिन पञ्च भेदोंतें जो रहितपणा ब्रह्मविषे संभवे है अथवा सजातीय भेद

१ विजातीय भेद २ स्वगत भेद ३ इन तीन भेदोंतैं जो रहित होवै ताका नाम अद्वय है। सो ब्रह्मकी अद्वयरूपता 'एकमेवाद्वितीयम्' इत्यादिक श्रुति प्रमाण करिके ही सिद्ध है इति। शंका—पूर्व अज्ञानादिक जडसमूहकूं अचेतन कह्या तहां ता अज्ञानका स्वरूप क्या है, तथा लक्षण क्या है, तथा प्रमाण क्या है ? ऐसी शंकाके प्राप्त हुए अब यथाक्रमतैं ता अज्ञानके स्वरूपकूं तथा लक्षणकूं तथा प्रमाणकूं निरूपण करे हैं। समाधान—तहां सो अज्ञान त्रिगुणात्मक है अर्थात् सत्व रज तम ये तीन गुण हैं आत्मा कहिये स्वरूप जिसके ऐसा त्रिगुणात्मक अज्ञान है तहां अज्ञानके कार्यभूत जगत्‌विषे सुख दुःख मोह रूपता प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है और ते सुखादिक तीनों यथाक्रमतैं सत्त्वादिक तीन गुणोंके ही परिणाम होवै हैं और कारणके समान स्वभाववाला ही कार्य होवै है। यातैं जगत् रूप कार्यविषे त्रिगुण रूपताकूं देखिके कारणभूत अज्ञानविषे भी सो त्रिगुण रूपता कल्पना करी जावै है और 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां' यह श्रुति भी ता अज्ञानकूं त्रिगुण रूप कहे हैं। इनतैं करिके अज्ञानका स्वरूप कह्या अब ता अज्ञानका लक्षण कहे हैं। 'सदसद्विलक्षणम् अज्ञानम्' अर्थ—सत्य पदार्थ तैं तथा असत्य पदार्थ तैं जो विलक्षण होवै सो अज्ञान कह्या जावै है। अर्थात् जिसका सत्यरूप करिके तथा असत्यरूप करिके निरूपण नहीं होइ सकै सो अज्ञान कह्या जावै है। तहां अज्ञानकूं जो सत्य मानिये तौ जो सत्य ब्रह्मकी न्याईं ता अज्ञानका नाश नहीं होना चाहिये और ब्रह्मज्ञान करिके ता अज्ञानका नाश हो जावै है यातैं सो अज्ञान सत्यरूप करिके भी निरूपण कर्‌या जावै नहीं और ता अज्ञानकूं जो असत्य मानिये तो असत्य वंध्यापुत्रकी न्याईं ता अज्ञानका प्रत्यक्ष नहीं होना चाहिये और सो अज्ञान तौ मैं ब्रह्मकूं नहीं जानताहूं या प्रकारके प्रत्यक्ष अनुभवका विषय हुआ ही प्रतीत होवै है। यातैं सो अज्ञान असत्यरूप

कारिके भी निरूपण कऱ्या जावे नहीं । या कारणतैं ता अज्ञानकूं अनिर्वचनीय कहे हैं । तहां 'असद्विलक्षणम् अज्ञानम्' इतना मात्र ही जो ता अज्ञानका लक्षण करते तौ वंध्या पुत्रादिक असत्य पदार्थतैं विलक्षण जो सत्यब्रह्म है ताकेविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करने वासतैं ता लक्षणविषे(सद्विलक्षण) यह पद कथन कऱ्या है ब्रह्म सत्‌तैं । विलक्षण नहीं है । यातैं ताकेविषे अतिव्यप्ति होवै नहीं और 'सद्विलक्षणम् अज्ञानम्' इतना मात्र ही जो ता अज्ञानका लक्षण करते तौ सत्य ब्रह्मतैं विलक्षण जे वंध्यापुत्रादिक असत्य पदार्थ हैं तिनोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करने वासतै ता लक्षणविषे 'असद्विलक्षण' यह पद कथन कऱ्या है । ते वंध्या पुत्रादिक असत्‌तैं विलक्षण नहीं हैं । यातैं तिनोंविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं और वास्तवतैं विचार कारिके देखिये तौ 'सद्विलक्षणम् अज्ञानम्' इतना मात्र ही ता अज्ञानका लक्षण संभवै है असत् यह पद व्यर्थ ही है । काहेतैं जो कोई असत् वस्तु होवै तौ ताका असत्‌पणा नहीं संभवैगा और जो कोई असत् वस्तु है ही नहीं तौ किसविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी । यातैं ता अज्ञानके लक्षणविषे 'असद्विलक्षण' यह जो पद ग्रंथकारोंने दिय है सो केवल शिष्योंके बुद्धिकी वृद्धिवासतैं दिया है । शंका—जैसे अज्ञान सत्‌तैं विलक्षण है तैसे यह कार्य प्रपंच भी ता सत्‌तैं विलक्षण है । यातैं कार्य प्रपंचविषे ता अज्ञानके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै है । समाधान—ता उक्त लक्षणविषे अनादि इस पदके कहने कारिके सो अतिव्याप्ति होवै नहीं अर्थात्'सद्विलक्षणमनादिअज्ञानम्' यह अज्ञानका लक्षण है ता कार्य प्रपंचविषे अनादिपणा है नहीं । यातैं ता प्रपंचविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं।शंका—इस उक्त लक्षणकी भी जीव ईश्वरविषे अतिव्याप्ति ही होवै है।काहेतैं सो जीव

ईश्वर कल्पित होणेतैं सत्‌तैं विलक्षण भी है तथा अनादि भी है। तहां 'जीवेशावाभासेन करोति' इस श्रुति वचन करिके तथा 'मायाभासेन जीवेशौ करोतीति श्रुतत्वतः।कल्पितावेव जीवेशौ ताभ्यां सर्वं प्रकल्पितम्' इस विद्यारण्य स्वामीके वचन करिके ता जीव ईश्वरविषे कल्पितपणा ही सिद्ध होवै है और 'जीवेशौ च विशुद्धा चिद्विभागस्तु तयोर्द्वयोः।अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः' अर्थ—जीव १ ईश्वर २ शुद्धचैतन्य ३ तिनोंका परस्पर भेद ४ अविद्या ५ ता अविद्याका चेतनके साथ संबंध ६ ये षट् पदार्थ हमारे मतविषे अनादि हैं इति।इस सांप्रदायिक वचनतैं ता जीव ईश्वरविषे अनादिपणा सिद्ध होवै है। यातैं ता जीव ईश्वरविषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति वज्रलेप है।समाधान—ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासते ता लक्षणविषे 'ज्ञाननिवर्त्यं' यह पद भी हम कथन करे हैं। तहां 'यतो ज्ञानमज्ञानस्यैव निवर्त्तकम्' इस वचन करिके श्रीपंचपादिकाचार्यने ज्ञान करिके केवल अज्ञानमात्रकी ही निवृत्ति कथन करी है अन्यकी निवृत्ति कथन करी नहीं और जीव ईश्वरादि भावकी निवृत्ति तौ ता अज्ञानकी निवृत्ति करिकै ही होवै है। यातैं ता जीव ईश्वर विषे ज्ञान करिकै निवृत्तपणा है नहीं। यातैं ता जीव ईश्वरविषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। यातैं ता अज्ञानका 'सद्विलक्षणमनादि ज्ञाननिवर्त्त्यम् अज्ञानम्' यह लक्षण सिद्ध भया। अथवा 'अनाद्युपादानं ज्ञाननिवर्त्त्यम् अज्ञानम्' यह द्वितीय अज्ञानका लक्षण करना।तहां इस लक्षणविषे अनादि प्रागभावविषे अतिव्याप्तिके निवृत्त करने वासते उपादान यह पद कथन कऱ्या है और घटादिक कार्योंके उपादान कारणभूत मृत्तिकादिकोंविषे अतिव्याप्तिके निवृत्त करणे वासते अनादि यह पद कथन कऱ्या है और अनादि तथा विवर्त्त उपादानरूप ब्रह्मविषे अतिव्याप्तिके निवृत्त करने वासते ज्ञान,-निवर्त्त्य यह पद

कथन कऱ्या है । इहां अज्ञानविषे परिणाम उपादानता ग्रहण करणी और कै एक वादी ज्ञानके अभावकूं ही अज्ञान कहै हैं तिन्होंके खंडन करणेवास्ते सिद्धांतविषे ता अज्ञानकूं भावरूप मान्या है इति । अब ता अज्ञानविषे प्रमाणकूं कहे हैं । तहां 'अहं ब्रह्म न जानामि' अर्थात् मैं ब्रह्मकूं नहीं जानता हूं या प्रकारका अज्ञानविषायक प्रत्यक्ष अनुभव सर्व प्राणियोंकूं होवै है, यातैं ता अज्ञानविषे एक तौ यह प्रत्यक्ष ही प्रमाण है और दूसरा श्रुति स्मृति भी प्रमाण है ।तहां श्रुति ।'ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिंस्वगुणैर्निगूढाम्' अर्थ-काल स्वभावादिक कारणों विषेनाना प्रकारके दोषोंका विचार करिकै जगत्के कारणका निश्चय करणे वासते ब्रह्मके ध्यानपरायण हुए ते ब्रह्मवेत्ता पुरुष देवात्मशक्तिकूं ही जगत् कारणरूप करिकै देखते भये जो अज्ञानरूप शक्ति आपणे सत्वादिक गुणों करिके निगूढ है इति । इस श्रुतिका अर्थ आत्मपुराणके अष्टम अध्यायविषे विस्तारतैं कथन कऱ्या है । तहां स्मृति । 'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः । ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः' अर्थ-जिन जीवोंका ज्ञान अज्ञान करिकै आवृत हुआ है ते जीव तिस अज्ञानकृत आवरण करिकै संसारकूं ही प्राप्त होवै हैं और जिन जीवोंका सो अज्ञान गुरुशास्त्रके प्रसादजन्य ज्ञान करिकै निवृत्त हुवा है तिन पुरुषोंका अहं ब्रह्मास्मि यह ज्ञान प्रत्यक्ष अभिन्न ब्रह्मकूं प्रकाश करे है इति । यह गीतास्मृति भी ता अज्ञानविषे प्रमाण है किंवा इस स्मृतिविषे अज्ञानकूं ब्रह्मके स्वरूपका आवरकपणा कथन कऱ्याहै,सो आवरकपणा भाव पदार्थविषे ही होवै है । अभाव पदार्थविषे होता नहीं । यातैं ज्ञानके अभावकूं अज्ञानरूप मानणेहारे नैयायिकोंने भी इस स्मृति वचनके विरोधतैं ता अज्ञानकूं भावरूप ही मान्या चाहिये । यातैं सो गीता वचन व ता अज्ञानकी भाव-रूपताविषे भी

प्रमाण है और इस उक्त गीता वचनविषे ज्ञान करिकै अज्ञानका नाश कथन कऱ्या है ता करिकै त्रिगुणात्मक अचेतन स्वतंत्र पारमार्थिक परिणामी नित्य ऐसा जो प्रधान है सोई अज्ञान है यह सांख्यियोंका मत भी खंडन हुआ जानणा। तहां लोकविषे अचेतन रथादिकोंकी चेतनके अधीन हो प्रवृत्ति देखणेविषे आवै है। स्वतंत्र प्रवृत्ति होती नहीं। यातैं ता प्रधानकूं अचेतन मानिके पुनः स्वतंत्र मानणा यह भी अत्यंत विरुद्ध है और लोकविषे परिणामी क्षीरादिकोंकूं सावयवता करिकै अनित्यपणा ही देखणेविषे आवै है यातैं ता प्रधानकूं परिणामी मानिकै पुनः नित्य मानना यह भी अत्यंत विरुद्ध है यातैं सो सांख्यियोंका मत समीचीन नहीं है इति। इतने पर्यंत अज्ञानका स्वरूप तथा लक्षण तथा प्रमाण कथन कऱ्या अब ता अज्ञानके विभागकूं कथन करै हैं तहां सो उक्त अज्ञान माया १ अविद्या २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है तहां शुद्ध सत्त्व गुण प्रधान हुवा सो अज्ञान माया कह्या जावै है और मलिन सत्त्वगुण प्रधान हुआ सो अज्ञान विद्या कह्या जावै है तहां जो सत्त्वगुण रज तम इन दोनों गुणों करिकै तिरस्कारकूं नहीं प्राप्त भया है सो सत्त्वगुण शुद्ध कह्या जावै है और जो सत्त्वगुण ता रजो तमो गुण करिकै तिरस्कारकूं प्राप्त भया है सो सत्त्वगुण मलिन कह्या जावै है। इस प्रकार सो एक ही अज्ञान सत्त्वगुणकी शुद्धि करिकै मायारूप होवै है और सत्त्वगुणकी मलिनता करिकै अविद्यारूप होवै है। तहां श्रुति 'माया चाविद्या च स्वयमेव भवति' अर्थ —सो मूल प्रकृतिरूप अज्ञान आप ही मायारूप तथा अविद्यारूप होवै है इति। और माया अविद्या इन दोनों उपाधियों करिकै सो एक ही चैतन्य जीव ईश्वर इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है तहां ता मायाविषे प्रतिबिंबित चैतन्य तौ ईश्वर कह्या जावै है और ता अविद्याविषे प्रतिबिंबित चैतन्य जीव कह्या जावै है। तहां

श्रुति ।'जीवेशावाभासेन करोति' अर्थ–सो अज्ञान स्वनिष्ठ आभास करिकै जीव ईश्वर दोनों करै है इति । और कै एक ग्रंथकार तौ ता माया अविद्याका इस प्रकारतैं भेद वर्णन करै हैं। ता अज्ञानकी दो प्रकारकी शक्ति होवै है एक तौ ज्ञानशक्ति होवै है और दूसरी क्रिया शक्ति होवै है। तहां कार्यका जनक जो कारण निष्ठा सामर्थ्य है ताका नाम शक्ति है । ताकेविषे भी ज्ञानकी जनक जो शक्ति है सो ज्ञानशक्ति कही जावै है और क्रियाकी जनक जो शक्ति है सो क्रियाशक्ति कही जावै है। तहां रज तम इन दोनों गुणों करिकै नहीं अभिभवकूं प्राप्त भया जो सत्त्वगुण है सो सत्त्वगुण ज्ञानशक्ति कह्या जावै हैं। तहां 'सत्त्वात्संजायते ज्ञानं' इस वचन करिकै गीताविषे श्रीभगवान्ने सत्त्व गुणतैं ज्ञानकी उत्पत्ति कथन करी है। यातैं ता सत्त्वगुणकूं ज्ञान शक्तिरूपताविषे सो गीताका वचन ही प्रमाण है और सत्त्वगुण करिकै नहीं अभिभवकूं प्राप्त भये जे रज तम ये दो गुण हैं ते दोनों गुण क्रियाशक्ति कहे जावै हैं। सो क्रियाशक्ति भी दो प्रकारकी होवै है। एक तौ आवरण शक्ति होवै है और दूसरी विक्षेप शक्ति होवै है। तहां आवरणकी जनक शक्तिकूं आवरण शक्ति कहै हैं और विक्षेपकी जनकशक्तिकूं विक्षेप शक्ति कहै हैं। तहां सत्त्व रज इन दो गुणों करिकै नहीं अभिभवकूं प्राप्त भया जो तमोगुण है सो तमोगुण आवरण शक्ति कह्या जावै है। यह वार्त्ता भगवान् भाष्यकारने भी कही है। तहां भाष्यवचन 'कृष्णं तमः आवरणात्मकत्वात्' अर्थ–अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां' इस मंत्रविषे स्थित जो कृष्ण शब्द है सो तमोगुणका ही वाचक है। तमोगुणकूं आवरणरूप होणेतैं इति । इस वचन करिकै श्रीभाष्यकारोंने ता तमोगुणकूं आवरणपणा इस उक्त श्रुतिके व्याख्यानविषे कथन कर्‍या है यातैं तिस तमोगुणविषे आवरणशक्ति

रूपता संभवै है । यह आवरण शक्तिका स्वरूप कह्या । अब ता आवरण शक्तिका लक्षण कहै हैं।'नास्ति न प्रकाशते इतिव्यवहार-हेतुः आवरणशक्तिः' अर्थ—ब्रह्म है नहीं तथा ब्रह्म भासता नहीं या प्रकारके व्यवहारका जो कारण होवै सो आवरण शक्ति कह्या जावै है इति । इसी प्रकारतैं पूर्व ज्ञानशक्तिका भी'अस्ति प्रकाशते इति व्यवहारकारणं ज्ञानशक्तिः' या प्रकारका लक्षण जानिलेणा। यह आवरण शक्तिका लक्षण श्रीविद्यारण्य स्वामीने भी कह्या है । 'न भाति नास्ति कूटस्थ इत्यापादनमावृत्तिः' अर्थ—कूटकी न्याईं निर्विकाररूप करिके जो स्थित होवै है ताका नाम कूटस्थ है । ऐसा परमात्मा देव है सो परमात्मा नहीं है तथा भासता नहीं या प्रकारके व्यवहारका जो कारण है सो आवरण शक्ति कह्या जावै है इति । अब विक्षेप शक्तिका निरूपण करे हैं । तहां तम सत्त्व इन दोनों गुणों करिकै नहीं अभिभवकूं प्राप्त भया जो रजोगुण है सो रजोगुण विक्षेप शक्ति कह्या जावै है । तहां 'रजसो लोभ एव च' इस गीता वचनविषे रजोगुणतैं लोभादिकोंकी उत्पत्ति कथन करी है और लोभ मद मत्सर इत्यादिकोंकूं विक्षेपकी कारणता प्रसिद्ध ही है यातैं ता उक्त विक्षेप शक्तिविषे सो गीतावाक्य ही प्रमाण है । अब विक्षेपशक्तिका लक्षण कहै हैं । 'आकाशादि प्रपंचोत्पत्ति-हेतुः विक्षेपशक्तिः'अर्थ—आकाशादि प्रपंचके उत्पत्तिका कारण जो शक्ति है सो विक्षेप शक्ति कही जावै है । यह विक्षेप शक्तिका लक्षण आचार्योंने भी कह्या है । 'विक्षेपशक्तिर्लिंगादिब्रह्मांडांत-जगत्सृजेत्'अर्थ—समष्टिव्यष्टि रूप लिंग शरीरतैं आदि लैके चतुर्दश भुवन ब्रह्मांड पर्यंत सर्व जगतकूं सो विक्षेप शक्ति ही उत्पन्न करे हैं इति । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया सो पूर्व उक्त अज्ञान ही ता उक्त आवरण शक्ति प्रधान हुआ अविद्या कह्या जावै है और

ता उक्त विक्षेप आदि शक्ति प्रधान हुआ माया कह्या जावै है। शंका-ता आवरण शक्ति प्रधान अज्ञानकूं मायारूपता क्यों नहीं होवै तथा ता विक्षेप आदि शक्ति प्रधान अज्ञानकूं अविद्यारूपता क्यों नहीं होवै। समाधान--शास्त्रवेत्ता पुरुषोंने ता मायाका तथा अविद्याका यह लक्षण कर्या है। 'स्वाश्रयाऽव्यामोहकरी माया' अर्थ-आपणे आश्रयकूं जो व्यामोहकी प्राप्ति नहीं करै है सो माया कही जावै है इति। 'स्वाश्रयव्यामोहकरी अविद्या' अर्थ आपणे आश्रयकूं जो व्यामोहकी प्राप्ति करै है सो अविद्या कही जावै इति। तहां ता आवरण शक्तिकूं तो मोहकारीपणा है। यातैं ता आवरण शक्तिप्रधान अज्ञान अविद्या ही कह्या जावै है। माया कह्या जावै है नहीं और ता विक्षेप आदिक शक्तिकूं सो मोहकारीपणा है नहीं यातैं ता विक्षेप आदि शक्ति प्रधान अज्ञान माया ही कह्या जावै है अविद्या कह्या जावै नहीं। इहां विक्षेप आदि शब्द इस आदि करिके पूर्व उक्त ज्ञान शक्तिका भी ग्रहण करणा। इस प्रकारका माया अविद्याका भेद स्मृतिविषे भी कह्या है। तहां स्मृति। 'तरत्यविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिता। योगी माया ममेयाय तस्मै विद्यात्मने नमः 'अर्थ' हृदयविषे जिस परमात्माके साक्षात्कार हुए ब्रह्मवेत्ता योगी पुरुष ता आवरण शक्ति प्रधान अज्ञानरूप अविद्याकूं तथा ता विक्षेप शक्ति प्रधान अज्ञानरूप मायाकूं नाश करे है तिस ज्ञानस्वरूप अप्रमेय ब्रह्मके तांई हमारा नमस्कार है इति। अब ता माया अविद्या विभागके निरूपणका फल कहे हैं। ता उक्त माया करिके उपहित जो चैतन्य है सो माया उपहित चैतन्य तौ ईश्वर कह्या जावै है तथा जगत्का कारण कह्या जावै है तथा अंतर्यामी कह्या जावै है। तहां 'एष सर्वेश्वरः' यह श्रुति तौ ता माया उपहित चैतन्यकूं ईश्वर कहे हैं और 'एषोंऽतर्यामी' यह श्रुति ताकूं अंतर्यामी कहे है और 'एषो योनिः सर्वस्य' यह श्रुति ताकूं सर्वका

कारण कहे है । यातैं ता माया उपहित चैतन्यके ईश्वरपणेविषे तथा अंतर्यामीपणेविषे तथा जगत् कारणपणेविषे यह उक्त श्रुति ही प्रमाण है। सो माया उपहित चैतन्य ही तत् पदका वाच्य अर्थ है और पूर्व उक्त अविद्या करिकै उपहित जो चैतन्य है सो जीव कह्या जावै है तथा प्राज्ञ कह्या जावै है सो जीव ही त्वं पदका वाच्य अर्थ है। इहां उपहित शब्द करिकै प्रतिबिंबितका ग्रहण करणा । अर्थात् ता मायाविषे प्रतिबिंबित चैतन्य ईश्वर कह्या जावै है और ता अविद्याविषे प्रतिबिंबित चैतन्य जीव कह्या जावै है। यह वार्त्ता श्रीविद्यारण्य स्वामीने पंचदशी ग्रंथविषे भी कही है । तहां श्लोक 'तमोरजःसत्त्वगुणा प्रकृतिर्द्विविधा च सा । सत्त्व शुद्ध्यविशुद्धिभ्यां मायाऽविद्ये च ते मते॥ १॥माया-बिंबो वशीकृत्य तां स्यात्सर्वज्ञ ईश्वरः। अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वै-चित्र्यादनेकधा' ॥ २ ॥ अर्थ—सच्चिदानंद ब्रह्मके प्रतिबिंब करिकै युक्त तथा सत्त्व रज तम तीन गुण रूप जो प्रकृति है सो प्रकृति माया अविद्या इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है । तहां शुद्ध सत्त्व गुणकी प्रधानता करिकै तौ सो प्रकृति माया कही जावै और मलिन सत्त्व गुणकी प्रधानता करिकै सो प्रकृति अविद्या कही जावै है। तहां ता मायाविषे प्रतिबिंबित जो चैतन्य है सो ता मायाकूं आपणे वश करिकै सर्वज्ञ तथा ईश्वर होवै है और ता अविद्याविषे प्रतिबिंबित जो चैतन्य है सो जीव कह्या जावै है। सो जीव चैतन्य ता अविद्याके वश हुआ तिस अविद्याकी विचि-त्रतातैं आप भी देव मनुष्यादिरूप करिकै अनेक प्रकारका ही होवै है । इहां यह तात्पर्य है सो पूर्व उक्त शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान माया एक ही होवै है। यातैं ता मायाविषे प्रतिबिंबित ईश्वर चैतन्य भी एक ही होवै है और सो पूर्व उक्त मलिन सत्त्व प्रधान अविद्या ता मलिनताकी विचित्रतातैं अनेक प्रकारकी ही होवै है ।

यातैं ता अविद्याविषे प्रतिबिंबित जीव चैतन्य भी अनेक प्रकार-का ही होवै है। यातैं इस उक्त पक्षविषे नानाजीव ही सिद्ध होवै हैं इति। अब इस उक्त अर्थविषे श्रुती प्रमाण भी कहे हैं। 'अस्मान्मायीसृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः। मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्' अर्थ—माया उपाधिक परमात्मा सृष्टिके आदिकालविषे आकाशादिक ब्रह्मांडांत जगत्कूं वेदके शब्दोंतैं उत्पन्न करता भया अर्थात् सो परमात्मा भू इस प्रकारके वेद शब्दकूं उच्चारण करिकै पृथिवीकूं उत्पन्न करता भया इस प्रकार आकाश आदिक शब्दोंकूं उच्चारण करिकै तिन आकाश आदिकोंकूं भी उत्पन्न करता भया। यह वार्त्ता 'स भूरि-त्युक्त्वा भुवमसृजत्। वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे साम हेश्वर' इत्या-दिक श्रुति स्मृतिवचनोंविषे आत्म प्रति ही है। तिस उत्पन्न हुए जगत्विषे सो अविद्या उपाधिक जीव पूर्व उक्त माया करिकै देहादिकोंविषे अहं मम अभिमान करिकै बंधायमान होवै है और मायाकूं जगत्का उपादान कारण जानणा और ता माया उपाधिवाले चेतनकूं जगत्का कर्त्ता महेश्वर जानणा। इहां यह अभिप्राय है। शुद्ध ब्रह्मकूं तौ जगत्की कारणता है नहीं किंतु माया उपाधिक परमात्माकूं ही जगत्की कारणता है। तहां तो परमात्मा ता माया उपाधिकी प्रधानता करिकै तौ जगत्का उपादान कारण है और आपणे चैतन्य रूपकी प्रधानता करिकै तौ जगत्का कर्त्तारूप निमित्त कारण है इति। तहां पूर्व उक्त दो मतोंविषे अज्ञानके एक हुए भी माया अविद्याके भेदकूं सिद्ध करिकै जीव ईश्वरका भेद तथा जीवोंका नानापणा दिखाया। अब जे ग्रंथ-करता अज्ञानकूं एक मानिकै तथा ता माया अविद्याके भेदकूं न मानिकै बिंब प्रतिबिंब भाव करिकै ता जीव ईश्वरके भेदकूं मानैं हैं तथा जीवकूं एक ही मानैं हैं तिनोंके मतका निरूपण करे हैं।

जैसे एक ही देवदत्त नामा पुरुष पाक पाठक्रियारूप निमित्तके भेद करिके पाचक पाठक इन दो नामों करिके कह्या जावै है तैसे सो एक ही अज्ञान विक्षेप आवरण शक्तिरूप निमित्तके भेद करिके माया अविद्या इन दो नामों करिके कह्या जावै है । तात्पर्य यह जैसे पाचक पाठक ये दोनों शब्द ता एक ही देवदत्त पुरुषके वाचक हैं तिन वाचक शब्दोंके भेद करिके ता देवदत्त पुरुषका भेद होता नहीं तैसे माया अविद्या ये दोनों शब्द भी ता एक ही अज्ञानके वाचक हैं । तिन वाचक शब्दोंके भेद करिके ता अज्ञानका भेद संभवता नहीं, यातैं ता माया अविद्याका भेद नहीं है । ऐसे एक अज्ञानरूप अविद्याविषे जो चैतन्यका प्रतिबिंब है सो तौ जीव कह्या जावै है और सो अविद्या उपहित बिंब चैतन्य ईश्वर कह्या जावै है । इस प्रकार ता माया अविद्याके भेदकूं नहीं अंगीकार करिके भी बिंब प्रतिबिंब भाव करिके सो जीव ईश्वरका भेद संभवै है । यह वार्त्ता श्रीव्यास भगवान्ने भी कही है । तहां सूत्र 'आभास एव च' अर्थ—जैसे जलादिक उपाधियोंविषे सूर्य चन्द्रादिकोंका प्रतिबिंब होवै है तैसे यह जीव भी चैतन्यका प्रतिबिंबरूप ही है इति । शंका—जैसे सूर्यादिकोंके प्रतिबिंबका जलादिक उपाधि होवै है तैसे इस जीवरूप प्रतिबिंबका तथा बिंबभूत ईश्वरका कौन उपाधि है ऐसी शंकाके प्राप्त हुए अब मत भेदसे ता जीव ईश्वरके उपाधिका वर्णन करै हैं, तहां केएक ग्रंथकार तौ अंतःकरणकूं ही ता जीवका उपाधि मानै हैं काहेतें अंतःकरण विशिष्ट चैतन्यविषे ही अहं कर्त्ता अहं भोक्ता या प्रकारतें कर्तृत्व भोक्तृत्वादिक संसारका अनुभव होवै है और 'कार्योपाधिरयं जीवः' यह श्रुति भी ता अंतःकरणरूप कार्यकूं ही जीवका उपाधिपणा कहै है। यातैं ता प्रतिबिंबरूप जीवका सो अतःकरण ही उपाधि है । ते अंतःकरण नाना हैं तथा परिच्छिन्न हैं । यातैं तिन अंतःकरणों-

विषे प्रतिबिंब रूप ते जीव भी नाना हैं तथा परिच्छिन्न हैं इति। और केएक ग्रंथकार तौ ऐसे कहे हैं। सो अंतःकरण अज्ञानका कार्य होणेतें अस्वतंत्र है यातें ता अंतःकरणविषे बिंबत्व प्रतिबिंबत्वरूपतें जीव परमात्माका भेदकपणा संभवता नहीं यातें सो अंतःकरण जीवका उपाधि नहीं है। किंतु स्वतंत्र होणेतें सो अज्ञान ही ता जीवका उपाधि है। सो जीवका उपाधिरूप अज्ञान भी एक नहीं है। किंतु नाना ही हैं। ता अज्ञानरूप उपाधिके नानापणे करिके ता अज्ञानविषे प्रतिबिंबरूप जीव भी नाना ही हैं और ब्रह्मविषे आरोपित होणेतें ते अज्ञान परिच्छिन्न हैं। यातें तिन अज्ञानोंविषे प्रतिबिंबरूप ते जीव भी परिच्छिन्न ही हैं। तथा परस्पर भेदवाले हैं। यातें पुण्य पाप कर्मके सुख दुःखरूप फलका व्यतिकर होवै नहीं। तहां एकके सुखी हुए वा दुःखी हुए जो सर्वोंकूं ता सुखकी वा दुःखकीप्राप्ति है ताका नाम कर्मफल व्यतिकर है, सो जैसे एक जीव पक्षविषे प्राप्त होवै है तैसे इस नाना जीवपक्षविषे प्राप्त होवै नहीं यातें ते नाना अज्ञान ही ता बिंबरूप ईश्वरका तथा प्रतिबिंबरूप जीवोंका परस्पर भेद करणेहारा उपाधि है। या प्रकारका ता व्याससूत्रका अर्थ—नाना जीववादियोंके मतिविषे सिद्ध होवै है इति। और केएक ग्रंथकार तौ यह कहै हैं। ता जीव ईश्वरका भेद करनेहारा उपाधि स्वतंत्र होणेतें अज्ञान ही है, परंतु सो अज्ञान नाना नहीं हैं किंतु एक ही है। तिस एक अज्ञानविषे जो चैतन्यका प्रतिबिंबरूप जीव है सो जीव भी ता अज्ञानरूप उपाधिके एकपणे करिके एक ही है तथा अपरिच्छिन्न है। तहां 'अजामेकांलोहितशुक्लकृष्णाम्' यह श्रुति ही ता अज्ञानके एकपणेविषे प्रमाण है और 'इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' इस श्रुतिविषे जो मायाओंका बहुतपणा कथन कऱ्या है सो ता मायारूप अज्ञानके शक्तियोंके बहुतपणेकूं वा सत्व आदिक

गुणोंके बहुतपणेकूं लैके कथन कऱ्या है, यातैं ता श्रुतिका भी विरोध होवे नहीं। और 'अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते' यह श्रुति ता जीवके एकपणेविषे प्रमाण है। तथा 'आभास एव च' इस उक्त सूत्रविषे एक वचन करिकै सूत्रकारने भी ता जीवका एकपणा ही कथन कऱ्या है। यातैं सो जीव एक ही मान्या चाहिये। शंका—जीवकूं जो एक मानोगे तौ तुम्हारे मतविषे बंध मोक्षकी व्यवस्था कैसे होवैगी अर्थात् तत्त्वज्ञान करिकै कै एक जीव तौ मुक्त होवै हैं और ता ज्ञानकी अप्राप्ति करिकै कै एक जीव बद्ध होवे हैं या प्रकारकी बंध मोक्षकी व्यवस्था जैसे नाना जीवपक्षविषे संभवै है तैसे एक जीवपक्षविषे सो व्यवस्था संभवती नहीं। समाधान—अज्ञानके तथा जीवके एक हुए भी ता एक अज्ञान कार्यभूत जे अंतःकरण हैं ते नाना हैं। और अंतःकरणविशिष्ट चैतन्यका नाम प्रमाता है यातैं तिन अंतः-करणोंके नाना हुएते प्रमाता भी नाना ही हैं, तहां तत्त्वज्ञान करिकै एक प्रमाताके मुक्त हुए भी ता तत्त्वज्ञानतैं रहित दूसरे प्रमाता बद्ध ही होवै हैं। इस प्रकार प्रमातावोंके भेदकूं अंगी-कार करिकै ता एक जीवपक्षविषे भी सो बंध मोक्षकी व्यवस्था संभवै है। शंका—तुम एक जीववादियोंके मतविषे मोक्ष क्या वस्तु है, जो कहो अविद्याकी निवृत्ति ही मोक्ष है, ताके विषे भी यह विचार कऱ्या चाहिये क्या कार्य अविद्यकी निवृत्ति मोक्ष है, अथवा। मूलाविद्याकी निवृत्ति मोक्ष है, तहां प्रथम पक्ष तौ संभवता नहीं काहेतैं देहादिकोंविषे आत्मत्वादिक बुद्धिरूप जे भ्रांति ज्ञान हैं तिनोंका नाम कार्य अविद्या है तिन सकल भ्रांतिज्ञानोंकी निवृत्ति ही संभवती नहीं और मूलाविद्याके विद्यमान हुए पुनः तिन भ्रांति ज्ञानोंको उत्पत्ति अवश्य होवैगी और यत्किंचित् भ्रांतिज्ञानकी निवृत्तिकूं पुरुषार्थरूपता ही नहीं है। यातैं ता कार्य अविद्याकी

निवृत्तिकूं मोक्षरूपता संभवती नहीं और जो ऐसा कहो। ता अज्ञानकी जो आवरण शक्ति है ताका नाम अविद्या है ते आवरण शक्तिरूप अविद्या नाना हैं। यातैं जिस प्रमाताकूं तत्त्वज्ञान उत्पन्न होवै है तिस प्रमाताकूं आपणे संसारका हेतुभूत ता अविद्याकी निवृत्ति ही मुक्ति है और जिस प्रमाताकूं सो तत्त्वज्ञान नहीं उत्पन्न भया है तिस प्रमाताकूं ता अविद्याके विद्यमान हुए बंध होवै है इस प्रकारतैं ता एक जीवपक्षविषे भी सो बंध मोक्षकी व्यवस्था संभवे है सो यह तुम्हारा कहणा भी संभवता नहीं। काहेतैं ता अविद्याकूं नाना मानिकै जो बंधका हेतु मानोगे तौ ता अविद्याके आश्रयभूत जीवोंका भेद ही मानणा होवैगा। ता करिकै तुम्हारे मतविषे भी नाना जीववादकी ही प्राप्ति होवैगी सो तुम्हारेकूं इष्ट नहीं है। किंवा मूलाविद्याकी निवृत्तिका नाम मोक्ष है, यह दूसरा पक्ष जो अंगीकार करो सो भी संभवता नहीं। काहेतैं तत्त्वज्ञान-करिकै ता एक मूलाविद्याके निवृत्त हुए सर्वकी मुक्ति होणी चाहिये और जो ऐसा कहो कि एक ही जीव है इस पक्षविषे सर्वकी मुक्ति होणी चाहिये यह कहणा ही विरुद्ध है सो यह भी कहणा संभवता नहीं। काहेतैं तुम्हारे मतविषे पूर्व उत्पन्न हुए शुक वामदेव आदि-कोंकी मुक्ति अंगीकार है अथवा नहीं। तहां प्रथम पक्ष जो अंगी-कार करौ तौ तिन शुक वामदेव आदिकोंके तत्त्वज्ञानकरिकै ता एक मूलाविद्याके निवृत्त हुए अस्मदादिकोंकूं अभी संसारकी प्रतीत नहीं होणी चाहिये और जो द्वितीय पक्ष अंगीकार करौ तौ तिन शुक वामदेव आदिकोंकी मुक्तिकूं प्रतिपादन करणेहारा शास्त्र अप्र-माण होवैगा और तिन शुक वामदेव आदिक महान पुरुषोंकी भी जभी मुक्ति नहीं भई तभी अस्मदादिकोंकूं ता मुक्तिकी प्राप्तिकी आशा कैसी होवैगी। किंवा ,यावदधिकारमवस्थितिराधिकारि-काणाम्' इस: सूत्रके व्याख्यानविषे भगवान् भाष्यकारने

यह कह्या है-उपासना करिकै इंद्रादिक पदकूं प्राप्त भये जे अधिकारी पुरुष हैं तिनोंकूं कोई वर शापादिक निमित्तके वशतैं जन्मांतरकी प्राप्तिके हुए भी तत्त्वज्ञानका प्रतिबंध होता नहीं। यातैं तिन अधिकारी पुरुषोंकूं ता इंद्रादिरूप अधिकारके अंतविषे मोक्ष अवश्य करिकै होवै है। यह सर्व कथन ता एक जीवपक्षविषे मिथ्या ही होवैगा किंवा साक्षात्कार कर्‌या है प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्म जिसने ऐसा ब्रह्मवेत्ता पुरुष आपणे शिष्योंके ताईं ता ब्रह्मका उपदेश करै है। यह वार्ता श्रुतिस्मृतिविषे प्रसिद्ध है। तहां श्रुति। 'तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' अर्थ–ब्रह्मके साक्षात्कार वासते सो अधिकारी पुरुष हस्तविषे किंचित् भेटकूं लैके श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जावै इति। तहां स्मृति। 'उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः'। अर्थ–तत्त्ववेत्ता ज्ञानी पुरुष तुम्हारे ताईं ज्ञानका उपदेश करेंगे इति। तहां एक जीवपक्षविषे साक्षात्कारवाले गुरुका ही अभाव है यातैं गुरु शिष्यकी व्यवस्था ही संभवती नहीं। ता व्यवस्थाके अभाव हुए कोईकूं भी मोक्षकी प्राप्ति नहीं होवैगी, किंवा ता एक जीवपक्षविषे वेदके कर्मकांडका तथा ज्ञानकांडका भिन्न भिन्न अधिकारी संभवता नहीं यातैं ता अधिकारीके अभावतैं ता कर्मज्ञानकांडकूं भी अप्रमाणता ही प्राप्त होवैगी। यातैं अज्ञान भी एक ही है तथा ता अज्ञान उपहित जीव भी एक ही है यह एक जीवपक्ष समीचीन नहीं है। समाधान–'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्'। इत्यादि श्रुतियोंविषे तथा 'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं, मम मायादुरत्यया' इत्यादिक स्मृतियोंविषे ता अज्ञानका एकपणा ही निश्चय होवै है यातैं सो अज्ञान एक ही मान्या चाहिये। ता अज्ञानका एकत्व सिद्ध हुए ता अज्ञान उपहित जीव भी एक ही मान्या चाहिये। ता एक जीव पक्षविषे स्वप्नके दृष्टांततैं बंध मोक्षादिक सर्व व्यवस्था संभवै है। सो दिखावै हैं जैसे स्वप्न अवस्थाविषे

इस स्वप्नद्रष्टा पुरुषने आपणी भ्रांति करिकै कल्पना करे जे अनेक प्रमाता हैं तिनोंविषे किसी प्रमाताके तौ बंधकूं देखै है और किसी प्रमाताके मुक्तिकूं देखै है। ता बंध मोक्षके दर्शन करिकै ता स्वप्नद्रष्टा पुरुषकूं सो बंध मोक्ष होता नहीं। तैसे जगत् अवस्थाविषे भी ता एक जीवनैं कल्पना करे जे अनेक प्रमाता हैं तिनोंविषे कोई बद्ध होवै है कोई मुक्त होवै है। तिनोंके बंध मोक्षके दर्शनतैं ता एक जीवकूं सो बंध मोक्ष होता नहीं। यातैं ता एक जीवपक्षविषे सो बंध मोक्ष व्यवस्था भी संभवै है। इस प्रकार स्वप्नके दृष्टांत करिकै गुरु शिष्यादिक सर्व व्यवस्था जानि लेणी। यातैं इस एक जीवपक्षविषे ते पूर्व उक्त दोष प्राप्त होवै नहीं और ता एक जीवविषे अंतःकरण विशिष्ट अनेक प्रमाता कल्पित हैं। तिन प्रमाताओंविषे कोई प्रमाता सुखी है कोई प्रमाता दुःखी है या प्रकारतैं सुख दुःखकी व्यवस्था भी संभवै है इति। तहां प्रतिबिंबत्व धर्म विशिष्ट चैतन्यका नाम जीव है और बिंबत्वधर्मविशिष्ट चैतन्यका नाम ईश्वर है। इस उक्त पक्षविषे अंतःकरणादिरूप उपाधिकृत दोष ता प्रतिबिंबरूप जीवविषे ही वर्त्तैं हैं ता बिंबभूत ईश्वरविषे वर्त्तते नहीं जिस कारणतैं सो उपाधि प्रतिबिंबके पक्षपाती ही होवै हैं बिंबके पक्षपाती होवै नहीं। जैसे जलादिक उपाधिके चलनादिक धर्म ता प्रतिबिंबविषे ही प्रतीत होवै हैं बिंबविषे प्रतीत होते नहीं इति।

शंका—पूर्व अज्ञानादिकोंविषे चैतन्यके प्रतिबिंबकूं जीव कह्या सो संभवता नहीं। काहेतैं रूपवान् वस्तुका ही प्रतिबिंब होवे है रूपरहित वस्तुका प्रतिबिंब होता नहीं। जैसे रूपवान् सूर्य चंद्रादिकोंका जलादिकोंविषे प्रतिबिंब होवै है और ब्रह्म तो रूपादिक गुणोंतैं रहित है यातैं ता ब्रह्मका अज्ञानविषे प्रतिबिंब संभवता नहीं और जो यह कहो कि जैसे रूपरहित आकाशका जलविषे प्रतिबिंब होवै है

तैसे रूपरहित ब्रह्मका भी ता अज्ञानविषे प्रतिबिंब संभवै है सो यह कहणा भी संभवता नहीं; काहेतैं रूपतैं रहित होणेतैं ता आकाशका जलादिकोंविषे प्रतिबिंब संभवता नहीं। किंतु ता आकाशके आश्रित जे अभ्र प्रभा नक्षत्र आदिक रूपवान् पदार्थ हैं तिनोंकाही जलादिकोंविषे प्रतिबिंब पडे है और जलादिकोंविषे आकाशका प्रतिबिंब है यह जो लोकोंकूं अनुभव होवै है सो भ्रमरूप ही है यातैं बिंब प्रतिबिंब भाव करिकै जो ब्रह्मका जीव ईश्वर विभाग पूर्व कह्या है सो संभवता नहीं। समाधान–रूपवान् वस्तुका ही प्रतिबिंब होवै है या प्रकारका नियम सर्वत्र संभवता नहीं किंतु कोईक स्थलविषे रूपरहित वस्तुका भी प्रतिबिंब देखणेविषे आवै है। जैसे रूपादिक गुण रूपतैं रहित होवै है। तौ भी जपा कुसुमादिकोंके लोहितादिक रूपोंकास्फटिकादिकोंविषे प्रतिबिंब प्रत्यक्ष देखणेविषे आवै है और जो कहो रूपरहित द्रव्यका प्रतिबिंब नहीं होवे है यह नियम हम मानते हैं ते रूपादिक गुण द्रव्यरूप नहीं हैं। यातैं तिन रूपादिकोंके प्रतिबिंब हुए भी ता उक्त नियमका भंग होवै नहीं सो यह कहणा भी संभवता नहीं। जिस कारणतैं रूपरहित आकाश द्रव्यका भी जलादिकोंविषे प्रतिबिंब देखणेविषे आवै है तहां जैसे बाह्य नीलतावाला तथा विशालतावाला आकाश प्रतीत होवै है तैसे कूप तडागादिकोंके स्वल्प जलविषे भी सो नीलता विशालतावाला आकाश प्रतीत होवै है। तहां ता स्वल्प जलविषे वास्तवतैं तौ सो विशालतादिवाला आकाश है नहीं। यातैं ता जलविषे भासमान सो आकाश ता बाह्य आकाशका प्रतिबिंबरूप ही मानणा होवैगा और इन जलादिकोंविषे यह आकाशका ही प्रतिबिंब है या प्रकारका अनुभव सर्व लोकोंकूं होवै है। ता अनुभवका कोई बाधक है नहीं। यातैं ता अनुभवकूं भ्रमरूपता संभवती नहीं। विरोधी ज्ञानरूप बाध-

कके विद्यमान हुए ही अनुभवकूं भ्रमरूपता होवै है।जैसे 'नेदं रजतम्' इस विरोधी ज्ञानरूप बाधकके हुए ही शुक्तिविषे 'इदं रजतम्' इस अनुभवकूं भ्रमरूपता होवै है। तैसे यह आकाशका प्रतिबिंब नहीं है या प्रकारका विरोधी ज्ञानरूप बाधक तहां है नहीं। यातैं सो उक्त अनुभव भ्रमरूप नहीं है इस प्रकार रूपरहित आकाश द्रव्यके प्रतिबिंबके सिद्ध हुए ता ब्रह्मका बिंब बिंबभावकरिकै सो जीव ईश्वर विभाग संभवै है इति। और रूपरहित द्रव्यका प्रतिबिंब नहीं होवै है इस अर्थविषे जो तुम्हारा आग्रह होवै तौ हम सिद्धांती ब्रह्मकूं द्रव्य मानते नहीं। काहेतैं नैयायिकोंने गुणके आश्रयकूं तथा समवायकारणकूं ही द्रव्य मान्या है और 'साक्षी चेतः केवलो निर्गुणश्च' यह श्रुति ब्रह्मकूं निर्गुण कहै है। यातैं ता ब्रह्मकूं गुणोंका आश्रयपणा संभवता नहीं और समवायके अनंगीकारतैं ता ब्रह्मकूं समवायिकारणपणा भी संभवै नहीं। यातैं रूपरहित रूपादिक गुणोंकी न्याईं ता ब्रह्मका प्रतिबिंब मानणेविषे कोई भी विरोध नहीं है इति। अथवा अज्ञानविषे ब्रह्मके प्रतिबिंबकूं नहीं अंगीकार करिकै भी या प्रकारतैं सो जीव ईश्वरका विभाग बनि सकै है। तहां ता अज्ञानरूप अविद्याकरिकै विशिष्ट जो चैतन्य है सो तौ जीव कह्या जावै है और ता अविद्याकरिकै उपहित जो चैतन्य है सो ईश्वर कह्या जावै है। यह वार्त्ता पूर्व आचार्योंने भी कही है। तहां श्लोक। 'बिंबत्वं प्रतिबिंबत्वं यथा पूषणि कल्पितम्।जीवत्वमीश्वरत्वं च तथा ब्रह्मणि कल्पितम्' अर्थ-जैसे सूर्यविषे बिंबपणा तथा प्रतिबिंबपणा कल्पित है तैसे ब्रह्मविषे जीवपणा तथा ईश्वरपणा कल्पित है इति। और एक ग्रंथकार तौ नाना अज्ञानोंकूं अंगीकार करिकै या प्रकारतैं ता जीव ईश्वरका विभाग करै हैं। जैसे अनेक वृक्षोंका जो समूह है सो वन कह्या जावै है, तहां सो वन तौ समष्टि कह्या जावै है और प्रत्येक वृक्ष व्यष्टि कह्या जावै है। तैसे तिन नाना

अज्ञानोंका जो समूह है सो तौ समष्टि कह्या जावै है और प्रत्येक अज्ञान व्यष्टि कह्या जावै है। तहां ता समष्टि अज्ञान उपहित चैतन्य तौ ईश्वर कह्या जावै है और ता व्यष्टि अज्ञान उपहित चैतन्य जीव कह्या जावै है ते अज्ञान नाना हैं,यातें ते जीव भी नाना हैं। तहां इस मतवालेका यह अभिप्राय है। श्रुति स्मृति आदिक शास्त्रोंविषे शुक वामदेव आदिकोंका मोक्ष कथन कऱ्या है और अस्मदादिक जीवोंकूं इदानींकालविषे संसारकी प्रतीति होवै है और प्रत्येक पुरुषविषे 'अहं अज्ञः न जानामि' या प्रकारका भिन्न भिन्न अज्ञानविषयक अनुभव ही होवै है और 'इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' इस श्रुतिविषे भी ता मायारूप अज्ञानका नानापना ही कथन कऱ्या है और इस श्रुतिविषे स्थित माया पदके मुख्य अथका परित्याग करिकै मायाकी शक्तियोंविषे वा सत्त्व आदिक गुणोंविषे ता माया पदकी लक्षणा करनेमें कोई भी प्रमाण नहीं है। यातैं ते अज्ञान नाना ही मानणे योग्य हैं और 'अजामेकाम्' इत्यादिक उक्त श्रुति स्मृतियोंविषे जो अज्ञानका एकपणा कथन कऱ्या है सो तौ ता अज्ञान समूहके एकत्वकूं लैके कथन कऱ्या है। यातैं तिन श्रुति स्मृति वचनोंका भी विरोध होवै नहीं। इस प्रकार अज्ञानके नानात्व करिके जीवके नानात्व-सिद्ध हुए। जिस जीवकूं ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति होवै है तिस जीवकूं ही ता आपणे अज्ञानकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवै है। ता ब्रह्म साक्षात्कारतैं रहित पुरुषोंकूं ता आपणे आपणे अज्ञानके वशतैं संसार-रूप बंध ही रहै है। इस प्रकारतैं बंध मोक्ष व्यवस्था भी इस नाना जीव पक्षविषे भली प्रकारतैं संभवै है। ता एक अज्ञान एक जीव-पक्षविषे सो बंध मोक्षकी व्यवस्था संभवती नहीं। शंका—अज्ञानके भेद करिकै जो जीवोंका भेद अंगीकार करौगे तौ जीव जीवके प्रति प्रपंचका भी भेद ही होवैगा, जो कदाचित् इस अर्थविषे तुम

इष्टापत्ति करौगे तौ जो घट तुमनैं अनुभव कऱ्या है सोई ही घट हमनैं भी अनुभव कऱ्या है या प्रकारकी घटादिक प्रपंचके एकताकूं विषय करणेहारी प्रत्यभिज्ञाका विरोध प्राप्त होवेगा । जिस कारणतैं अन्यके अज्ञान कल्पित प्रपंचका अन्यकूं प्रत्यक्ष संभवता नहीं और बाधकके अभाव हुए ता प्रत्यभिज्ञाकूं भ्रमरूपता भी संभवती नहीं और एक ही परमेश्वर सर्व जगत्के उत्पत्ति स्थिति लयका कारण है इस सर्व शास्त्रके सिद्धांतका भी विरोध होवैंगा । किंवा इस उक्त दोषके निवृत्त करणेवासते जो ऐसा मानोगे कि समष्टि अज्ञान उपहित चैतन्य रूप ईश्वर करिकै रच्या हुआ यह प्रपंच सर्व जीवोंके प्रति साधारण है तो अनिर्मोक्ष होवैंगा, अर्थात् किसी भी जीवका मोक्ष नहीं होवैंगा । सो दिखावे हैं—तहां निर्गुण ब्रह्मभावकी प्राप्तिका नाम मोक्ष है और नाना अज्ञान पक्षविषे एक जीवके तत्त्वज्ञान करिकै एक अज्ञानके निवृत्त हुए भी तिन सर्व अज्ञानोंकी निवृत्ति होवैगी नहीं और तिन अज्ञानोंके विद्यमान हुए ईश्वरका तथा जगत्का भी बाध होवैगा नहीं । ता अज्ञान ईश्वर जगत्के विद्यमान हुए ता ब्रह्मविषे निर्गुणपणा ही संभवता नहीं यातैं सो निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्ष किसी भी जीवकूं नहीं होवैगा । किंवा सिद्धांतीविषे अद्वितीय ब्रह्मके ज्ञानतैं ही मोक्ष मान्या है । सो अद्वितीय ब्रह्मका ज्ञान ता नाना जीवपक्षविषे संभवता नहीं । जिस कारणतैं ता ज्ञानकालविषे भी ता मुक्त पुरुषतैं भिन्न दूसरे जीव तथा ईश्वर तथा अज्ञान तथा जगत् विद्यमान ही हैं तिनों करिकै सो ब्रह्म सद्वितीय ही है । या कारणतैं भी किसी जीवका मोक्ष नहीं होवैगा किंवा श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रकी प्रमाणतातैं जो कदाचित् जिसी किसीप्रकार करिकै ज्ञानतैं मोक्षकी प्राप्तिका उपपादन भी करौगे तौ भी सगुण ब्रह्मकी प्राप्ति ही मोक्षरूप सिद्ध होवैगी। निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्तिकूं मोक्षरूपता सिद्ध नहीं होवैगी

सो अत्यंत अनिष्ट है। काहेतें 'अनंतरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रधान-घन एव। अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्। यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्त-त्केन कं पश्येत्' इत्यादिक श्रुतियोंविषे निर्गुणब्रह्मकूं ही मोक्षरूप कह्या है, तिन सर्व श्रुतियोंका विरोध होवैगा। यातें नाना अज्ञा-नोंकूं अंगीकार करिके नाना जीव मानणे अयुक्त हैं। समाधान—अज्ञा नके भेद करिके जीवोंका भेद अवश्य मान्या चाहिये। अन्यथा बंधमोक्षशास्त्रकी अप्रमाणता ही होवैगी और इस नाना जीवपक्षविषे पूर्व कथन कऱ्या जो प्रत्येक जीवके प्रति सो प्रपंचका भेद सो हमा-रेकूं अंगीकार होवै है। अर्थात् जीव जीवके प्रति सो प्रपंच भिन्न भिन्नही है और प्रपंचके नानापणेविषे जो पूर्व प्रत्यभिज्ञाका विरोध कह्या था सो भी संभवता नहीं। जिस कारणतें सो प्रत्यभिज्ञा भ्रमरूप ही है सो दिखावैं हैं। जहां एक ही शुक्तिविषे दश पुरुषोंकूं रजतका भ्रम होवै है तहां एक एक पुरुषके अज्ञानकरिकै कल्पित सो रजत भिन्न भिन्न ही होवै है एक रजत होवै नहीं। जो कदाचित् तिन दश पुरुषोंके भ्रमका एक ही रजत विषय होवै तौ एक पुरुषकूं ता शुक्तिरूप अधिष्ठानका ज्ञानकरिके ता रजत भ्रमके निवृत्त हुए ता अधिष्ठान ज्ञानतें रहित दूसरे पुरुषोंकूं सो रजत नहीं प्रतीत होणा चाहिये और तहां दूसरे पुरुषोंकूं सो रजत प्रतीत होवै है यातेंसो रजत एक नहीं है किंतु तिन दश पुरुषोंके प्रत्येक अज्ञान करिके कल्पित दश रजत यहां उत्पन्न होवै हैं और एक पुरुषके अज्ञानकरिके कल्पित रजतका अन्य पुरुषकूं प्रत्यक्ष होता नहीं तथापि तिन दश पुरुषोंकूं किसी प्रसंग पाइके जो रजत तुमनैं अनुभव कऱ्या था सोई ही रजत हमनैं भी अनुभव कऱ्या था या प्रकारकी भ्रमरूप प्रत्यभिज्ञा जैसे उत्पन्न होवै है तैसे प्रसंगविषे भी प्रत्येक जीवके अज्ञानकल्पित प्रपंचके भेद हुए भी तथा अन्यके अज्ञानकल्पित प्रपंचका अन्यकूं अप्रत्यक्ष हुए भी जो

घट तुमनै अनुभव कऱ्या है सोई ही घट हमनैं भी अनुभव कऱ्या है या प्रकारकी भ्रमरूप प्रत्यभिज्ञा संभवै है। यातैं जीव जीव प्रति प्रपंचके भेद मानणविषे ता प्रत्यभिज्ञाका विरोध होवै नहीं। अथवा तिन जीवोंके नाना हुए भी समष्टि अज्ञान उपहित चैतन्यरूप ईश्वर करिकै रचित यह प्रपंच तिन सर्व जीवोंके प्रति एक ही साधारण है। यातैं ता पूर्वउक्त प्रत्यभिज्ञानका भी विरोध होवै नहीं तथा एक ही परमेश्वर सर्व जगत्के उत्पत्ति स्थिति लयका कारण है, इस सर्वशास्त्रके सिद्धांतका भी विरोध होवै नहीं। तथा जीव जीव प्रति प्रपंचके भेद माननेमें जो कल्पना गौरवरूप दोष प्राप्त होता था सो भी अभी प्राप्त होवै नहीं और श्रुतिआचार्यके प्रसादतैं उत्पन्न भया जो ' अहं ब्रह्मास्मि ' या प्रकारका ब्रह्मज्ञान है ता ब्रह्मज्ञानकरिकै इस अधिकारी पुरुषकूं आपणे आपणे अज्ञानके निवृत्त हुए तिस अज्ञानके कार्यभूत लिंगशरीरादिकोंकी निवृत्तितैं निर्गुण ब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्ष भी संभवै है। शंका—ता नाना जीवपक्षविषे ता मुक्त पुरुषतैं भिन्न दूसरे जीव तथा ईश्वर तथा जगत् विद्यमान ही है यातैं मैं मुक्त हूं यह अन्य जीव बद्ध हैं यह अन्य प्रपंच है, यह अन्य ईश्वर है या प्रकारकी भेददृष्टि ता मुक्त पुरुषकूं अवश्य करिकै होवैगी । ता भेददृष्टिके विद्यमान हुए अद्वितीय ब्रह्मका साक्षात्कार ही नहीं होवैगा ता साक्षात्कारके अभाव हुए निर्गुण ब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्ष ही संभवता नहीं। समाधान—' इदं सर्वं यदयमात्मा वाचारंभणं विकारो नामधेयं मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः ' इत्यादिक श्रुतियोंके विचार करिकै ता अधिकारी पुरुषनैं अज्ञानादिक सर्व जड प्रपंचका ब्रह्मविषे कल्पितपणा निश्चय करिकै मिथ्यापणा ही निश्चय कऱ्या है और मिथ्या वस्तु द्वैतभावकूं करता नहीं यातैं ता अधिकारी पुरुषकूं अद्वितीय ब्रह्मका साक्षात्कार संभवै है।

ता साक्षात्कारकरिकै तिस विद्वान् पुरुषकूं ब्रह्मभावकी प्राप्ति-रूप मोक्ष संभवै है। शंका-इस नाना जीवपक्षविषे आत्मज्ञानकरिकै आपणे अज्ञानकी निवृत्ति हुए भी अन्य जीवोंके अज्ञानके विद्य-मान हुए ब्रह्मविषे ईश्वरपणेकी निवृत्ति नहीं होवैगी। यातैं इस पुरुषकूं ज्ञानकरिकै सगुण ब्रह्मभावकी ही प्राप्ति होवैगी। समा-धान-लोकविषे भी अन्य वस्तुके ज्ञानतैं अन्य वस्तुकी प्राप्ति होती नहीं। जैसे शुक्तिके ज्ञानतैं इस पुरुषकूं रजतकी प्राप्ति होती नहीं किंतु ता शुक्तिकी ही प्राप्ति होवै है तैसे गुरु शास्त्रके उपदेशतैं इस अधिकारी पुरुषकूं निर्गुण ब्रह्मका ही ज्ञान भया है: सगुण ब्रह्मका ज्ञान भया नहीं। यातैं ता निर्गुण ब्रह्मके ज्ञानतैं इस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं ता निर्गुण ब्रह्मकी ही प्राप्ति होवै है मायामय सगुण ब्रह्मकी प्राप्ति होवै नहीं। जैसे शुक्तिविषे अन्य पुरुषकूं रजत भ्रांतिकालविषे भी दूसरा विशेष-दर्शी पुरुष ता शुक्तिके ज्ञानतैं ता शुक्तिकूं ही प्राप्त होवै है ता रजतकूं प्राप्त होवै नहीं। जिस कारणतैं ता शुक्तिविषे सो रजत वास्तवतै है नहीं और अन्य पुरुषके अज्ञानकल्पित रजतकूं अन्य पुरुषके प्रत्यक्ष ज्ञानकी विषयता होती नहीं तैसे अन्य अज्ञानी पुरुषोंको आपणे आपणे अज्ञानके वशतैं ता ब्रह्मविषे जीव ईश्वर जगत्‌रूप भ्रांतिको विद्यमान कालविषे भी श्रुति आचार्यके प्रसादतैं दूसरा विशेषदर्शी पुरुष मैं ब्रह्म हूं इस प्रकारके अद्वितीय ब्रह्मके साक्षा-त्कारतैं ता आनंद एकरस अद्वितीय निर्विशेष ब्रह्मकूं ही प्राप्त होवै है ता सगुण ईश्वरकूं प्राप्त होवै नहीं। जिस कारणतैं सो सगुण ईश्वर मायामय होणेतैं ता निर्गुण ब्रह्मतैं भिन्न नहीं है और भ्रांति-करिकै देख्या हुआ पदार्थ वास्तवतैं होता नहीं। जैसे भ्रांतिकरिकै देख्या हुआ शुक्तिविषे रजत ता शुक्तिविषे वास्तवतैं होता नहीं तैसे ता अद्वितीय निर्गुण ब्रह्मविषे भ्रांतिकरिकै कल्पित सो जीव

ईश्वर जगत्भाव भी वास्तवतैं ता ब्रह्मविषे है नहीं। यातैं इस नाना जीवपक्षविषे सर्व जीवोंके प्रति साधारण प्रपंचके वा असाधारण प्रपंचके अंगीकार किये हुए भी सो निर्गुण ब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्ष बनि सकै है इति। और कैएक ग्रंथकार तौ या प्रकारतैं ता जीव ईश्वरका विभाग वर्णन करे हैं । पूर्व कथन कऱ्या जो सर्व जगत्का कारणभूत अज्ञान है ता अज्ञान उपहित जो चैतन्य है अर्थात् ता अज्ञानविषे प्रतिबिंबित जो चैतन्य है सो तौ ईश्वर कह्या जावै है और ता अज्ञानके कार्यभूत जो अंतःकरण है ता अंतःकरण उपहित चैतन्य जीव कह्या जावै है अर्थात् ता अंतःकरणविषे प्रतिबिंबित चैतन्य जीव कह्या जावै है। तहां श्रुति । 'कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः' अथ—अंतःकरणरूप कार्य उपाधिवाला चैतन्य जीव कह्या जावै है और अज्ञानरूप कारण उपाधिवाला चैतन्य ईश्वर कह्या जावै इति। किंवा 'स्वमपीतोभवति' इस श्रुतिने सुषुप्तिविषे जीवका ब्रह्मविषे औपाधिक लय कथन कऱ्या है अर्थात् उपाधिके लय प्रयुक्त लय कथन कऱ्या है। तहां ता जीवका जो अंतःकरण उपाधि मानिये तौ ता अंतःकरणरूप उपाधिके लय-करिकै ता जीवका औपाधिक लय संभवै है और ता जीवका जो अविद्या उपाधि मानिये तौ ता अविद्याका सुषुप्तिविषे लय होता नहीं। यातैं सुषुप्तिविषे जीवके औपाधिक लयकूं कथन करणेहारा सो सो श्रुतिवचन असंगत होवैगा। यातैं ता श्रुतिवचनतैं भी अंतःकरण ही जीवका उपाधि सिद्ध होवै है। इस पक्षविषे भी अंतःकरणरूप उपाधियोंके नानापणेकरिकै तथा परिच्छिन्नपणे-करिकै ते जीव भी नाना हैं तथा परिच्छिन्न हैं इति । तहां जीव ईश्वरके स्वरूप निर्णयविषे पूर्व कथन कऱ्ये जे पंचपक्ष तिनोंविषे माया उपहित चैतन्य जगत्का कारण ईश्वर है यह अर्थ तिन सर्व ग्रंथकारोंकूं संमत है, अर्थात् अज्ञानके एकत्व नानात्वकरिकै

अथवा अन्तःकरणोंके नानात्वकरिकै जीवके एकत्व नानात्वविषे ग्रंथकारोंके विवाद हुए भी माया उपहित चैतन्य ईश्वर है इस अर्थविषे कोई भी ग्रंथकारका विवाद नहीं है। शंका-ईश्वरविषे विवादके अभाव हुए भी जीवके एकत्व नानात्वविषे ग्रंथकारोंका परस्पर विवाद देखणेविषे आवै है तिन पक्षोंविषे कौन पक्ष ग्रहण करणे योग्य है और कौन पक्ष परित्याग करणे योग्य है। समाधान-सर्व व्यवहारोंकूं मायामय होणेतैं सर्व पक्ष ग्रहण करणे योग्य हैं, तथा ते सर्व पक्ष परित्याग करण योग्य हैं शंका-जभी ते सर्व पक्ष परित्याग करणे योग्य हैं तभी तिन सर्व पक्षोंका त्याग करणा ही उचित है, कोई भी पक्ष ग्रहण करने योग्य नहीं। समाधान-अध्यारोप अपवाद इन दोनों करिकै ही अद्वितीय ब्रह्मका ज्ञान होवै है ता अध्यारोप अपवाद-तैं विना ता ब्रह्मका ज्ञान होता नहीं। तहां वास्तवतैं द्वैत प्रपंचतैं रहित ब्रह्मविषे जो द्वैत प्रपंचका आरोप है ताका नाम अध्यारोप है और ता आरोपित प्रपंचका जो 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादिक श्रुति करिक निषेध है ताका नाम अपवाद है, ता अध्यारोप अपवादकी सिद्धिवासतैं ते सर्व पक्ष ग्रहण करने योग्य ही हैं परन्तु ताके विषे भी इतनी विशेषता है। पूर्व उक्त जीवके एकत्व पक्षविषे वा नानात्व पक्षविषे जो पक्ष जिस मुमुक्षुके मनकूं भावता होवै है तिस पक्षकू सो मुमुक्षु अंगीकार करिकै प्रत्यक् आत्माका विवेचन करिकै अर्थात् अन्नमयादिक पंचकोशोंतैं आत्माकूं भिन्न करिकै तिस प्रत्यक् आत्माके ब्रह्मरूपताकूं साक्षात्कार करै। अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारके साक्षात्कारकूं सम्पादन करै। ता ब्रह्मसाक्षात्कारकूं न संपादन करिकै ता जीवके एकत्वविषे तथा नानात्वविषे केवल विवाद मात्रकूं ही नहीं करै। जिस कारणतैं सर्व मतोंविषे दूषण तथा भूषण तुल्य ही होवै हैं। तात्पर्य यह-इस मुमुक्षुजनकूं सो प्रत्यक् आत्माका

बोध जिस प्रकार करिके होवै सोई ही प्रकार इस मुमुक्षुजनकूं संपादन करने योग्य है, सोई ही शास्त्रका अर्थ है। यह वार्त्ता श्रीवार्तिकाचार्यने भी कही है। तहां श्लोक–'यथा यथा भवेत्पुंसां व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि । सा चैव प्रक्रियेह स्यात्साध्वी सा चावनस्थिता' अर्थ--इन अधिकारी पुरुषोंकूं जिस जिस प्रक्रिया करिकै प्रत्यक् आत्मविषयक बोध होवै सा सा प्रक्रिया ही इस वेदांतशास्त्रविषे निर्दोष तथा गुणभूत जाननी इति। शंका–पूर्व माया उपहित तत्पदार्थ ईश्वरकूं जगत्के जन्मादिकोंका कारणपणा कह्या, सो कारणपणा भी उपादानतारूपकरिकै तथा कर्तृत्वरूपकरिकै दो प्रकारका होवै है तहां ता ईश्वरकूं किस रूप करिकै उपादानपणा है तथा किस रूप करिकै कर्त्तापणा है ऐसी शंकाके प्राप्त हुए अब सो दोनों प्रकारका कारणपणा यथाक्रमतैं निरूपण करे हैं । तहां सो ईश्वर ज्ञानशक्तिवाले अज्ञान उपहित स्वरूपकरिकै तौ जगत्का कर्त्ता होवै है। इहां यह तात्पर्य है–ता ज्ञान शक्तिवाले अज्ञानरूप उपाधितैं विना शुद्ध ब्रह्मकूं असंगपणेकरिकै कर्त्तापणा संभवता नहीं । काहेतैं कार्यका जो उपादान कारण है ता उपादान कारणविषयक जो अपरोक्ष ज्ञान है तथा इच्छारूप चिकीर्षा है तथा प्रयत्नरूप कृति है. ता ज्ञान चिकीर्षा कृति तीनोंवाला जो होवै है सो कर्त्ता कह्या जावै है, यह कर्त्ताका लक्षण पूर्व कथन करि आये हैं सो इस प्रकारका कर्त्तापणा शुद्ध ब्रह्मविषे संभवता नहीं । जिस कारणतैं 'असंगो ह्ययं पुरुषः । असंगो नहि सज्जते' इत्यादिक श्रुतियोंकरिकै ता ब्रह्मका असंगपणा ही जान्या जावै है । ऐसे असंग ब्रह्मविषे ते ज्ञान इच्छा कृति संभवते नहीं और ता अज्ञान उपहित ईश्वरविषे तौ ते ज्ञान इच्छा प्रयत्न संभवै हैं। यातैं ता उक्त ईश्वरकूं ही सो

जगत्का कर्त्तापणा सिद्ध होवै है और सोई ही ईश्वर विक्षेपादि शक्तिवाले अज्ञान उपहितरूपकरिकै जगत्का उपादान कारण होवै है। तहां अज्ञानकी ज्ञानशक्ति विक्षेपशक्ति आवरणशक्ति इन तीनोंका स्वरूप पूर्व निरूपण करि आये हैं। सोई इहां भी जानि लेणा। इस प्रकार एक ही ब्रह्मकूं जगत्का उपादानपणा तथा कर्तापणा संभवै है। तहां दृष्टांत—जैसे ऊर्णनाभिनामा जंतुविशेष तंतुकूं उत्पन्न करे है। ता तंतुरूप कार्यके प्रति सो ऊर्णनाभि आपणे शरीरकी अपेक्षा करिकै तो उपादान कारण होवै है और आपणे चेतनता रूप करिकै कर्त्तारूप निमित्त कारण होवै है। तैसे पूर्व उक्त रीतिसें सो एक ही ब्रह्म जगत्का उपादान कारण तथा कर्त्ता-रूप निमित्तकारण होवै है। शंका—ता एक ही ब्रह्मकूं जगत्का उपा-दानपणा तथा निमित्तपणा है इस अर्थविषे कौन प्रमाण है? समा-धान—ब्रह्मविषे सो अभिन्ननिमित्तोपादानपणा साक्षात् श्रुति प्रमाण करिकै ही सिद्ध है। तहां श्रुति। 'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णाति च। यथा पृथिव्यामोषधयः संभवंति यथा सतःपुरुषात्केशलोमानि तथा-क्षरात्संभवतीह विश्वं यथाऽग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्युच्चरंति एवमेवा-स्मादात्मनः सर्वे प्राणाः। यः सर्वज्ञः स विश्वकृत्स हि सर्वस्यकर्त्ता' अ-र्थ—जैसे ऊर्णनाभिजंतु आपणेतैं तंतुओंकूं उत्पन्न करे है तथा आपणे-विषे ही तिन तंतुवोंकूं लय करे है तैसे सो ब्रह्म भी आपणेतैं ही इस जगत्कूं उत्पन्न करे है तथा आपणेविषे ही लय करे है और जसे पृथिवीतैं नाना प्रकारके औषध उत्पन्न होवै हैं और जैसे इस पुरुषतैं केश लोम उत्पन्न होवै हैं तैसे अक्षर ब्रह्मतैं यह विश्व उत्पन्न होवै है और जैसे प्रज्वलित अग्नितैं क्षुद्र विस्फुलिंग उत्पन्न होवै हैं तैसे इस आत्मातैं सर्व प्राण उत्पन्न होवै हैं और जो परमेश्वर सर्वज्ञ है सो पर-मेश्वर ही विश्वकूं करणेहारा है और सो परमेश्वर ही सर्वका कर्त्ता है इति। इत्यादिक अनेक श्रुतियां ता ब्रह्मकूं जगत्का अभिन्न निमित्त उपादान कारण कहे हैं तथा 'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते'

इत्यादिक स्मृति भी तिस उक्त अर्थकूं कथन करे हैं। यातैं ता एकही ब्रह्मकूं जगत्का उपादानपणा तथा कर्तापणा संभवै है। किंवा इस उक्त ईश्वरकूं जो सर्वज्ञ नहीं मानिये तो ता ईश्वरकूं सर्व जगत्का कर्तापणा ही नहीं संभवैगा और ते उक्त श्रुतियां ता ईश्वरकूं सर्व जगत्का कर्ता कहे हैं यातैं ता ईश्वरकूं सर्वज्ञ अवश्य मान्या चाहिये। सो ईश्वरका सर्वज्ञपणा श्रुति प्रमाण करिकै भी सिद्ध है। तहां श्रुति- 'यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्य ज्ञानमयं तपः' अर्थ—जो ईश्वर सर्वज्ञ है अर्थात् सामान्यरूपतैं सर्व जगत्कूं जाननेहारा है तथा जो ईश्वर सर्ववित् है अर्थात् विशेषरूपतैं सर्व जगत्कूं जाननेहारा है और जिस ईश्वरका सर्व जगत विषयक ज्ञानमय ही तप है इति। ऐसे सर्वज्ञ ईश्वरकूं सर्व जगत्का कर्त्तापणा संभवै है। शंका—पुराणादिकोंविषे तौ ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनोंतैं ही जगत्की उत्पत्ति स्थिति लय कथन कर्‍या है और तुमने इहां माया उपहित परमेश्वरतैं ही जगत्की उत्पत्ति स्थिति लय कथन कर्‍या है यातैं तिन पुराणा- दिकोंके वचनोंका विरोध प्राप्त होवैगा। समाधान--यह उक्त माया उपहित परमेश्वर ही ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनों रूपोंकूं प्राप्त होवै है सो प्रकार दिखावै हैं। पूर्व उक्त मायाविषे रह्या हुआ जो निरतिशय सत्त्व गुण है सो सत्त्वगुण ता परमेश्वरकी इच्छा करिकै लोकोंके अनुग्रह वासतैं ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीन मूर्ति आकार करिकै परिणामकूं प्राप्त होवै हैं। तहां दंड कमंडलुकूं धारण करणे- हारी चतुर्मुख मूर्तिकरिकै उपहित हुआ सो परमेश्वर जगत्का स्रष्टा ब्रह्मा होवै है और शंख चक्र गदा पद्म यह चारों हैं हस्तविषे जिसके ऐसी चतुर्भुज मूर्तिकरिकै उपहित हुआ सो परमेश्वर जगत्के पालन करणेहारा विष्णु होवै है और तीन हैं नेत्र जिसके तथा त्रिशूल है हस्तविषे जिसके ऐसी मूर्तिकरिकै उपहित हुआ सो परमेश्वर जगत्का संहारकर्त्ता महेश्वर होवै है। इस प्रकार सो एक परमेश्वरही ब्रह्मा विष्णु महेशरूप होवै है। तहां श्रुति। 'स ब्रह्मा स

शिवः सेंद्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् स एव विष्णुः।' अर्थ--सो माया उपहित परमेश्वर ही ब्रह्मारूप है तथा शिवरूप है तथा इंद्ररूप तथा विष्णुरूप है इति। किंवा यह उक्त अर्थ पूर्व विद्वान् आचार्योंने भी कथन कर्या है। तहां श्लोक-'एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधासौ सामान्यमेषां प्रथमाऽवरत्वम्। हरेर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद्वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ' अर्थ--सो एक ही परमेश्वर मूर्ति ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीन प्रकारके भेदकूं प्राप्त होवै है और इन तीनोंका प्रथमपणा तथा पश्चात्पणा भी समान ही होवै है तहां कोई कालविषे तौ विष्णुका महेश आदि होवै है और कोई कालविषे ता महेशका विष्णु आदि होवै है और कोई कालविषे ता विष्णु महेश दोनोंका ब्रह्मा आदि होवै है और कोई कालविषे ते दोनों ब्राह्माका आदि होवें हैं इति। तहां ब्रह्मा विष्णु शिव यह तीनों देव अधिकारी जनोंके आपणी आपणी भक्तिके अनुसार उपासना करणे योग्य हैं और केएक ग्रंथकार तौ ऐसे कहे हैं। जगत्का स्रष्टा हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मा ईश्वर नहीं है, किंतु जीव विशेष है तथा अंतर्यामी परमेश्वर करिकै आविष्ट है, तथा समष्टि लिंग शरीरका अभिमानी है, तथा सत्यलोकविषे निवास करणेहारा है। ऐसे हिरण्य-गर्भकी जीवरूपतास 'वै शरीरी प्रथमः' इत्यादिक श्रुति प्रमाण करिकै ही सिद्ध है। और शिव विष्णु यह दो मूर्ति तौ ता मायाके शुद्ध सत्त्वगुणका परिणाम होणेतैं ईश्वररूप हैं यह वार्त्ता महाभारतविषे भी कही है। तहां श्लोक-रुद्रो नारायणश्चैवत्येकं सत्त्वं द्विधाकृतम्। लोके चरति कौंतेय व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु' अर्थ-हे कौंतेय। ता परमेश्वरनै आपणी मायाका एक ही शुद्ध सत्त्वगुण रुद्र नारायण इस रूप करिकै दो प्रकारका कर्या है इति। तिन दोनोंविषे भी विष्णुकी भक्ति तौ मोक्षके प्रति अंतरंग साधन है और शिवादिकोंकी भक्ति तौ

किंचित् व्यवधान करिके मोक्षका साधन है। जिस कारणतें सत्त्व गुणका प्रवर्त्तकपणा विष्णुकूं ही है, यह वार्ता पुराण विषे भी कही है। तहां श्लोक-'आरोग्यं भास्करादिच्छेच्छ्रियमिच्छेद्धुताशनात्। ज्ञानं महेश्वरादिच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्' अर्थ-यह पुरुष सूर्यदेवतातें तो आरोग्यताकूं माँगे, अर्थात् आरोग्यताकी प्राप्तिवासतें सूर्य देवताकी उपासना करे। इस प्रकारका अर्थ आगे भी जानिलेणा। और अग्निदेवतातें संपदाकूं माँग और विष्णुतें मोक्षकूं माँगे इति। इहां कैएक शैवमतवाले तो यह कहे हैं चंद्रमा है शिरका भूषण जिसका तथा नीलकंठ त्रिनयन उमासहित ऐसी शुद्ध सत्त्व मूर्ति है ता मूर्त्तिकरिकें उपहित हुआ सो माया उपहित परमेश्वर परम शिव होवे है। सो परम शिव ही मुमुक्षु जनोंके उपासना करणे योग्य है। तहां श्रुति-' उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकंठं प्रशांतम्। ध्यात्वा मुनिर्गच्छतिभूतयोनिं समस्तसाक्षि तमसः परस्तात्' अथ-जो परम शिव उमासहित है तथा परम ईश्वर है तथा समर्थ है तथा तीन लोचनवाला है तथा नीलकंठ है तथा अति शांत स्वभाव है, ऐसे परम शिवका ध्यान करिकें यह मुमुक्षु जन परब्रह्मकूं प्राप्त होवै है। जो परब्रह्म मायाके संबंधतें सर्व भूतोंका कारण है तथा सर्वका साक्षी है और वास्तवतें ता अज्ञानरूप तमतें परे है इति। तिस परमशिवकी ही ब्रह्मा विष्णु महेश यह तीनों विभूति हैं। तहां 'स ब्रह्मा स शिवः सेंद्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्' इत्यादिक श्रुति ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनोंकूं ता परम शिवकी ही विभूतिरूपता कथन करे हैं। तथा पुराणविषे भी यह वार्त्ता कही है। तहां श्लोक 'यस्याज्ञया जगत्स्रष्टा विरंचिः पालको हरिः। संहर्त्ता कालरुद्राख्यो नमस्तस्मै पिनाकिने' अर्थ-जिस परम शिवकी आज्ञा करिकें ब्रह्मा जगतकूं उत्पन्न करे है और विष्णु पालन करे है और कालरुद्र संहार करे है तिस परम शिवके ताईं हमारा नमस्कार है इति। और कैएक वैष्ण-

वमतवाले तौ यह कहे हैं।शंख चक्र गदा पद्म यह चारि हैं चारों हस्तोंविषे जिसके तथा लक्ष्मीसहित विराजमान ऐसी जा निरतिशय सत्त्व मूर्ति है ता मूर्तिकरिकै उपहित हुआ सो माया उपहित परमात्मा ही परम वासुदेव होवै है। सो परम वासुदेव ही मुमुक्षु जनोंनैं उपासना करणे योग्य है और ब्रह्मा विष्णु शिव यह तीनों ता परम वासुदेवकी ही विभूति हैं और 'स ब्रह्मा स शिवः सेंद्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्' इत्यादिक श्रुति भी तिन ब्रह्मादिक तीनोंकूं ता परम वासुदेवकी ही विभूतिरूपता कथन करे है और'तमेव विद्वानमृत इह भवति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय' इत्यादिक श्रुति तथा 'मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्' इत्यादिक पुराणके वचन ता परम वासुदेवके ध्यानतें ही मोक्षकी प्राप्ति कथन करै हैं। यातैं मुमुक्षु जनने सो परम वासुदेव ही ध्यान करणे योग्य है इति। और हिरण्यगर्भ तौ यह कहे हैं। हिरण्यगर्भ ही माया उपहित परमेश्वर है तिस हिरण्यगर्भकी परमेश्वरताविषे बहुत श्रुति स्मृति प्रमाण विद्यमान हैं यातैं सो हिरण्यगर्भ ही मुमुक्षु जनोंने उपासना करणे योग्य है इति। तहां पूर्व शैवोंने तथा वैष्णवोंने ब्रह्मा, विष्णु महेश इन तीन मूर्तियोंतें भिन्न एक परमशिव तथा परम वासुदेव कल्पना कर्या है। परंतु तिसविषे कोई प्रमाण देखनेविषे आवता नहीं और तिनोंने ता अर्थकी सिद्धिविषे जे 'स ब्रह्मा शिवः सेंद्रः' इत्यादिक श्रुति वचन प्रमाण कहे हैं ते श्रुति वचन तौ ता माया उपहित परमेश्वरकू ही कथन करे हैं। यातैं तिन वचनोंकूं तीन मूर्तितें भिन्न ता परमविषे तथा परम वासुदेवविषे प्रमाणरूपता संभवती नहीं। यातैं सो माया उपहित परमेश्वर ही ब्रह्मा,विष्णु,महेश्वर इन तीन रूपोंकूं प्राप्त होवै है। या कारणतैं ते तीनों रूप समान हैं। यह पूर्व माया उक्त मत ही मुमुक्षु जनोंकूं आश्रयण करने योग्य है

इति । तहां पूर्व माया उपहित तत्पदार्थरूप ब्रह्मका जगत्के उत्पत्ति स्थिति लयका कारणत्वरूप तटस्थ लक्षण कथन करया था । अब तिसी लक्षणके स्पष्ट करणेवासतै तिस माया उपहित परमेश्वरतैं आकाशादिक जगत्के उत्पत्तिक्रमकूं कथन करे हैं । तहां उत्पन्न होणे योग्य प्राणियोंके पुण्य पाप कर्मकरिकै सहकृत जो पूर्व उक्त विक्षेपादि शक्ति प्रधान माया उपहित ईश्वर है सो ईश्वर प्रथम अभी यह जगत् उत्पन्न करणे योग्य है या प्रकारका संकल्प करता भया । ता संकल्पविशिष्ट ईश्वरतैं प्रथम आकाश उत्पन्न होता भया, ता आकाशतैं वायु उपन्न होता भया, ता वायुतैं अग्नि उत्पन्न होता भया, ता अग्नितैं जल उत्पन्न होता भया, ता जलतैं पृथिवी उत्पन्न होती भई। तहां श्रुति 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूत आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी। अर्थ–तिसमाया उपहित ब्रह्मतैं आकाश उत्पन्न होता भया,ता आकाशतैं वायु,ता वायुतैं अग्नि,ता अग्नितैं जल,तिन जलोंतैं पृथिवी उत्पन्न होती भई इति । शंका–अचेतन तथा कल्पित ऐसे आकाशादिक भूतोंकूं वायु आदिक भूतोंका उपादानका कारणपणा कैसे संभवैगा। समाधान –इहां आकाशादिकाकू वायु आदिकोंका उपादानपणा विवक्षित नहीं है किंतु आकाशादि उपहित चैतन्यकूं ही वायु आदिकोंका उपादानपना विवक्षित है अर्थात् आकाश उपहित चैतन्यतैं वायु उत्पन्न होता भया, ता वायु उपहित चैतन्यतैं अग्नि उत्पन्न होता भया ता अग्नि उपहित चैतन्य तैं जल उत्पन्न होता भया । ता जल उपहित चैतन्यतैं पृथिवी उत्पन्न होती भई। इस प्रकार तिस उपाधिवाले चैतन्यकूं ही सर्वत्र कारणता है। जो कदाचित् कल्पित अचेतनकूं ही कारणता मानिये तौ चेतन ब्रह्मकूं सर्व जगत्का कारण कहनेहारी श्रुतिका विरोध प्राप्त

होवैगा । तात्पर्य यह कि जैसे मायाकूं कारण ब्रह्मका उपाधिरूपता करिके आकाशादिक प्रपंचका कारणपना है तैसे आकाशादिकोंकूं भी ता कारण ब्रह्मका उपाधिरूपता करिके ही वायु आदिकोंका कारणपणा है स्वतंत्र नहीं इति। इहां वैशेषिक शास्त्रवाले तौ ऐसा कहैहैं—द्रव्य १, गुण २, कर्म ३, सामान्य ४, विशेष ५, समवाय ६, अभाव ७, यह सप्त ही पदार्थ होवैं हैं। तहां गुणादिक पदार्थ द्रव्यके ही परतंत्र होवैं हैं और सर्व भावकार्य समवायि कारण, असमवायि कारण, निमित्त कारण, इन तीन कारणोंकरिके जन्य होवैं है, तहां जन्यद्रव्य, जन्यगुण, कर्म यह तीनों भाव कार्य कहे जावै हैं। तहां समवायिकारणता तौ एक द्रव्य पदार्थविषे ही होवै है। गुण कर्मादिकोंविषे होवै नहीं और असमवायिकारणता गुण कर्म इन दो पदार्थोंविषे ही होवै है अन्य पदार्थोंविषे होवै नहीं और निमित्तकारणता तौ द्रव्यादिक सर्वपदार्थों विषे होवैं है। तहां पृथिवी १ जल २ तेज ३ वायु ४ आकाश ५ काल ६ दिक् ७ आत्मा ८ मन ९ यह नव द्रव्य कहे जावै हैं। तहां पृथिवी आदिक चार द्रव्योंके परमाणु तथा आकाशादिक पञ्च द्रव्य यह सर्व नित्यद्रव्य कहे जावै हैं तथा निरवयव कहे जावैहै और तिन परमाणुवोंतैं उत्पन्न भये जे द्व्यणुकतैं आदि लैके ब्रह्मांड पर्यंत सब कार्य द्रव्यते अनित्य द्रव्य कहे जावैहैं तथा अवयवी कहे जावैहैं तहां सृष्टिके आदिकालविषे परमेश्वरकी इच्छा करिके तिन परमाणुवोंविषे क्रिया उत्पन्न होव है। तिसतैं अनंतर दो दो परमाणुवोंका संयोग होवै है। तिन संयुक्त दो परमाणुवोंतैं प्रथम द्व्यणुकरूप कार्य उत्पन्न होवै है। ता द्व्यणु कार्यका ते दो परमाणु तौ समवायि कारण होवैं हैं और तिन दो परमाणुवोंका संयोग असमवायिकारण होवै है और ईश्वर इच्छादिक निमित्त कारण होवै है इस प्रकार आगे त्र्यणुकादि कार्योंके

भी समवायि कारणादिक जानि लेणा। इस प्रकार ता द्व्यणुकरूप कार्यकी उत्पत्तितैं अनंतर पुनः क्रिया करिके संयुक्त तीन द्व्यणुकोंत त्र्यणुकरूप कार्य उत्पन्न होवै है। तिसतैं अनंतर पुनः क्रिया करिकै संयुक्त चारि त्र्यणुकोंतैं चतुरणुरूपकार्य उत्पन्न होवे है।इस प्रकारके क्रम करिके यह महान्पृथिवी महान् जल महान् तेजमहान् वायु उत्पन्न होवै हैं यातैं ते परमाणु ही सर्व जगत्का उपादान कारण हैं सो माया उपहित ब्रह्म जगत्का उपादान कारण नहीं है। इस प्रकार वैशेषिक शास्त्रवाले माने हैं। सो यह वैशेषिकशास्त्रका मत न्यायप्रकाश ग्रंथविषे हमने बहुत विस्तारतैं निरूपण कर्‍या है जिसकूं जानणेकी इच्छा होवै तिसने तहांसे जानि लेणा इति। सो यह वैशेषिकोंका मत भी समीचीन नहीं है काहेतैं शक्ति सादृश्यादिक बहुत पदार्थोंके विद्यमान हुए भी सप्त ही पदार्थ हैं यह वैशेषिकोंकी प्रतिज्ञा असंगत है। तहां मणि मंत्रादिकोंकी समीपता हुए वह्नितैं दाहरूप कार्य होता नहीं और तिन मणि मंत्रादिकोंके दूर करणेतैं ता वह्नितैं सो दाह होवै है। ता करिकै ता वह्निविषे दाहके अनुकूल शक्तिका विनाश तथा उत्पत्ति अवश्य मानणा होवेगा। अर्थात् तिन मणि मंत्रादिकोंके विद्यमान हुए सा दाहानुकूल शक्ति नष्ट होइ जावै है और तिन मणि मंत्रादिकोंके दूरकरणेतैं सा शक्ति पुनःउत्पन्न होवै है यातैं ता वह्निविषे सा दाहानुकूल शक्ति अवश्य मानी चाहिये। इस प्रकार मृत्तिकादिक सर्व कारणोंविषे आपणे आपणे घटादिक कार्यके अनुकूल शक्ति रहे है सा शक्ति तिन द्रव्यादिक सप्त पदार्थोंतैं भिन्न ही पदार्थहै।तहां वैशेषिक ता उक्त स्थलविषे मणिमंत्रादिक प्रतिबधकके अभावकूं ही ता दाहका कारण मानेहैं,सो तीनोंका कहणा श्रुति सूत्रतैं विरुद्ध होणेतैं असंगत है, तहां श्रुति। 'कथमसतः सज्जायेत' अर्थ-यह अभावरूप असत्तैं सत्कार्यकी उत्पत्ति कदाचित् भी होती नहीं इति। तहां सूत्र। 'नासतोऽदृष्टत्वात्' अर्थ-

अभावरूप असततैं कार्यकी उत्पत्ति युक्त नहीं है जिस कारणतैं लोकविषे असत् नरशृङ्गादिकोंतैं किसी भी कार्यकी उत्पत्ति देखणेविषे आवती नहीं किंतु सत् मृत्तिकादिकोंतैं ही घटादिक कार्यकी उत्पत्ति देखणेविषे आवै है इति। यातैं प्रतिबंधकाभावकूं कार्य कारण मानणा इस श्रुति सूत्रतैं विरूद्ध होणेतैं असंगत है इस प्रकार 'चंद्रवत् मुखं' इत्यादिक अनुभवतैं मुखादिकोंविषे चन्द्रादिकोंका सादृश्य सिद्ध होवै है। यातैं सो सादृश्य भी ता शक्तिकी न्याईं तिन द्रव्यादिक सप्त पदार्थोंतैं भिन्न ही पदार्थ है। इस शक्ति सादृश्यका विस्तारतैं निरूपण तौ न्यायप्रकाशके चतुर्थ परिच्छेदविषे कऱ्या है सो तहांसे जानि लेणा। इस प्रकार शक्ति सादृश्यादिक अधिक पदाथके विद्यमान हुए सप्त ही पदार्थ हैं यह वैशेषिका कहणा असंगत है,किंवा अंधकार रूप दशम द्रव्यके विद्यमान हुए नव ही द्रव्य हैं यह भी वैशेषिकोंका कहणा असंगत है। तहां 'नीलं तमश्चलति' इस प्रत्यक्ष प्रतीतितैं ता अंधकाररूप तमविषे नीलरूप तथा चलन क्रिया सिद्ध होवै है और गुणका तथा क्रियाका आश्रय द्रव्य ही होवै। यातैं ता अंधकार रूप तमकूं द्रव्यरूपता संभवै है और वैशेषिक ता तमकूं आलोकका अभावरूप माने हैं। सो तिनोंका कहणा असंगत है काहेतैं जो जो अभाव होवै सो सो प्रतियोगी सापेक्ष प्रतीतिका ही विषय होवै है। प्रतियोगी निरपेक्ष प्रतीतिका विषय कोईभी अभाव होता नहीं, जैसे घटाभाव पटाभाव इत्यादिक अभाव घटपटादिरूपप्रतियोगी सापेक्ष प्रतीतिके ही विषय होवै हैं और यह अंधकाररूप तम तौ ता आलोकरूप प्रतियोगी सापेक्षा प्रतीतिका विषय होता नहीं। यातैं ता अंधकारकूं आलोकाभावरूपता मानणेविषे कोई भी प्रमाण नहीं है, किंतु उक्त युक्तितैं ता अंधकारकूं दशम द्रव्य ही मान्या चाहिये। तहां ता अंधकाररूप तमकी

द्रव्यरूपता तथा आलोकाभावरूपता न्यायप्रकाशके द्वितीय परिच्छेदके अंतविषे विस्तारतें निरूपण करी है सो तहांसे जानि लेणी। किंवा वैशेषिकोंने आत्माकूं भी ज्ञानादिक गुणोंका आश्रयरूप करिकै तथा समवायिकारणरूप करिकै ही द्रव्य ही मान्या है सो भी तिनोंका कहणा असंगत है, काहेतें श्रुति स्मृति विद्वानोंका अनुभव इन तीनों करके आत्माका निर्गुणपणा तथा सत् चित् आनंदरूपता ही निश्चय होवै है। तहां 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च' यह श्रुति तौ ता आत्माकूं निर्गुण कहे है और 'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म, आनन्दो ब्रह्म' यह श्रुति ता आत्माकूं सत् चित् आनंदरूप कहे हैं। यातें सो आत्मा द्रव्यरूप नहीं है, तहां सो आत्मा अद्रव्य होणेतें गुणादिकोंकी न्याईं परतंत्र होवैगा। यह जो वैशेषिक कहे हैं सो भी असंगत है। काहेतें श्रुतिस्मृतियों विषे ता आत्माकूं ही सर्वकल्पनावोंका अधिष्ठान तथा सर्वका प्रेरक कह्या है ऐसे आत्माकूं अद्रव्यरूपता करिकै परतंत्र कहना तिन श्रुति स्मृतिवाक्योंतें विरुद्ध है। यातें अद्रव्यरूप हुआ भी सो आत्मा सर्वका अधिष्ठान होणेतें तथा सर्वका प्रेरक होणेतें स्वतंत्र ही है। या कारणतें भी नव ही द्रव्य हैं यह तिनोंकी प्रतिज्ञा असंगत है, किंवा तिन वैशेषिकोंने आकाशादिक अनेक नित्य पदार्थ माने हैं। सो तिनोंकी कल्पना भी श्रुतितें विरुद्ध होणेतें असंगत है। जिस कारणतें श्रुति ब्रह्मतें भिन्न सर्व जगतकूं अनित्य ही कहे है। तहां श्रुति। 'अतोऽन्यदार्तम्। मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः' अर्थ—इस ब्रह्मतें भिन्न सर्व जगत् आर्त कहिये मिथ्या और सर्व द्वैत प्रपंच मायामात्र है अर्थात् मिथ्या है अद्वैत ब्रह्म ही परमार्थ सत्य है इति। किंवा 'आत्मन आकाशः संभूतः, तन्मनोऽकुरुत' इस श्रुतिविषे आकाशकी तथा मनकी ब्रह्मतें उत्पत्ति कथन करी है और 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' इस वचन करिकै श्रीभगवान्‌ने उत्पत्तिमान् पदार्थका नियमतें नाश

कह्या है। यातें उत्पत्ति विनाशवाले होणेतें ते आकाशादिक अनित्य ही होवैंगे। किंवा तिन वैशेषिकोंने परमाणुवोंकूं जो निरवयव तथा नित्य मान्या है सो भी असंगत है। काहेतें लोकविषे जो जो पदार्थ रूपादि गुणवाला होवै है तथा परिच्छन्न होवै है सो सो पदार्थ सावयव तथा अनित्य ही होवै है। जैसे घट पटादिक पदार्थ हैं तैसे ते परमाणु भी तुमारे मतविषे रूपादिक गुणवाले हैं तथा परिच्छिन्न हैं यातें ते परमाणु भी घटादिकोंकी न्यांई सावयव तथा अनित्य होवैंगे। किंवा परमाणुओंकूं सावयव मानणेविषे जो वैशेषिकोंने अनवस्था दोषकी प्राप्ति कही है सो भी असंगत है। जिस कारणतें ईश्वररूप परम कारणविषे ही ता अवयव धाराकी विश्रांति संभवै है। किंवा सूक्ष्म भूतोंतें भिन्न परमाणुवोंके सद्भावविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। किंतु सूक्ष्म भूतोंका ही परमाणु नाम है, तिन सूक्ष्म भूतोंकी उत्पत्ति पूर्व उक्त रीतिसे ईश्वरतें ही होवै है। या कारणतें भी ते परमाणु सावयव तथा अनित्य ही सिद्ध होवै हैं किंवा तिन वैशेषिकोंने संयुक्त दो परमाणुवोंतें द्व्यणुककी उत्पत्ति कही है सो भी संभवती नहीं। काहेतें तिन वैशेषिकोंने परमाणुओंकूं तो निरवयव मान्या है और संयोगकूं अव्याप्य वृत्ति मान्या है। तहां जिस द्रव्यविषे सो संयोग रहे है तिसी द्रव्यविषे ता संयोगका अभाव भी रहे है जैसे एक ही वृक्षके शाखा देशविषे पक्षीका संयोग होवै है और मूल देशविषे ता संयोगका अभाव होवै है यह ही ता संयोगविषे अव्याप्य वृत्तिपणा है। सो संयोग सावयव द्रव्योंका ही संभवै है निरवयव द्रव्योंका सो संयोग संभवता नहीं, और वैशेषिकोंने ते परमाणु निरवयव ही माने हैं। यातें तिन परमाणुओंके संयोगके असंभव हुए तिन परमाणुवोंतें द्व्यणुककी उत्पत्ति करणी अत्यंत विरुद्ध है किंवा 'येनाऽश्रुतं श्रुतं भवति' इत्या-

दिकश्रुतिने एक कारण ब्रह्मके ज्ञान करिकै सर्वके ज्ञानकी प्रतिज्ञा करी है सा प्रतिज्ञा ब्रह्मतैं भिन्न परमाणु आदिकोंकूं अनादि तथा नित्य मानणेविषे बाधित होवैगी । जो कदाचित् सा प्रतिज्ञा बाधित होवै तौ तिस प्रतिज्ञातैं अनंतर मृत्तिकादिक दृष्टांतों करिकै कार्यका कारणतैं अव्यतिरेकपणेकूं सिद्ध करिके ता प्रतिज्ञात अर्थका जो उपादान कऱ्या है सो अनर्थक होवैगा यातैं यह सिद्ध भया ब्रह्मते भिन्न सर्व जगत ता ब्रह्मतैं उत्पन्न होवै है तथा ता ब्रह्मविषे ही लय होवै है इति । इहां सांख्य शास्त्रवाले तौ त्रिगुणात्मक प्रधानतैं ही महत्तत्त्वादि कर्म करिकै जगत्की उत्पत्ति माने हैं यह सांख्यका मत आगे स्पष्ट होवैगा । सो यह सांख्यियोंका मत भी समीचीन नहीं है काहेतैं तिन सांख्यियोंने ता प्रधानकूं जड तथा नित्य तथा स्वतंत्र मान्या है सो प्रधान ही जगत्का कारण है इस अर्थविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। और 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्।अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीःप्रजाः सृजमानां स्वरूपाः' इत्यादिक श्रुतियां तौ सिद्धांत संमत मायाकूं ही जगत्का कारण कहे हैं ।ता प्रधानकूं कहती या नहीं । यातैं ता प्रधानकूं जगत्का उपादान कारणपना संभवता नहीं । शंका-सो प्रधान कपिल स्मृति करिकै सिद्ध है, यातैं ता प्रधानकूं अप्रामाणिक कहणा अयुक्त है । समाधान-श्रुतिके विरोध हुए ता कपिलस्मृतिकूं प्रमाणरूपता नहीं है । श्रुति मूलक स्मृति ही प्रमाणरूप होवै है । श्रुति विरुद्ध स्मृति प्रमाणरूप होवै नहीं । यातैं माया उपहित ब्रह्मतैं ही आकाशादिक करिकै प्रपंचकी उत्पत्ति होवै है यह पूर्व उक्त सिद्धांत मत ही सर्वोंकूं अंगीकार कऱ्या चाहिये इति । अब पूर्व उक्त आकाशादिक पंच भूतोंतैं सूक्ष्म शरीरोंकी तथा स्थूल भूतोंकी उत्पत्तिका प्रकार वर्णन करे हैं । तहां पूर्व ईश्वरका उपाधिरूप करिकै कथन करी जा माया है सा माया सत्त्व,रज,तम यह तीन गुणरूप और कारणके

गुण ही कार्यके गुणोंका आरंभक होवै हैं। यातैं ता मायाके कार्यरूप ते आकाशादिक पंचभूत भी सत्त्व रज तम यह तीन गुण रूप ही होवै हैं और ते आकाशादिक पंचभूत प्रत्यक्ष व्यवहारके अयोग्य होणेतैं सूक्ष्म कह्या जावै हैं और पंचीकरणके अभावतैं अपंचीकृत कहे जावै हैं ऐसे अपंचीकृत सूक्ष्म भूतोंतैं सप्तदश लिंगरूप सूक्ष्म शरीर उत्पन्न होता भया ते सप्तदश लिंग यह हैं। पंचज्ञान इंद्रिय,पंच कर्म इंद्रिय,पंच प्राण,मन, बुद्धि। तहां श्रोत्र १ त्वक् २ चक्षु ३ रसन ४ घ्राण ५ यह पंच इंद्रिय, ज्ञानके साधन होणेतैं ज्ञान इंद्रिय कहे जावै हैं। और वाक् १ पाणि २ पाद ३ पायु ४ उपस्थ ५ यह पंच इन्द्रिय क्रियाके साधन होणेतैं कर्म इंद्रिय कहैं जावै हैं। तहां शब्द ज्ञानका साधन इंद्रिय श्रोत्र कह्या जावै है और स्पर्श ज्ञानका साधन इंद्रिय त्वक् कह्या जावै है और रूप ज्ञानका साधन इंद्रिय चक्षु कह्या जावै है और रसज्ञानका साधन इंद्रिय रसन कह्या जावै है और गंध ज्ञानका साधन इंद्रिय घ्राण कह्या जावै है और वचन क्रियाका साधन इंद्रिय वाक् कह्या जावै है और ग्रहण क्रियाका साधन इंद्रिय पाणि कह्या जावै है और गमन क्रियाका साधन इंद्रिय पाद कह्या जावै है और विसर्ग क्रियाका साधन इंद्रिय पायु कह्या जावै और सुख क्रियाका साधन इंद्रिय उपस्थ कह्या जावै है। यद्यपि मन बुद्धि चित्त अहंकार इस भेद करिकै अंतःकरण चारि प्रकारका होवै है तथापि इहां मनविषे चित्तका तथा बुद्धिविषे अंहकारका अंतर्भाव मानिकै मन बुद्धि इन दोनोंका ही ग्रहण कऱ्या है। अब तिन आकाशादिक पंच भूतोंतैं तिन सप्तदश लिंगोंके उत्पत्तिका क्रम कहे हैं। तहां 'सत्वात्संजायते ज्ञानम्' इस गीता बचनविषे सत्त्वगुणतैं ज्ञानकी उत्पत्ति कथन करी है और श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइंद्रियोंविषे पूर्व उक्तरीतिसे ज्ञानकी

साधनता स्पष्ट ही है। यातें तिन आकाशादिक पंचभूतोंके अमिलित सात्त्विक अंशतें श्रोत्रादिक पंच ज्ञान इंद्रिय उत्पन्न होवें हैं। तहां आकाशके सात्त्विक अंशतें श्रोत्र इंद्रिय उत्पन्न होवे है और वायुके सात्त्विक अंशतें, त्वक् इंद्रिय उत्पन्न होवे है और तेजके सात्त्विक अंशतें चक्षु इंद्रिय उत्पन्न होवे है और जलके सात्त्विक अंशतें रसन इंद्रिय उत्पन्न होवे है और पृथिवीके सात्त्विक अंशतें घ्राण इंद्रिय उत्पन्न होवै है शंका—ते श्रोत्रादिक पंच इंद्रिय उक्त क्रमतें आकाशादिक पञ्च भूतोंतें उत्पन्न हुए हैं, यह वार्ता कैसे जानी जावे। समाधान—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन पांच गुणोंके मध्य विषे जिस गुणकूं जो जो इंद्रिय ग्रहण करे है सो सो इंद्रिय तिस तिस गुणवाला ही होवे है यह नियम है। जैसे श्रोत्र इंद्रिय शब्द गुणकूं ग्रहण करे है यातें सो श्रोत्र इंद्रिय शब्द गुणवाला ही है। तैसे त्वगादिक इंद्रिय भी तिस तिस स्पर्शादिक गुणकूं ग्रहण करे हैं यातें ते त्वगादिक इंद्रिय भी तिस तिस स्पर्शादिक गुणवाले ही होवैंगे और तिस तिस शब्दादिक गुणवाले द्रव्यकूं आकाशादिरूपता सिद्ध ही है। इस प्रकारकी युक्ति करिकै तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं यथाक्रमतें तिन आकाशादिक भूतोंका कार्यपणा ही सिद्ध होवै है। जो कदाचित् तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंकूं आकाशादिक भूतोंका कार्यपणा नहीं मानिये तौ तिन श्रोत्रादिक इंद्रियों विषे शब्दादिक गुणोंका ग्राहकपणा ही नहीं होवैगा। किंवा केवल इस उक्त युक्ति करिकै ही श्रोत्रादिक इंद्रियों विषे आकाशादिक भूतोंका कार्यपणा सिद्ध नहीं है, किंतु श्रुति प्रमाण करिकै भी सिद्ध है। तहां श्रुति। 'श्रोत्रमाकाशे वायौत्वक् अग्नौ चक्षुरप्सु जिह्वा पृथिव्यां घ्राणं' इस श्रुतिविषे आकाशादिक भूतोंके सात्त्विक अंशतें यथाक्रमतें श्रोत्रादिक पंचज्ञान इंद्रियोंकी उत्पत्ति कथन करी है। यातें आकाशादिक भूतोंके सात्त्विक अंशतें श्रोत्रादिक पंचज्ञान इंद्रियोंकी उत्पत्ति माननी

श्रुति युक्ति करिकै सिद्ध है इति। और तिन आकाशादिक पंचभूतोंके जे मिलित सात्त्विक अंश हैं तिनोंतैं अंतःकरण उत्पन्न होवै है। तहां सो अंतःकरण तिन श्रोत्रादिक पंच इंद्रियद्वारा तिन शब्दादिक पांचो गुणोंकूं ग्रहण करे है। यातैं ता अंतःकरणकूं तिन आकाशादिक पंचभूतोंके मिलित सात्त्विक अंशोंका कार्यपणा अवश्य मान्या चाहिये। जो कदाचित् ताअंतःकरणकूं तिन पंचभूतोंका कार्यपणा नहीं मानिये तौ ता अंतःकरणकूं तिन शब्दादिक पंच गुणोंका ग्राहकपणा ही नहीं संभवैगा इति। इहां सांख्य शास्त्रवाले तौ ऐसा कहे हैं। सो अंतःकरण बुद्धि १ अहंकार २ मन ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है तहां मूल प्रकृतितैं बुद्धि उत्पन्न होवै है जिस बुद्धिकूं महत्तत्त्व भी कहे हैं ता महत्तत्त्व नाम बुद्धितैं अहंकार उत्पन्न होवै है सो अहंकार सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंके भेद करिकै सात्त्विक राजस तामस यह तीन प्रकारका होवै है। तहां सात्त्विक अहंकारतैं तौ श्रोत्रादिक पंच ज्ञान इंद्रिय तथा वागादिक पंच कर्म इंद्रिय एक मन यह एकादश इंद्रिय उत्पन्न होवै हैं और तामस अहंकारतैं शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ रस ४ गंध५ यह पंच तन्मात्रा उत्पन्न होवै हैं और राजस अहंकार तौ तिन दोनों अहंकारोंका प्रवर्त्तक होणेतैं केवल सहकारी मात्र होवै है और तिन पंच तन्मात्रावोंतैं यथाक्रमतैं आकाश १ वायु २ अग्नि ३ जल४ पृथिवी ५ यह पंचमहाभूत उत्पन्न होवै हैं। यह वार्त्ता सांख्य-तत्त्वकौमुदीविषे भी कही है। तहां श्लोक—'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त। षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः'। अर्थ-सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंकी जो साम्य अवस्था है ताका नाम प्रधान है। सो प्रधान जगत्का मूल कारण होणेतैं मूल प्रकृति कह्या जावै है, सो मूलप्रकृति किसीकी भी विकृति नहीं है। इहां सर्वत्र प्रकृति शब्दकरिकै परिणामी उपादान कारणका ग्रहण

करणा और विकृति शब्दकरिकै कार्यका ग्रहण करणा और महत्तत्त्व अहंकार पंच तन्मात्रा यह सप्त प्रकृति भी होवै हैं तथा विकृति भी होवै हैं। तहां मूलप्रकृतिकी अपेक्षाकरिकै तौ महत्तत्त्व विकृति है और अहंकारकी अपेक्षा करिकै प्रकृति है। ऐसे अहंकार भी ता महत्तत्त्वकी अपेक्षाकारिकै तौ विकृति है और इन्द्रिय तन्मात्रावोंकी अपेक्षाकरिके प्रकृति है। इस प्रकार ते पंच तन्मात्रा भी ता अहंकारकी अपेक्षाकरिकै तो विकृति हैं और पंच महाभूतोंकी अपेक्षाकरिकै प्रकृति हैं और पूर्व उक्त एकादश इंद्रिय तथा पंच महाभूत यह षोडश तौ विकृति ही होवै हैं। किसीके भी प्रकृति होते नहीं और असंग होणेतैं पुरुष तो प्रकृति भी नहीं होवै है तथा विकृति भी नहीं होवै है इति। इस सांख्यमतका विस्तारतैं निरूपण तौ न्यायप्रकाश ग्रंथके द्वितीय परिच्छेदविषे आत्म निरूपणविषे हमने कर्‍या है सो तहांसैं जानि लेणा इति। सो यह सांख्यियोंका मत भी श्रुति सूत्रतैं विरुद्ध होणेतैं असंगत है। काहेतैं ब्रह्मसूत्रकार श्रीव्यास भगवाननैं 'ईक्षतेर्नाशब्द' इत्यादिक सूत्रोंकरिकै ता प्रधान कारण वादका खंडन ही कर्‍या है। इस सूत्रका यह अर्थ है। वैदिक शब्दकरिकै अप्रतिपादित होणेतैं अप्रामाणिक ऐसा जो प्रधान है सो प्रधान जगत्का कारण नहीं है। जिस कारणतैं 'तदैक्षत बहुस्याम्' इस श्रुतिनै जगत्के कारणविषे ज्ञानरूप ईक्षण कथन कर्‍या है सो ईक्षण चेतनविषे ही संभवै है। जड प्रधानविषे संभवता नहीं यातैं सो प्रधान कारणवाद असंगत है। किंवा 'अन्नमयं हि सौम्यं मनः आपोमयः प्राणः तेजोमयी वाक्' इस श्रुतितैं तथा 'श्रोत्रमाकाशे वायौ त्वक्' इस पूर्व उक्त श्रुतितैं अंतःकरण प्राण इंद्रिय इन तीनोंविषे भूतोंका कार्यपणा ही निश्चय होवै है और सांख्यियोंने तिनोंकूं भूतोंका कार्य मान्या

नहीं । यातैं भी सो सांख्यियोंका मत श्रुति प्रमाणतैं विरुद्ध है । शंका-तुम वेदांतियोंके मतविषे भी ब्रह्म असंग है । ऐसे असंग ब्रह्मविषे ता ईक्षणपूर्वक जगत्‌का उपादानपणा मानणा अत्यंत विरुद्ध है । ऐसे विरुद्ध अर्थकूं श्रुति भी कैसे प्रतिपादन करैगी । समाधान-शुद्ध ब्रह्मकूं असंगरूप होणेतैं यद्यपि जगत्‌का उपादानपणा संभवता नहीं तथापि माया उपहित ब्रह्मकूं सो उपादानपणा संभवे है और श्रुतिने भी ता माया उपहित ब्रह्मकूं ही जगत्‌का उपादानपणा कथन कर्‍या है ।यह वार्त्ता पूर्व ही विस्तारतैं प्रतिपादन करि आये हैं इति । इहां नैयायिक तौ मनकूं निरवयव माने हैं तथा अणु माने हैं तथा नित्य माने हैं । यह नैयायिकोंका मत न्यायप्रकाशके द्वितीय परिच्छेदविषे मनके निरूपणविषे विस्तारतैं प्रतिपादन कर्‍या है, सो यह नैयायिकोंका मत भी श्रुतितैं विरुद्ध होणेतैं असंगत है । काहेतैं मनकूं जो नित्य मानिये तौ 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' एक तौ इस श्रुतिका विरोध प्राप्त होवैगा और दूसरा 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेंद्रियाणि चातन्मनोऽकुरुत' इत्यादिक श्रुतियोंविषे ता मनकी उत्पत्ति कथन करी है और जो जो भावकार्य होवै है सो सो अनित्य ही होवै है । जैसे घट पटादिक भाव कार्य होणेतैं अनित्य हैं तैसे भावकार्य होणेत सो मन भी अनित्य ही होवैगा । किंवा नैयायिकोंने मनकूं मूर्त्त द्रव्य मान्या है और जो जो मूर्त्त द्रव्य होवै है सो सो परिच्छिन्न ही होवै है और जो जो परिच्छिन्न होवे है सो सो सावयव ही होवै है और जो जो सावयव होवे है सो सो अनित्य ही होवै है । या प्रकारका नियम घट पटादिक मूर्त्त-द्रव्योंविषे देखणेमें आवै है । यातैं मूर्त्त द्रव्य होणेतैं सो मन भी सावयव तथा अनित्य ही होवैगा । किंवा नैयायिकोंने मनकूं अणु मान्या है तथा ता मनके संयोगतैं आत्माविषे सुख दुःखादिकोंकी उत्पत्ति मानी है सो भी

असंगत है। काहेतैं ता अणु मनके संयोगजन्य सो सुख भी किसी अणुप्रदेशविषे ही होवैगा। सब अंग व्यापी नहीं होवैगा और शीतल गंगाजलविषे निमग्न पुरुषकूं सर्व अंग व्यापी सुखका अनुभव होवै है यातैं सो मन अणु नहीं है किंवा मेरेकूं पादविषे पीडा है और शिरविषे सुख है इस प्रकार एक ही कालविषे सुख दुःखका अनुभव होवै है सो भी नैयायिकोंके मतविषे असंगत होवैगा। जिस कारणतैं ता अणु मनका एक कालविषे ता पाद शिर दोनोंके साथि संयोग संभवता नहीं इति। तहां भूतोंका कार्यरूप मनविषे विभुपणा संभवता नहीं तथा विभु मनका विभु आत्माके साथि संयोग संभवता नहीं। इन उक्त युक्तियोंकरिकै मनका विभुपणा भी खंडन हुआ जाणना तहां मीमांसक मनकूं विभु माने हैं सो मनके विभुपणेका प्रतिपादन तथा नैयायिकोंकी रीतिसे ताका खंडन न्यायप्रकाशके द्वितीय परिच्छेदविषे मनके निरूपणविषे विस्तारतैं कथन कऱ्या है सो तहांसैं जानि लेणा। यातैं आकाशादिक पंच भूतोंके मिलित सात्त्विक अशोंतैं सो अंतःकरण उत्पन्न होवै है तथा सावयव है यह सिद्धांत सिद्ध भया इति। और सो अंतःकरण संकल्प निश्चय अभिमान स्मरण इन चारि वृत्तियोंके भेदकरिकै मन १ बुद्धि २ अहंकार ३ चित्त ४ यह चारि प्रकारका होवै है। तहां संकल्प वृत्तिवाला अंतःकरण मन कह्या जावै है और निश्चय वृत्तिवाला अंतःकरण बुद्धि कह्या जावै है और अभिमान वृत्तिवाला अंतःकरण अहंकार कह्या जावै है और स्मरण वृत्तिवाला अंतःकरण चित्त कह्या जावै है इति। अब कर्म इंद्रियोंके उत्पत्तिका प्रकार वर्णन करे हैं—तहां पूर्व उक्त आकाशादिक पंच सूक्ष्म भूतोंके परस्पर अमिलित राजस अंशोंतैं कर्म इंद्रिय उत्पन्न होवै है। तहां आकाशके राजस अंशतैं वाक् इंद्रिय उत्पन्न होवै है और वायुके राजस अंशतैं हस्त इंद्रिय उत्पन्न

होवै है और तेजके राजस अंशतैं पाद इंद्रिय उत्पन्न होवै है और जलके राजस अंशतैं पायु इंद्रिय उत्पन्न होवै है और पृथिवीके राजस अंशतैं उपस्थ इंद्रिय उत्पन्न होवै है। इहां केएक ग्रंथकार तौ जलके राजस अंशतैं उपस्थ इंद्रियकी उत्पत्ति माने हैं और पृथिवीके राजस अंशतैं पायु इंद्रियकी उत्पत्ति माने हैं। तहां 'कस्मिन्नापः प्रतिष्ठिता इति रेतसि' इस श्रुतिविषे जलोंकी रेतविषे स्थिति कथन करी है। यातैं ता उपस्थ इंद्रियकी जलतैं ही उत्पत्ति माननी उचित है इति। अब प्राणोंकी उत्पत्तिका वर्णन करे हैं। तहां पूर्व उक्त आकाशादिक पंच सूक्ष्म भूतोंके मिलित राजस अंशतैं प्राण उत्पन्न होवै है। सो प्राण भी क्रियाके भेदतैं वा स्थानके भेदतैं प्राण १ अपान २ व्यान ३ उदान ४ समान ५ यह पंच प्रकारका होवै है। तहां सर्वदा ऊर्ध्व गमनवाला वायु प्राण कह्या जावै है। यद्यपि उदानवायु भी ऊर्ध्व गमनवाला होवै है तथापि सो उदान मरणकालविषे ही ऊर्ध्व गमनवाला होवै है। सर्वदा ऊर्ध्व गमनवाला होवै नहीं और यह प्राण तौ सर्वदा ऊर्ध्व गमनवाला होवै है, यातैं इस प्राणके लक्षणकी ता उदानविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं, और सो प्राण नासिकातैं लैके नाभिपर्यंत स्थानोंविषे रहे है। तहां 'वायुःप्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्' इस ऐतरेय श्रुतिने ता प्राणकी नासिकादि स्थानविषे ही स्थिति कही है, और अधो गमनवाला वायु अपान कह्या जावै है। सो अपना नाभितैं लैके पायु पर्यंत स्थानोंविषे रहे है॥ तहां 'मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्' इस श्रुतिने ता अपानकी नाभि आदिक स्थानविषे ही स्थिति कही है और सर्व ओरतैं गमन करणेहारा वायु व्यान कह्या जावै है, सो व्यान वायु समग्र शरीरविषे रहे है और मरणकालविषे ऊर्ध्व गमन करणेहारा वायु उदान कह्या जावै है। सो उदान कंठस्थानविषे रहे है और

भोजन करे हुए अन्नके तथा पान करे हुए जलके स्थूल मध्यम सूक्ष्म इन तीन भागोंकूं तिस तिस स्थानविषे प्राप्त करणेहारा वायु समान कह्या जावै है। तहां विष्ठा मूत्रका हेतुभूत जो अन्न जल का स्थूल भाग हैं तिसकूं शरीरतैं बाह्य निकासणेवासतैं सो समान वायु अपानविषे प्राप्त करे है और मांस रुधिरका हेतुभूत जो अन्न जलका मध्यम भाग है तिसकूं नाडी द्वारा सर्व अंगोंविषे प्राप्त करे है और मन प्राण दोनोंका उपकारक जो ता अन्न जलका सूक्ष्म भाग है तिसकूं ता मन प्राणविषे प्राप्त करे है। या कारणतैं ही श्रुति विषे मनकूं अन्नमय कह्या है और प्राणकूं जलमय कह्या है। सो यह समान वायु भी समग्र शरीरविषे रहे है और कोई ग्रंथविषे जो इस समानका नाभिस्थान कह्या है सो मुख्यताकूं लैके कह्या है, अर्थात् ता समान वायुका सो नाभि मुख्य स्थान है इति। इहां केएक शास्त्रवाले तौ नाग १ कूर्म २ कृकल ३ देवदत्त ४ धनंजय ५ इन पंच वायुवोंकूं मिलाइकै सो प्राणवायु दश प्रकारका कहे हैं। तहां उद्गार करणेहारा वायु नाग कह्या जावै है, और नेत्रोंके उन्मीलनकूं करणेहारा वायु कूर्म कह्या जावै है, और छिक्काकूं करणेहारा वायु कृकल कह्या जावै है, और जृंभणकूं करणेहारा वायु देवदत्त कह्या जावै है, और शरीरके पोषणकूं करणेहारा वायु धनंजय कह्या जावै है इति। तहां पूर्व उक्त प्राणादिक पंच वायुवोंतैं इन नागादिक पंच वायुवोंकूं पृथक् मानणेविषे एक तौ गौरव दोषकी प्राप्ति होवै है और दूसरा तिन नागादिक पांचोंविषे श्रुति आदिक प्रमाणका भी अभाव है। यातैं वेदांत ग्रथोंविषे तिन नागादिक पांचोंका तिन प्राणादिक पांचोंविषे अंतर्भाव मानिके ते पंचही प्राण कथन करे हैं इति। अब पूर्व उक्त इंद्रियोंके तथा अंतःकरणके देवतावोंका वर्णन करे हैं। तहां श्रोत्र १ त्वक् २ चक्षु ३ रसन ४ घ्राण ५ इन पंच ज्ञान इंद्रियोंके यथाक्रमतैं

दिक् १ वायु २ आदित्य ३ वरुण ४ अश्विनि ५ यह पंच देवता होवैं हैं। इहां कोईक ग्रंथविषे घ्राणका पृथिवी देवता भी कह्या है।। और वाक् १ पाणि २ पाद ३ पायु ४ उपस्थ ५ इन पंच कर्म इंद्रियोंके यथाक्रमतैं वह्नि १ इंद्र २ उपेंद्र ३ मृत्यु ४ प्रजापति५ यह पंच देवता होवै हैं। औरमन १ बुद्धि २ अहंकार ३ चित्त ४ इन चारि अंतःकरणोंके यथाक्रमतैं चन्द्र १ चतुर्मुख २ शंकर ३ अच्युत ४ यह चारि देवता होवै हैं। शंका–श्रोत्रादिक इंद्रियोंके ते दिगादिक अधिष्ठाता देवता हैं इस अर्थविषे कौन प्रमाण है? समाधान–सुबाल उपनिषदविषे 'श्रोत्रमध्यात्मं श्रोतव्यमधिभूतं दिशस्तत्राधिदैवतम्' इत्यादिक् वचनोंकरिके ज्ञान कर्म इंद्रियोंके तथा अंतःकरणके ते पूर्व उक्त सर्व देवता कथन करे हैं। यातैं ते इंद्रिय अंतःकरणके अधिष्ठाता देवता श्रुति प्रमाणतैं ही सिद्ध हैं। किंवा ते अधिष्ठाता देवता केवल श्रुति प्रमाण करीकै ही सिद्ध नहीं हैं। किंतु अनुमान प्रमाण करीकै भी सिद्ध हैं सो दिखावैं हैं। इस लोकविषे जो जो अचेतन कारण होवैं है सो सो चेतनके आश्रित हुआ ही कार्यका जनक होवै है। जैसे मृत्तिका अचेतन कारण होणेतैं चेतन कुलालके आश्रित हुए ही घटादिक कार्यकूं उत्पन्न करै है। तैसे ते इंद्रिय भी अचेतन कारण होणेतैं चेतन देवतावोंके आश्रित हुए ही आपणे आपणे कार्यकूं उत्पन्न करेंगे। शंका–जीव चेतन ही तिन सर्व इंद्रियोंका अधिष्ठाता होवैगा, ता जीव चेतनतैं भिन्न दूसरे अधिष्ठाता देवता मानने व्यर्थ हैं। समाधान–जीव चेतनकूं जो इंद्रियोंका प्रेरक मानिये तौ सो जीव चेतन आपणे अनुकूल अर्थविषे ही तिन इंद्रियोंकूं प्रवृत्त करेगा, प्रतिकूल अर्थविषे प्रवृत्त करैगा नहीं। सो ऐसा देखणेविषे आवता नहीं, किंतु जीव चेतनकूं प्रतिकूल जो शत्रुका दर्शन तथा दुर्गंधादिकोंका ज्ञान है तिसकूं भी ते चक्षु घ्राणादिक इंद्रिय उत्पन्न करे हैं,यातैं यह जान्या जावै है। सो जीव चेतन तिन

इंद्रियोंका प्रेरक नहीं है, किंतु ते उक्त देवता ही प्रेरक हैं । ते देवता ता जीवके पाप कर्मके वशतैं प्रतिकूल अर्थविषे भी तिन इंद्रियोंकूं प्रवृत्त करे हैं इति । तहां इतने पर्यंत सप्तदश लिंगरूप सूक्ष्म शरीरका निरूपण कऱ्या । अब तैत्तिरीय उपनिषदविषे कथन करे जे कार्य कारणरूप अन्नमयादिक पंचकोश हैं, तिनोंका स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीन शरीरोंविषे अंतर्भाव वर्णन करे हैं । तहां अन्नमय १ प्राणमय २ मनोमय ३ विज्ञानमय ४ आनंदमय ५ यह पंच आत्माके आच्छादक होणेतैं कोश कह्ये जावै हैं तहां आगे कथन करेंगे जो स्थूल शरीर सो अन्नमय कोश कह्या जावै है । सो अन्नमय कोश भी कार्य कारण इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां अस्मदादिक जीवोंका व्यष्टि स्थूल शरीर तौ कार्यरूप अन्नमय कोश है और विराट्का समष्टि स्थूल शरीर तौ कारणरूप अन्नमय कोश है।इस प्रकार आगे प्राणमयादिक कोशोंकाभी व्यष्टिसमष्टिरूपतैं कार्य कारणभाव जानि लेणा । और पूर्व कथन कऱ्या जो सप्तदश लिंग रूप सूक्ष्म शरीर है सो प्राणमय मनोमय विज्ञानमय यह तीन कोशरूप है।तहां पूर्व उक्त वातादिक पंच कर्म इंद्रियोंसहित जो प्राण है सो प्राणमय कोश कह्या जावै है। और तिन कर्म इंद्रियों सहित जो मन है सो मनोमय कोश कह्या जावै है। और पूर्व उक्त श्रोत्रादिक पंच ज्ञान इंद्रियों सहित जो बुद्धि है सो विज्ञानमय कोश कह्या जावै है । यह विज्ञानमय कोश ही आत्मावि कर्त्तापणेकी उपाधिहै, अर्थात् वास्तवतैं अकर्त्ता हुआ भी आत्मा इस विज्ञानमय कोशविशिष्ट हुआ कर्त्ता कह्या जावै है । तहां श्रुति । 'विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणितनुतेपिच, अथ–यहविज्ञानमय उपाधिवाला जीवात्मा ही यज्ञकूं करे है तथा सर्व कर्मोंकूं करे है इति । अब पंचम आनंद मय कोशके कहणेवास्ते प्रथम ता अंतःकरणके सात्त्विक वृत्तिका विभाग कहै है तहां ता उक्त अंतःकरणकी सात्त्विक वृत्ति दो प्रकारकी

होवै है। एक तो निश्चय वृत्ति दूसरी सुखाकार वृत्ति। तहां निश्चयवृत्ति वाला अंतःकरण तौ बुद्धि कह्या जावै है। तिस बुद्धिकूं विज्ञानमय कोशरूप होणेतैं ता बुद्धि उपाधिवाला जीवात्मा कर्ताज्ञाता प्रमाता कह्या जावै है और दूसरी सुखाकार वृत्तिवाला अंतःकरण आत्मा-विषे भोक्तापणेका उपाधि है अर्थात् वास्तवतैं अभोक्ता हुआ भी आत्मा ता सुखाकार वृत्तिवाले अंतःकरणकरिकै विशिष्ट हुआ भोक्ता कह्या जावै है। तहां ते सुखाकार वृत्तियां तैत्तिरीय उपनिषद्विषे प्रिय मोद प्रमोद नामकरिकै कथन करी हैं। तहां इष्ट वस्तुके दर्शनजन्य सुखकूं प्रिय कहे हैं और ता इष्ट वस्तुके प्राप्तिजन्य सुखकूं मोद कहे हैं और ता इष्ट वस्तुके भोगजन्य सुखकूं प्रमोद कहे हैं। सो भोक्तापणेका उपाधिरूप अंतःकरण ही अज्ञान-पर्यंत आनंदमय कोश कह्या जावै है। ता आनंदमय कोशरूप उपाधिवाला चेतन आत्मा भोक्ता कह्या जावै है और कैएक ग्रंथकार तौ केवल अज्ञानकू ही आनंदमय कोश कहे हैं। इस आनंदमय कोषका कारण शरीरविषे अंतर्भाव है। इन पंच कोषोंका विस्तारतैं निरूपण तौ आत्मपुराणके दशम अध्यायविषे हमनैं कऱ्या है सो तहांसे जानि लेणा इति। अब पूर्व उक्त सूक्ष्म शरीरका विभाग कहे हैं। तहां सो सप्तदश लिंगरूप सूक्ष्म शरीर समष्टि व्यष्टि इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां पूर्व कथन करे ज अपंचीकृत आकाशादिक पंच भूत हैं तथा तिन भूतोंके कार्यरूप जे इंद्रिय अंतःकरण प्राणरूप सप्तदश लिंग हैं ते सर्व मिलिकै समष्टि सूक्ष्म शरीर कह्या जावै है। ता समष्टि सूक्ष्म शरीररूप उपाधिवाला चैतन्य हिरण्यगर्भ प्राण सूत्रात्मा इन नामोंकरिकै कह्या जावै है। तहां सो समष्टि सूक्ष्म शरीर ज्ञानशक्तिवाले अंतःकरण ज्ञान इंद्रियोंकरिकै घटित होणेतैं ज्ञान-

शक्तिवाला है । या कारणतैं ता शरीर उपहित चैतन्यकूं हिरण्यगर्भ कहे हैं और सो समष्टि सूक्ष्म शरीर क्रियाशक्तिवाले प्राण कर्म इंद्रियोंकरिकै घटित होणेतैं क्रियाशक्तिवाला है। या कारणतैं ता शरीर उपहित चैतन्यकूं प्राण कहे हैं और पटविषे सूत्रकी न्याईं सो समष्टि सूक्ष्म शरीर सर्व ब्रह्मांडविषे व्यापक है । या कारणतैं ता शरीर उपहित चैतन्यकूं सूत्रात्मा कहे हैं । अथवा पूर्व उक्त अपंचीकृत पंच भूतोंतैं एक पृथक् ही सर्वत्र व्यापक लिंगशरीर उत्पन्न होवे है। सो लिंगशरीर ही समष्टि कह्या जावे है ता समष्टिलिंगशरीर उपहित चैतन्य हिरण्यगर्भ कह्या जावे है इति । अब प्रसंगतैं समष्टिका तथा व्यष्टिका लक्षण कहे हैं। तहां जैसे नैयायिकोंके मतविषे गोत्व जाति सर्व गोव्यक्तियोंविषे अनुस्यूत होइकै रहे है तैसे सर्व व्यष्टि व्यक्तियोंविषे जो अनुस्यूत होइकै रहे है सो समष्टि कह्या जावे है । तहां प्रमाण–'तेभ्यः समभवत्सूत्रं लिंगं सर्वात्मकं महत्' अर्थ–तिन अपंचीकृत पंचभूतोंतैं एक सर्वत्र व्यापक सूत्रनामा समष्टि सूक्ष्म शरीर उत्पन्न होता भया सो समष्टि सूक्ष्म शरीर परमात्माका बोधक होणेतैं लिंग कह्या जावै है और इसी समष्टि सूक्ष्म शरीरकूं सांख्यशास्त्रवाले महत्तत्त्व इस नामकरिकै कहै हैं इति । इहां कैएक ग्रंथकार तौ यह कहे हैं । जैसे अनेक वृक्षोंके समुदायकूं वन कहे हैं तैसे सर्व व्यष्टि लिंग शरीरोंका जो समुदाय है सो समष्टि कह्या जावै है और एक एक वृक्षकी न्याईं प्रत्येक लिंग शरीर व्यष्टि कह्या जावै है इति । तहां जैसे एक गोव्यक्ति दूसरी गोव्यक्तियोंविषे अनुस्यूत होवै नहीं, किंतु तिनोंतैं व्यावृत्त होवै है, तैसे एक लिंगशरीर दूसरे लिंग शरीरोंविषे अनुस्यूत होवै नहीं किंतु तिनोंतैं व्यावृत्त होवे है । यह व्यावृत्तपणा ही ता लिंग शरीरविषे व्यष्टिपणा है। ऐसे व्यष्टि लिंग शरीरकरिकै उपहित हुआ चैतन्य तैजस कह्या जावै है।तहां तेजका विका-

रूप जो अंतःकरण है तत् उपहित होणेतैं चैतन्य तैजस कह्या जावै है। तहां जैसे घटत्वादिक जातिका तथा घटादिक व्यक्तिका तादात्म्य होवै है तैसे ता समष्टि लिंग शरीरका तथा व्यष्टि लिंग शरीरका भी तादात्म्य ही होवै है। ता समष्टि व्यष्टि लिंग शरीररूप दोनों उपाधियोंके तादात्म्य हुए तत् उपहित सूत्रात्मा तैजस इन दोनोंका भी तादात्म्य ही होवै है। तहां 'भिन्नत्वे सत्यभिन्नसत्ताकात्वं तादात्म्यं' अर्थ—जे दो पदार्थ व्यवहारदृष्टितैं परस्पर भिन्न हुए भी वास्तवतैं एक सत्तावाले होवै हैं, तिन दो पदार्थोंका तादात्म्य संबंध होवै है। जैसे तंतु पटादिकोंका तथा गुण गुणी आदिकोंका तादात्म्य संबंध है। तहां हिरण्यगर्भकी अभेद उपासनाकरिकै इस पुरुषकूं ता हिरण्यगर्भ भावकी प्राप्तिरूप फल होवै है। या कारणतैं इहां समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म शरीररूप उपाधिका तादात्म्य वर्णन करिकै ता हिरण्यगर्भ तैजस दोनोंका तादात्म्य वर्णन कऱ्या है। यातैं सो वर्णन निष्फल नहीं है इति। शंका—नैयायिकोंने जाति व्यक्ति दोनोंका तादात्म्य संबंध अंगीकार, कऱ्या नहीं किंतु समवाय संबन्ध ही अंगीकार कऱ्या है यातैं जाति व्यक्तिके तादात्म्य दृष्टांतकरिकै समष्टि व्यष्टिका तादात्म्य मानणा अत्यंत विरुद्ध है। समाधान—लक्षण प्रमाण इन दोनोंकरिकैं ही वस्तुकी सिद्धि होवै है यह शास्त्रकारोंका नियम है और ता समवायका कोई लक्षण तथा प्रमाण संभवता नहीं। यातैं सो समवाय अंगीकार करणे योग्य नहीं है। शंका-'नित्यसम्बन्धः समवायः' अर्थ—नित्य ऐसा जो सम्बन्ध है सो समवाय कह्या जावै है यह समवायका लक्षण विद्यमान है तथा ता समवायविषे प्रत्यक्षादिक प्रमाण भी विद्यमान हैं यातैं ता समवायके लक्षण प्रमाणका अभाव कहणा असंगत है। समाधान-'एकमेवाद्वितीयंब्रह्म' इत्यादि-

क श्रुतियोंने ब्रह्मकूं अद्वितीय कह्या है सा ब्रह्मकी अद्वितीयरूपता समवायका नित्य मानणेविषे संभवती नहीं । यातैं ता अद्वैत श्रुतितैं विरुद्ध होणेतैं सो समवायका नित्यपणा संभवता नहीं । शंका-तुमारे मतविषे भी अज्ञान तथा ता अज्ञानका चेतनके साथि सम्बन्ध तत्त्वादिक पदार्थ अनादि माने हैं, तथा भावरूप माने हैं और जो जो पदार्थ अनादि भावरूप होवै हैं सो सो पदार्थ नित्य ही होवै हैं । यातैं तिन अज्ञानादिक नित्य पदार्थोंके विद्यमान हुए सो ब्रह्मका अद्वितीयपणा कैसे संभवैगा । समाधान—वेदांत सिद्धांतविषे ते अज्ञानादिक ब्रह्मविषे अध्यस्त माने हैं या कारणतैं ता अधिष्ठान ब्रह्मतैं ते अज्ञानादिक भिन्न सत्तावाले नहीं हैं । यातैं तिन अज्ञानादिकोंके विद्यमान हुए भी सो ब्रह्मका अद्वितीयपणा सम्भवै है और ते अज्ञानादिक अनादि भावरूप हुए भी ब्रह्मविषे आरोपित हैं । यातैं ता ब्रह्मके ज्ञानकरिकै ते अज्ञानादिक निवृत्त होइ जावै हैं । अनारोपित अनादिभाव पदार्थ ही नित्य होवै हैं । सा अनारोपित अनादिभावरूपता एक अधिष्ठान ब्रह्मविषे ही है तिन अज्ञानादिकोंविषे नहीं । यातैं तुमारे समवायकी न्याई ते अज्ञानादिक भी अनित्य ही हैं यातैं नित्य संबंध समवाय है । यह समवायका लक्षण संभवता नहीं, किंवा युक्तिसे विचार करिकै देखिये तौ भी ता समवायका स्वरूप सिद्ध होता नहीं । तहां तुम नैयायिकोंने गुण गुणीका तथा क्रिया क्रियावालेका तथा अवयव अवयवीका तथा जाति व्यक्तिका तथा विशेष नित्य द्रव्योंका समवाय संबंध अंगीकार करचा है, सो समवाय तिन गुण गुणी आदिक आपणे संबंधियोंतैं भिन्न है अथवा अभिन्न है ? तहां प्रथम भिन्न पक्ष जो अंगीकार करो ताके विषे भी यह कह्या चाहिये । सो समवाय तिन संबंधियोंविषे

किस संबंधकरिकै रहे हैं। संयोग संबंधकरिकै रहे हैं अथवा समवाय संबंधकरिकै रहे हैं अथवा किसी अन्य संबधकरिकै रहे हैं? तहां प्रथम संयोग पक्ष तौ संभवता नहीं। काहेतैं दो द्रव्यों-का ही संयोग संबंध होवै है और सो समवाय द्रव्य है नहीं। तैसे ते गुण कर्मादिक भी द्रव्य हैं नहीं, यातैं ता समवायका तिन संबंधियोंविषे संयोग संबंधकरिकै वर्त्तणा संभवता नहीं और सो समवाय तिन आपणे संबंधियोंविषे समवाय सबंधक-रिकै रहे है यह द्वितीय पक्ष जो अंगीकार करोगे तौ आत्माश्रय १, अन्योऽन्याश्रय २, चक्रिका ३, अनवस्था ४ यह चारि दूषण प्राप्त होवैंगे. सो दिखावे हैं—सो समवाय जिस समवायकरिकै आपणे संबंधियोंविषे रहे है सो समवाय ता समवायतैं अभिन्न है अथवा भिन्न है? जो कहो अभिन्न है तौ आत्माश्रय दोषकी प्राप्ति होवैगी। तहां ता समवायकूं आपणे स्थितिविषे जो आपणी अपेक्षा है यह ही आत्माश्रय दोष है और जो कहो सो समवाय भिन्न है तौ सो द्वितीय समवाय भी ता प्रथम समवायकी न्याईं आपणे संबंधियोंविषे किसी समवायकरिकै ही रहैगा। तहां सो द्वितीय समवाय जो आपणे करिकै ही आप रहेगा तौ पूर्वकी न्याईं पुनः आत्माश्रय दोषकी प्राप्ति होवैगी और सो द्वितीय समवाय जो प्रथम समवायकरिकै रहैगा तौ अन्योन्याश्रय दोष-की प्राप्ति होवैगी। तहां प्रथम समवाय तौ द्वितीय समवाय-करिकै रह्या और सो द्वितीय समवाय ता प्रथम समवायकरिकै रह्या यह ही अन्योन्याश्रय दोष है और इस अन्योन्याश्रय दोषके निवृत्त करणेवासतैं सो द्वितीय समवाय किसी तीसरे सम-वायकरिकै रहे है यह जो मानोगे तो सो तृतीय समवाय भी जो है तो आपणेकरिकै आप रहेगा तौ पूर्वकी न्याई पुनः आत्मा-श्रय दोष प्राप्त होवैगा और जो द्वितीय समवायकरिकै रहेगा तौ

पूर्वंक, न्याईं पुनः अन्योन्याश्रय दोष प्राप्त होवैगा और सो तृतीय समवाय जो प्रथम समवायकरिकै रहेगा तौ चक्रिका दोषकी प्राप्ति होवैगी। तहां प्रथम समवायकूं आपणी स्थितिवासतै द्वितीय समवायकी अपेक्षा और ता द्वितीय समवायकूं आपणी स्थितिवासतै तृतीय समवायकी अपेक्षा और ता तृतीय समवायकूं आपणी स्थितिवासतै पुनः ता प्रथम समवायकी अपेक्षा यह ही चक्रिका दोष है। ता चक्रिका दोषके निवृत्त करणेवासतै जो ता तृतीय समवायकी स्थितिवासतै चतुर्थ समवाय ता चतुर्थकी स्थितिवासतै पंचम समवाय इस प्रकार विश्रांतितैं रहित समवायोंकी धारा मानोगे तौ अनवस्था दोषकी प्राप्ति होवैगी। यातैं सो समवाय समवाय सबंधकरिकै आपणे संबंधियोंविषे रहे है यह द्वितीय पक्ष संभवता नहीं और सो समवाय अन्य किसी संबंधकरिकै रहे है यह तृतीय पक्ष जो अंगीकार करो सो भी संभवता नहीं। काहेतैं संयोग समवाय इन दोनों संबंधोंतैं भिन्न तीसरा कोई संबंध तुमारेसे निरूपण होइ सकता नहीं। जो कहो सो समवाय स्वरूप संबंधकरिकै रहे है: सो भी संभवता नहीं। जिस कारणतैं ता स्वरूप संबंधविषे कोई भी प्रमाण नहीं है और जो कदाचित् तुम ता स्वरूप संबंधकूं अंगीकार करोगे तौ जिन गुण गुणी आदिकोंका तुमोंने समवाय सम्बन्ध मान्या है तिन गुण गुणी आदिकोंका भी सो स्वरूप सम्बन्ध ही संभव होई सके है यातैं तहां समवायकी सिद्धि ही नहीं होवैगी और सो समवाय आपणे संबंधियोंतैं अभिन्न है यह आदि द्वितीय पक्ष जो अंगीकार करो सो भी संभवता नहीं। काहेतैं तुम नैयायिकोंने ता समवायकूं तिन गुण गुणी आदिक पदार्थोंतैं भिन्न ही पदार्थ मान्या है, तिस तुमारे सिद्धांतकी हानि होवैगी। यातैं कोई प्रकारकरिकै भी ता समवायके स्वरूपकी सिद्धि होती नहीं किंवा प्रमाणके

अभाव होणेतैं भी ता समवायकी सिद्धि होइ सकती नहीं। तहां ता समवायविषे प्रत्यक्ष प्रमाण भी संभवता नहीं। जिस कारणतैं तुमोंने ता समवायकूं अतींद्रिय ही मान्या है। अतींद्रिय अर्थविषे इंद्रियरूप प्रत्यक्ष प्रमाणकी प्रवृत्ति होवै नहीं और 'घटे रूपं समवेतम्' यह समवायविषयक प्रतीति तौ केवल तुमोंनें ही कल्पना करी है। सर्व शास्त्रवालोंकूं सा प्रतीति संमत नहीं है। यातैं ता प्रतीतिकूं प्रमाणरूपता ही नहीं है। इस प्रकार हेतुरूप लिंगके अभावतैं ता समवायविषे अनुमान प्रमाण भी संभवता नहीं। शंका-'रूपी घट इति विशिष्टबुद्धिः विशेषणविशेष्यसंबंधविषया विशिष्टबुद्धित्वात् दंडी पुरुष इति बुद्धिवत्' अर्थ--रूपवाला घट है यह विशिष्ट बुद्धिरूप विशेषणके तथा घट विशेष्यके संबंधकूं विषय करे है। विशिष्ट बुद्धि होणेतैं लोकविषे जा जा विशिष्ट बुद्धि होवैं है सा सा विशेषण विशेष्यदोनोंके सम्बन्धकूं अवश्य विषय करे है। जैसे दंडी पुरुषः यह विशिष्ट बुद्धि दंडरूप विशेषणके तथा पुरुषरूप विशेष्यके संयोग संबंधकूं विषय करे है। तैसे रूपवान् घटः यह विशिष्ट बुद्धि भी ता रूप गुण रूप विशेषणके तथा ता घटरूप विशेष्यके समवाय संबंधकूं ही विषय करे है। इस प्रकारके अनुमान प्रमाणके विद्यमान हुए ता समवायविषे अनुमान प्रमाणका अभाव कहणा असंगत है। समाधान-पूर्व उक्त रीतिसे ता समवायके स्वरूपकी ही सिद्धि होती नहीं। यातैं इस अनुमान करिके ता रूपता घटके तादात्म्य संबंधकी ही सिद्धि होवै है। ता समवायकी सिद्धि होवै नहीं। इस प्रकार लक्षण प्रमाण दोनोंके अनिरूपण हुए ता समवायकी सिद्धि होइ सकै नहीं। ता समवायके असिद्ध हुए ता जाति व्यक्तिका तादात्म्य संबंध ही सिद्ध होवै है। यातैं ता जाति व्यक्तिके तादात्म्य दृष्टांतकरिके ता समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म शरीरोंका तादात्म्य संभवै है।

इहां केएक नैयायिक ता समवायकूं अतीन्द्रिय माने हैं और केएक नैयायिक ता समवायकूं प्रत्यक्ष माने हैं तथा केएक नैयायिक ता समवायकूं एक माने हैं और केएक नैयायिक ता समवायकूं नाना माने हैं। ते सर्व नैयायिकोंके मत न्यायप्रकाशके चतुर्थ परिच्छेदविषे समवायनिरूपणविषे विस्तारतैं निरूपण करे हैं जिसकूं जानणेकी इच्छा होवे तिसनें तहांसे जानि लेणा इति। शंका–पूर्व आपनें समष्टि सूक्ष्म शरीरका तथा व्यष्टि सूक्ष्म शरीरका तादात्म्य वर्णन कर्‍या सो संभवता नहीं, काहेतैं कार्यका आपणे उपादान कारणविषे तादात्म्य होवै है। जैसे पटरूप कार्यका आपणे तंतुरूप उपादान कारणविषे तादात्म्य होवै है और ता व्यष्टि सूक्ष्म शरीरका सो समष्टि सूक्ष्म शरीर उपादान ही है किंतु पूर्व उक्त रीतिसे आकाशादिक पंच सूक्ष्म भूत ही उपादान हैं। यातैं समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म शरीरोंका तादात्म्य वर्णन करणा असंगत है। समाधान–जे अपंचीकृत सूक्ष्म भूत ता व्यष्टि सूक्ष्म शरीरके उपादान हैं ते ही सूक्ष्म पंचभूत ता समष्टि सूक्ष्म शरीरके अंतगत हैं। यातैं ता समष्टि सूक्ष्म शरीरविषे ता व्यष्टि सूक्ष्म शरीरका उपादानपणा संभवै है। ता उपादान उपादेय भावके संभव हुए तिन दोनोंका तादात्म्य भी संभवै है इति। अब ता उक्त सूक्ष्म शरीरकूं पुर्य्यष्टकरूपकरिकै वर्णन करे हैं। सो पूर्व उक्त सूक्ष्म शरीर ही अविद्या १ काम २ कर्म ३ इन तीनों करिके युक्त हुआ पुर्य्यष्टक इस नाम करिकै कह्या जावै है। तहां अष्टपुरियोंके समूहका नाम पुर्य्यष्टक है। ते अष्टपुरी यह हैं। पंच ज्ञान इंद्रिय १ पंच कर्म इंद्रिय २ चतुष्टय अंतःकरण ३ पंच प्राण ४ पंच सूक्ष्मभूत ५ अविद्या ६ काम ७ कर्म ८। तहां इंद्रिय अंतःकरण प्राण पंचभूत इनोंका तौ पूव निरूपण करि आये हैं। यातैं अब अविद्या काम कर्म इन तीनोंका निरूपण करे हैं। इहां अविद्या

शब्दकरिके कार्य अविद्या ग्रहण करणी । तहां अन्यविषे अन्य बुद्धिका नाम कार्य अविद्या है। सा कार्य अविद्या भी चारि प्रकारकी होवे है । अनित्यविषे नित्यत्व बुद्धि १, अशुचिविषे शुचित्व बुद्धि २, असुखविषे सुख बुद्धि ३, अनात्मविषे आत्म-बुद्धि ४ । तहां कर्म उपासनाका फलरूप होणेतें अनित्य ऐसे जे स्वर्ग ब्रह्मलोकादिक हैं तिनोंविषे जा नित्यत्व बुद्धि है सा प्रथम अविद्या कही जावै है और मल मूत्रादिकोंकरिके पूर्ण होणेतें अशुचि ऐसा जो आपणा शरीर है तथा स्त्री पुत्रादिकोंका शरीर है तिन शरीरोंविषे जा शुचित्व बुद्धि है सा दूसरी अविद्या कही जावै है और पीडारूप दुःखविषे जा सुखबुद्धि है तथा दुःखके साधन ब्रह्महत्या सुरापानादिकोंविषे जा सुख साधनबुद्धि है सा तीसरी अविद्या कही जावै है और अनात्मरूप देह इन्द्रियादिकोंविषे जा अहं इस प्रकारकी आत्मबुद्धि है सा चतुर्थी अविद्या कही जावै है इति। और यह वस्तु हमारेकूं प्राप्त होवै या प्रकारकी जा अंतःकर-णकी वृत्ति विशेष है ताका नाम राग है ता रागका ही नाम काम है और कर्म तौ संचित १, आगामी २, प्रारब्ध ३ इन भेदकरिके तीन प्रकारका होवै है। सो तीन प्रकारका ही कर्म विहित १, निषिद्ध २ इस भेद करिके पुनः दो प्रकारका होवै है । तहां श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रने जिस कर्मके करणेका विधान कऱ्या है सो कर्म विहित कह्या जावै है । जैसे संध्यावंदन अग्निहोत्र आदिक कर्म हैं । और ता श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रने जिस कर्मके करनेका निषेध कऱ्या है सो कर्म निषिद्ध कह्या जावै है । जैसे ब्रह्महत्या सुरापानादिक कर्म हैं । तहां ता विहित कर्मतें तो इस पुरुषविषे धर्म उत्पन्न होवै है । और ता निषिद्धकर्मतें अधर्म उत्पन्न होवे है । ता धर्म अधर्मकूं ही शास्त्रविषे अदृष्ट अपूर्व इस नाम करिके कहे हैं तहां सो धर्मरूप अदृष्ट तौ इसपुरुषकूं सुख

रूप फलकी प्राप्ति करे हैं । और सो अधर्मरूप अदृष्ट इस पुरुषकूं दुःखरूप फलकी प्राप्ति करे हैं । अब संचित आगामी प्रारब्ध इन तीनोंका स्वरूप वर्णन करे हैं । तहां पूर्व जन्मोंविषे वा इस जन्म विषे करचा हुआ जो कर्म आपने फलकूं न दे करिके केवल अदृष्ट-रूप करिके रहे है सो कर्म संचित कह्या जावै है । और तत्त्वज्ञानतैं पश्चात् करया जो कर्म है सो कर्म आगामी कह्या जावै है । और तिन संचित कर्मोंतैं निकसिके जो कर्म इसवर्त्तमान शरीरका आरंभक होवै है सो कर्म प्रारब्ध कह्या जावै है इति । अब प्रसंगतैं तिन कर्मोंके नाशका वर्णन करे हैं । तहां संचित आगामी इन दोनों कर्मोंका तौ फलके भोगकरिकें नाश होवै है, अथवा विरोधी कर्म-करिकै नाश होवै है अथवा ब्रह्मज्ञानकरिकै नाश होवै है । यद्यपि क्रियारूप कर्मका ता फल भोगादिकतैं विना आप ही नाश हो जावैं है तथापि इहां कर्म शब्दकरिकै ता कर्मजन्य धर्म अधर्मरूप अदृष्टका ग्रहण करणा। ता अदृष्टका तिन भोगादिकोंकरिकै ही नाश होवै है और प्रारब्ध कर्मका तौ केवल फलके भोगकरिकैं ही नाश होवै है । तत्त्वज्ञानकरिकै वा विरोधी कर्मकरिकै नाश होता नहीं । तहां 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि' अर्थ—इस पुरुषने करया हुआ शुभ कर्म वा अशुभ कर्म अवश्य भोगता है । कल्प कोटि शतोंकरिकै भी भोगतैं विना सो कर्म नाश होता नहीं । इत्यादिक वचन तौ भोग-करिकै ता कर्मका नाश कहे हैं । और 'प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यदज्ञान-कृतंभवेत् ' अर्थ—अज्ञानकरिकै करचा जो पाप है सो पाप प्राय-श्चित्तोंकरिकै निवृत्त होवै है । इत्यादिक वचन प्रायश्चित्तरूप विरोधी कर्मकरिकै भी ता पाप कर्मका नाश कहे हैं । याकेविषे भी इतनी विशेषता है । पाप कर्मोंका तौ प्रायश्चित्तरूप विरोधी कर्मक-रिकै नाश होवै है और पुण्य कर्मोंका कर्मनाश नदीके जल स्पर्शा-

दिरूप विरोधी कर्मकरिके नाश होवै है और 'क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा' अर्थ-'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारके ब्रह्म साक्षात्कार हुए उस विद्वान् पुरुषके प्रारब्धकर्मतैं भिन्न सर्व कर्म नाश होवै हैं और ज्ञानरूप अग्निसर्व कर्मोंकूं भस्म करे है। इत्यादिक श्रुति स्मृति वचन ब्रह्मज्ञानकरिके भी ता कर्मका नाश कहे हैं। और 'प्रारब्धं भोगतो नश्येत् भोगेन त्वितरे क्षयित्वा संपद्यते' अथ-प्रारब्ध कम केवल भोग करिके ही निवृत्त होवै हैं और विद्वान् पुरुष फलके भोगतैं प्रारब्ध कर्मोंका नाश करिके शरीरपाततैं अनंतर निर्विशेष ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवै है। इत्यादिक वचन तौ ता प्रारब्धकर्मका केवल भोगकरिके ही नाश कहे हैं। यातैं भोगादिकोंकरिकै सो कर्मका नाश उक्त श्रुति स्मृति आदिक प्रमाणोंकरिकै ही सिद्ध है। शंका-संचित कर्मोंका तौ प्रायश्चित्तकरिकै वा तत्त्वज्ञानकरिके नाश होवो परंतु तत्त्वज्ञानतैं अनंतर करचे हुए जे आगामी कर्म हैं तिनोंका तिस तत्त्वज्ञानकरिके नाश कैसे संभवैगा? समाधान-ज्ञानवान् पुरुषकूं ता ब्रह्मज्ञानके प्रभावते तिन आगामी कर्मोंका लेप होता नहीं, या कारणतैं ते आगामी कर्म तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषके प्रति फलका जनक होते नहीं। यह ही तिन आगामी कर्मोंका नाश जानणा यह वार्त्ता श्री व्यास भगवान्ने भी ब्रह्मसूत्रोंविषे कही है। तहां सूत्र-'तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात्' अर्थ-ब्रह्म साक्षात्कारके हुए ज्ञानवान् पुरुषके पूर्वले संचित पापकर्मोंका तौ नाश होइ जावै है और ज्ञानतैं उत्तर कऱ्ये हुए आगामी पापोंका ता ज्ञानवानकूं लेप ही नहीं होवै है। यह दोनों वार्त्ता श्रुतिविषे कथन करी हैं। तहां श्रुति-'तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयंते' अर्थ-जैसे मुंजकी इषीकाका तूल अग्निविषे पाया हुआ शीघ्र ही दग्ध होइ जावै है

तैसे इस विद्वान् पुरुषके पूर्वले सर्व संचित पापकर्म ब्रह्मज्ञानरूप अग्निकरिकै शीघ्र ही दग्ध होइ जावैं हैं । यह श्रुति तौ तत्त्ववेत्ता पुरुषके पूर्वले संचित पापकर्मोंके नाशकूं कहे हैं । 'यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यत एव मेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते' अर्थ— जैसे जलविषे स्थित कमलके पत्रकूं सो जल लिपायमान करता नहीं, तैसे इस विद्वान् पुरुषकूं पापकर्म लिपायमान करते नहीं। यह श्रुति ता विद्वान् पुरुषविषे आगामी पापकर्मका अलेपपणा कहे है। तहां उक्त सूत्रविषे तथा श्रुतिविषे स्थित जो पाप शब्द है सो पाप शब्द पुण्यका भी उपलक्षण जानणा । जिस कारणतैं 'सुहृदः साधुकृत्यं द्विषंतः पापकृत्य' इस श्रुति विषे तत्त्ववेत्ता पुरुषके आगामी पुण्यकर्मोंकी सेवा करणेहारे भक्तजनोंकूं प्राप्ति कही है और पाप कर्मोंकी द्वेष करणेहारे निंदक पुरुषोंकू प्राप्ति कही है । यातैं ता पाप शब्दकारिकै पुण्य पाप दोनोंका ग्रहण करणा युक्त है इति । किंवा ब्रह्मसाक्षात्कारकारिकै विद्वान् पुरुषके केवल कर्मोंका ही नाश नहीं होवै है । किंतु अविद्यादिक पंच क्लेशोंका भी नाश होवै है । तहां योगशास्त्रविषे अविद्या १ अस्मिता २ राग ३ द्वेष ४ अभिनिवेश ५ यह पञ्च क्लेश कहे हैं । तहां कार्य अविद्या कारण अविद्या यह दो प्रकारकी अविद्या होवै है । सो दोनों प्रकारकी अविद्या पूर्व निरूपण करिकै आये हैं और अहंकारका कारणरूप जा सूक्ष्म अवस्था है सो अस्मिता कही जावै है। इसी अस्मिताकूं सांख्यमतवाले तथा योगमतवाले महत्तत्त्व इस नामकरिकै कहे हैं और वेदांतशास्त्रविषे ता अस्मिताकूं सामान्य अहंकार इस नामकरिकै कथन करे हैं और यह वस्तु हमारेकूं प्राप्त होवै या प्रकारकी जा अंतःकरणकी वृत्ति विशेष है ताका नाम राग है और क्रोधका नाम द्वेष है और अहंममरूपतैं ग्रहण कर्‌ये जे देहादिक पदार्थ हैं तिनोंके त्यागकूं नहीं सहारणा याका नाम अभिनिवेश है । इन पञ्च क्लेशों-

का विस्तारतैं निरूपण तौ आत्मपुराणके अष्टम अध्यायविषे कर्‍या है सो तहांसे जानि लेणा। इन पञ्च क्लेशोंकी भी ता ब्रह्मज्ञानकरिकै ही निवृत्ति होवै है। तहां स्मृति। 'ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः' अर्थ—यह अधिकारी पुरुष स्वयंप्रकाश परब्रह्मकूं 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकार साक्षात्कारकरिकै अविद्यादिक पञ्च क्लेशरूप पाशोंतैं मुक्त होवै है इति। तहां इतने पर्यंत सूक्ष्म शरीरके उत्पत्तिका प्रकार वर्णन कर्‍या। अब स्थूल भूतोंके उत्पत्तिका प्रकार वर्णन करे हैं। तहां पञ्चीकरण भावकूं प्राप्त भये जे पञ्च भूत हैं ते स्थूल भूत कहे जावै हैं। ते स्थूल भूत पूर्व उक्त अपञ्चीकृत पञ्च भूतोंके तामस अंशतैं उत्पन्न होवै हैं। सो पञ्चभूतोंका पंचीकरण इस प्रकार होवै है॥ तहां तमोऽअंश प्रधान जे पूर्व उक्त आकाशादि पञ्च सूक्ष्म भूत हैं तिन भूतोंविषे एक एक भूतके प्रथम समान दो दो भाग कर्‍ये,तिन दोनों भागोंविषे एक एक भागकूं पृथक् राखिकै दूसरे भागके पुनः चारि चारि भाग कर्‍ये तिन चारि भागोंकूं यथाक्रमतैं जो दूसरे चारि भूतोंके अर्द्ध भागविषे मिलावणा है याका नाम पञ्चीकरण है। जैसे एक आकाशके समान दो भाग कर्‍ये तिन दोनोंविषे एक भाग तौ पृथक् राख्या और दूसरे भागके पुनः चारि भाग कर्‍ये तिन चारों भागोंविषे एक भाग तौ वायुविषे मिलाया और दूसरा भाग तेजविषे मिलाया और तीसरा भाग जलविषे मिलाया और चतुथ भाग पृथिवीविषे मिलाया। इस प्रकार वायुके भी समान दो भाग करिकै एक भागकूं पृथक् राखिकै दूसरे भागके पुनः चारि भाग करिकै तिनोंविषे एक भाग आकाशविषे मिलाया,दूसरा भाग तेजविषे मिलाया, तीसरा भाग जलविषे मिलाया, चतुर्थ भाग पृथिवीविषे मिलाया, यह रीति तेजादिक तीन भूतोंविषे भी जानि लेणी। इस प्रकारतैं आकाशादिक पञ्च भूतोंका अर्द्ध अर्द्ध भागतौ आपणा सिद्ध होवै है, और अर्द्ध अर्द्ध

भाग वायु आदिक चारि भूतमय सिद्ध होवै है, और कैएक ग्रन्थकार तौ एक एक भूतके विषम दो दोभाग करिकै अर्थात् एक भाग तौ चारि अंशरूप दूसरा भाग एक अंशरूपकरिकै ता एक अंशरूप अल्प भागके पुनः पञ्चभाग करिकै तिन पंच भूतोंविषे यथाक्रमतैं एक एक भागके मिलावणेकरिकै पंचीकरण माने हैं। यह पंचीकरणका प्रकार आत्मपुराणके एकादश अध्यायविषे स्पष्ट करिकै लिख्या है सो तहांसै जानि लेणा इति । इहां वाचस्पति मिश्रका यह मत है। छांदोग्य उपनिषद्‌विषे तेज जल पृथिवी इन तीन भूतोंकी उत्पत्ति कथन करिकै 'तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकं करवाणि' इस श्रुति करिकै तिन तेजादिक तीन भूतोंका त्रिवृत्करण ही कथन कऱ्या है। तहां एक तेजके समान दोनों भाग कऱ्ये, तिन दो भागोंविषे एक भागकूं पृथक् राखिकै दूसरे भागके पुनः दो भाग कऱ्ये तिन दोनों भागोंविषे एक भाग जलविषे मिलाया, दूसरा भाग पृथिवीविषे मिलाया, यह रीति जलविषे तथा पृथिवीविषे भी जानि लेणी याका नाम त्रिवृत्करण है । इस त्रिवृत्करणविषे सा उक्त श्रुति तथा व्यास भगवान्‌का सुत्र प्रमाण है और ता उक्त पंचीकरणविषे कोई श्रुतिसूत्र प्रमाण है नहीं यातैं सो पंचीकरणका प्रतिपादन असंगत है इति । आचार्य तौ ऐसा कहे हैं। तैत्तिरीय श्रुतिविषे आकाशादिक पंच भूतोंकी उत्पत्ति कथन करी है। ता श्रुतिके विरोध निवृत्त करणेवासतै ता छांदोग्य श्रुतिविषे भी आकाश वायुकी उत्पत्तितैं अनंतर ही तेजादिक तीन भूतोंकी उत्पत्ति ग्रहण करणी और ता छांदोग्य श्रुति विषे तथा व्याससूत्रविषे जो त्रिवृत्करण कह्या है सो त्रिवृत्करण ता पंचीकरणका भी उपलक्षण है,जो कदाचित् ता पंचीकरणकूं नहीं मानिये तौ आकाश वायुके शब्द स्पर्श गुणकी पृथिवी आदिकोंविषे प्रतीति नहीं होणी चाहिये और पृथिवी आदिकोंविषे ता शब्द स्पर्श गुणकी प्रतीति होवै है । यातैं

प्रामाणिक होणेतैं सो पंचीकरण अवश्य मान्या चाहिये इति। शंका–उक्त पंचीकरणकरिकै जो सर्व भूतोंका एकीभाव मानोगे तौ यह पृथिवी है, यह जल है,इस प्रकारका विशेष व्यवहार नहीं संभवैगा। समाधान––ता पंचीकरणके हुए भी तिन पृथिवी आदि भूतोंविषे आपणा आपणा अंश अधिक होवै है और इतर भूतोंका अंश अल्प होवै है। ता अधिक अंशकूं लैके ही यह पृथिवी है यह जल है या प्रकारका विशेष व्यवहार होवै है। यातैं ता पंचीकरणके मानणेविषे भी सो विशेष व्यवहार संभवै है। यह ही व्यवस्था 'वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः' इस सूत्रविषे श्रीव्यास भगवान्‌ने तथा श्रीभाष्यकारोंने कथन करी है इति। अब इस उक्त पंचीकृत करणका प्रयोजन कहे हैं। इस प्रकार तिन आकाशादिक पंच भूतोंके पंचीकरण हुएतैं अनंतर ता पंचीकृत आकाशविषे तौ एक शब्द गुण अभिव्यक्त होता भया और ता पंचीकृत वायुविषे शब्द स्पर्श यह दो गुण अभिव्यक्त होते भये, और ता पंचीकृत तेजविषे शब्द स्पर्श रूप यह तीन गुण अभिव्यक्त होते भये और ता पंचीकृत जलविषे शब्द स्पर्श रूप रस यह चारि गुण अभिव्यक्त होते भये और ता पंचीकृत जलविषे शब्द स्पर्श रूप रस गंध यह पंच गुण अभिव्यक्त होते भये। यद्यपि ते शब्दादिक पंच गुण यथाक्रमतैं अपंचीकृत आकाशादिक भूतोंविषे भी थे तथापि तिन अपंचीकृत भूतोंविषे ते शब्दादिक गुण प्रत्यक्षके योग्य नहीं थे और पंचीकरण हुएतैं अनंतर तिन पंचीकृत भूतोंविषे ते शब्दादिक गुण प्रत्यक्षके योग्यहोते भये, यह ही तिन शब्दादिकोंविषे अभिव्यक्तपणा है। तिन पञ्चगुणोंविषे भी एक एक भूतका एक एक गुण ही असाधारण जानणा और दूसरे गुण तौ कारणतैं प्राप्त हुए जानणे। जैसे पृथिवीविषे अपणा साधारण गुण एक गंध है और दूसरे शब्दादिक चारि गुण आकाशादिक

कारणोंके गुण हैं । इस प्रकार जलादिकोंविषे भी जानि लेणा और तिन पञ्चीकृत पृथिवी आदिक भूतोंतैं ब्रह्मांड उत्पन्न होता भया तथा तिस ब्रह्मांडके अंतर्गत सप्त ऊरपके लोक तथा सप्त नीचेके लोक यह चतुर्दश लोक उत्पन्न होते भये और ता ब्रह्मांडरूप विराट् पुरुषतैं मनु शतरूपा यह दोनों उत्पन्न होते भये और तिन दोनोंतैं मनुष्यादिक सृष्टि उत्पन्न होती भई । तहां जिस प्रकारतैं ता विराट् पुरुषतैं मनु शतरूपाकी उत्पत्ति भई है तथा ता मनु शतरूपातैं मनुष्यादिक सृष्टिकी उत्पत्ति भई है सो प्रकार आत्मपुराणके चतुर्थ अध्यायविषे हमने विस्तारतैं निरूपण कर्‍या है सो तहांसे जानि लेणा । और ता ब्रह्मांडके अंतर्गत जापंचीकृत पृथिवी है ता पृथिवीतैं व्रीहि यवादिक औषधी उत्पन्न होते भये, तिन औषधियोंतैं व्रीहि यवादिक अन्न उत्पन्न होते भये । ता अन्नकूं स्त्रिया तथा पुरुष भोजन करते भये । तहां पुरुष शरीरविषे तौ स्त्री अन्न शुक्ररूप परिणामकूं प्राप्त होता भया । जिस शुक्रकूं रेत भी कहे हैं और ता स्त्री शरीरविषे सो अन्न शोणितरूप परिणामकूं प्राप्त होता भया । तहां पुरुषके वीर्यका नाम शुक्र है और स्त्रीके वीर्यका नाम शोणित है । ता पिता माताके शुक्र शोणिततैं मनुष्यादिक स्थूल शरीर उत्पन्न होते भये और सो स्थूल शरीर भी जरायुज १, अंडज २, स्वेदज ३, उद्भिज्ज ४ इस भेद करिकै चारि प्रकारका होवै है । तहां माताके उदरविषे गर्भकूं आच्छादन करणेहारा जो चर्मविशेष है ताका नाम जरायु है । ता जरायुतैं उत्पन्न होणेहारे शरीर जरायुज कहे जावै हैं । जैसे मनुष्य गौ अश्व अजा आदिक शरीर हैं और अंडतैं उत्पन्न होणेहारे जे शरीर हैं ते अंडज कह्ये जावैं हैं, जैसे पक्षी सर्पादिक शरीर-हैं और उष्णता विशेषरूप स्वेदतैं उत्पन्न होणेहारे जे शरीर हैं ते स्वेदज कह्ये जावै हैं । जैसे यूक मशक

मत्कुण कृमि आदिक शरीर हैं और भूमिकूं भेदन करिके आपणे आपणे बीजतें जे शरीर उत्पन्न होवें हैं ते शरीर उद्भिज्ज कहे जावे हैं, जैसे वृक्ष लता तृण आदिक शरीर हैं। तहां मनुष्यादिक शरीरोंकी न्याई वृक्ष लतादिक भी जीवात्माके शरीर हैं। यह वार्ता न्याय-प्रकाशके द्वितीय परिच्छेदविषे पृथिवीके निरूपणविषे विस्तारतें कथन करी है सो तहांसें जानि लेणी इति। अब ता स्थूल शरीरका अन्य प्रकारतें भेद कहे हैं। सो उक्त स्थूल शरीर समष्टि १, व्यष्टि२ इस भेदकरिके पुनः दो प्रकारका होवे है। तहां पूर्व उक्त पंचीकृत पंचमहाभूत तथा तिन भूतोंका कार्य ब्रह्मांड तथा ता ब्रह्माण्डके अंतर्वर्त्ती कार्य यह सर्व मिलिके समष्टि स्थूल शरीर कह्या जावे है अथवा जैसे अनेक गो व्यक्तियोंविषे गोत्वजाति अनुस्यूत होवै है तैसे जो शरीर सर्व व्यष्टि स्थूल व्यक्तियोंविषे अनुस्यूत होवै है तथा पंचीकृत पंच महाभूतोंका कार्य होवै है तथा सर्व ब्रह्मांडरूप होवै तथा व्यापक होवै है सो शरीर समष्टि स्थूल शरीर कह्या जावे है। अथवा जैसे अनेक वृक्षोंके समूहका नाम वन है तैसे सर्व व्यष्टि स्थूल शरीरोंका जो समुदाय है सो समष्टि स्थूल शरीर कह्या जावे है। ऐसे समष्टि स्थूल शरीरकरिके उपहित जो चैतन्य है सो विराट् वैश्वानर इन दो नामोंकरिके कह्या जावे है। तहां विविध प्रकारतें प्रकाशमान होणेतें ताकूं विराट् कहे हैं और सर्व नरोंका अभिमानी होणेतें ताकूं वैश्वानर कहे हैं और जैसे एक गोव्यक्तितें दूसरी गोव्यक्ति व्यावृत्त होवै है तैसे परस्पर व्यावृत्त जो प्रत्येक स्थूल शरीर है सो व्यष्टिस्थूल शरीर कह्या जावे है। ता व्यष्टि स्थूल शरीरकारकें उपहित जो चैतन्य है सो विश्व इस नामकरिके कह्या जावे है। तहां सो चैतन्य सूक्ष्म शरीरकूं न परित्याग करिके ही ता स्थूल शरीरविषे प्रवेश करे है। या कारणतें ताकूं विश्व कहे

८

हैं और जैसे घटादिक व्यक्तिका तथा घटत्वादिक जातिका परस्पर तादात्म्य होवै है तैसे इस समष्टि स्थूल शरीरका तथा व्यष्टि स्थूल शरीरका भी परस्पर तादात्म्य ही है। तिन दोनों उपाधियोंके तादात्म्य हुए ता वैश्वानर विश्व दोनों उपहित चैतन्योंका भी तादात्म्य ही होवै है। तहां समष्टि स्थूल शरीरके अंतर्गत जे पंचीकृत पंच भूत हैं तिनोंका कार्यपणा इस व्यष्टि स्थूल शरीरविषे है और उपादान कारणका तथा उपादेय कार्यका परस्पर तादात्म्य लोकविषे प्रसिद्ध ही है। यातैं तिन दोनों स्थूल शरीरोंका तादात्म्य संभवै है और यह विश्वनामा जीव जबी मैं वैश्वानर हूं या प्रकारकी अभेद उपासना करे है तबी ता वैश्वानरके साक्षात्कारकरिकै इस जीवकूं ता वैश्वानरके आनंदकी प्राप्ति होवै है। यातैं ता विश्व वैश्वानरके तादात्म्यका वर्णन निष्फल नहीं है किंतु ता उक्त फलके प्राप्तिका हेतु होणेतैं सफल है। अथवा यह अधिकारी पुरुष प्रथम श्रुति उक्त प्रकारतैं विश्व वैश्वानर तैजस सूत्रात्मा प्राज्ञ ईश्वर इन सबोंके स्वरूपकूं जानै तिसतैं अनंतर प्रथम मैं ही वैश्वानर हूं इस प्रकार विश्वकूं वैश्वानररूप करिकै चिंतन करै। तिसतैं अनंतर मैं ही सूत्रात्मा हूं इस प्रकारतैं तैजसकूं सूत्रात्मारूपकरिकै चिंतन करै। तिसतैं अनंतर मैं ही ईश्वर हूं इस प्रकारतैं प्राज्ञकूं ईश्वररूपकरिकै चिंतन करै। तिसतैं अनंतर समष्टि व्यष्टिरूप स्थूल सूक्ष्म कारण उपाधिवाला तथा ॐकारका वाच्यरूप ऐसा जो परब्रह्म है सो मैं हूं। इस प्रकार आत्माकूं सर्वात्मरूप करिकै चिंतन करै। तिसतैं अनंतर मनकी एकाग्रताके हुए यह अधिकारी पुरुष सर्वजगत्‌कूं स्थूल सूक्ष्मादिक क्रमकरिकै अखंड एकरस आनंदरूप निर्विशेष परब्रह्मविषे लय करै। अर्थात् स्थूलकूं सूक्ष्मविषे लय करै और सूक्ष्मकूं कारणविषे लय करै और ता कारणकूं परब्रह्मविषे लय करै। तिसतैं अनंतर ता एकाग्र मनकरिकै मैं अखंड एकरस ब्रह्मानंदरूप हूं इस प्रकारतैं आपणे आत्मा-

कूं साक्षात्कार करै। इस प्रकारके अभिप्रायकरिकै ही पूर्व समष्टि व्यष्टि उपाधियोंका तादात्म्य वर्णन करिकै तत् उपहित चैतन्यों-का तादात्म्य वर्णन कऱ्या है। यातैं सो तादात्म्यका वर्णन निष्फल नहीं है किंतु उक्त रीतितैं आत्मसाक्षात्काररूप फलका हेतु होणेतैं सफल है। यह वार्ता अन्य ग्रंथविषे भी कही है। तहां श्लोक—'समाधि-कालात्प्रागेवं विचिंत्याति प्रयत्नतः। स्थूलसूक्ष्मक्रमात्सर्वं चिदा-त्मनि विलापयेत्' अर्थ—यह अधिकारी पुरुष समाधितैं पूर्व काल-विषे पूर्व उक्त रीतिसे विश्व वैश्वानरादिकोंके अभेदका चिंतन करिकै अति प्रयत्नतैं सर्व जगतकूं ता स्थूल सूक्ष्मादि क्रमतैं चेतन आत्मा-विषे लय करै इति। किंवा यह उक्त अर्थ कल्पतरुकार आचार्यने भी कह्या है। तहां श्लोक—'निर्विशेषं परंब्रह्म साक्षात्कर्तुमनीश्वराः। ये मंदास्तेऽनुकंप्यंते सविशेषनिरूपणैः॥ १ ॥ वशीकृते मनस्येषां सगुणब्रह्मशीलनात्। तदेवाविर्भवेत्साक्षादपेतोपाधिकल्पनम्' ॥२॥ अर्थ—जे मंद पुरुष निर्विशेष ब्रह्मके साक्षात्कार करनेविषे समर्थ नहीं हैं ते मंद पुरुष सविशेष ब्रह्मके निरूपणकरिकै ही गुरु शास्त्रतैं अनुगृहीत करते हैं। ता सगुणब्रह्मकी उपासनातैं तिन पुरुषोंके एकाग्र हुए मनविषे सोई ही सर्व उपाधियोंतैं रहित निर्विशेष ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है इति। किंवा इस उक्त अर्थविषे श्रुति भी प्रमाण है। तहां श्रुति 'एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रका-शते। दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः' अर्थ—यह आत्मा सर्व भूतोंविषे स्थित हुआ भी गूढ होणेतैं अर्थात् अज्ञानकरिकै आवृत होणेतैं सर्व प्राणियोंकूं प्रतीत होता नहीं। किंतु विचारकरिकै अति सूक्ष्म हुई बुद्धिकरिकै ही सूक्ष्म-दर्शी पुरुषोंने सो आत्मा साक्षात्कार करता है इति। शंका—पूर्व आपने स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीन व्यष्टि शरीरोंके यथाक्र-

मतैं अभिमानी विश्व तैजस प्राज्ञ यह तीन जीव कथन करचे हैं, ते तीनों जीव स्वतंत्र हैं अथवा ते तीनों एक ही चैतन्यकी अवस्था-विशेष हैं। तहां प्रथम स्वतंत्र पक्ष जो अंगीकार करो सो संभवता नहीं, काहेतैं जो कदाचित् ते तीनों जीव स्वतंत्र होवेंगे तौ तीनोंका परस्पर भेद भी अवश्य होवेगा। यातैं सुषुप्ति अवस्थाविषे प्राज्ञ-नामा जीवने अनुभव कर्‍ये जे सुखादिक पदार्थ हैं तथा स्वप्न अवस्थाविषे तैजस नामा जीवने अनुभव कर्‍ये जे गज रथादिक पदार्थ हैं तिन पदार्थोंका जाग्रत् अवस्थाविषे विश्वनामा जीवकूं स्मरण नहीं होवेगा। जिस कारणतैं अन्यकरिकै अनुभव कर्‍ये हुए पदार्थोंका अन्यकूं स्मरण होता नहीं। जो कदाचित् अन्य-करिकै अनुभूत पदार्थोंका अन्यकूं स्मरण होता होवै तौ चैत्रनामा पुरुषकरिके अनुभव कर्‍ये हुए पदार्थोंका मैत्रनामा पुरुषकूं भी स्मरण होणा चाहिये। समाधान—विश्व तैजस प्राज्ञ यह तीनों जीव स्वतंत्र नहीं हैं किंतु एक ही प्रत्यक् आत्माकी ते तीनों अवस्था-विशेष हैं। यातैं सो स्मरणकी अनुपपत्तिरूप दोष प्राप्त होवै नहीं तहां जिस प्रकारतैं ते विश्वादिक तीनों एक ही जीवात्माकी अवस्था-विशेष हैं सो प्रकार दिखावै हैं। एक ही सो जीवात्मा जाग्रत् अवस्था-विषे व्यष्टि स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर कारण अविद्या इन तीनोंका अभिमानी हुआ विश्व इस नामकरिकै कह्या जावै है और सोई ही जीवात्मा स्वप्नअवस्थाविषे सूक्ष्म शरीर कारण अविद्या इन दोनोंका अभिमानी हुआ तैजस इस नामकरिकै कह्या जावै है और सोई ही जीवात्मा सुषुप्ति अवस्थाविषे एक कारण अविद्याका अभिमानी हुआ प्राज्ञ इस नामकरिकै कह्या जावै है और सोई ही जीवात्मा समाधि अवस्थाविषे स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीन शरीरोंके अभि-मानतैं रहित हुआ शुद्ध परमात्मारूप होवै है। यद्यपि यह जीवा-

त्मा एक स्थूल शरीरमात्रके अभिमानतैं ही विश्व संज्ञाकूं प्राप्त होवै है तथा एक सूक्ष्म शरीरमात्रके अभिमानतैं ही तैजस संज्ञाकूं प्राप्त होवै है तथापि इहां स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीन शरीरोंके अभिमानतैं जो जीवात्माकी विश्व संज्ञा कही है तथा सूक्ष्म कारण इन दोनों शरीरोंके अभिमानतैं जो तैजस संज्ञा कही है सो त्वंपदार्थके शोधनविषे उपयोगी जो अन्वय व्यतिरेक है तिसके जनावणे वासतैं कही है। सो अन्वय व्यतिरेक यह है। जाग्रत् अवस्थाविषे तौ स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीन शरीरोंका साक्षीरूपकरिकै आत्माका भान होवै है और स्वप्न अवस्थाविषे सूक्ष्म कारण इन दोनों शरीरोंका साक्षीरूपकरिकै आत्माका भान होवै है और सुषुप्ति अवस्थाविषे तौ एक अविद्यारूप कारणशरीरका साक्षीरूपकरिकै आत्माका भान होवै है और समाधि अवस्थाविषे तौ शुद्ध स्वप्रकाश चैतन्यरूपकरिकै ता आत्माका भान होवै है। यह ही ता आत्माका जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति समाधि इन चारि अवस्थावोंविषे अन्वय है और स्वप्न अवस्थाविषे जाग्रत्के स्थूल शरीरका भान होता नहीं और सुषुप्ति अवस्थाविषे स्वप्नके सूक्ष्म शरीरका भी भान होता नहीं और समाधि अवस्थाविषे सुषुप्तिके कारण शरीरका भी भान होता नहीं। यह ही स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीन शरीरोंका व्यतिरेक है। तहां सर्व अनात्माकार वृत्तियोंतैं रहित होइकै जा चित्तकी केवल आत्माकार अवस्था है ताका नाम समाधि है। तिस समाधि अवस्थाविषे इस पुरुषका देहादिक सर्व पदार्थोंविषे अभिमान निवृत्त होइ जावै है यातैं ता समाधि अवस्थाविषे तिन स्थूलादिक तीनों शरीरोंका व्यतिरेक ही होवै है और ता समाधि अवस्थाविषे यह जीव सर्व अभिमानतैं रहित होणेतैं शुद्ध परमात्मारूप ही होवै है। तहां जो जो पदार्थ व्यावृत्त होवै है सो सब अनात्मा ही होवै है और जो सर्वत्र अन्वित होवै

है सो आत्मा ही होवै है। या प्रकारके निश्चयका नाम त्वंपदार्थ शोधन है। सो त्वंपदार्थका शोधनतापूर्वक उक्त अन्वय व्यतिरेककरिकै ही सिद्ध होवै है इति। अब ता उक्त जीवात्माको जाग्रत् १ स्वप्न २ सुषुप्ति ३ मूर्छा ४ मरण ५ यह पंच अवस्था निरूपण करे हैं। तहां पूर्व कथन करे जे श्रोत्रादिक इंद्रियोंके दिग्वातादिक अधिष्ठाता देवता हैं तिन देवतावोंकरिकै अनुगृहीत श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै शब्दादिक विषयोंका अनुभव इस पुरुषकूं जिस अवस्थाविषे होवै है सा अवस्था जाग्रत् अवस्था कही जावै है। और जाग्रत् अवस्थाविषे सुख दुःखरूपभोगके देणेहारे जे पुण्य पापरूप कर्म हैं तिन कर्मोंके उपराम हुए तथा श्रोत्रादिक इंद्रियोंके उपराम हुए जाग्रतके अनुभवजन्य संस्कारोंतैं इस पुरुषकूं जिस अवस्थाविषे शब्दादिक विषय तथा तिनोंके ज्ञान उत्पन्न होवैं हैं सा अवस्था स्वप्न अवस्था कही जावै है और जिस अवस्थाविषे जाग्रत् स्वप्न दोनोंके भोग देणेहारे कर्मोंकी उपरामताकरिकै स्थूल सूक्ष्म शरीरके अभिमानकी निवृत्ति द्वारा सर्व विशेष ज्ञानोंकी उपरामतारूप बुद्धिकी कारण अज्ञानरूपकरिकै स्थिति होवै है साअवस्था सुषुप्तिअवस्था कही जावै है और मुद्गरप्रहारादिक निमित्तकरिके जन्य जो दुःखरूप विषाद है ता विषादकरिकै जिस अवस्थाविषे इस पुरुषके सर्वविशेष ज्ञानोंकी उपरामता होवै है सा अवस्था मूर्छा अवस्था कही जावै है। यह मूर्छा अवस्था जाग्रतादिक अवस्थावोंतैं भिन्न ही अवस्था है। यह वार्त्ता श्रीव्यास भगवानने 'मुग्धेऽर्द्धसंपत्तिः परिशेषात्' इस सूत्रविषे कथन करी है, इस सूत्रका यह अर्थ है, मुद्गर प्रहारादिक निमित्तकरिकै इस पुरुषकूं जा मूर्छा होवै है सा मूर्छा जाग्रतादिक चारि अवस्थावोंविषे कोई अवस्थाके अंतर्भूत है अथवा तिन चारों अवस्थावोंतैं कोई भिन्न अवस्था है। इस प्रकारके संशय हुएतैं अनंतर या प्रकारका वादीका पूर्वपक्ष

प्राप्त भया। श्रुति स्मृति आदिकोंविषे इस जीवात्माकी जाग्रतादिक चारि अवस्था ही कथन करी हैं। तिनोंतैं भिन्न मूर्छा अवस्था कथन करी नहीं यातैं सा मूर्छा तिन जाग्रतादिक अवस्थावोंविषे ही अंतर्भूत है। ताके विषे भी विशेष ज्ञानोंकी उपरामता सुषुप्तिविषे तथा मूर्छाविषे समान होवै है। यातैं सा मूर्छा सुषुप्तिविषे ही अंतर्भूत है ता सुषुप्तितैं भिन्न अवस्था मूर्छा नहीं है। ऐसे पूर्वपक्षके प्राप्त हुए ता उक्त सूत्रकरिके श्रीव्यास भगवानने यह सिद्धांत कन्या है, सो मूर्छा अवस्था तिन जाग्रतादिक चारि अवस्थावोंतैं भिन्न अवस्था है। तहां जाग्रत् स्वप्न अवस्थाविषे विशेष ज्ञानोंका अभाव होता नहीं और ता मूर्छा अवस्थाविषे तौ सर्व विशेष ज्ञानोंका अभाव होवै है। या कारणतैं सा मूर्छा अवस्था ता जाग्रत् स्वप्न अवस्थाविषे भी अंतर्भूत नहीं है और मरण अवस्थातैं अनंतर इस पुरुषका पुनः उत्थान होता नहीं और मूर्छा अवस्थातैं अनंतर तौ इस पुरुषका पुनः उत्थान होवै है। या कारणतैं सा मूर्छा अवस्था तामरण अवस्थाविषे भी अंतर्भूत नहीं है और सुषुप्त पुरुषका मुख प्रसन्न रहे है तथा शरीर निःकंप होवै है और मूर्च्छित पुरुषका मुख विकराल होवै है तथा शरीर भी कंपसहित होवै है। या कारणतैं ता मूर्छाका सुषुप्ति अवस्थाविषे भी अंतर्भाव नहीं है। किंतु परिशेषतैं सा मूर्च्छा तिन जाग्रतादिक चारि अवस्थावोंतैं भिन्न ही अवस्था सिद्ध होवै है और उक्त रीतिस ता सुषुप्तिकी तथा मूर्छाकी परस्पर विलक्षणताके हुए भी सर्व विशेष ज्ञानोंका अभाव दोनोंविषे तुल्य ही होवै है या कारणतैं सा मूर्छा अर्द्धसुषुप्ति कही जावै है इति। और इस शरीरके भोग देणेहारे कर्मोंकी निवृत्तिकरिकै सामान्य विशेष दो प्रकारके देहाभिमानके निवृत्त हुए भावी देवादिक शरीरकीप्राप्ति पर्यंत जा उक्त सप्तदश तत्त्वोंकी पिंडीभाव अवस्था है सा अवस्था मरणअवस्था कही जावै है। इहां

यह तात्पर्य है सो देहाभिमान सामान्य विशेष इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां सुषुप्तिविषे विशेष देहाभिमानके निवृत्त हुए भी इस पुरुषकूं सामान्य देहाभिमान रहे है। ता देहाभिमान करिकै ही यह पुरुष ता सुषुप्तितें उत्थानकूं प्राप्त होवै है। जो कदाचित् इस पुरुषकूं ता सुषुप्तिविषे सो सामान्य देहाभिमान भी नहीं होता तौ इस पुरुषका ता सुषुप्तितैं उत्थान ही नहीं होता। जैसे मरण अवस्थावाले पुरुषका पुनः उत्थान नहीं होवै है। यातैं ता उत्थानरूप हेतुतैं इस पुरुषका ता सुषुप्तिविषे सो सामान्य देहाभिमान अनुमान कऱ्या जावै है। और जाग्रत् अवस्थाविषे तथा स्वप्न अवस्थाविषे इस पुरुषकूं मैं मनुष्य हूं मैं ब्राह्मण हूं इस प्रकारका विशेष देहाभिमान रहे है और मरण अवस्थाविषे इस पुरुषका सो दोनों प्रकारका देहाभिमान निवृत्त होइ जावै है इति। इहां कईएक ग्रन्थकार तौ ता मरण अवस्थाकूं ता मूर्छा अवस्थातैं भिन्न अवस्था मानते नहीं किंतु ता मरण अवस्थाका ता मूर्छा अवस्थाविषे ही अंतर्भाव माने हैं। तहां मूर्छाकूं प्राप्त हुए पुरुषके जो कदाचित् इस देहविषे भोग देनेहारे कर्म बाकी रहे हैं तौ तिस मूर्छातैं इस पुरुषका पुनः उत्थान होवै है और जो कदाचित् ते कर्म नहीं रहे हैं तो इस पुरुषका मरण ही होवै है यातैं सा मरण अवस्था ता मूर्छा अवस्थाके अंतर्भूत ही है इति। किंवा जैसे विश्व तैजस प्राज्ञ यह तीनों एक ही जीवात्मा-की अवस्था विशेष हैं। तैसे वैश्वानर हिरण्यगर्भ ईश्वर यह तीनों भी एक ही परमात्माकी अवस्था विशेष हैं। तहां एक ही परमात्मादेव समष्टि स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म शरीर तथा तिन दोनोंका कारण माया इन तीनोंकरिकै उपहित हुआ वैश्वानर इस नाम करिकै कह्या जावै है और सोई ही परमात्मा देव समष्टि सूक्ष्म शरीर

तथा ताका कारण माया इन दोनों करिकै उपहित हुआ हिरण्यगर्भ इस नामकरिकै कह्या जावै है और सो ही परमात्मा केवल एक मायाकरिकै उपहित हुआ ईश्वर इस नामकरिकै कह्या जावै है इति । अब वैश्वानर हिरण्यगर्भ ईश्वर इन तीनाके उपासनाका फल कहैं हैं। तहां यह जीव जबी मैंहीं वैश्वानर हूं इस प्रकारतैं ता वैश्वानरकी अभेद उपासना करै हैं तबी इस जीवकूं ता वैश्वानर भावकी प्रातिरूप फल प्राप्त होवै है और यह जीव जबी मैंहीं हिरण्यगर्भ हूं इस प्रकारतैं ता हिरण्यगर्भकी अभेद उपासना करै है तबी इस जीवकूं ता हिरण्यगर्भभावकी प्रातिरूप फल प्राप्त होवै है और यह जीव जबी मैंही ईश्वर हूं या प्रकारतैं ता ईश्वरकी अभेद उपासना करै है तबी इस जीवकूं ता ईश्वरभावकी प्रातिरूप फल प्राप्त होवै है । इसी अभेद उपासनाकूं शास्त्रविषे अहंग्रह उपासना कहै हैं इति । शंका— वैश्वानर हिरण्यगर्भ ईश्वर यह तीनों एक ही परमात्माकी अवस्था विशेष हैं। इस तुम्हारे कहने करिकै तीनोंविषे ईश्वरपणा ही सिद्ध होवै है सो संभवता नहीं । काहेतैं 'योऽशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति' इस श्रुतिने अशना पिपासा शोक मोह जरा मरण इत्यादिक सर्व धर्मोंतैं रहित ईश्वरकूं कह्या है और वैश्वानर हिरण्यगर्भ इन दोनोंविषे तौ श्रुतिने क्षुधा भय जन्म मरण बंध मोक्ष इत्यादिक धर्म कथन करे हैं ते सर्व धर्म जीवके ही प्रसिद्ध हैं। तहां हिरण्यगर्भ विराट् पुत्रकूं उत्पन्न करिकै क्षुधातुर हुआ ता विराट् पुत्रके भक्षण करणेवासतैं प्रवृत्त होता भया, तिसकूं देखिकै भयभीत हुआ सो विराट् भाण ऐसे शब्दकूं करता भया । इस प्रकारके ते क्षुधा भयादिक जीवके धर्म आत्मपुराणके चतुर्थ अध्यायविषे स्पष्ट करिकै कहे हैं। यातैं ता वैश्वानर हिरण्यगर्भविषे ईश्वररूपता संभवती

नहीं किंतु जीवरूपता ही संभवै है। समाधान-बहुत श्रुति स्मृति आदिकोंविषे ता वैश्वानर हिरण्यगर्भकूं ईश्वररूपता ही कही है और कोईक श्रुति स्मृतिविषे जो ता वैश्वानर हिरण्यगर्भके जन्मादिक धर्म प्रतिपादन कऱ्ये हैं सो इस अधिकारी पुरुषकूं अनित्यादिक दोष दृष्टिकरिकै तिस हिरण्यगर्भादिक पदतैं वैराग्यकी प्राप्तिवासतैं कथन कऱ्ये हैं । कोई वैश्वानर हिरण्यगर्भके जीवपणेविषे तिन वचनोंका तात्पर्य नहीं है। जो कदाचित् श्रुति प्रतिपादित क्षुधा भयादिक जीव धर्मोंके सम्बन्धतैं ता वैश्वानर हिरण्यगर्भकूं जीवरूप मानिय तौ जीवविषे प्रसिद्ध जे इच्छादिक धर्म हैं तिनोंकूं ईश्वरविषे प्रतिपादन करणेहारी जो 'सोऽकामयत तदैक्षत तन्मनोऽकुरुत' इत्यादिक श्रुति हैं ता श्रुतितैं ता ईश्वरकूं भी जीवरूपता होणी चाहिये। यातैं सो वैश्वानर तथा हिरण्यगर्भ ईश्वररूप ही है जीवरूप नहीं यह सिद्ध भया। तहां जो पुरुष तिस ईश्वरकी अभेद उपासना करै है सो पुरुष तिस ईश्वरभावकूं ही प्राप्त होवै है। यह उक्त उपासनाका फल श्रुति स्मृतिविषे भी कथन कऱ्या है । तहां श्रुति-'तंयथायथोपासते तथैव भवति' अर्थ-यह अधिकारी पुरुष तिस परमात्माकूं जिस जिस वैश्वानरादिरूपकरिकै उपासना करै है तिस तिस रूप विशिष्ट परमेश्वरभावकूं ही सो अधिकारी पुरुष प्राप्त होवै है इति । और यह ही उपासना फल श्रीसदाशिवने रघुनाथके प्रति कह्या है। तहां श्लोक-'येनाकारेण ये मर्त्या मामेवैकमुपासते । तेनाकारेण तेभ्योऽहं प्रसन्नो वाञ्छितं ददे' अर्थ-यह जीव मुझ एकही परमेश्वरकूं जिस जिस आकारकरिकै उपासना करै है तिसी तिसी आकारकरिकै मैं परमेश्वर प्रसन्न हुआ तिन उपासकोंके ताईं वांछित अर्थ प्राप्त करूं हूं इति। यह उक्त अर्थ ही श्रीकृष्ण भगवान्‌ने गीताविषे

'यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यंते कलेवरम्। तन्तमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावितः' इस श्लोककरिके कथन कर्या है इति। शंका—पूर्व उक्त रीतिसे भावनाके उत्कर्ष करिके तिस ईश्वरके साक्षात्कारवाले पुरुषकूं तिस ईश्वरभावकी प्राप्तिरूप फल प्राप्त होवो। परंतु ता भावनाकी मंदता हुए तिस उपासक पुरुषकूं किस फलकी प्राप्ति होवै है। समाधान—ता भावनाके मन्दता हुए इस पुरुषकूं सो पूर्व उक्त फल प्राप्त होवै नहीं। किंतु ता मन्द भावनाकी तारतम्यता-करिके ता उपासक पुरुषकूं सार्ष्टि १ सारूप्य २ सामीप्य ३ सालोक्य ४ यह चारि प्रकारका फल प्राप्त होवै है। तहां आपणे मनुष्यभावकी विस्मृतिपूर्वक जो तिस उपास्य देवभावकी प्राप्ति है यह ही ता भावनाविषे उत्कर्षपणा है और आपणे मनुष्य भावके किंचित् स्मरण पूर्वक जो ता उपास्य देवभावकी प्राप्ति है यह ही ता भावनाविषे मन्दता है। तहां जगत्की उत्पत्ति आदिक व्यापारकूं छोडिके इस उपासक पुरुषकूं जो परमेश्वरके समान ऐश्वर्य तथा भोगोंकी प्राप्ति है याका नाम सार्ष्टि है और इस उपासक पुरुषकूं ता ईश्वरके समान रूपकी जो प्राप्ति है ताका नाम सारूप्य है और ता ईश्वरके समीपवर्तिपणेका नाम सामीप्य है और ता ईश्वरके लोकविषे रहणेका नाम सालोक्य है। इस प्रकारके चारि फलोंकूं सो उपासक पुरुष ता मन्द भावनाकी तारतम्यतातैं प्राप्त होवै है। तहां श्रुति—'साष्टः सायुज्यं सलोकतां जयति' अर्थ—यह उपासक पुरुष ता भावनाकी तारतम्यता करिके हिरण्यगर्भके सायुज्य सालोक्यादिकोंकूं प्राप्त होवै है इति। तहां पूर्व तत्पदार्थके वाच्यार्थनिरूपण प्रसंगकरिके सगुण ब्रह्मके उपासक पुरुषोंकूं तिस तिस उपासना-करिके तिस तिस सगुण ब्रह्मकी प्राप्तिरूप फल निरूपण कर्या। अब निर्गुण ब्रह्मके उपासक पुरुषोंकूं तिस निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्तिरूप

फल वर्णन करे हैं। तहां जे पुरुष विवेकादिक चारि साधनोंकरिके संपन्न हैं तथा मन्द बुद्धिवाले होणेतैं वेदांत शास्त्रके विचार करणेविषे असमर्थ हैं तथा निर्गुण ब्रह्मके जाननेकी जिनोंकूं इच्छा है ते पुरुष श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके मुखतैं ता निर्गुण ब्रह्मका स्वरूप निश्चयकरिकै सर्व स्थूल सूक्ष्म कारण उपाधितै रहित तथा सत् चित् आनंदस्वरूप ऐसा निर्गुण ब्रह्म मैं हूं या प्रकारकी निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करै। ता निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाकरिकै इस अधिकारी पुरुषकूं इसी शरीरविषे जीवित अवस्थाविषे अथवा मरण अवस्थाविषे अथवा ब्रह्मलोकविषे ता निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार होइकै ता निर्गुणब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप फल होवै है। जैसे मणिकी प्रभाविषे मणिबुद्धिकरिकै प्रवृत्त हुए पुरुषकूं ता मणिकी प्राप्तिरूप फल होवै है तैसे निदिध्यासनरूपता निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाकरिकै इस अधिकारी पुरुषकूं ता निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्तिरूप फल होवै है। तहां श्रुति–'ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः' अर्थ–ता निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करिकै अतिशुद्ध हुआ है चित्त जिसका ऐसा सो ध्यान करता हुआ पुरुष ता निर्गुण ब्रह्मकूं साक्षात्कार करै है इति। तहां विचारविषे असमर्थ पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं निर्गुण ब्रह्मस्वरूपकूं परोक्ष निश्चयकरिकै मैं ही निर्गुण ब्रह्म हू या प्रकारकी ता निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करै, ता उपासनातैं तिस पुरुषकूं निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार होवै है। यह उक्त अर्थ श्रीभगवान्ने भी गीताविषे अर्जुनके प्रति कह्या है तहां श्लोक–'अन्ये त्वेवमजानंतःश्रुत्वान्येभ्य उपासते। तेपि चातितरंत्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः' अर्थ–जेपुरुष मंद बुद्धिवाले होणेतैं आप वेदांतशास्त्रके विचार करणेविषे समर्थ नहीं हैं ते पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं ता निर्गुण ब्रह्मके स्वरूपकूं श्रवणकरिकै जबी अहं ब्रह्मास्मि या प्रकारका ध्यान करैतबी ते उपासक पुरुष भी ता

निर्गुण ब्रह्मके साक्षात्कारकरिकै अज्ञानरूप मृत्युकूं अवश्य नाश करे हैं। तहां 'तेपि चातितरंत्येव' इस वचनविषे स्थित अपि शब्दकरिकै श्रीभगवान्‌ने यह कैमुतिक न्याय सूचना कन्य। जबी विचारविषे असमर्थ मंदबुद्धि पुरुष भी ता निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करिकै ता अज्ञानकूं नाश करे हैं तबी विचारविषेसमर्थपुरुष ता अज्ञानकूं नाश करे हैं याके विषे क्या कहना है यातें यह अर्थ सिद्धभया। जितनीक ज्ञानकांडविषे कथन करी हुई सगुण उपासना हैं वा निर्गुण उपासना हैं तिन सर्व उपासनावोंका चित्तकी एकाग्रता द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार ही मुख्य फल है और ब्रह्मलोकादिक तौ तिन उपासनावोंका अवांतर फल है मुख्य फल नहीं है । या कारणतें ही ब्रह्मसूत्रकर्ता श्रीव्यास भगवान्‌ने तिन उपासनावोंका ज्ञानकांडविषे ही विचार कन्या है इति । तहां पूर्व माया उपहित तत् पदार्थ ब्रह्मका जगतके जन्मादिकोंका कारणत्वरूप तटस्थ लक्षण कन्या था सो ही तटस्थ लक्षण ता ब्रह्मतें माया द्वारा सूक्ष्म:स्थूल प्रपंचकी उत्पत्तिके निरूपण करिकै अवपर्यंत सिद्ध कन्या है। इसीका नाम अध्यारोप है । तहां तत् भावतें रहित वस्तुविषे जो तत् बुद्धि है ताका नाम अध्यारोप है। जैसे प्रसंगविषे वास्तवतें जगत् भावतें रहित ब्रह्मविषे जो जगत् बुद्धि है याका नाम अध्यारोप है और अध्यारोप अपवाद इन दोनोंकरिकै ही इस अधिकारी पुरुषके प्रति गुरु शास्त्र ता निर्गुण ब्रह्मका उपदेश करे है । यातें अब ता ब्रह्मविषे अध्यारोपित प्रपंचका अपवाद निरूपण करे हैं । तहां जिस अधिष्ठानविषे जो वस्तु तीन कालमें अविद्यमान हुआ भी भ्रांतिकरिकै प्रतीत होवै है तिसी अधिष्ठानविषे जो ता वस्तुके अभावका निश्चय है याका नाम अपवाद है। जैसे शुक्ति आदिकोंविषे भ्रांतिकरिकै प्रतीत भये जे रजतादिक हैं तिन रजतादिकोंका तिन शुक्ति आदिकोंविषे यह

रजत नहीं है किंतु शुक्ति ही है इस प्रकारका जो अभाव निश्चय है याका नाम अपवाद है। तैसे अधिष्ठान ब्रह्मविषे भ्रांतिकरिकै प्रतीत भया जो पूर्व उक्त मायादिक प्रपंचहै ता प्रपंचका जो तिस अधिष्ठान ब्रह्मविषे यह प्रपंच तीन कालमें नहीं है या प्रकारतैं अभाव निश्चय है,यह ही ता प्रपंचका अपवाद है इसी अपवादकूं शास्त्रविषे बाध कहैं हैं तथा विलापन कहैं हैं। तहां जिस अधिष्ठानविषे जो वस्तु प्रतीत होवै है तिसी अधिष्ठानविषे जो तिस वस्तुका तीन कालविषे अत्यंताभावका निश्चय है ताकूं शास्त्रविषे बाध कहैं हैं। सो यह बाध शास्त्रीय १ यौक्तिक २ प्रात्यक्षिक ३ इन भेदों करिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां 'अथात आदेशो:नेति नेति। नेह नानास्ति किंचन' इत्यादिक शास्त्रतैं जो ता अधिष्ठान ब्रह्मविषे सर्व प्रपंचके अभावका निश्चय होवै है सो शास्त्रीय बाध कह्या जावै है और जैसे मृत्तिकारूप उपादान कारणतैं भिन्नताकरिकै घटरूप कार्यका अभाव ही निश्चय होवै है तैसे सर्व प्रपंचका अभिन्न निमित्त उपादान कारण जो ब्रह्म है ता ब्रह्मतैं भिन्न सर्व प्रपंचका अभाव निश्चयकरिकै ता दृश्य प्रपंचके मिथ्यात्व निश्चयकरिक जो ब्रह्मात्ममात्र ताका निश्चय है सो यौक्तिक बाध कह्या जावै है। और अहं ब्रह्म तत्त्वमसि इत्यादिक महावाक्यजन्य साक्षात्कारकरिकै जो कार्य प्रपंच सहित अज्ञानकी निवृत्ति है सो प्रात्यक्षिक बाध कह्या जावै है। तहां पूर्व उक्त यौक्तिक बाधका यह क्रम है। स्थूल शरीरतैं लेके ब्रह्मांडपर्यंत जितनाक स्थूल प्रपंच है सो पंचीकृत स्थूल भूतोंका कार्य है यातैं ता स्थूल प्रपंचकूं तिन स्थूल भूतोंविषे लय करै अर्थात् तिन स्थूल भूतोंतैं स्थूल प्रपंच भिन्न नहीं है या प्रकारका निश्चय यह अधिकारी पुरुष करै। तिसतैं अनंतर तिन स्थूल भूतोंकूं तथा समष्टि व्यष्टिरूप सर्व सूक्ष्म शरीरोंकूं आपणे कारणरूप अपंचीकृत पंच सूक्ष्म भूतोंविषे लय करै अर्थात् ते स्थूलभूत तथा समष्टि व्यष्टि

सूक्ष्म शरीर तिन सूक्ष्म भूतोंका कार्य होणेतैं तिनोंतैं भिन्न नहीं है या प्रकारका निश्चय करै। तहां पूर्व जिस जिस सूक्ष्म भूतके जिस जिस सात्त्विकादिक अंशतैं जिस जिस इंद्रियादिक कार्यकी उत्पत्ति कथन करी थी तिस तिस कार्यका तिस तिस भूतके सात्त्विकादिक अंशविषे ही लय करणा। तात्पर्य यह स्थूल भूतोंका तिन सूक्ष्म भूतोंके तामस अंशविषे लय करणा और ज्ञान इंद्रिय अंतःकरणका तिन सूक्ष्म भूतोंके सात्त्विक अंशविषे लय करणा और कर्मइंद्रिय प्राणका तिन सूक्ष्म भूतोंके राजस अंशविषे लय करणा और तिन सूक्ष्म भूतोंका भी आपणे आपणे कारणविषे लय करणा। तहां पृथिवीका तौ जलविषे लय करै और ता जलका तेजविषे लय करै और ता तेजका वायुविषे लय करै और ता वायुका आकाशविषे लय करै और ता आकाशका अज्ञानविषे लय करै और ता अज्ञानका चैतन्यमात्रविषे लय करै। इहां यह तात्पर्य है। जो जो कार्य होवै है तिस तिसकी आपण उपादान कारणतैं भिन्न सत्ता होती नहीं यातैं उपादान कारणतैं भिन्न काय नहीं है इस प्रकारका निश्चय करिकै ता कार्यकी विस्मृतिपूर्वक जो ता एक कारणविषयक स्मरण है यह ही ता कार्यका ता कारणविषे विलापन है और सर्व प्रपंचका परम कारण ब्रह्म है यातैं ता सर्व प्रपंचका विस्मरण करिकै जो ता एक ब्रह्मविषयक स्मरण है यह ही ता ब्रह्मविषे सर्व प्रपंचका विलापन है। इसीकूं वेदांतशास्त्रविषे यौक्तिक बाध कहैं हैं। यह ही यौक्तिक बाध विष्णुपुराणविषे भी कथन कऱ्या है। तहां श्लोक- जगत्प्रतिष्ठा देवर्षे पृथिव्यप्सु विलीयते।ज्योतिष्यापः प्रलीयंते ज्योतिर्वायौ प्रलीयते॥ १॥ वायुश्च लीयते व्योम्नि तच्चाव्यक्ते प्रलीयते। अव्यक्त पुरुषे ब्रह्मन्निष्कले संप्रलीयते ॥ २ ॥' अर्थ—हे नारद! जगत्का आधारभूत पृथिवी जलविषे लय होवै है और सो जल तेजविषे लय होवै है और सो तेज वायुविषे लय होवै है और सो

वायु आकाशविषे लय होवै है और सो आकाश अव्यक्तविषे लय होवै है और सो मायारूप अव्यक्त परमात्माविषे लय होवै है इति। और यह उक्त यौक्तिक बाध ही वार्तिककारने 'अकारं पुरुषं विश्वमुकारे प्रविलापयेत्। उकारं तैजसं सूक्ष्मं मकारे प्रविलापयेत्। मकारं कारणं प्राज्ञं चिदात्मनि विलापयेत्।' इत्यादिक वचनोंकरिकै कथन कर्‍या है इति। किंवा इस पूर्व उक्त अध्यारोप अपवाद दोनोंकरिकै तत्त्वं पदार्थका शोधन भी सिद्ध होवै है सो शोधनका प्रकार दिखावै हैं। तहां समष्टि स्थूल शरीर समष्टि सूक्ष्म शरीर माया १ तथा यथाक्रमतैं इन तीनोंकरिकै उपहित वैश्वानर सूत्रात्मा ईश्वर२ तथा तिन सर्वोंका अधिष्ठानरूप निरुपाधिक अखंड चैतन्य ३ यह तीनों तप्त लोह पिंडकी न्याईं एकरूपकरिकै प्रतीत हुए तत्पदका वाच्य अर्थ होवै हैं। और समष्टि स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म शरीर तथा माया इन सर्वोंतैं अन्वय व्यतिरेककरिकै पृथक् निश्चय कर्‍या जो अखंड चैतन्य है सो अखंड चैतन्य तत् पदका लक्ष्य अर्थ होवै है। तहां तत् पदाथके शोधनका उपायभूत अन्वय व्यतिरेकया प्रकारका होवै है। पंचीकृत स्थूल प्रपंचकी स्थिति अवस्थाविषे तौ ता स्थूल प्रपंचका साक्षीरूपकरिकै सो परमात्मा विद्यमान है और ता पंचीकरणतैं पूर्व तौ सूक्ष्म भूतोंका तथा तिनोंके कार्यका साक्षीरूपकरिकै सो परमात्मा विद्यमान है और तिन आकाशादिक सूक्ष्म भूतोंकी उत्पत्तितैं पूर्व प्रलय अवस्थाविषे तौ मायाका साक्षीरूपकरिकै सो परमात्मा विद्यमान होवै है और तत्त्वज्ञानकरिकै ता मायारूप अज्ञानके निवृत्त हुए तथा भोगकरिकै प्रारब्ध कर्मके नाश हुए इस जीवकेवर्त्तमान शरीरके पाततैं अनंतर विदेहमुक्ति अवस्थाविषे सो परमात्मा अखंड स्वप्रकाश चैतन्यरूपकरिकै विद्यमान होवै है। यह ही ता तत्पदार्थरूप परमा

त्माका अन्वय है और समष्टि स्थूल शरीरका पंचीकरणतैं पूर्व भान होता नहीं।और समष्टि सूक्ष्म शरीरका आकाशादिक भूतोंकी उत्पत्तितैं पूर्व भान होता नहीं और मायाका मुक्ति अवस्थाविषे भान होता नहीं । यह ही ता समष्टि स्थूल शरीरका तथा समष्टि सूक्ष्म शरीरका तथा–मायाका व्यतिरेक है । इस प्रकारके अन्वय व्यतिरेककरिकै शोधन कऱ्या जो तत् पदार्थ है सो कार्य सहित मायाके सम्बन्धतैं रहित अखंड सत् चित् आनंद स्वरूप परमात्मा तत्व पदका लक्ष्य अर्थ होवै है इति। अब त्वं पदार्थका शोधन कहैं हैं। तहां व्यष्टि स्थूल शरीर व्यष्टि सूक्ष्म शरीर तिन दोनोंका कारणरूप अविद्या १ तथा यथाक्रमतैं उक्त तीन शरीरों करिकै उपहित विश्व तैजस प्राज्ञ २ तथा तीन सर्वोंका आधाररूप अनुपहित प्रत्येक चैतन्य ३ यह तीनों तप्त लोहपिंडकी न्यांई एकरूप करिकै प्रतीत हुए त्वं पदका वाच्य अर्थ होवै हैं । और अन्वय व्यतिरेक करिकै स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीन शरीरोंतैं पृथक् कऱ्या जो सत चित् आनंद स्वरूप प्रत्यक् चैतन्य है सो त्वं पदका लक्ष्य अर्थ होवै है तहां त्वं पदार्थके शोधनविषे उपयोगी जो अन्वय व्यतिरेक है सो पूर्व कथन करि आये हैं सो इहां भी जानिलेणा इति। अब तिन शोधित तत्त्वम् पदार्थोंका अभेदरूप महावाक्यार्थ वर्णन करे हैं। तहां पूर्व कथन कऱ्या जो तत्पदका लक्ष्य अर्थ शुद्ध चैतन्य है तथा त्वम् पदका लक्ष्य अर्थ शुद्ध चैतन्य है तिन दोनोंलक्ष्य अर्थोंकूं ग्रहण करिकै तिन सम्बन्धों करिकै सहित हुआ तत्त्वमस्यादिक महावाक्य लक्षणा वृत्ति करिकै अखंड अर्थका बोधक होवै है। तहां सामानाधिकरण्य १ विशेषण विशेष्य भाव२ लक्ष्य लक्षण भाव ३ यहतीन सम्बन्ध ता महावाक्यके सहकारी होवैं हैं। तहां तत्त्वमसि इसवाक्यविषे जो तत् त्वम् यह दो पद हैं तिनोंका

तौ परस्पर सामानाधिकरण्य सम्बन्ध है और तिन दोनों पदोंके अर्थोंका परस्पर विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्ध है और तिन दोनों पदोंका अथवा तिन दोनों अर्थोंका अखंड चैतन्यके साथि लक्ष्य लक्षण भाव सम्बन्ध है। अब यह तीनों सम्बन्ध दृष्टांत करिकै स्पष्ट करैं हैं। तहां 'भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तानां शब्दानामेकस्मिन्नर्थे वृत्तिः सामानाधिकरण्यम्' अर्थ--भिन्न भिन्न है प्रवृत्तिका निमित्त जिनोंका ऐसे शब्दोंकी जो एक अर्थविषे वृत्ति है यह ही तिन पदोंका परस्पर सामानाधिकरण्य सम्बन्ध है। जैसे 'सोऽयं देवदत्तः' अर्थ--जो पूर्व देवदत्तनामा पुरुष तुमनैं देख्या था। सोई यह देवदत्त है। इस वाक्यविषे स शब्द तौ तत् देशकाल विशिष्ट देवदत्तका वाचक है और अयं शब्द एतत् देशकाल विशिष्ट देवदत्तका वाचक है। तहां ता एक ही देवदत्तविषे स शब्दके प्रवृत्तिका तौ तत् देशकाल विशिष्टत्व निमित्त है और अयं शब्दके प्रवृत्तिका एतत् देशकालविशिष्टत्व निमित्त है और सोयं यह दोनों शब्द भागत्याग लक्षणा करिकै तिस तत् देशकालविशिष्टत्व अंशका तथा एतत् देशकालविशिष्टत्व अंशका परित्याग करिकै ता एक ही देवदत्त पिंडका बोधन करै है। यह ही सोऽयं इन दोनों शब्दोंका परस्पर सामानाधिकरण्य संबन्ध है। और 'सोऽयं देवदत्तः' इस उक्त वाक्यविषे ही स शब्दका अर्थ जो तत् देशकालविशिष्ट है और अयं शब्दका अर्थ जो एतत् देशकालविशिष्ट है तिन दोनों अर्थोंका परस्पर भेदकी निवृत्ति करणेहारा विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्ध है। तहां 'सोऽयं' इस प्रकारके वाक्य प्रयोगविषे तौ स शब्दका अर्थ विशेष्य है और अयं शब्दका अर्थ विशेषण है। और 'अयं सः' इस प्रकारके वाक्य प्रयोगविषे तौ अयं शब्दका अर्थ विशेष्य है और स शब्दका अर्थ विशेषण है। और 'सोऽयं देवदत्तः' इस वाक्यविषे स्थित 'सः अयं' इन दो शब्दोंकी भागत्याग लक्षणा करिकै

तत् देशकालविशिष्टत्व एतत् देशकालविशिष्टत्व इन दोनों विरोधी अंशोंका परित्याग करिकैं अविरुद्ध देवदत्त पिंडमात्रका ता वाक्यतैं बोध होवै है। यातैं सो देवदत्त पिंडमात्र ही सोऽयं इस वाक्यका लक्ष्य अर्थ है। ऐसे वाक्यार्थ रूप लक्ष्य देवदत्तके साथि सोऽयं इन दोनों पदोंका तथा इन दोनों पदोंके उक्त अर्थका लक्ष्य लक्षण भाव संबंध है तहां जनावणेहारेका नाम लक्षण है और जानणे योग्य अर्थका नाम लक्ष्य है। तहां 'सोऽयं' इन दोनों पदों करिकैं वा इन दोनों पदोंके अर्थ करिकैं सो देवदत्तपिंड जान्या जावै है। यातैं ते पद तथा अर्थ तौ लक्षण हैं और सो देवदत्तपिंड लक्ष्य है इति। अब तत्त्वमसि आदिक महावाक्योंविषे ते तीनों सम्बन्ध घटावैं हैं। तहां 'तत्त्वमसि' इस महावाक्यविषे स्थित तत् पद तौ परोक्षत्व सर्वज्ञत्वादि धर्मविशिष्ट ईश्वर चैतन्यका वाचक है और त्वं पद अपरोक्षत्व अल्पज्ञत्वादिधर्मविशिष्टजीव चैतन्यका वाचक है। तहां परोक्षत्वादि धर्म विशिष्टपणा तौ तत् पदके प्रवृत्तिका निमित्त है और अपरोक्षत्वादिधर्म विशिष्टपणा त्वम् पदके प्रवृत्तिका निमित्त है। यातैं तत् त्वम् इन दोनों पदोंके प्रवृत्तिका निमित्त भिन्न भिन्न है। और तत् त्वम् ये दोनों पद भागत्याग लक्षणा करिकैं एक अखंड चैतन्यके बोधक होवैं हैं। यह ही तिन तत् त्वम् पदोंका परस्पर सामानाधिकरण्य संबंध है और ता तत् पदार्थरूप ईश्वर चैतन्यका तथा त्वं पदार्थरूप जीव चैतन्यका परस्पर भेद भ्रमकी निवृत्ति करणेद्वारा विशेषण विशेष्य भाव संबंध है तहां 'तत्त्वमसि' इस प्रकारके वाक्य प्रयोगविषे तौ सो तत् पदार्थ विशेष्य होवै है और त्वम् पदार्थ विशेषण होवै है। और 'त्वंतदसि' इस प्रकारके वाक्य प्रयोगविषे तौ त्वम् पदार्थ विशेष्य होवै है और तत् पदार्थ विशेषण होवै है। इस प्रकार तत् त्वं पदार्थ दोनोंका परस्पर अभे-

दरूपतैं विशेषण विशेष्य भाव करणेतैं तिन दोनोंके भेद भ्रमकी निवृत्ति होइ जावै है और तत् त्वम् इन दोनों पदोंका तथा तिन दोनों पदोंके अर्थरूप ईश्वर जीवका वाक्यार्थभूत अखंड चैतन्यके साथि लक्ष्य लक्षणभाव संबंध है। तहां ते तत् त्वं पद तथा तिन पदोंके अर्थ ता परोक्षत्व अपरोक्षत्वादिक विरुद्ध अंशका परित्याग करिकै ता अविरुद्ध अखंड चैतन्यमात्रकूं ही लखावै हैं। यातैं तिन पदों विषे तथा तिन अर्थविषे तौ लक्षण रूपता है और ता अखंड चैतन्यविषे लक्ष्य-रूपता है। यह उक्त तीन संबंध ही अन्य ग्रंथविषे 'सामानाधिकरण्यं च विशेषणविशेष्यता। लक्ष्यलक्षणभावश्चपदार्थप्रत्यगात्मनाम्' इस श्लोक करिकै कथन करे हैं शंका-अन्य वेदांत ग्रंथोंविषे तत्त्व-मसि आदिक वाक्योंकूं भागत्याग लक्षणा करिकै अखंड चैतन्य-का बोधकपणा कथन कऱ्या है और इहां आपणे लक्ष्य लक्षणभाव संबंध करिकै अखंड चैतन्यका बोधकपणा कथन कऱ्या। यातैं तिन ग्रंथोंके साथि इस ग्रन्थका विरोध होवैगा। समाधान—लक्ष्य लक्षणभाव तथा भागत्याग लक्षणा इन दोनोंका नाम मात्रतैं भेद है। अर्थतैं भेद नहीं है यातैं सो विरोध होवै नहीं। इसी अभि-प्राय करिकै वाक्यवृत्ति ग्रंथविषे आचार्योंने तत्त्वमसि आदिक वाक्योंकूं भागत्याग लक्षणा करिकै अखंड अर्थका बोधकपणा कह्या है। तहां श्लोक 'तत्त्वमस्यादिवाक्यं च तादात्म्यप्रतिपादने। लक्ष्यौतत्त्वंपदार्थौद्वावुपादायप्रवर्तते' अर्थ-तत्त्वमसि आदिक महा-वाक्य तत् त्वम्रूप'दोंके लक्ष्य अर्थोकूं लैके ही अखंड स्वरूपके प्रति-पादनविषे प्रवृत्त होवै है इति। किंवा जैसे लोकविषे 'घटमानय नीलोत्पलम्' इत्यादिक वाक्य पदार्थोंके संसर्गकावा विशिष्ट अर्थका बोधक होवै है तैसे तत्त्वमसि आदिक वाक्य संबंधरूप संसर्गका वा विशिष्ट अर्थका बोधक होवै नहीं। किंतु एक अखंड ब्रह्मस्व-रूपके ही बोधक होवै है। यह वार्ता भी ता वाक्यवृत्ति ग्रंथविषे

आचार्योंने कथन करी है। तहां श्लोक। 'संसर्गोवाविशिष्टो वा वाक्यार्थो नात्रसंमतः अखंडैकरसत्वेन वाक्यार्थो विदुषां मतः' अर्थ- वेदांत शास्त्रविषे तत्त्वमसिइ आदिक वाक्योंका संसर्ग वाक्यार्थ वा विशिष्ट वाक्यार्थ संमत नहीं है, किंतु अखंड एक रस ब्रह्म ही वाक्यार्थरूप करिकै विद्वान् पुरुषोंकूं संमत है इति। शंका—मैं ईश्वर नहीं हूं यह लोकोंका प्रत्यक्ष जीव ईश्वरके भेदकूं ही विषय करै है। तथा 'द्वासुपर्णासयुजासखाया' इत्यादिक श्रुति भी ता जीव ईश्वरके भेदकूं ही प्रतिपादन करै हैं। यातैं ता प्रत्यक्ष श्रुतितैं विरुद्ध अखंड अर्थकूं ते महावाक्य कैसे प्रतिपादन करैंगे। समाधान—'तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि अयमात्मा ब्रह्म प्रज्ञानं ब्रह्म' इत्यादिक बहुत श्रुतियों- विषे जीव ईश्वरका अभेद ही कथन कऱ्या है। तिन श्रुतियोंतैं विरुद्ध होणेतैं सो उक्त प्रत्यक्ष भ्रमरूप ही है। जैसे चन्द्रमाके स्वल्प परि- माणकूं विषय करणेहारा लोकोंका प्रत्यक्ष ता चंद्रमाके महत् परिमाणकूं कथन करणेहारे ज्योतिष शास्त्रतैं विरुद्ध होणेतैं भ्रम- रूप होवै है तैसे सो भेद विषयक प्रत्यक्ष भी ता अभेद बोधक श्रुतितैं विरुद्ध होणेतैं भ्रमरूप ही है। किंवा ता वादीने जो जीवात्मा- विषे ईश्वरका भेद मान्या है सो भेद धर्म अधर्मकी न्याईं प्रत्यक्षके योग्य ही नहीं है॥ काहेतैं चक्षु आदिक बाह्य इंद्रियों करिकै तौ बाह्यरूपादिकोंका ही प्रत्यक्ष होवै है। आत्माका वा आत्मवृत्ति धर्मका तिन चक्षुआदिक इंद्रियों करिकै प्रत्यक्ष होता नही। यातैं ता भेदका चक्षु आदि इंद्रियों करिकै तौ प्रत्यक्ष संभवती नहीं। और मनविषे तौ इंद्रियरूपता ही संभवता नहीं। यातैं मन करिकै भी ता भेदका प्रत्यक्ष संभवता नहीं और ता भेदकूं जो साक्षी भास्य मानिये तौ स्वप्न पदार्थोंकी न्याईं सो भेद प्रतीतिक ही होवै- गा। ऐसे प्रतीतिक भेदविषयक प्रत्यक्ष करिकै ता अभेद बोधक

श्रुतिका बाध संभवता नहीं। किंतु उलटा ता श्रुति करिकै ही ता प्रत्यक्षका बाध संभव है। यातैं ता प्रत्यक्षतैं जीव ईश्वरके भेदकी सिद्धि होवै नहीं। और 'द्वासुपर्णा' इत्यादिक उक्त श्रुतिका ता जीव ईश्वरके भेदविषे तात्पर्य नहीं है। किंतु ता लोकसिद्ध भेदका अनुवाद करिकै ता श्रुतिका अखंड ब्रह्मविषे ही तात्पर्य है। काहेतैं जिस अर्थका ज्ञान इष्टफलकी प्राप्ति करै है तथा जो अर्थ प्रत्यक्षादिक प्रमाणों करिकै अज्ञात होवै है तिस अर्थविषे ही श्रुतिका तात्पर्य होवै है। और सो जीव ब्रह्मका भेद अज्ञात नहीं है। किंतु शास्त्र संस्कारोंतैं रहित पुरुषोंकूं भी मैं ईश्वर नहीं हूं इस प्रकारतैं ज्ञान ही है। और ता भेदके ज्ञानतैं कोई इष्ट-फलकी प्राप्ति भी होती नहीं। उलटा 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति यइह नानेवपश्यति' इस श्रुतिने ता भेददर्शी पुरुषकूं पुनः पुनः जन्म मरणकी प्राप्ति ही कथन करी है। तथा 'अथयोऽन्यां देवतामुपास्ते ऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेदयथा पशुः' इस श्रुतिने ता भेद-दर्शी पुरुषकूं पशुके तुल्य कह्या है। यातैं ता श्रुतिका जीव ब्रह्मके भेद-विषे तात्पर्य नहीं है किंतु अखंड ब्रह्मविषे ही तात्पर्य है। तहां सो अखंड ब्रह्म प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंका अविषय होणेतैं अज्ञात भी है और 'तरति शोकमात्मवित्। ब्रह्मविदाप्नोतिपरम् ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इत्यादिक श्रुतियोंनैं ता अखंड ब्रह्मके अज्ञानका अनर्थकी निवृत्ति तथा परमानंदकी प्राप्तिरूप फल कथन कर्‍या है यातैं ता अखंड ब्रह्मविषे ही ता श्रुतिका तात्पर्य सिद्ध होवै है। शंका—अखंड ब्रह्म ही महावाक्योंका अर्थ है यह पूर्व आपनै कह्या। तहां ब्रह्मविषे सो अखंडपणा क्या है? ऐसी शंकाके प्राप्त हुए अब मतभेदसे ता अखंडपणेका निरूपण करै है तहां 'विजातीयस्वजातीयस्वगतभेदशून्यत्वम् अखण्ड-

त्वम्' अर्थ-विजातीय भेद १ सजातीय भेद २ स्वगत भेद ३ इन तीन भेदौंतैं जो रहितपणा है यह ही ता ब्रह्मविषे अखंडपणा है। अब ब्रह्मविषे तिन तिन भेदोंके अभाव दिखावणे वास्तैं प्रथम अनात्म वस्तुवोंविषे ते तीनों भेद दिखावैं हैं। तहां विलक्षण जातिवाले पदार्थोंका जो परस्पर भेद है सो भेद विजातीय भेद कह्या जावै है जैसे वृक्षोंविषे जो घट पटादिक पदार्थोंका भेद है तथा तिन घट पटादिक पदार्थोंविषे जो तिन वृक्षोंका भेद है सो भेद विजातीय भेद कह्या जावै है और समानजातिवाले पदार्थोंका जो परस्पर भेद है सो भेद सजातीय भेद कह्या जावै है जैसे पिप्पलके वृक्षका जो निंबके वृक्षविषे भेद है तथा ता निंबके वृक्षका जो ता पिप्पलके वृक्षविषे भेद है सो भेद सजातीय भेद कह्या जावै है और वृक्षविषे स्थित जे पत्र पुष्प शाखादिक हैं तिन पत्रादिकोंका जो ता वृक्षविषे भेद है सो भेद स्वगत भेद कह्या जावै है। इस प्रकार सर्व अनात्म पदार्थ उक्त तीन भेदवाले ही हैं और ब्रह्मविषें उक्त तीन भेदोंमें कोई प्रकारका भी भेद संभवता नहीं सो दिखावैं हैं। तहां ब्रह्मविषे विजातीय भेद तबी सिद्ध होवै जबी ब्रह्मतैं भिन्न कोई वस्तु सत्य होवैं। सो ब्रह्मतैं भिन्न कोई वस्तु सत्य है नहीं, किंतु अविद्या सहित सर्व कार्य प्रपंच ता अधिष्ठान ब्रह्मविषे कल्पित होणेतैं मिथ्या ही है। यातैं ता ब्रह्मविषे सो विजातीय भेद संभवता नहीं और ता ब्रह्मविषे सो सजातीय भेद तबी सिद्ध होवै जबी ता ब्रह्मके सजातीय कोई दूसरा पदार्थ होवै सो ब्रह्मके सजातीय कोई दूसरा पदार्थ है नहीं। जो कहो जीव ब्रह्मके सजातीय है सो कहणा भी संभवता नहीं। काहे तें 'तत्त्वमसि। अहंब्रह्मास्मि। अयमात्माब्रह्म। क्षेत्रज्ञंचापिमा विद्धि' इत्यादिक श्रुति स्मृतियोंनै जीव ब्रह्म दोंनोकी अत्यंत एकता कथन करी है और सजातीयपणा तौ भिन्न वस्तुविषे होवै है।

अभिन्न वस्तु विषे सजातीयपणा होता नहीं । यातें ता ब्रह्मविषे सो सजातीय भेद भी संभवता नहीं और ता ब्रह्मविषे सो स्वगत भेद तबी सिद्ध होवै जबी ता ब्रह्मविषे अवयव गुण क्रिया जाति संबंध इन पांचो विषे कोई भी विद्यमान होवै परंतु तिन पांचों विषे कोई भी धर्म ता ब्रह्मविषे है नहीं । जिस कारणतैं 'निष्फलं निष्क्रियं शांतं-निरवद्यं निरंजनम् । साक्षी चेतःकेवलो निर्गुणश्च । असंगो ह्ययं पुरुषः नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयंसनातनः' इत्यादिक श्रुति स्मृतियोंनैं ता ब्रह्मविषे तिन अवयवादिक पांचोंका निषेध कऱ्या है । यातें ता ब्रह्मविषे सो स्वगत भेद भी संभवता नहीं । ऐसे उक्त तीन भेदोंतें जो रहितपणा है यह ही ता ब्रह्मविषे अखंडपणा है । तहां एक स्वगत भेदतें रहितपणेकूं जो अखंडपणा कहत तौ सांख्ययोंके आत्मविषे ता अखंडपणेके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती जिस कारणतैं ते सांख्य मतवाले भी ता आत्माकूं अवयव गुण क्रिया जाति संबंध इन पांचोंतें रहित ही मानै हैं । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतैं ता लक्षण-विषे सजातीय भेदतें रहितपणा कथन कऱ्या है । तहां ते सांख्यमत-वाले नाना आत्मा मानै हैं यातें तिनोंके मतविषे सो आत्मा सजातीय भेदतें रहित नहीं है किंतु सजातीय भेदवाला ही है । यातें ता आत्माविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा सजातीय स्वगत इन दो भेदोंतें रहितपणेकूं जो अखंडपणा कहते तौ आकाशविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती काहेतें सो आकाश एक है । यातें सजातीय भेदतें भी रहित है और निरवयव निष्क्रिय है, यातें स्व-गत भेदते भी रहित है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतैं ता लक्षणविषे विजातीय भेदतें रहितपणा कथन कऱ्या है । तहां सो आकाश विजातीय भेदतें रहित नहीं है । किंतु पृथिवी आदिक

विजातीय पदार्थोंके भेदवाला ही है। यातैं ता आकाशविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा एक विजातीय भेदतैं रहितपणेकूं जो अखंडपणा कहते तौ ता ब्रह्मविषे सजातीय स्वगत इन दो भेदोंकी प्राप्ति होवैगी। ताकरिकै 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इस श्रुतिका विरोध होवैगा। ता श्रुतिविरोधके निवृत्ति करणेवासतैं ता लक्षणविषे सजातीय भेदतैं रहितपणा कह्या है और ता ब्रह्मविषे एकरसत्वके सिद्ध करणेवासतैं स्वगत भेदतैं रहितपणा कह्या है इति। अथवा ता अखंडपणेका यह लक्षण करणा। 'त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वमखंडत्वम्।' अर्थ–देशपरिच्छेद १ कालपरिच्छेद २ वस्तुपरिच्छेद ३ इन तीन परिच्छदोंतैं जो रहितपणा है यह ही ता ब्रह्मविषे अखंडपणा है। अब ब्रह्मविषे तीन परिच्छेदोंतैं रहितपणा दिखावणेवासतैं प्रथम अनात्म वस्तुवोंविषे ते तीनों परिच्छेद दिखावैं हैं। तहां अत्यंताभावका जो प्रतियोगीपणा है ताका नाम देशपरिच्छेद है जैसे घटत्वादिक धर्मोंका पटादिकोंविषे अत्यंताभाव रहै है ता अत्यंताभावका प्रतियोगीपणा तिन घटत्वादिक धर्मोंविषे रहै हैं। यह ही तिन घटत्वादिक धर्मोंविषे देशपरिच्छद है। और प्रागभावका तथा प्रध्वंसाभावका जो प्रतियोगीपणा है ताका नाम कालपरिच्छेद है। जैसे घटका आपणी उत्पत्तितैं पूर्व आपणे उपादान कारणरूप कपालोंविषे प्रागभाव रहै है तथा आपणे नाशतैं अनंतर तिन कपालोंविषे प्रध्वंसाभाव रहै है ता प्रागभावका तथा प्रध्वंसाभावका प्रतियोगीपणा ता घटविषे रहै है, यह ही ता घटविषे कालपरिच्छेद है और अन्योन्याभावके प्रतियोगीपणेका नाम वस्तुपरिच्छेद है। जैसे घटका पटविषे भेद रहै है और पटका ता घटविषे भेद रहै है। ता भेदरूप अन्योन्याभावका प्रतियोगीपणा ता घट पटकूं है। यह ही तिन घट पटादिकोंविषे वस्तुपरिच्छेद है। इस प्रकार सर्व अनात्मपदार्थ उक्त तीन परिच्छे-

दवाले ही हैं और ब्रह्मविषे उक्त तीन परिच्छेदोंमें कोई प्रकारका भी परिच्छेद रहता नहीं सो दिखावै हैं। तहां 'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः। महतो महीयान्' इत्यादिक श्रुतियोंनें ब्रह्मकूं विभु कह्या है और विभु द्रव्यका कोई भी स्थानविषे अत्यंताभाव होता नहीं। यातैं ता ब्रह्मविषे सो देशपरिच्छेद संभवता नहीं। और 'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म। न जायते म्रियते वा कदाचित्' इत्यादिक श्रुतियोंनै ता ब्रह्मकूं उत्पत्ति विनाशतैं रहित नित्य कह्या है और नित्य वस्तुका प्रागभाव तथा प्रध्वंसाभाव होता नहीं। यातैं ता ब्रह्मविषे सो कालपरिच्छेद भी संभवता नहीं और स्वप्नपदार्थोंकी न्याईं सर्वजगत् ब्रह्मविषे आरोपित होणेतैं मिथ्या है और आरोपित मिथ्या वस्तु अधिष्ठानतैं भिन्न सत्तावाला होता नहीं। यातैं सो अधिष्ठान ब्रह्म ही ता सर्व जगत्का आत्मारूप है। या कारणतैं ता ब्रह्मविषे सो वस्तुपरिच्छेद भी संभवता नहीं। तहां श्रुति। 'वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मनं सर्वगतं विभुत्वात्' अर्थ—जो ब्रह्म अजर है तथा पुराण है तथा सर्वका आत्मारूप है तथा विभु होणेतैं सर्वगत है ऐसे ब्रह्मकूं मैं अपरोक्ष जानता हूं इति। और कल्पतरु ग्रन्थके कर्त्ता आचार्यनें तौ ता अखंडपणेका यह लक्षण कह्या है। 'अपर्य्यायानेकशब्दप्रकाश्यत्वे सति अविशिष्टत्वम् अखंडत्वम्' अर्थ—अपर्याय तथा अनेक ऐसे जे शब्द हैं तिन शब्दों करिकै जो वस्तु प्रकाशित होवै तथा विशिष्ट भावतैं रहित होवै सो वस्तु अखंड कह्या जावै है। तहां 'तत्त्वमसि, अहंब्रह्मास्मि' इत्यादिक महावाक्योंविषे स्थित जे तत् त्वम् आदिक शब्द हैं ते शब्द वाच्य अर्थके भेदतैं अपर्याय भी हैं तथा अनेक भी हैं। शब्दों करिकै सो ब्रह्म प्रकाशित है तथा विशिष्टभावतैं रहित भी है यह ही ता ब्रह्मविषे अखंडपणा है। तहां 'घटःकलशः' इन अनेक शब्दों करिकै यद्यपि घट प्रकाशित है तथापि ते शब्द अपर्याय नहीं हैं किंतु पर्याय ही हैं। और 'नीलमुत्पलम्' इन

अपर्याय अनेक शब्दों करिकै यद्यपि उत्पल प्रकाशित है तथापि सो उत्पल विशिष्ट भावतैं रहित नहीं है किंतु नीलगुण विशिष्ट ही है। यातैं तिन घट नील उत्पलादिकों विषे ता अखंडपणेके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। यद्यपि 'यतोवाचोनिवर्त्तंतेअप्राप्यमनसा-सह' इत्यादिक श्रुतियोंने ब्रह्मकूं मन वाणीका अविषय कह्या है। यातैं ता ब्रह्मविषे साक्षात् शब्द प्रकाश्यत्व संभवता नहीं तथापि वाच्यार्थभूत माया अंतःकरण द्वारा लक्षणावृत्ति करिकै ता ब्रह्मविषे शब्द प्रकाश्यत्व संभवे है। जो कदाचित् लक्षणावृत्ति करिकै भी ता ब्रह्मविषे शब्द प्रकाश्यत्व नहीं मानिये तौ 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' अर्थ-उपनिषद्‌रूप शब्द प्रमाण करिकै जानणे योग्य तिस परमात्माके स्वरूपकूं मैं तुम्हारेसैं पुछता हूं। इस श्रुतिका विरोध प्राप्त होवैगा। यातैं तत्त्वमसि आदिक महावाक्य तत् त्वं पदके लक्ष्य अर्थकूं ग्रहण करिकै ता अखंड स्वरूपके प्रतिपादन-विषे प्रवृत्त होवैं हैं यह उक्त अर्थ सर्व दोषतैं रहित है इति। शंका- उक्त रीतिसे तत्त्वमसि आदिक वाक्य ता अखंड अर्थके बोधक होवो परन्तु ता अखंड अर्थके बोध करिकै इस अधिकारी पुरुषकूं कौन फल होवै है। समाधान-श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु जबी इस अधिकारी पुरुषके प्रति तत्त्वमसि आदिक महावाक्यका उपदेश करै है तबी इस अधिकारी पुरुषकूं भागत्याग लक्षणा करिकै माया अंतःकरणादिक वाच्य भागके परित्याग पूर्वक अखंड ब्रह्मका ज्ञान होवै। अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि ब्रह्मैवाहमस्मि' या प्रकारका परस्पर अभेद विषयक अपरोक्ष ज्ञान होवै है। तहां 'अहंब्रह्मास्मि' यह वृत्ति तौ अहं पदार्थ प्रत्यक् आत्माविषे ब्रह्मके अभेदकूं विषय करै है और 'ब्रह्मैवाहमस्मि' यह वृत्ति तौ ब्रह्मविषे ता प्रत्यक् आत्माके अभेदकूं विषय करै है। तहां अहं पदार्थ प्रत्यक् चेतनविषे सर्वांकूं

अपरोक्षपणा तथा आत्मपणा सिद्ध है और ब्रह्मकूं परोक्ष तथा अनात्म मानैं हैं। जबी प्रत्यक् आत्माविषे ब्रह्मके अभेदकूं विषय करणेहारा 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका अपरोक्ष ज्ञान होवै है तबी ता ज्ञानतैं ब्रह्मके परोक्षपणेकी तथा अनात्मपणेकी निवृत्ति होइ जावै है और इस जीवात्माकूं लोक परिच्छिन्न मानैं हैं तथा अब्रह्मरूप मानैं हैं। जबी ता ब्रह्मविषे इस जीवात्माके अभेदकूं विषय करणेहारा 'ब्रह्मैवाहमस्मि' या प्रकारका अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न होवै है तबी ता ज्ञानतैं इस जीवात्माके परिच्छिन्नपणेकी तथा अब्रह्मपणेकी निवृत्ति होइ जावै है। यातैं इस अधिकारी पुरुषनैं ब्रह्मविषे परोक्षत्व अनात्मत्व शंकाकी निवृत्ति करणेवासतैं तथा आपण आत्माविषे परिच्छिन्नत्व अब्रह्मत्व शंकाकी निवृत्ति करणेवासतैं 'अहंब्रह्मास्मि, ब्रह्मैवाहमस्मि' या प्रकारतैं आत्मा ब्रह्मका परस्पर अभेद निश्चय करना। इस प्रकार तत्त्वमसि आदिक महावाक्योंतैं जन्य जो अखंडब्रह्माकार अपरोक्ष वृत्ति है ता अपरोक्ष वृत्तिरूप ज्ञान करिकै कार्य प्रपंच सहित अज्ञानरूप अनर्थकी निवृत्ति होवै है। तथा यह प्रत्यक् आत्मा अखंड एकरस ब्रह्मानंदरूप करिकै स्थित होवै है तहां श्रुति।'तरति शोकमात्मवित्। ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' अर्थ-आत्माके साक्षात्कारवाला पुरुष सर्व अनर्थरूप शोककूं नाश करै है और 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकार ब्रह्मकूं आपणा आत्मारूप करिकै जानणेहारा विद्वान् पुरुष ब्रह्मरूप ही होवै है। इत्यादिक अनेक श्रुतियां ता ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं ता ब्रह्मसाक्षात्करिकै अज्ञानकी निवृत्ति तथा ब्रह्मानंदकी प्राप्तिरूप फल कथन करै हैं इति। इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-श्रीस्वामि उद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचिते प्राकृततत्त्वानुसंधाने प्रथमपरिछेदः समाप्तः। १॥

ॐ श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

तत्त्वानुसंधान-

द्वितीय परिच्छेद ।

तहां तत्त्वमसि आदिक वाक्य करिकै जन्य जो अखंड ब्रह्म विषयक अपरोक्ष वृत्ति है ता करिकै इस अधिकारी पुरुषकूं अज्ञानकी निवृत्ति तथा परमानंदकी प्राप्ति होवै है यह वार्त्ता पूर्व प्रथम परिच्छेदके अंतविषे कही थी, ताके विषे यह जिज्ञासा होवै है। ता वृत्तिका क्या स्वरूप है और ता वृत्तिविषे कौन प्रमाण है और ता वृत्तिकी किस प्रकारतैं उत्पत्ति होवै है और तिस वृत्ति करिकै कौन प्रयोजन सिद्ध होवै है। ऐसी जिज्ञासाके प्राप्त हुए प्रमा अप्रमा इस भेदतैं दो प्रकारकी वृत्तिके निरूपण करणेवासतैं प्रथम ता वृत्तिका सामान्य लक्षण कहै हैं। शंका-प्रमाण करिकै ही प्रमेयकी सिद्धि होवै है। यातैं ग्रंथविषे प्रथम प्रमाणका ही निरूपण कऱ्या चाहिये। तिसतैं अनंतर प्रमेयका निरूपण कऱ्या चाहिये। या कारणतैं ही न्यायशास्त्रविषे प्रथम प्रमाणका निरूपण करिकै पश्चात् प्रमेयका निरूपण कऱ्या है और आप तौ प्रथम परिच्छेदविषे ब्रह्मात्मरूप प्रमेयका निरूपण करिकै इस द्वितीय परिच्छेदविषे प्रमाणका निरूपण करो हो। यातैं यह आपका निरूपण सर्व शास्त्रतैं विरुद्ध है। समाधान-अन्य न्यायादिक शास्त्रोंविषे प्रमेयकूं जडपणा होणेतैं ता प्रमेयकी प्रमाणके अधीन ही सिद्धि होवै है। यातैं तिन अन्य शास्त्रोंविषे तौ प्रथम प्रमाणका निरूपण करिकै ही पश्चात् प्रमेयका निरूपणकरना उचित है और इस वेदांत शास्त्रविषे तौ सर्वप्रमाणादिक व्यवहारोंका साधक अद्वितीय आत्मारूप साक्षी चैतन्यही प्रमेय

है यातें इस वेदांत शास्त्रविषे तो प्रथम ता चैतन्यरूप प्रमेयका निरूपण करिकै ही पश्चात् तिन प्रमाणादिकोंका निरूपण करणा उचित है। यह वार्ता संक्षेप शारीरक ग्रंथविषे श्रीसर्वज्ञ महामुनिने भी कही है। तहां श्लोक। 'मानेन मेयावगतिश्च युक्ता धर्मस्य जाड्याद्विधिनिष्ठकांडे। मेयेन मानावगतिस्तु युक्ता वेदांतवाक्येष्व जडहिमेयम्'। अर्थ—पूर्व मीमांसाविषे धर्मादिरूप प्रमेय जड है। यातें ता प्रमेयकी सिद्धि प्रामाण करिकै युक्त है और वेदांतशास्त्रविषे ब्रह्मात्मरूपप्रमेय चेतन है यातें ता प्रमेयकी सिद्धि प्रमाण करिकै युक्त नहीं है। किंतु ता चेतनप्रमेय करिकै ही जड प्रमाणकी सिद्धि युक्त है इति। अब ता वृत्तिका सामान्यलक्षण कहे हैं'विषयचैतन्याभिव्यंजकोऽन्तःकरणाज्ञानयोः परिणामविशेषः वृत्तिः' अर्थ— घट पटादिरूप विषय करिकै अवच्छिन्न जो चैतन्य है ताका नाम विषय चैतन्य है। ता विषय चतन्यका अभिव्यंजक ऐसा जो अंतःकरणका वा अज्ञानका परिणाम विशेष है सो वृत्तिज्ञान कह्या जावै है। यद्यपि क्रोध इच्छा सुख दुःख इत्यादिक भी अंतःकरणके ही परिणाम हैं तथाआकाशादिक अज्ञानके प[रि]णाम हैं। तथापि तिन क्रोधादिकोंविषे ता विषय चैतन्यका अभिव्यंजकपणा है नहीं यातें 'विषयचैतन्याभिव्यंजकः' इस पदके कहणेतें तिन क्रोधादिकोंविषे ता वृत्तिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। और यद्यपि चक्षु आदिक इंद्रिय भी स्वजन्य वृत्तिद्वारा ता विषय चैतन्यके अभिव्यंजक ही हैं तथापि ते चक्षु आदिक इंद्रिय अंतःकरणका वा अज्ञानका परिणाम नहीं हैं किंतु तेजादिक भूतोंका ही परिणाम हैं यातें अंतःकरणका वा अज्ञानका प[रि]णाम कहणेतें तिन चक्षु आदिक इंद्रियोंविषे ता वृत्तिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। तहां अतिव्याप्ति अव्याप्ति असंभव इन तीन दोषोंका

स्वरूप प्रथम परिच्छेदविषे कथन करिकै आये हैं। सो सर्वत्र जानि लेणा। शंका-पूर्व वृत्तिविषे विषय चैतन्यका अभिव्यंजकपणा कह्या सो अभिव्यंजकपणा क्या है? ऐसी शंकाके प्राप्त हुए अब ता अभिव्यंजकपणेका लक्षण कहें हैं। 'अपरोक्षव्यवहारजनकत्वमभिव्यंजकत्वम्' अर्थ-'अयं घटः अयं पट' इस प्रकारका जो अपरोक्ष व्यवहार है ता अपरोक्ष व्यवहारका जनकपणा ही तिन वृत्तियोंविषे विषय चैतन्यका अभिव्यंजकपणा है। शंका-चक्षु आदिक इंद्रियजन्य अपरोक्ष वृत्तियोंविषे तौ सो अपरोक्ष व्यवहारका जनकपणा संभवै है। परंतु अनुमानादिक प्रमाणजन्य अनुमिति आदिका परोक्ष वृत्तियोंविषे सो अपरोक्ष व्यवहारका जनकपणा है नहीं। जिस कारणतैं 'पर्वतो वह्निमान्' इस अनुमितितैं अनंतर 'अयंवह्निः' या प्रकारका अपरोक्ष व्यवहार कोई भी होता नहीं। यातैं अनुमिति आदिक परोक्ष वृत्तियोंविषे ता अभिव्यंजकपणेके अभावतैं ता उक्त वृत्तिके लक्षणकी अव्याप्ति ही होवै है ऐसी अरुचिके हुए अब ता अभिव्यंजकपणेका अन्य प्रकारतैं निर्वचन करे हैं। 'आवरणनिवर्तकत्वम् अभिव्यंजकत्वम्' अर्थ-तिन वृत्तियोंविषे जो आवरणका निवर्तकपणा है यह ही ता विषय चैतन्यका अभिव्यंजकपणा है। सो अभिव्यंजकपणा अनुमिति आदिक परोक्ष वृत्तियोंविषे भी है यातैं तिन परोक्ष वृत्तियोंविषे ता उक्त लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं इहां यह अभिप्राय है। सो अज्ञान कृत आवरण दो प्रकारका होवै है, एक तौ असत्त्वापादक आवरण होवै है और दूसरा अभानापादक आवरण होवै है। तहां घटादि विषयोंके नास्ति इस व्यवहारका हेतुरूप आवरण तौ असत्त्वापादक आवरण कह्या जावै है और नभाति इस व्यहारका हेतुरूप आवरण अभानापादक आवरण कह्या जावै है तहां अभानापादक आवरणकी तौ अपरोक्षज्ञान करिकै ही निवृत्ति होवै है परोक्षज्ञानकरिकै

निवृत्ति होती नहीं और असत्त्वापादक आवरणकी तौ अनुमिति आदिका अपरोक्ष ज्ञान करिकै भी निवृत्ति होवै है। जिस कारणतैं धूमरूप हेतुके ज्ञानतैं 'पर्वतो वह्निमान्' या प्रकारकी अनुमितिके हुए तथा शास्त्रप्रमाणतैं स्वर्गादिकोंके परोक्ष ज्ञान हुए पर्वतविषे वह्नि नहीं है तथा स्वर्गादिक नहीं हैं या प्रकारका नास्तिव्यवहार होता नहीं किन्तु 'वह्निरस्ति। स्वर्गोऽस्ति' या प्रकारका अस्ति व्यवहार ही होवै है। यातैं अनुमिति आदिक परोक्ष वृत्तियोंविषे भी ता असत्त्वापादक आवरणका निवर्त्तकपणा विद्यमान ही है अथवा सो अज्ञानकृत आवरण दो प्रकारका होवै है । एक तो विषय चैतन्यनिष्ठ आवरण होवै है और दूसरा प्रमाता चैतन्यनिष्ठ आवरण होवै है। तहां विषय चैतन्यनिष्ठ आवरणकी तौ अपरोक्षज्ञान करिकै ही निवृत्ति होवै है और प्रमाता चैतन्यनिष्ठ आवरणकी तौ परोक्षज्ञानतैं भी निवृत्ति होवै है। यातैं तिन अनुमिति आदिक परोक्ष वृत्तियोंविषे ता आवरण निवर्त्तकत्वरूप अभिव्यञ्जकपणेके सिद्ध हुए ता उक्त वृत्तिके लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं इति।

शंका-सुख दुःखादिकोंकूं विषय करणेहारे वृत्तिज्ञानविषे तथा ईश्वरके माया वृत्तिरूप ज्ञानविषे तथा अविद्याकी वृत्तिरूप भ्रमज्ञानविषे सो आवरणका निवर्त्तकपणा है नहीं। यातैं तिन वृत्तियोंविषे ता उक्त लक्षणकी भी अव्याप्ति होवै है ऐसी अरुचिके हुए अब अन्य प्रकारतैं ता अभिव्यंजकपणेका निर्वचन करै हैं। 'अस्तिव्यवहारजनकत्वम् अभिव्यंजकत्वम्' अर्थ-'घटोऽस्तिपटोऽस्ति' इस प्रकारका जो अस्तिव्यवहार है ता अस्तिव्यवहारका जनकपणा ही तिन वृत्तियोंविषे विषयचैतन्यका अभिव्यंजकपणा है यह अभिव्यञ्जकपणा तिन अपरोक्ष वृत्तियोंविषे तथा परोक्ष वृत्तियोंविषे तथा सुखादि विषयक वृत्तियोंविषे तथा मायाकी वृत्तियोंविषे तथा भ्रम वृत्तियोंविषे सर्वत्र विद्यामान है। यातैं इस

लक्षणकी कोई भी वृत्तिविषे अव्याप्ति होवै नहीं इति । शंका-पूर्व आपने वृत्तिके लक्षणविषे अंतःकरणके वा अज्ञानके परिणाम-कूं वृत्ति कह्या सो सम्भवता नहीं काहेतैं' पूर्वरूपपरित्यागेन रूपांतरापत्तिः परिणामः' अर्थ-वस्तुकूं आपणे पूर्वरूपका परित्याग करिके जो अन्य रूपकी प्राप्ति है ताका नाम परिणाम है यह ही ता प[रि]णामका लक्षण करणा होवैगा, सो सम्भवता नहीं । जिस कारणतैं लोकविषे कोई भी वस्तुकूं पूर्वरूपके विद्यमान हुए वा पूर्वरूपक नष्ट हुए अन्य रूपकी प्राप्ति देखणेविषे आवती नहीं, किंवा वेदांत शास्त्रविषे विवर्त्तवाद ही अंगीकार है परिणामवाद अंगीकार है नहीं, जो कदाचित् ता परिणाम वादकूं अंगीकार करोगे तौ सिद्धांतका विरोध प्राप्त होवैगा ऐसी शंकाके प्राप्त हुए अब ता परिणामका तथा विवर्त्तका लक्षण कहैं हैं । 'उपादानसमसत्ताकान्यथाभावः परिणामः । उपादानविषमसत्ताकान्यथाभावः विवर्तः ' अर्थ-उपादान कारणके समान सत्तावाला ऐसा जो ता उपादानका अन्यथाभाव है सो परिणाम कह्या जावै है। जैसे दुग्धका दधि परिणाम है। तहां ता दुग्धकी व्यावहारिक सत्ता है और ता दधिकी भी व्यावहारिक सत्ता है। यातैं सो दधि ता दुग्ध-रूप उपादानकारणके समानसत्तावाला है और ता दधिविषे दुग्ध-व्यवहार होता नहीं । यातैं सो दधि ता दुग्धका अन्यथाभाव भी है। यातैं ता दधिविषे ता दुग्धका परिणामपणा सम्भवै है और उपादान कारणतैं विषम सत्तावाला ऐसाजो ता उपादानका अन्यथा भाव है सो विवर्त्त कह्या जावै है। जैसे रज्जुविषे प्रतीत भया जो सर्प है सो सर्प ता रज्जु अवच्छिन्न चैतन्यका विवर्त्त है तहां ता चैतन्यकी तौ पारमार्थिक सत्ता है और ता कल्पित सर्पकी प्रातिभासिक सत्ता है। यातैं सो सर्प ता चैतन्यरूप उपादान कारणतैं

विषम सत्तावाला है और 'अयं सर्पः या' प्रकारके व्यवहारका विषय होणेतैं सो सर्पता चैतन्यका अन्यथाभाव भी है। यातैं ता कल्पित सर्पविषे ता चैतन्यका विवर्तपणा सम्भवै है। तहां 'अन्यथाभावः परिणामः' इतनामात्र ही जो ता परिणामका लक्षण करते तौ अन्यथाभावरूप विवर्तविषे ता परिणामके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणवासते ता परिणामके लक्षणविषे उपादान समसत्ताक यह पद कथन कर्‍या है। तहां सो विवर्त्त उपादानके समसत्तावाला होता नहीं। यातैं ता विवर्त्तविषे ता परिणामके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। इस प्रकार विवर्त्तके लक्षणविषे भी अन्यथा भावरूप परिणामविषे अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतैं उपादानविषमसत्ताक यह पद कथन कर्‍या है इस प्रकार परिणामका तथा विवर्त्तका परस्पर भेद है तैसे प्रसंगविषे सोउक्त वृत्ति भी ता अंतःकरण अज्ञानरूप उपादान कारणकी अपेक्षा-करिकै तौ परिणाम है और अधिष्ठानचैतन्यकी अपेक्षाकरिकै विवर्त्त है। यातैं परिणामकी अप्रसिद्धि तथा सिद्धांतका विरोध होवै नहीं इति। शंका—अंतःकरण निरवयव द्रव्य है यातैं ता अंतःकरणका सो वृत्तिरूप परिणाम संभवता नहीं। जिस कारणतैं लोकविषे सा-वयव दुग्धादिकोंका ही दधि आदिक परिणाम देखणेविषे आवै है निरवयव द्रव्यका कहीं भी परिणाम देखणेविषे आवता नहीं। जो कदाचित् निरवयव द्रव्यका भी परिणाम मानोगे तो ता निरवयव द्रव्यके स्वरूपका ही नाश होवैगा। समाधान—'तन्मनोऽकुरुत' अर्थ-सो परमात्मा मनकूं उत्पन्न करता भया। इत्यादिक श्रुतियोंविषे ता मनरूप अंतःकरणकी उत्पत्ति कथन करी है और जो जो द्रव्य उत्पत्तिवाला होवै है सो सो द्रव्य दुग्धादिकोंकी न्याईं सावयव ही होवै है। यातैं ता अंतःकरणकूं सावयवता होणेतैं परिणामीपणा

संभवै है किंवा जैसे अंतःकरणका सावयवपणा श्रुति प्रमाणकरिकै सिद्ध है तैसे ता वृत्तिज्ञान अंतःकरणका धर्मपणा भी श्रुति प्रमाणकरिकै ही सिद्ध है । तहां श्रुति 'कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव' अर्थ—इच्छा संकल्प संशय श्रद्धा अश्रद्धा धैर्य अधैर्य लज्जा वृत्तिज्ञान भय ये सर्व मनके ही धर्म हैं इति। यह श्रुति इच्छादिकोंकूं अंतःकरणका ही धर्म कहै है। शंका--'अहं जानामि । अहमिच्छामि' या प्रकारका अनुभव सर्व लोकोंकूं होवै है ता अनुभवतैं ते ज्ञान इच्छादिक आत्माके ही धर्म सिद्ध होवैं हैं यातैं तिन ज्ञान इच्छादिकोंविषे अंतःकरणका धर्मपणा संभवता नहीं । जो कदाचित् तिन ज्ञान इच्छादिकोंकूं अंतःकरणका धर्म मानोगे तौ ता उक्त अनुभवका विरोध होवैगा और इस अनुभवका कोई बाधक है नहीं । यातैं इस अनुभवविषे भ्रमरूपता भी संभवती नहीं और ते ज्ञान इच्छादिक मनरूप निमित्तकारणकरिकै जन्य होवै हैं यातैं 'एतत्सर्वं मन एव' इस उक्त श्रुतिका तौ ते इच्छादिक सर्व मनकरिकै ही जन्य हैं या प्रकार भी अर्थ संभवै है। यातैं ता श्रुतिवचनतैं भी तिन इच्छाज्ञानादिकोंकूं अंतःकरणकी धर्मरूपता सिद्ध होवै नहीं । समाधान-जैसे वास्तवतै दाहकपणेतैं रहित लोहपिंडविषे अग्निके तादात्म्य संबंधकरिकै यह लोहपिंड दाहकूं करै है या प्रकारका दाहकर्तृत्व व्यवहार होवै है तैसे अंतःकरण आत्मा दोनों तादात्म्य अध्यासकरिकै ही अहं जानामि अहमिच्छामि इत्यादिक अनुभव होवै हैं जो कहौ ता अध्यासविषे कोई प्रमाण नहीं है सो ऐसा नहीं कहणा । जिस कारणतैं ता अध्यासविषे इस पुरुषका अपना अनुभव ही प्रमाण है सो प्रकार दिखावै हैं। अहं जानामि या प्रकारका अनुभव सर्व लोकोंकूं होवै है। ता अनुभवतैं इस पुरुषविषे ज्ञातापणा प्रतीत होवै है । सो ज्ञातापणा केवल अंतःकरणविषे तौ संभवता नहीं जिस कारणतैं सो अंतःकर-

ण भूतोंका कार्य होणेतैं जड है । जडविषे भी जो ज्ञातापणा होता होवै तौ घटादिकोंविषे भी सोज्ञातापणा होणा चाहिये। तैसे सो ज्ञातापणा केवल आत्माविषे भी संभवता नहीं जिस कारणतैं 'असंगो ह्ययं पुरुषः।केवलो निर्गुणश्च अव्यक्तोऽयमचिंत्योऽयमविकार्योयमुच्यते'इत्यादिक श्रुति स्मृतियों करिकै ता आत्माका असंगपणा ही जान्या जावै है ऐसे असंग आत्माविषे सोज्ञातापणासंभवता नहींयातैं अहं इस प्रतीतितैं आत्माविषे अंतःकरणका अध्यारोप करिकै तथा 'अहं चेतनः'इस प्रतीतितैं ता अंतःकरणविषे आत्माके तादात्म्यका अध्यारोप करिकैतथा आत्माविषे अंतःकरणके इच्छादिक धर्मोंका और अंतःकरणविषे आत्माके सत्यादिक धर्मोंका अध्यारोप करिकैं यह जीव'अहं जानामि' या प्रकारतैं आपणेविषे ज्ञातापणेकूं अनुभव करै हैयातैं ता अध्यासविषे इस जीवका अनुभव ही प्रमाण है। इस प्रकारके अनुभवसिद्ध अध्यासके वशतैं ही ते अंतःकरणके ज्ञान इच्छादिक धर्म आत्माविषे प्रतीत होवैं हैं,वास्तवतैं आत्माके ते धर्म नहीं हैं इति। इहां नैयायिक तौ यह कहैं हैं। आत्माके साथ मनके संयोग हुए ज्ञान १ इच्छा २ प्रयत्न ३ सुख ४ दुःख ५ द्वेष ६ धर्म ७ अधर्म ८ संस्कार ९ यह नव गुण आत्माविषे उत्पन्न होवैं हैं। यातैं ते ज्ञान इच्छादिक आत्माके ही धर्म हैं। यह नैयायिकोंका मत न्यायप्रकाशके तृतीय परिच्छेदविषे विस्तारतैं कथन कर्या है सो यह नैयायिकोंका मत समीचीन नहीं है। काहेतैं नैयायिकोंने आत्माकी न्याई मनकूं भी निरवयव द्रव्य मान्या है। ऐसे निरवयव मनका निरवयव आत्माके साथ संयोग ही संभवता नहीं । जिस कारणतैं नैयायिकोंने ता संयोगकूं अव्याप्यवृत्ति मान्या है तहां जिन दो द्रव्योंका संयोग होवै है तिन दो द्रव्योंके किंचित् देशविषे तौ सो संयोग रहै है और किंचित् देशविषे ता संयोगका अभाव रहै है यह ही ता संयोगविषे अव्याप्य वृत्तिपणा है । जैसे वृक्षकी

शाखाविषे तौ वानरका संयोग रहै है और तिसी वृक्षके मूल-देशविषे ता संयोगका अभाव रहै है, इस प्रकार सर्व संयोग अव्याप्य वृत्ति होवै है । ऐसा अव्याप्य वृत्ति संयोग वृक्ष वानरादिक सावयव द्रव्योंका ही संभवै है । आत्मा मन आदिक निरवयव द्रव्योंका सो संयोग संभवता नहीं यातैं आत्मा मनके संयोगतैं आत्माविषे ज्ञानादिक गुण उत्पन्न होवैं हैं यह नयायिकोंका कहणा मिथ्या ही है । किंवा ज्ञान इच्छादिकोंकूं आत्माका धर्म मानणेहारा जो नैयायिक हैं तिनसे आत्माकूं ही तिन ज्ञान इच्छा-दिक धर्मोंका उपादान कारण कहणा होवैगा ताकेविषे यह कह्या चाहिये—ता आत्माकूं आरंभकतारूपकारकै तिन ज्ञानादिकोंका उपादानपणा है अथवा परिणामितारूपकारकै उपादानपणा है । तहां सो नैयायिक जो प्रथम पक्ष अगीकार करै सो तौ संभवता नहीं काहेतैं अनेक द्रव्योंविषे ही आरंभकपणा होवै है । जैसे अनेक परमाणुवोंकूं जगत्का आरंभकपणा है और आत्मा तौ एक है । यातैं ता एक आत्माकूं तिन ज्ञान इच्छादिकोंका आरंभकपणा संभवता नहीं, तैसे दूसरा परिणामी पक्ष भी संभवता नहीं काहेतैं सावयव दुग्धादिक ही दधि आदिक आकार परिणामकूं प्राप्त होवैं हैं निरवयव द्रव्यका कहीं भी परिणाम देख्या नहीं और आत्मा भी निरवयव द्रव्य है। यातैं ता आत्माकूं तिन ज्ञान इच्छादिकोंका परिणामी उपादानपणा भी संभवता नहीं और आत्माकूं जो सावयव द्रव्य मानोगे तौ घटादिकोकी न्याई ता आत्माकूं अनित्य-पणा ही प्राप्त होवैगा । यातैं ते ज्ञान इच्छादिक आत्माके धर्म हैं यह नैयायिकोंका मत असंगत है । किंवा 'साक्षी चेताःकेवलो निर्गु-णश्च' यह श्रुति आत्माकूं सर्व गुणोंतैं रहित कहै है । ता श्रुतितैं विरुद्ध होणेतैं भी सो नैयायिकोंका मत असंगत है । यातैं ते ज्ञान इच्छादिक सर्व धर्म अंतःकरणके ही हैं यह सिद्ध भया इति ।

इतने पर्यंत वृत्तिका स्वरूप निरूपण कऱ्या अब ता वृत्तिका विभाग निरूपण करे हैं। सो उक्त वृत्तिप्रमा १ अप्रमा २ इस भेदकरिकै दो प्रकारकी होवै हैं। तिन दोनों वृत्तियोंविषे प्रथम प्रमा वृत्तिका निरूपण करा है। तहां 'बोधेद्धा वृत्तिः वृत्तीद्ध-बोधो वा प्रमा' अर्थ—चैतन्यका नाम बोध है, ता चैतन्यरूप बोध-करिकै इद्ध कहिये प्रकाशित जो वृत्ति है ताका नाम प्रमा है अथवा ता वृत्तिविषे इद्ध कहिये प्रतिबिंबित जो चैतन्यरूप बोध है ताका नाम प्रमा है इति। और सो उक्त प्रमा भी ईश्वराश्रया १ जीवाश्रया २ इस भेदकरिकै दो प्रकारकी होवै है। तहां 'ईक्षणापरपर्यायस्रष्टव्यविषयाकारमायावृत्तिप्रतिबिंबिता चित् ईश्वराश्रया प्रमा' अर्थ—सृष्टिके आदिकालविषे आगे उत्पन्न होणेहारे जगत्कूं विषय करणे-हारी जो मायाकी वृत्ति है तिस वृत्तिकूं श्रुतिविषे ईक्षण इस नाम-करिकै कथन कऱ्या है। तिस मायावृत्तिविषे प्रतिबिंबित जो चैतन्य है सो ईश्वराश्रया प्रमा कही जावै है। तहां श्रुति-'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय' अर्थ—सो माया उपहित परमेश्वर सृष्टिके आदि-कालविषे मैं बहुत रूप होइके उत्पन्न होवों या प्रकारका ईक्षण करता भया इति। अब जीवाश्रया प्रमाका निरूपण करें हैं। तहां 'अन-धिगताबाधितविषयाकारांतःकरणवृत्तिप्रतिबिंबिता चित् जीवाश्रया प्रमा' अर्थ—अनधिगत कहिये अज्ञात अर्थात् बोधने नहीं विषये कऱ्या हुआ तथा अबाधित कहिये बाधतें रहित ऐसा जो विषय है ता विषयके आकार जो अंतःकरणकी वृत्ति है ता वृत्तिविषे प्रति-बिंबित जो चैतन्य है सो जीवाश्रया प्रमा कही जावै है। तहां 'विषयाकारांतःकरणवृत्तिप्रतिबिंबिता चित् जीवाश्रया प्रमा' इतना-मात्र ही जो ता जीवाश्रित प्रमाका लक्षण करते तौ भ्रांतिज्ञानविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त

करणेवासतैं ता लक्षणविषे 'अबाधित' यह विषयका विशेषण कथन कऱ्या है। तहां भ्रमज्ञानका विषय अबाधित होता नहीं किंतु शुक्ति रज्जु आदिक अधिष्ठानके ज्ञानकरिकै ता भ्रमके विषयभूत रजत सर्पादिकोंका बाध होइ जावै है। यातैं ता भ्रमज्ञानविषे ता प्रमाके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। यद्यपि विवरणकारादिक सांप्रदायिकोंके मतविषे सो भ्रमज्ञान अविद्याकी वृत्तिरूप है। यातैं 'अंतःकरणवृत्ति' इस पदके कहणेकरिकै ही ता भ्रमज्ञानविषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं सो अबाधित पद व्यर्थ है। तथापि जिस उपाध्यायके मतविषे सो भ्रमज्ञान अंतःकरणकी वृत्तिरूप है तिस मतविषे ता अबाधित पदके कहणेकरिकै ही ता भ्रमज्ञानविषे अतिव्याप्तिका निवारण होवै है यातैं सो अबाधित पद सार्थक है। किंवा ता उक्त लक्षणविषे अनधिगत यह पद जो नहीं कथन करते तौ ता लक्षणकी स्मृतिज्ञानविषे अतिव्याप्ति होती। जिस कारणतैं यथार्थ स्मृतिका विषय अबाधित ही होवै है ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतैं ता लक्षणविषे अनधिगत यह पद कथन कऱ्या है। तहां पूर्व अनुभव करे हुए अर्थकी ही स्मृति होवै है। यातैं ता स्मृतिका विषय पूर्व अज्ञात नहीं है किंतु ज्ञात ही है। यातैं अनधिगत पदके कहणेतैं ता स्मृतिविषे ता जीवाश्रित प्रमाके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। शंका—यह उक्त जीवाश्रित प्रमाका लक्षण कोई भी प्रमाविषे घटता नहीं, यातैं यह लक्षण असंभव दोषवाला है। समाधान—'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादिक महावाक्यतैं उत्पन्न भई जो ब्रह्म आत्माकी एकताकूं विषय करणेहारी अंतःकरणकी वृत्ति है ता वृत्तिविषे प्रतिबिंबित चैतन्यरूप प्रमाविषे सो उक्त लक्षण संभवै है। जिस कारणतैं सो ब्रह्म आत्माका एकत्व अनधिगत भी है तथा

बाधित भी है यातैं सो उक्त लक्षण असंभव दोषवाला नहीं है । शंका–इस उक्त लक्षणकी 'अयं घटः अयं पटः' इत्यादिक प्रमाविषे अव्याप्ति ही होवै है, काहेतैं ता घट पटादिक सर्व प्रपंचका ब्रह्मज्ञानकरिकै बाध होइ जावै है, यातैं तिन घट पटादिकोंविषे सो अबाधितपणा है नहीं । समाधान–ता प्रपंचका यद्यपि ब्रह्मज्ञान करिकै बाध होवै है तथापि ता ब्रह्मज्ञानतैं पूर्व संसारदशाविषे ता प्रपंचका बाध होता नहीं, यातैं सो प्रपंच भी ता संसारदशाविषे अबाधित ही है । यातैं ता घट पटादि प्रपंचविषयक प्रमाविषे ता उक्त लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं । शंका–इस प्रकारका जो अबाधित पदका अर्थ मानोंगे तौ भ्रांतिज्ञानविषे भी ता प्रमाके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी जिस कारणतैं ता भ्रांतिज्ञानके विषयभूत शुक्ति रजतादिक भी ता भ्रांति कालविषे अबाधित ही होवै हैं। समाधान–ते शुक्ति रजतादिक ता भ्रांतिकालविषे अबाधित हुए भी अनधिगत नहीं हैं अर्थात् अज्ञात सत्तावाले नहीं हैं, किंतु ज्ञात सत्तावाले ही हैं यातैं ता भ्रांतिज्ञानविषे ता उक्त प्रमाणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं तहां ज्ञानतैं पूर्वकालविषे जो विषयकी सत्ता है ताका नाम अज्ञात सत्ता है और ज्ञानके समकाल जो विषयकी सत्ता है ताका नाम ज्ञात सत्ता है इति । अब प्रसङ्गतैं प्रमाणका लक्षण कहे हैं। 'प्रमाकरणं प्रमाणम्' अर्थ–पूर्व कथन करी जा जीवाश्रित प्रमा है ता प्रमाका जो करण होवै है सो प्रमाण कह्या जावै है । जैसे 'अयं घटः' इस प्रत्यक्ष प्रमाका चक्षु इंद्रिय करण है, यातैं सो चक्षुइंद्रिय प्रमाण कह्या जावै है । इस प्रकार अनुमानादिक प्रमाणविषे भी लक्षण जानि लेणा। तहां 'करणं प्रमाणम्' इतनामात्र ही जो ता प्रमाणका लक्षण करते तौ छेदनरूप क्रियाके प्रति करणरूप जो कुठार है ताके विषे ता प्रमाणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासते ता लक्षण-

विषे 'प्रमा' यह पद कथन कऱ्या है। तहां ता कुठारविषे प्रमाज्ञान-की करणता है नहीं, यातैं ता कुठारविषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होवे नहीं। किंवा 'प्रमा प्रमाणम्' इतनामात्र ही जो ता प्रमाणका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'करणम्' यह पद नहीं कथन करते तौ चक्षु आदिकोंविषे ता प्रमाणके लक्षणकी अव्याप्ति होती जिस कारणतैं तिन चक्षु आदिकोंकूं द्रव्यरूपता होणेतैं प्रमा ज्ञानरूपता है नहीं। ता अव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासते ता लक्षणविषे 'करणम्' यह पद कथन कऱ्या है। तहां जिस कारणके प्रवृत्त हुए कार्यकी उत्पत्तिविषे विलंब नहीं होवे है सो कारण करणकह्या जावै है इति। अब ता जीवाश्रित प्रमाका विभाग वर्णन करे हैं। तहां सा जीवाश्रित प्रमा पारमार्थिकी १ व्यावहारिकी २ इस भेदकरिकै दो प्रकारकी होवे है। तहां अधिकारी पुरुषकूं 'तत्त्वमसि' आदिक वाक्यजन्य जो अहं ब्रह्मास्मि या प्रकारकी प्रमा है सो पारमार्थिकी कही जावै है सो पारमार्थिकी प्रमा पूर्व निरूपण करे हैं। तथा आगे शाब्दी प्रमाके निरूपणविषे निरूपण करेंगे और घटपटादिरूप प्रपंचकूं विषय करणेहारी जो 'अयं घटः अयं पटः' इत्यादिक प्रमा है सो व्यावहारिकी प्रमा कही जावै है और सो व्यावहारिकी प्रमा भी प्रत्यक्ष १ अनुमिति २ उपमिति ३ शाब्द ४ अर्थापत्ति ५ अभावप्रमा ६ इस भेदकरिकै षट् प्रकारकी होवैं हैं और ता प्रमाके षट् प्रकारके भेदकरिकै ता प्रमाका करणरूप प्रमाण भी प्रत्यक्ष १ अनुमान २ उपमान ३ शब्द ४ अर्थापत्ति ५ अनुपलब्धि ६ इन भेदों करिकै षट् प्रकारका ही होवै है अब तिन षट् प्रमाओंविषे प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाका निरूपण करे हैं। तहां विषयचैतन्याभिन्नप्रमाणं चैतन्यं प्रत्यक्षप्रमा' अर्थ-विषय चैतन्यसे अभिन्न जो प्रमाण चतन्य है सो प्रत्यक्ष प्रमा कह्या जावै है। अब इस उक्त अर्थके स्पष्ट करणेवासतैं प्रथम ता चैतन्यका उपाधिकृत

भेद निरूपण करैं हैं । तहां वास्तवतैं एक अद्वितीयरूप हुआ भी सो चैतन्य उपाधिके भेदतैं प्रमाता चैतन्य १ प्रमाण चैतन्य २ विषय चैतन्य ३ फल चैतन्य ४ इन भेदोंकरिकै चारि प्रकारका होवै है तहां अंतःकरणविशिष्ट चैतन्यका नाम प्रमाता चैतन्य है और अंतःकरणकी वृत्तिकरिकै अवच्छिन्न जो चैतन्य है ताका नाम प्रमाण चैतन्य है और घटादिक विषयोंकरिकै अवच्छिन्न जो चैतन्य है ताका नाम विषय चैतन्य है और घटादिक विषयोंके सामानाकारताकूं प्राप्त भई जो वृत्ति है ता वृत्तिकरिकै अभिव्यक्त जो चैतन्य है ताका नाम फलचैतन्य है। इस प्रकार अंतःकरणादिक उपाधिके भेदकरिकै सो एक ही चैतन्य चारि प्रकारका होवै है। तहां तिन उपाधियोंका यह स्वभाव है जब पर्यंत ते उपाधियां भिन्न भिन्न देशविषे स्थित होवै हैं तब पर्यंत ही ते उपाधियां स्वउपहितोंका भेद करे हैं और जबी ते उपाधियां एकदेशविषे स्थित होवैं हैं, तभी स्वउपहितोंका भेद करैं नहीं, किंतु तिस कालविषे तिन उपहितोंका अभेद ही होवै है जैसे मठतैं बाह्य घटके विद्यमान हुए ता मठ उपहित आकाशका तथा घट उपहित आकाशका भेद ही होवे है और ता मठके भीतर घटके विद्यमान हुए ता मठाकाश घटाकाश दोनोंका अभेद ही होवै है। तैसे अंतःकरणवृत्ति घटादिक विषय यह तीनों उपाधि जब पर्यंत भिन्न भिन्न देशविषे रहैं हैं तब पर्यंत ही प्रमाता चैतन्य प्रमाण चैतन्य विषय चैतन्य इन तीनों चैतन्योंका भेद होवै है । और जबी नेत्रादिक इंद्रिय द्वारा सो अंतःकरण वृत्तिरूपसे बाह्य निकसिकै घटादिक विषय देशविषे जावे है तबी तिन अंतःकरणादिक तीनों उपाधियोंकी एकदेशविषे स्थिति होणेतैं तिन प्रमातादिक तीनों चैतन्योंका अभेद ही होवै है । इस प्रकार विषयावच्छिन्न चैतन्यसे जो प्रमाण चैतन्यका अभेद है ताका नाम प्रत्यक्ष प्रमा

हैं अब ता अपरोक्ष वृत्तिके प्रकारकूं दृष्टांतकरिकै निरूपण करै हैं जैसे तलावका जल किसी छिद्रतैं बाह्य निकसिके कुल्याद्वारा केदारोंकूं प्राप्त होइकै जिस प्रकारका त्रिकोण वा चतुःकोण केदारोंका आकार होवै है तिस आकार परिणामकूं प्राप्त होवै है तहां ता कुल्याद्वारा तलावके जलका तथा केदारके जलका अभेद ही होवै है तैसे घटादिक अर्थोंके साथ चक्षु आदिक इंद्रियके संबंध हुएतैं अनंतर अंतःकरण भी चक्षु आदिक इंद्रियद्वारा बाह्य विषय देशविषे जाइकरिकै तिन घटादिक विषयोंके समानाकार परिणामकूं प्राप्त होवै हैं इसी विषयाकार अंतःकरणके परिणामकूं वृत्ति कहे हैं तिस घटाकार वृत्तिविषे सो घटादि विषयावच्छिन्न चैतन्य प्रतिफलित होवै है अर्थात् प्रतिबिंबित होवै है और जिस कालविषे ता घटाकार वृत्तिविषे सो घटावच्छिन्न चैतन्य प्रतिफलित होवै है तिसी कालविषे ता वृत्तिविषयरूप दोनों उपाधियोंकी एक देशविषे स्थिति होणेतैं सो प्रमाण चैतन्य ता विषय चैतन्यसे अभिन्न होवै है । इस प्रकारतैं विषय चैतन्यसे अभिन्न जो प्रमाण चैतन्य हैं ताका नाम प्रत्यक्ष प्रमा है । तहां ' प्रमाणचतन्यं प्रत्यक्षप्रमा ' इतनामात्र ही जो ता प्रत्यक्ष प्रमाका लक्षण करते तौ अनुमित आदिक परोक्ष प्रमाविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासते ता लक्षणविषे ' विषय चैतन्याभिन्न ' यह ता प्रमाण चैतन्यका विशेषण कथन कऱ्या है तहां अनुमिति आदिक परोक्ष वृत्तियां बाह्य विषय देशविषे जाती नहीं किंतु शरीरके भीतर हृदयदेशविषे ही उत्पन्न होवै हैं । यातैं ता परोक्षस्थलविषे ता विषय चैतन्यसे ता प्रमाण चैतन्यका अभेद होता नहीं यातैं तिन अनुमिति आदिक परोक्षज्ञानोंविषे ता प्रत्यक्ष प्रमाके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवे नहीं । किंवा ' विषय-

चैतन्याभिन्न वृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यं प्रत्यक्षप्रमा' इतनामात्र ही जो ता प्रत्यक्षप्रमाका लक्षण करते तौ भ्रम प्रत्यक्षविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। जिस कारणतैं ता भ्रमस्थलविषे भी विषयावच्छिन्न चैतन्यसे ता वृत्ति अवच्छिन्न चैतन्यका अभेद ही होवे है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासते ता लक्षणविषे 'प्रमाणचैतन्यम्' यह पदकथन कऱ्या है। तहां भ्रमवृत्ति अवच्छिन्न चैतन्यविषे प्रमाण चैतन्यरूपता है नहीं यातैं ता भ्रम प्रत्यक्षविषे ता प्रत्यक्ष प्रमाके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैं नहीं। शंका—भ्रमज्ञानके विषयभूत रजतादिकोंका प्रकाश जो इदमाकार अंतःकरणकी वृत्ति अवच्छिन्न साक्षी चैतन्य है सो साक्षी चैतन्य ही ता विषय चैतन्यसे अभिन्न प्रमाण चैतन्यरूप है यातैं ता उक्त लक्षणकी भी ता भ्रम प्रत्यक्षविषे अतिव्याप्ति ही होवै है। समाधान—ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतैं ता लक्षणविषे विषयका 'अबाधित' यह विशेषण भी हमारेकूं विवक्षित है। तहां भ्रम प्रत्यक्षके विषय जे रजतादिक हैं ते अबाधित नहीं हैं किंतु शुक्ति आदिक अधिष्ठानके ज्ञानकरिकै तिन रजतादिकोंका बाध होइ जावै है यातैं ता भ्रम प्रत्यक्षविषे ता प्रत्यक्ष प्रमाके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। शंका—घटादिक प्रपंचकूं ब्रह्मज्ञानकरिकै बाधित होणेतैं अबाधितपणा संभवता नहीं। यातैं 'अयं घटः अयं पटः' इत्यादिक प्रत्यक्ष प्रमाविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति ही होवैगी। समाधान—ता अबाधित पदकरिकै संसार दशाविषे अबाधितपणा विवक्षित है। तहां सो घटपटादिक प्रपंच ब्रह्मज्ञानतैं पूर्व संसार दशाविषे अबाधित ही है। यातैं ता घटादि प्रपंच विषयक प्रत्यक्ष प्रमाविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं। शंका—जहां इस पुरुषकूं सुख दुःखरूप हेतुके ज्ञानतैं आपणे धर्म अधर्मका अनुमिति ज्ञान होवै है अथवा तू धर्मवान् है तू अधर्मवान् है याप्रकार-

के कोईक बचनतैं इस पुरुषकूं आपणे धर्म अधर्मका शब्दज्ञान होवै है तहां ता धर्म अधर्मरूप विषयकी तथा ता अनुमिति शब्दरूप वृत्तिकी एक अंतःकरणरूप देशविषे स्थिति होणेतैं तत् उपहित चैतन्योंका भी अभेद ही होवै है और सो धर्म अधर्म संसारदशा विषे अबाधित भी है। यातैं ता प्रत्यक्ष प्रमाके लक्षणकी ता धर्माधर्मविषयक अनुमिति शाब्दरूप परोक्षज्ञानविषे अतिव्याप्ति होवैगी। समाधान—ता उक्त लक्षणविषे ता विषयका 'योग्य' यह विशेषण भी हमारेकूं विवक्षित है। तहां सो धर्म अधर्म प्रत्यक्षके योग्य नहीं है किंतु अयोग्य है। यातैं ता धर्म अधर्म विषयक अनुमिति शब्दज्ञानविषे ता प्रत्यक्ष प्रमाके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। इस प्रकार आपणे सुखादिकोंके यथार्थ स्मृतिज्ञानविषे ता प्रत्यक्ष प्रमाके लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतैं ता लक्षण विषे ता विषयका 'वर्तमान' यह विशेषण भी कथन करणा। ता स्मृतिज्ञानका विषय वर्तमान होता नहीं यातैं ता स्मृतिविषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। इतने कहणेकरिकै ता प्रत्यक्ष प्रमाका यह लक्षण सिद्ध भया। 'अबाधितवर्तमानयोग्यविषयचैतन्याभिन्नं प्रमाणचैतन्यं प्रत्यक्षप्रमा' अर्थ—संसार दशाविषे अबाधित तथा वर्तमान तथा प्रत्यक्ष योग्य ऐसा जो विषय है ता विषयावच्छिन्न चैतन्यसे अभिन्न जो प्रमाण चैतन्य है ताका नाम प्रत्यक्ष प्रमा है। अथवा ता प्रत्यक्षप्रमाका यह दूसरा लक्षण करणा 'अबाधितापरोक्षार्थविषयज्ञानं प्रत्यक्षप्रमा' अर्थ-अबाधित तथा अपरोक्ष ऐसा जो अर्थ है ता अर्थकूं विषय करणेहारा ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमा कह्या जावै है। तहां इस लक्षणविषे भी भ्रमज्ञानविषे अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतैं 'अबाधित' यह अर्थका विशेषण कथन कऱ्या है। और अनुमिति आदिक परोक्ष ज्ञानोंविषे अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतैं 'अपरोक्ष' यह अर्थका विशेषण कथन

करथा है।तहां साक्षी चैतन्यके साथि घटादिक अथका जो तादात्म्य है यह ही ता घटादिक अर्थविषे अपरोक्षपणा है। यद्यपि घटका स्वावच्छिन्न ब्रह्म चैतन्यविषे ही तादात्म्य है अंतःकरण उपहित साक्षी चैतन्यविषे तादात्म्य नहीं है तथापि पूर्व उक्त रीतिसैं अंतःकरणकी वृत्तिके बाहिर निर्गमन कालविषे ता घटावच्छिन्न चैतन्यका ता साक्षी चैतन्यसे अभेद ही होवै है यातैं तिन घटादिकोंका ता साक्षीचैतन्यविषे तादात्म्य संभवै है इति। अब इस उक्त प्रत्यक्ष प्रमाणका फल वर्णन करैं हैं तहां ता उक्त प्रत्यक्ष प्रमाणविषे दो अंश हैं। एक तौ अंतःकरणकी वृत्तिरूप अंश है,दूसरा चैतन्यरूप अंश है। तहां वृत्ति अंशकरिकै तौ घटादिक विषयोंके आवरणकी निवृत्ति होवै है और चैतन्य अंश करिकै अज्ञानकी निवृत्ति होवे है। यह स्वामी नृसिंहाश्रमका मत है और आचार्यतौ ऐसामानै हैं। ता उक्त प्रत्यक्ष प्रमाणकरिकै ही ता आवरण शक्तिसहित अज्ञानकी निवृत्ति होवै है। तिसतैं अनंतर अंतःकरण उपहित चैतन्यरूप साक्षीकरिकै घटादिक विषयोंका स्फुरण होवै है अब प्रसंगतैं ता साक्षीका स्वरूप वर्णन करैं हैं। 'उदासीनत्वे सति बोद्धा साक्षी' अर्थ—जो चैतन्य निर्विकार उदासीन हुआ बुद्धि आदिकोंकूं प्रकाश करै है अर्थात् प्रमाता प्रमाण प्रमेय इत्यादिक सर्वोंकूं प्रकाश करै है सो चैतन्य साक्षी कह्या जावै है। तहां लोकविषे भी जो पुरुष परस्पर विवाद करते हुए दो पुरुषोंतैं भिन्न होवै है तथा तिन दोनोंके विवादकूं अपरोक्षरूपकरिकै जानै है तथा उदासीन होवै है अर्थात् पक्षपाततैं रहित होवै है तिस पुरुषकूं साक्षी कहैं हैं। तैसे जो चैतन्य उदासीन हुआ बुद्धि आदिक सर्वोंकूं प्रकाश करै है सो चैतन्य साक्षी कह्या जावै है। तहां 'बोद्धा साक्षी' इतनामात्र ही जो ता साक्षीका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'उदासीनत्वे सति' यह पद

नहीं कथन करते तौ परस्पर विवाद करणेहारे पुरुषोंविषे भी साक्षीपणा होणा चाहिये। जिस कारणतैं स्वपर व्यवहारका बोद्धापणा तिन पुरुषोंविषे भी है परन्तु तिन पुरुषोंकूं कोई साक्षी कहता नहीं। यातैं ता साक्षीका उदासीन यह विशेषण कथन कर्‍या है। तिन विवादकर्ता पुरुषोंविषे सो उदासीनपणा है नहीं। यातैं तिनोंविषे ता साक्षीके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा 'उदासीनःसाक्षी' इतनामात्र ही जो ता साक्षीका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'बोद्धा' यह पद नहीं कथन करते तौ ता विवादस्थलविषे स्तंभादिकोंकूं भी उदासीनपणा है यातैं ते स्तंभादिक भी साक्षी होणा चाहिये और तिन स्तंभादिकोंकूं कोई साक्षी कहता नहीं। यातैं ता लक्षणविषे 'बोद्धा' यह पद कथन कर्‍या है। तिन जड स्तंभादिकोंविषे सो बोद्धापणा है नहीं।यातैं तिनोंविषे ता साक्षीके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं तैसे इहां प्रसंगविषे केवल बोद्धापणा तौ भोक्ता जीवविषे भी है परन्तु ता जीवविषे उदासीनपणा नहीं है। और केवल उदासीनपणा तौ देह इंद्रियादिक जड पदार्थोंविषे भी है परन्तु तिनोंविषे बोद्धापणा नहीं है यातैं ता भोक्ता जीवविषे तथा देह इंद्रियादिकोंविषे ता साक्षीके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। यह ही साक्षीका लक्षण 'साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च' इस श्रुतिने कथन कर्‍या है। तहां इस श्रुतिविषे 'चेताः' इस पद करिकै बोद्धा कह्या है। और 'केवलः' इस पद करिकै उदासीन कह्या है। यातैं 'चेताः केवलः साक्षी'। यह साक्षीका लक्षण ता श्रुतितैं सिद्ध होवै है और नैयायिक आत्माकूं ज्ञानादिक गुणोंवाला मानैं हैं। तिनोंके मतके खंडन करणे वासतैं ता श्रुतिने आत्माकूं निर्गुण कह्या है और ता श्रुतिविषे स्थित चकार करिकै आत्माकूं निष्क्रय कह्या है। ता करिकै आत्माकूं मध्यम परिमाणवाला तथा सक्रिय मानणेहारे दिगंबरोंका मत भी खंडन हुआ जानणा। किंवा यह उक्त साक्षीका

स्वरूप ही पंचदशीके नाटक दीपविषे श्रीविद्यारण्य स्वामीने नृत्य-शालाविषे स्थित दीपकके दृष्टांतकरिकै निरूपण कर्‍या है । यातैं ता साक्षीकरिकै घटादिक विषयोंका स्फुरण संभवे है इति । तहां पूर्व प्रत्यक्ष प्रमाका फलसहित निरूपण कर्‍या । अब ता प्रत्यक्ष प्रमाका विभाग वर्णन करैं हैं । तहां सो उक्त प्रत्यक्ष प्रमा बाह्य प्रत्यक्ष प्रमा १ अंतर प्रत्यक्ष प्रमा २ इन भेदोंकरिकै दो प्रकारकी होवै है । तहां बाह्य अर्थकूं विषय करणेहारी प्रत्यक्ष प्रमाकूं बाह्य प्रत्यक्ष प्रमा कहैं हैं और अंतर अर्थकूं विषय करणेहारी प्रत्यक्ष प्रमाकूं अन्तर प्रत्यक्ष प्रमा कहैं हैं । तिन दोनों प्रमाविषे प्रथम बाह्य प्रत्यक्ष प्रमा शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ रस ४ गंध ५ इन पंच विष-योंके भेदतैं पंच प्रकारकी होवै है । अर्थात् शब्दप्रमा १ स्पर्शप्रमा २ रूपप्रमा ३ रसप्रमा ४ गंधप्रमा५ यह पंच प्रकारकी बाह्यप्रत्यक्ष प्रमा होवै है और ता पंच प्रकारकी बाह्य प्रत्यक्ष प्रमाके यथाक्रमतैं करण-रूप श्रोत्र १ त्वक् २ चक्षु ३ रसन ४ घ्राण ५ यह पंच ज्ञान इंद्रिय हैं । यातैं ते पंच ज्ञान इंद्रिय बाह्य प्रत्यक्षप्रमा कहे जावैं हैं और दूसरी अंतर प्रत्यक्षप्रमा भी आत्मगोचरा १ सुखादिगोचरा २ इन भेदों करिकै दो प्रकारकी होवै है । तहां आत्माकूं विषय करणेहारी जो प्रमा है ताका नाम आत्मगोचरा है और सुख दुःखा-दिकोंकूं विषय करणेहारी जो प्रमा है ताका नाम सुखादिगोचरा है और सो आत्मगोचरप्रमा भी विशिष्टात्मविषया १ शुद्धात्मविषया २ इन भेदोंकरिकै दो प्रकारकी होवै है तहां 'अहं जीवः' यह प्रमा तौ विशिष्ट आत्मविषयक होवै है और 'अहं ब्रह्मास्मि' यह प्रम शुद्ध आत्माविषयक होवै है और ' अहं सुखी अहं दुःखी ' इत्यादिक प्रमा सुखदुःखादिविषयक होवै है । अब ता अंतर प्रत्यक्ष प्रमाके कारणका निरूपण करै हैं। तहां वाचस्पति मिश्रका तौ यह मत है। अंतर इन्द्रिय रूप जो मन है सो मन ही ता उक्त अंतर प्रत्यक्ष

प्रमाका करण है। काहेतें जैसे बाह्य रूपादिकोंके साक्षात्कारका करणरूप करिके चक्षु आदिक इन्द्रियोंकी सिद्धि होव है तैसे अंतर सुख दुःखादिकोंके साक्षात्कारका करणरूप करिके मनरूप अंतर इन्द्रियकी भी सिद्धि संभवे है और सुख दुःखादिकोंकू व्यावहारिकपणा होणेत तिन सुख दुःखादिकोंके ज्ञानकूं भी व्यावहारिकपणा ही संभवे है। शंका—ता मनकूं विशिष्ट आत्माके साक्षात्कारकी करणता संभवती नहीं। जो कदाचित् ता मनकूं शुद्ध आत्माके साक्षात्कारका करण मानोगे तौ आत्मसाक्षात्कारविषे मनकी करणताकूं निषेध करणेहारी 'यतो वाचो निर्वर्तन्त अप्राप्यमनसा सह। यन्मनसा न मनुते' इत्यादिक श्रुतियोंका विरोध प्राप्त होवैगा। समाधान—'मनसैवानुद्रष्टव्यम्। दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या' इत्यादिक श्रुतियोंने ता मनकूं ही शुद्ध आत्माके साक्षात्कारविषे करणपणा कथन कऱ्या है। यातें आत्मसाक्षात्कारविषे मनकी करणताकूं निषेध करणेहारी सो उक्त श्रुति अशुद्ध मन विषयक है अर्थात् अशुद्ध मन करिके आत्माका साक्षात्कार होता नहीं। यातें 'मनसैवानुद्रष्टव्यम्' इस उक्त श्रुति करिके शुद्धमनकूं ही आत्मसाक्षात्कारकी करणत सिद्ध होवै है। शंका—'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' इस श्रुतिविषे औपनिषद इस वचन करिके आत्माकूं उपनिषद्रूप शब्द प्रमाणजन्य ज्ञानका विषय कह्या है और ता आत्माकूं जो मानस प्रत्यक्षका विषय मानोगे तौ इस उक्त श्रुतिका विरोध प्राप्त होवैगा। समाधान—शास्त्र आचार्य करिके संस्कृत शुद्ध मनकूं ही हम ब्रह्मात्मसाक्षात्कारविषे करण मानें हैं। यातें ता मनकूं उपनिषद्रूप शास्त्रकी अपेक्षा होणेतें ता औपनिषद श्रुतिका विरोध होवै नहीं। परंतु ता उपनिषद्रूप शब्दकूं आत्मसाक्षात्कारविषे करणता नहीं है किंतु ता शुद्ध मनकूं ही करणता है। किंवा विशिष्ट आत्माके

साक्षात्कार विषे ता मनकूं करणपणा सिद्ध ही है। यातैं शुद्ध आत्माके साक्षात्कारविषे भी ता मनकूं ही करण मान्या चाहिये । ता मनतैं भिन्न कोई करण मानणेविषे एक तौ कल्पना गौरव दोष प्राप्त होवै है और दूसरा ता अर्थका साधक कोई प्रमाण भी नहीं है यातैं अंतर प्रत्यक्ष प्रमाका सो मन ही करण है इति। अब इस उक्त मतके खंडनपूर्वक आचार्योंका मत वर्णन करे हैं। तहां मनकूं जो इंद्रियरूपता सिद्ध होवै तौ ता मनकूं अंतर प्रत्यक्ष प्रमाके प्रति करणपणा सिद्ध होवै परंतु ता मनविषे इंद्रियरूपता ही संभवती नहीं जिस कारणतैं 'इंद्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः । इत्यादिक श्रुति स्मृतियोंविषे ता मनकूं इंद्रियोंतैं पृथक् करिकै कथन कर्‍या है, जो कदाचित् सो मन भी इंद्रिय होता तौ यह उक्त श्रुति स्मृति ता मनकूं इंद्रियोंतैं पृथक् नहीं कहती यातैं सो मन इंद्रिय नहीं है यह निश्चय होवै है। किंवा सुख दुःखादिकोंके साक्षात्कारविषे जो मनकूं करणपणा सिद्ध होवै तौ ता मनकूं इंद्रियरूपता संभवै है परंतु ता मनकूं करणरूपता ही संभवती नहीं । काहेतैं सर्व वृत्तियोंके प्रति ता मनकूं ही उपादान कारणता है यह वार्ता पूर्व कथन करि आये हैं और जो पदार्थ जिस कार्यका उपादान कारण होवै है सो पदार्थ तिस कार्यका करण होता नहीं । जैसे घटरूप कार्यके उपादान कारणरूप मृत्तिकाकूं ता घटके प्रति करणरूपता नहीं है किन्तु दण्डादिकों ही करणरूपता है । तैसे सर्व वृत्तियोंके उपादान कारणरूप मनकूं भी तिन वृत्तियोंके प्रति करणरूपता संभवती नहीं। ता करणताके असंभव हुए ता मनकूं इंद्रिय मानणा व्यर्थ है । शंका– मनकूं जो इंद्रियरूप नहीं मानोगे तौ अंतर सुख दुःखादिकोंके साक्षात्कार विषे अप्रमात्व ही प्राप्त होवेगा । समाधान–सुख दुःखादिकोंका साक्षात्कार कोई प्रमाण करिकै जन्य है नहीं यातैं ता साक्षात्कारविषे

अप्रमापणा हमारेकूं अंगीकार ही है । शंका—सुखादिकोंके साक्षात्कारकूं जो अप्रमारूप मानोगे तौ ता अप्रमाज्ञानके विषय हुए ते सुख दुःखादिक शुक्ति रजतादिकोंकी न्याईं प्रातीतिक ही होवैंगे। अर्थात् ता स्वविषयक प्रतीतिके समकालवृत्ति ही होवैंगे ता करिके तिन सुख दुःखादिकोंविषे व्यावहारिकपणा नहीं सिद्ध होवैगा समाधान—सुख दुःखादिकोंका साक्षात्कार अप्रमारूप ही होवै है। या कारणतैं अंतःकरण तथा ताके धर्म सुख दुःखादिक शुक्ति रजत की न्याईं प्रातीतिक ही होवैं हैं व्यावहारिक होवै नहीं। शंका—सुख दुःखादिकोंकूं जो प्रातीतिक मानोगे तौ तिनोंकूं हर्ष शोकादिरूप अर्थक्रियाका जनकपणा नहीं होवैगा। व्यावहारिक पदार्थ ही ता अर्थक्रियाका जनक होवै है।समाधान—व्यावहारिक पदार्थकी न्याईं कहीं प्रातीतिक पदार्थ भी ता अर्थक्रियाका जनक होवै है। जैसे प्रातीतिक शुक्ति रजत इस पुरुषके प्रवृत्तिरूप अर्थक्रियाका जनक होवै है तथा प्रातीतिक रज्जु सर्प इस पुरुषके भय पलायनादिरूप अर्थक्रियाका जनक होवै है तैसे तिन प्रातीतिक सुख दुःखादिकोंकूं भी हर्ष शोकादिरूप अर्थक्रियाका जनकपणा संभवै है। शंका—जैसे अंतर सुख दुःखादिकोंका साक्षात्कार प्रमाण करिके अजन्य होणेतैं अप्रमारूप है तैसे अंतर आत्माके साक्षात्कारकूं भी प्रमाण करिके अजन्य होणेतैं अप्रमारूपता ही प्राप्त होवैगी। जो कदाचित् ता आत्मसाक्षात्कारविषे भी तुम अप्रमापणा ही अंगीकार करोगे तौ ता अप्रमाज्ञानका विषय होणेतैं सो आत्मा भी सुख-दुःखादिकोंकी न्याईं प्रातीतिक ही होवैगा और आत्माका प्रातीतिकपणा कोई भी आस्तिक वादीकूं इष्ट नहीं है यातैं ता आत्मसाक्षात्कारविषे मनकूं अवश्य करण मान्या चाहिये। समाधान-सुख दुःखादिकोंके साक्षात्कारकी न्याईं आत्मसाक्षात्कारविषे जो अप्रमा-

पणा कहते हो सो क्या विशिष्ट आत्माके साक्षात्कारकूं अप्रमापणा कहते हो अथवा शुद्ध आत्माके साक्षात्कारकूं अप्रमापणा कहते हो? तहां प्रथम पक्ष जो अंगीकार करो सो तौ हमारेकूं भी इष्ट है। अर्थात् विशिष्ट आत्माके साक्षात्कारकूं हम भी अप्रमारूप ही मानैं हैं और जो द्वितीय पक्ष अंगीकार करौ सो सम्भवता नहीं काहेतैं 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका शुद्ध आत्माका साक्षात्कार तत्त्वमसि आदिक वेदांत वाक्य करिकै जन्य होणेतैं प्रत्यक्षप्रमारूप ही है यातैं ता शुद्ध आत्माके साक्षात्कारविषे अप्रमापणा सम्भवता नहीं। शंका-वाक्यकूं नियमतैं परोक्ष ज्ञानका ही जनकपणा होवै है अपरोक्षज्ञानका जनकपणा होता नहीं यातैं ता वेदांत वाक्यतैं आत्माका अपरोक्ष ज्ञान संभवता नहीं।समाधान-कहीं शब्दतैं भी अपरोक्ष ही ज्ञान होवै है। जैसे 'दशमस्त्वमसि' इस वाक्यतैं ता दशम पुरुषकूं आपणा अपरोक्षज्ञान ही होवै है तैसे तत्त्वमसि आदिक वाक्यतैं भी इस अधिकारी पुरुषकूं आत्माका अपरोक्ष ज्ञान ही होवै है। यह वार्त्ता आगे शाब्दप्रमाके निरूपणविषे कहैंगे। इति प्रत्यक्षप्रमानिरूपणम्। ॥१॥ अब दूसरी अनुमिति प्रमाका निरूपण करे हैं। तहां 'लिंगज्ञानजन्यज्ञानम् अनुमितिः' अर्थ-लिंगके ज्ञान करिकै जन्य जो ज्ञान है सो अनुमिति कह्या जावै है जैसे 'अयम्पर्वतः वह्निमान् धूमवत्त्वात् यो यो धूमवान् स वह्निमान् यथा महानसः' अर्थ-यह पर्वत वह्निवाला है धूमवाला होणेतैं जो जो धूमवाला होवैहै सो सो वह्निवालाही होवै है जैसे महानस है। अन्न पकावणेके स्थानका नाम महानस है इति। तहां इस प्रसिद्ध अनुमानविषे पर्वत तौ पक्ष है और वह्नि साध्य है और धूम लिंग है और महानस दृष्टान्त है।'तहां यह पर्वत धूमवाला'है इस प्रकारके लिंगज्ञानतैं इस पुरुषकूं यह 'पर्वत वह्निवाला' है या प्रकारका अनुमिति ज्ञान होवै

है। यातैं सो उक्त अनुमितिका लक्षण संभवै है। अब सिद्धांतविषे ता अनुमितिके लक्षणकूं घटावै हैं'जीवः ब्रह्माभिन्नः सच्चिदानंदलक्षणत्वात् ब्रह्मवत्' अर्थ यह जीवात्मा ब्रह्मसे अभिन्न है सत् चित् आनंदरूप होणेतैं जो जो सच्चिदानंदरूप होवैहै सो ब्रह्म तैं अभिन्न ही होवैहै जैसे ब्रह्मसच्चिदानंदरूप होणेतैं ब्रह्मतैं अभिन्नही है तैसे यह जीव भी सच्चिदानंदरूप होणेतैं ब्रह्मसैं अभिन्न ही होवैगा इति। तहां इस अनुमानविषे भी जीव तो पक्ष है और ब्रह्मका अभेद साध्य है और सच्चिदानंदरूपत्व लिंग है और ब्रह्म दृष्टांत है। तहां 'यह जीव सच्चिदानंदरूप है'या प्रकारके लिंगज्ञानतैं अनन्तर इस अधिकारी पुरुषकूं 'यह जीव ब्रह्मसैं अभिन्न है' या प्रकारका अनुमिति ज्ञान होवै है यातैं सो उक्त अनुमितिका लक्षण इहां भी संभवै है इति। अब प्रसंगतैं पक्षादिकोंके स्वरूपका वर्णन करैं हैं। तहां अनुमिति ज्ञानतैं पूर्व इस पुरुषकूं जिस पदार्थविषे साध्यका संशय होवै है सो पदार्थ पक्ष कह्या जावै है। जैसे प्रसिद्ध अनुमानविषे'पर्वतो वह्निमान्' इस अनुमितितैं पूर्व इस पुरुषकूं ता पर्वतविषे वह्निका संशय रहै है यातैं सो पर्वत ता उक्त अनुमानविषे पक्ष कह्याजावै है और इस पुरुषकूं ता पक्षविषे लिंगज्ञान करिकै जिस पदार्थका ज्ञान होवै है सो पदार्थ साध्य कह्या जावै है। जैसे ता प्रसिद्ध अनुमानविषे इस पुरुषकूं पर्वतरूप पक्षविषे धूमरूप लिंगके ज्ञानतैं वह्निका ज्ञान होवै है।यातैं सो वह्नि ता अनुमानविषे साध्य कह्या जावै है और इस पुरुषकूं साध्य लिंग दोनोंका जिस पदार्थविषे निश्चय होवैं है सो पदार्थ दृष्टांत कह्या जावै है जैसे ता प्रसिद्ध अनुमानविषे इस पुरुषकूं महानस विषे वह्निरूप साध्यका तथा धूमरूप लिंगका निश्चय ही है यातैं सो महानस ता उक्त अनुमानविषे दृष्टांत कह्या जावै है। शंका–जिस लिंगके ज्ञान करिकै सो अनु-

मिति जन्य होवै है ता लिंगका क्या स्वरूप है । ऐसी शंकाके प्राप्त हुए अब ता लिंगका लक्षण कहैं हैं–'व्याप्त्याश्रयः लिंगम्' अदक्ष साध्यकी व्याप्तिका जो आश्रय होवै है सो लिंग कह्या जावै हैं।जैसे ता प्रसिद्ध अनुमानविषे वह्निरूप साध्यके व्याप्तिका आश्रय धूमहै यातैं सो धूम लिंग कह्या जावै हैं इति। शंका–जिस व्याप्तिका आश्रय हुए धूमादिक लिंग कहे जावै हैं तिस व्याप्तिका क्या स्वरूप है ऐसी शंकाके प्राप्त हुए अब ता व्याप्तिका स्वरूप वर्णन करैं हैं। तहां 'साधनसाध्ये । नियतसामानधिकरण्यं व्याप्तिः'अर्थ-साधन साध्य दोनोंका जो अव्यभिचरित सामानाधिकरण्य है ताका नाम व्याप्ति हैं । जैसे प्रसिद्ध अनुमानविषे धूमरूप साधनका तथा वह्निरूप साध्यका अव्यभिचरित सामानाधिकरण्य है। अर्थात् ता वह्निरूप साध्यकूं छोडिके सो धूमरूप साधन कदाचित् भी स्वतंत्र रहता नहीं यह ही ता धूमविषे ता वह्निकी व्याप्ति है और वह्नि तौ ता धूमकूं छोडिके तप्तलोह पिंडविषे रहे हैं यातैं ता वह्निविषे ता धूमकी सो उक्त व्याप्ति है नहीं तहां इस उक्त व्याप्तिका आश्रय होणेतैं धूमादिक साधन तौ व्याप्य कहे जावै हैं और ताव्याप्तिके निरूपण होणेतैं वह्नि आदिक साध्य व्यापक कहे जावैं हैं । लिंग साधन हेतु यह तीनों शब्द एक ही अर्थके वाचक होवैं हैं इति । शंका–इस उक्त व्याप्तिका इस पुरुषकूं किस उपायतैं ज्ञान होवै है ? समाधान–जहां जहां धूम रहै है तहां तहां वह्नि अवश्य रहै है या प्रकारका जो महानसादिकोंविषे वारंवार धूम वह्निके सहचारका दर्शन है ता सहचार दर्शनतैं ही इस पुरुषकूं धूम वह्निका व्याप्य है या प्रकारका व्याप्तिज्ञान होवै है। परंतु जिस साधनविषे यह साधन साध्यके अभाववालेमें वृत्ति है या प्रकारका व्यभिचारज्ञान होवै है तिस साधनविषे ता सहचारदर्शनके हुए भी ता साध्यके व्याप्तिका ज्ञान होता नहीं । जैसे जहां जहां पार्थिवत्व होवै

है तहां तहां लोह लेख्यत्व होवै है या प्रकारके सहचार दर्शनके हुए भी हीरकादिकोंविषे ता लोहलेख्यत्वके अभाव हुए भी सो पार्थिवत्व देखणेमें आवै है यातैं ता सहचार दर्शनतैं ता पार्थिवत्वविषे ता लोहलेख्यत्वके व्याप्तिका ज्ञान होता नहीं यातैं सो व्यभिचार ज्ञान ता व्याप्तिज्ञानका प्रतिबंधक होवै है। ता प्रतिबंधकके अभाव सहित सो सहचार ज्ञान ही ता व्याप्तिज्ञानका कारण होवै है। तहां काष्ठादिक पार्थिव पदार्थोंविषे जो लोहके शस्त्रतैं अक्षरादिकोंका लिखना है ताका नाम लोहलेख्यत्व है इति। इतने कहणे करिकै ता अनुमानकी यह रीति सिद्ध होवै है। महानसादिकोंविषे धूम वह्निके सहचार दर्शनतैं इस पुरुषकूं 'धूम वह्निकी व्याप्तिवालाहै' या प्रकारका व्याप्तिज्ञान होवै है। तिसतैं अनंतर कोई कालविषे पर्वतके समीप गये हुए ता पुरुषकूं ता पर्वतविषे 'यह पर्वत धूमवाला' है या प्रकारका ता धूमरूप लिंगका ज्ञान होवै है। तिसतैं अनंतर ता पूर्व अनुभव करी हुई व्याप्तिके संस्कार उद्‌बुद्ध होवै हैं। तिसतैं अनंतर ता पुरुषकूं 'यह पर्वत वह्निवाला है' या प्रकारका अनुमिति ज्ञान होवै है। तहां सो व्याप्तिज्ञान तौ ता अनुमिति प्रमाका करण होणेतैं अनुमान प्रमाण है और ता व्याप्तिके उद्‌बुद्ध संस्कार ता करणका अवांतर व्यापार है और सो अनुमिति प्रमा फल है और सो लिंग ज्ञान संस्कारोंका उद्बोधक होणे तैं सहकारी कारण हैं इति। अब ता उक्त अनुमिति प्रमाका विभाग वर्णन करै हैं। तहां सो उक्त अनुमिति प्रमा स्वार्थानुमिति १ परार्थानुमिति २ इन भेदों करिकै दो प्रकारकी होवै है। तहां इस पुरुषकूं दूसरेके उपदेशतैं विना ही व्याप्तिलिंग ज्ञानादिकों करिकै जो अनुमिति होवै है सो स्वार्थानुमिति कही जावै है। सो स्वार्थानुमितिकी रीति पूर्व निरूपण करी है। अब दूसरी परार्थानुमितिका प्रकार वर्णन करैं हैं। तहां पूर्व

उक्त रीतिसैं आप पर्वतविषै वह्निका निश्चय करिकै दूसरे पुरुषके प्रति जो ता वह्निका निश्चय करावणा है ताका नाम परार्थानुमिति है, सा परार्थानुमिति न्याय करिकै सिद्धि होवै है। तहां अवयवोंके समुदायका नाम न्याय है और ता अनुमान वाक्यविषै स्थित जे प्रतिज्ञादिक वाक्य हैं तिनोंका नाम अवयव है। तहां नैयायिक तौ प्रतिज्ञा १ हेतु २ उदाहरण ३ उपनय ४ निगमन ५ इन पंच अवयवोंके समुदायकूं न्याय कहे हैं। जैसे प्रसिद्ध अनुमानविषै 'पर्वतो वह्निमान्' यह प्रतिज्ञावाक्य है ॥१॥ और 'धूमवत्त्वात्' यह हेतुवाक्य है ॥ २ ॥ और 'यो यो धूमवान्स वह्निमान्यथा महानसः' यह उदाहरण वाक्य है ॥ ३ ॥ और 'तथा चायम्' अर्थ-यह पवत ता महानसकी न्यांई धूमवाला है यह उपनय वाक्य है ॥ ४ ॥ और 'तस्मात्तथा' अर्थ–धूमवाला होणेतैं यह पर्वत ता महानसकी न्यांई वह्निवाला ही है यह निगमन वाक्य है ॥ ५ ॥ इन प्रतिज्ञादिक पंच अवयवोंके लक्षण न्यायप्रकाशके षष्ठ परिच्छेदविषै अनुमाननिरूपणविषै कथन करे हैं ते तहांसैं जानि लेणे। इस प्रकारके प्रतिज्ञादिक पंच अवयवोंके समुदायरूप न्यायतैं ता अन्य पुरुषकूं भी व्याप्तिलिंगादिकोंका ज्ञान होइकै ता वह्निकी अनुमिति होवै है। इसीका नाम परार्थानुमिति है इति। और वेदांत सिद्धांतविषै तौ प्रतिज्ञा १ हेतु २ उदाहरण ३ इन तीन अवयवोंके समुदायका नाम न्याय है अथवा उदाहरण १ उपनय २ निगमन ३ इन तीन अवयवोंके समुदायका नाम न्याय है। इसी न्यायतैं ता अन्य पुरुषकूं अनुमिति ज्ञानविषै उपयोगी व्याप्ति आदिकोंका ज्ञान होवै है यातैं पंच अवयव मानणे निष्फल ही है इति। तहां पूर्व 'पर्वतो वह्निमान्' इस लौकिक अनुमान वाक्यविषै ते प्रतिज्ञादिक अवयव दिखाये। अब जीव ब्रह्मके अभेद साधक वैदिक अनुमान वाक्यविषै भी ते प्रतिज्ञादिक अवयव निरूपण करे हैं।

तहां 'जीवः परस्मान्न भिद्यते१ सच्चिदनंदलक्षणत्वात्२यः सच्चिदा-नंदलक्षणः स परस्मान्न भिद्यते यथापरमात्मा३तथा चायम्४तस्मा-त्तथा५' अर्थ—यह जीव परमात्मातैं भिन्न नहीं है यह तौ प्रतिज्ञा-वाक्य है ॥ १ ॥ और सत् चित् आनंदरूप होणेतैं यह हेतुवाक्य है ॥२॥ और जो जो सच्चिदानंदरूप होवै है सो परमात्मातैं भिन्न होता नहीं जैसे परमात्मा है यह उदाहरणवाक्य है ॥ ३ ॥ और जीव परमात्माकी न्याई सच्चिदानंदरूप है यह उपनय वाक्य है ॥ ४ ॥ और सच्चिदानन्दरूप होणेतैं यह जीव ता परमात्मातैं अभिन्न ही है यह निगमनवाक्य है ॥ ५ ॥ इस प्रकारके प्रतिज्ञा-दिक तीन अवयवोंके वा उदाहरणादिक तीन अवयवोंके समुदाय-रूप न्यायतैं इस अधिकारी पुरुषकूं व्याप्तिलिंगादिकोंका ज्ञान होइकै जीव ब्रह्मके अभेद विषयक अनुमिति प्रमा होवै है इति। शंका—ता जीवात्माविषे जबी किसी प्रमाणकरिकै सच्चिदानंद रूपता सिद्ध होवै तबी ता सच्चिदानंदरूपत्व हेतुतैं ता जीवविषे ब्रह्मका भेद सिद्ध होवै। परंतु ता जीवकी सच्चिदानंदरूपताविषे कोई भी प्रमाण नहीं है यातैं सो सच्चिदानंदरूपत्व हेतु ता जीव-रूप पक्षविषे आवृत्ति होणेतैं स्वरूपासिद्धनामा हेत्वाभास है ऐसी शंकाके प्राप्त हुए अब श्रुति स्मृति युक्ति अनुभव इन चारोंकरिकै ता जीवात्माविषे सत् चित् आनंदरूपता सिद्ध करे हैं। तहां 'अविनाशी वा अरेऽयमात्मा। सन्मात्रो नित्यः शुद्धो बुद्धः' अर्थ—हे मैत्रेयी! यह आत्मा विनाशतैं रहित है और यह आत्मा सत्तामात्र है तथा नित्य है तथा शुद्ध है तथा ज्ञानस्वरूप है। इत्यादिक श्रुतियोंकरिकै इस जीवात्माकी सत्यरूपता सिद्ध होवै है। और 'नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः' अर्थ—यह आत्मा नित्य है तथा सर्वत्र व्यापक है तथा कूटस्थ है तथा अचल है तथा

सनातन है । इत्यादिक गीतास्मृतिके वचनोंकरिकै भी ता जीवा-त्माकी सत्यरूपता सिद्ध होवै है । और यह जीवात्मा जो सत्य नहीं होवै तौ कृतनाश तथा अकृताभ्यागम इन दोनों दोषोंकी प्राप्ति होवैगी।तहां किये हुए पुण्य पाप कर्मका जो फल भोगतैं विन।विनाश है ताका नाम कृतनाश है और पूर्व नहीं करे हुए कर्मका जो फल-भोग है ताका नाम अकृताभ्यागम है। इत्यादिक युक्ति-करिकै भी ता जीवात्माकी सत्यरूपता सिद्ध होवै है और 'अहमस्मि ' या प्रकारके अनुभवतैं भी ता आत्माकी सत्यरूपता सिद्ध होवै है । यातैं सो जीवात्मा सत्यरूप ही है। और ' अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति।आत्मैवास्य ज्योतिर्भवति योऽयं विज्ञान-मयः। त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत्।तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः' अर्थ–इस स्वप्न अवस्था विषे यह आत्माही स्वयं ज्योति है अर्थात् ता स्वप्न अवस्थाविषे सूर्य चंद्रा-दिक बाह्यज्योतियोंके अभाव हुए भी ता आत्मारूप ज्योति करिकै ही सर्व व्यवहार होवै है और इस संघातका आत्मा ही ज्योति होवै है और यह आत्मा विज्ञानरूप हैं और जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंविषे यथाक्रमतैं विद्यमान जे विश्व तैजस प्राज्ञ यह तीन भोक्ता हैं तथा तिनोंके जे स्थूल सूक्ष्मादिक भोग्य पदार्थ हैं तथा अंतःकरणकी वा अज्ञानकी वृत्तिरूप जो भोग हैं तिन सर्वोंतैं विलक्षण जो चैतन्य मात्र साक्षी है सो मैं हूं इत्यादिक श्रुतियोंकरिकै ता जीवत्माकी चैतन्यरूपता सिद्ध होवै है और' यथा प्रकाशय-त्येकःकृत्स्नं लोकमिमंरविः।क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत अर्थ-हे अर्जुन जैसे एक ही सूर्य भगवान् सम्पूर्ण लोकोंकूं प्रकाश करे है तैसे यह आत्मा सम्पूर्ण संघातकूं प्रकाश करे. है इत्यादिक स्मृतियोंकरिकै भी ता जीव आत्माकी चतन्यरूपता सिद्ध होवै है।और जो कदाचित यह आत्मा चैतन्यरूप नहीं होवै तो प्रका-

शकके अभावतैं इस जगत्‌विषे अधता प्राप्त होवैगी। इत्यादिक युक्तियोंकरिके भी ता जीवआत्माकी चैतन्यरूपता सिद्ध होवै है। और 'अहमनुभवामि' या प्रकारके अनुभवतैं भी ता आत्माकी चैतन्यरूपता सिद्ध होवै है यातैं सो जीवात्मा चैतन्यरूप ही है। और 'यो वै भूमा तत्सुखम् को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानंदयति' अर्थ—देश काल वस्तु परिच्छेदतैं रहित जो आत्मा है सोई सुखरूप है और जो कदाचित् यह आत्मा आनन्दरूप नहीं होवै तो अपानके व्यापारकूं तथा प्राणके व्यापारकूं तथा देह इंद्रियादिकोंके व्यापारकूं कौन करेगा किंतु कोई भी नहीं करेगा जिस कारणतैं लोकोंका जीवन आनन्दपूर्वक ही होवै है। अति दुःखके प्राप्त हुए प्राणोंका वियोग ही देखणेमें आवै है। इत्यादिक श्रुतियोंकरिके ता जीवात्माकी आनन्दरूपता सिद्ध होवै है। और 'योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथाऽन्तर्ज्योतिरेव यः' इत्यादिक गीतास्मृति वचनकरिके भी ता जीवात्माकी आनन्दरूपता सिद्ध होवै है और जो कदाचित् यह आत्मा आनंदरूप नहीं होवै तो सब लोकोंकी आपणे आत्माविषे परम प्रीति नहीं होणी चाहिये और सर्वलोकोंकी आपणे आत्माविषे तो परम प्रीति ही देखणेमें आवै है और सुषुप्तितैं उठे हुए पुरुषकूं मैं सुखी सोता भया या प्रकारका स्मरण होवै है। सो स्मरण अनुभवतैं विना होता नहीं यातैं सुषुप्तिविषे सुखके अनुभवको कल्पना करावै है। तहां सुषुप्तिविषे कोई विषयजन्य आनंद तो है नहीं किंतु आपणे स्वरूपका ही आनंद है। इत्यादिक युक्तियोंतैं भी ता जीवात्माकी आनंदरूपता सिद्ध होवै है और मैं कदाचित् भी अप्रिय नहीं होऊं या प्रकारके अनुभवतैं भी ता जीवात्माकी आनंदरूपता सिद्ध होवै है यातैं यह जीवात्मा आनंदरूप ही है। इस प्रकार श्रुति स्मृति युक्ति अनुभव इन चारोंकरिके इस जीवात्माकी

सत् चित् आनंद रूपता सिद्ध होणे तैं सो सच्चिदानंदरूपत्व हेतु ता जीव आत्मारूप पक्षविषे वृत्तिहोणेतैं स्वरूपासिद्धनामा हेत्वाभास नहीं है इति । किंवा ता उक्त अनुमानविषे पक्षरूप जीवात्माकी सच्चिदानंदरूपता जैसे श्रुति आदिक प्रमाणोंकरिकै सिद्ध है तैसे ता दृष्टांतरूप परमात्माकी सच्चिदानंदरूपता भी श्रुतिप्रमाणतैं ही सिद्ध है। तहां श्रुति–'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म, आनंदो ब्रह्म' अर्थ–ब्रह्म सत्यरूप है तथा ज्ञानरूप है तथा अनंतरूप है तथा आनंदरूप है इति । यातैं सो सच्चिदानंदरूपत्व हेतु ता परमात्मारूप दृष्टांतविषे भी विद्यमान ही है।यद्यपि ता उक्त अनुमानविषे जीवात्मातैं अभिन्न ब्रह्मकूं दृष्टांतरूपता संभवती नहीं जिस कारणतैं सर्वत्र पक्षत भिन्न ही दृष्टांत होवै है तथापि जीव ब्रह्मका कल्पित भेद मानिकै ता ब्रह्मकूं दृष्टांतरूपता संभवै है और वास्तवतैं तो ता जीव ब्रह्मका अभेद ही है। सो जीव ब्रह्मका अभेद प्रथम परिच्छेदविषे भेदवादके खंडनपूर्वक विस्तारतैं कथन करि आये हैं इति।शंका–मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारकी उक्त अनुमिति सर्व पुरुषनकूं उत्पन्न होवै है अथवा कोईक पुरुषकूं होवै है ? समाधान–जिस पुरुषने ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखसे श्रद्धा भक्तिपूर्वक वेदांत शास्त्रका श्रवण कर्‍या है तथा प्रथम परिच्छेदविषे कथन करी रीतिसे तत्त्वंपदार्थका शोधन कर्‍या है तिस पुरुषकूं ही आपणे आत्माविषे सच्चिदानंदरूपत्व हेतुके ज्ञानतैं 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारकी जीव ब्रह्मके अभेदविषयक अनुमिति उत्पन्न होवै है। वेदांत श्रवणादिकोंतैं रहित पुरुषकूं सो अभेदविषयक अनुमिति उत्पन्न होती नहीं । शंका–'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' इस श्रुतिने ता ब्रह्मकूंकेवल उपनिषद्रूप शब्द प्रमाणका विषय कह्या है, जो कदाचित् ता ब्रह्मविषे अनुमान प्रमाणकी विषयता मानोगे तौ ता उक्त श्रुतिका विरोध

होवैगा यातैं ता ब्रह्मविषे उक्त अनुमानकी विषयता संभवती नहीं। समाधान—ता ब्रह्मविषे अनुमानकूं स्वतंत्र प्रमाणता नहीं है। अथवा वेदांतका सहकारित्वरूप करिकै भी प्रमाणता नहीं है। तहां जो प्रथम पक्ष अंगीकार करो सो तौ हमारेकूं भी इष्ट है। अर्थात् पुरुषकी कल्पनारूप अनुमानप्रमाणकूं अतींद्रिय ब्रह्मविषे स्वतः प्रमाणरूप हम भी मानते नहीं और जो द्वितीय पक्ष अंगीकार करो सो संभवता नहीं। काहेतैं 'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यः' इस श्रुतिने तथा 'श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मंतव्य उपपत्तिभिः' इस स्मृतिने आत्माके साक्षात्कारवासते मननका विधान कऱ्या है और अनुमानादिरूप युक्तियोंकरिकै जो आत्माका विचार है ताका नाम मनन है। इस प्रकार मननविषे उपयोगीपणेकरिकै ता अनुमानकूं वेदांत शास्त्रकी सहकारिताकरिकै प्रमाणरूपता हमारेकूं अंगीकार ही है। जो कदाचित् सर्व प्रकारतैं ता अनुमानकूं अप्रमाणरूप ही मानिये तौ श्रुति स्मृतियोंविषे जो मननका विधान कऱ्या है सो व्यर्थ ही होवैगा यातैं वेदांतशास्त्रकी सहकारितारूपकरिकै ता अनुमानकी प्रमाणता अवश्य मानी चाहिये। या कारणतैं ही 'अहं ब्रह्मास्मि, अयमात्मा ब्रह्म' इत्यादिक श्रुतियोंकरिकै सिद्ध जीवब्रह्मके अभेदकूं ता उक्त अनुमान करिकै सिद्ध कऱ्या है। तहां जिस अर्थकूं वेदांत शास्त्र प्रतिपादन करे है तिसी अर्थकूं जो अनुमान सिद्ध करे है सो अनुमान ता वेदांतशास्त्रका सहकारी कह्या जावै है इति। किंवा 'नेह नानास्ति किंचन। वाचारंभणं विकारो नामधेयम्। मायामात्रमिदं द्वैतम्' इत्यादिक श्रुतियोंकरिकै जैसे प्रपंचका मिथ्यापणा सिद्ध है तैसे अनुमानकरिकै भी सो मिथ्यापणा सिद्ध होवै है सो दिखावै हैं। 'व्यावहारिकः प्रपंचो मिथ्या दृश्यत्वात् शुक्तिरूप्यवत्' अर्थ—यह आकाशादिक व्यावहारिक प्रपंच मिथ्या होणेकूं योग्य है दृश्यरूप होणेतैं जो जो पदार्थ दृश्यरूप होवै हैं सो सो पदार्थ

मिथ्या ही होवे है; जैसे शुक्ति रजत दृश्यरूप होणेतैं मिथ्या ही है इति। इस अनुमानकरिकै इस अधिकारी पुरुषकूं ब्रह्मतैं भिन्न सर्व प्रपंचविषे मिथ्यात्व अनुमिति उत्पन्न होवै है। शंका—इस प्रपंचविषे मिथ्यापणा क्या है? समाधान--सत् असत्तैं विलक्षणतारूप जो अनिर्वचनीयपणा है यह ही तो प्रपंचविषे मिथ्यापणा है। तहां प्रपंचकूं जो सत्य मानिये तौ ब्रह्मकी न्याईं ता प्रपंचका बाध नहीं होवैगा और ब्रह्मसाक्षात्कारकरिकै ता प्रपंचका बाध होवैहै यातैं सो प्रपंच सत्यतैं भी विलक्षण है और ता प्रपंचकूं जो असत्य मानिये तौं नरशृंग वंध्यापुत्रकी न्याईं ता प्रपंचका प्रत्यक्ष नहीं होवैगा और ता प्रपंचका प्रत्यक्ष सर्वकूं होवै है यातैं सो प्रपंच असत्यतैं भी विलक्षण है और सत् असत दोनोंका परस्पर विरोध होणेतैं सत् असत् उभयरूपता भी ता प्रपंचविषे संभवती नहीं। इस प्रकारका अनिर्वचनीयपणा ही ता प्रपंचविषे तथा शुक्ति रजतविषे मिथ्यापणा है। शंका—जिस दृश्यत्वरूप हेतुतैं प्रपंचविषे मिथ्यापणा सिद्ध करते हो सो दृश्यत्व हेतु व्यभिचारी होणेतैं असत् हेतु ही है। काहेतैं दर्शनके विषयत्वका नाम दृश्यत्व है और वृत्तिज्ञानका नाम दर्शन है। ता वृत्तिज्ञानका विषयत्वरूप दृश्यत्व ब्रह्मविषे भी रहे है और ता ब्रह्मविषे सो उक्त मिथ्यात्वरूप साध्य है नहीं यातैं ता मिथ्यात्वरूप साध्यके अभाववाले ब्रह्मविषे वृत्ति होणेतैं सो दृश्यत्व हेतु व्यभिचारी ही है। समाधान—ता उक्त अनुमानविषे दृश्यत्व शब्दकरिकै वृत्तिज्ञानका विषयत्वरूप दृश्यत्व विवक्षित नहीं है किंतु ता वृत्तिविषे आरूढ जो फल चैतन्य है ताका विषयत्वरूप दृश्यत्व ही विवक्षित है। तहां ता ब्रह्मविषे आवरणकी निवृत्तिवासतैं वृत्तिकी विषयता हुए भी स्वप्रकाशरूप होणेतैं ता फलचैतन्यकी विषयता है नहीं यातैं ता ब्रह्मविषे आवृत्ति होणेतैं सो दृश्यत्व हेतु व्यभिचारी नहीं है किंतु सत् हेतु

है इहां यह तात्पर्य है। एक सत् हेतु होवै है दूसरा असत् हेतु होवै है। तहां सत् हेतुतैं तौ तिस साध्यकी सिद्धि होवै है और असत् हेतुतैं ता साध्यकी सिद्धि होती नहीं। तिसी असत् हेतुकूं दुष्टहेतु कहे हैं तथा हेत्वाभास कहे हैं। सो हेत्वाभास भी सव्यभिचार १ विरुद्ध २ असिद्ध ३ सत्प्रतिपक्ष ४ बाधित ५ इस भेदकरिकै पंच प्रकारका होवै है। तहां प्रथम सव्यभिचार भी साधारण १ असाधारण २ अनुपसंहारी ३ इस भेदकरिकै तीन प्रकारका होवै है और तीसरा असिद्ध भी आश्रयासिद्ध १ स्वरूपासिद्ध २ व्याप्यत्वासिद्ध ३ इस भेदकरिकै तीन प्रकारका होवै है। इन पंच हेत्वाभासोंके लक्षण तथा उदाहरण न्यायप्रकाशके षष्ठ परिच्छेदविषे अनुमाननिरूपणविषे हमने विस्तरतैं निरूपण करे हैं। ग्रंथविस्तरके भयतैं इहां निरूपण करे नहीं, जिसकूं जिज्ञासा होवै तिसने तहांसे जानि लेणे इति। इहां नैयायिक ता अनुमानकूं केवलान्वयि १ केवलव्यतिरेकि २ अन्वयव्यतिरेकि ३ इस भेदकरिकै तीन प्रकारका माने हैं। तहां जिस अनुमानके साध्यका कहीं भी अत्यंताभाव नहीं होवै सो अनुमान केवलान्वयि कह्या जावै है। जैसे 'घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात्' इत्यादिक अनुमान है। इहां अभिधेयत्वरूप साध्यका कहीं भी अत्यंताभाव नहीं है किंतु पदका वाच्यत्वरूप अभिधेयत्व सर्व पदार्थोंविषे रहे है तथा प्रमाज्ञानका विषयत्वरूप प्रमेयत्व भी सर्व पदार्थोंविषे रहे है यातें यह उक्त अनुमान केवलान्वयि कह्या जावै है/और जिस अनुमानके साध्यका तथा हेतुका कहीं भी सहचारदर्शन नहीं होवै किंतु ता साध्यहेतुके अभावोंका ही सहचारदर्शन होवै सो अनुमान केवलव्यतिरेकि कह्या जावै है। जैसे 'पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गंधवत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा जलादिः' इत्यादिक अनुमान है। इहां पृथिवीतें इतर

जलादिक तथा पदार्थोंके भेदरूप साध्यका तथा गंधरूप हेतुका ता पृथिवीरूप पक्षकूं छोडिकै अन्यत्र कहीं भी सहचार है नहीं, किंतु ता साध्यहेतुके अभावोंका ही जलादिकोंविषे सहचार है यातैं यह उक्त अनुमान केवलव्यतिरेकि कह्या जावै है। और जिस अनुमानके साध्य हेतु दोनोंका तथा तिन दोनोंके अभावोंका अन्यत्र सहचार दर्शन होवै है सो अनुमान अन्वयव्यतिरेकि कह्या जावै है। जैसे 'पर्वतो वह्निमान् । धूमवत्त्वात्' यह प्रसिद्ध अनुमान है इहां वह्नि-रूप साध्यका तथा धूमरूप हेतुका महानसविषे सहचार देखणेमें आवै है और तिन दोनोंके अभावोंका जलह्रदविषे सहचार देख-णेमें आवै है यातैं यह उक्त अनुमान अन्वयव्यतिरेकि कह्या जावै है इन तीन प्रकारक अनुमानोंका विस्तारतैं निरूपण न्यायप्रका-शके षष्ठपरिच्छेदविषे कर्‍या है सो तहांसे जानि लेणा इति। सो यह नैयायिकोंका मत असंगत है । काहेतैं 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादिक श्रुतियां ब्रह्मविषे सर्व प्रपंचका अत्यंताभाव कथन करे हैं यातैं ब्रह्मतैं भिन्न किसी भी पदार्थविषे अत्यंताभावका अप्रति-योगीपणा नहीं है किंतु सर्व अनात्मपदार्थ ता अत्यंताभावके प्रतियोगी ही हैं यातैं ता अनुमानविषे केवल अन्वयिरूपता संभ-वती नहीं । इस प्रकार सो केवलव्यतिरेकि अनुमान भी संभवता नहीं । काहेतैं जिन पदार्थोंका परस्पर व्याप्य व्यापक भाव होवै है तिन पदार्थोंका ही परस्पर साधन साध्य भाव होवै यह नियम है। इस नियमका ता केवलव्यतिरेकि अनुमानविषे भंग होवै है । जिस कारणतैं ता उक्त केवलव्यतिरेकि अनुमानविषे गंध इतर भेद इन दोनोंका तौ साधन साध्यभाव मान्या है और इतर भेदाभाव तथा गंधाभाव इन दोनोंका व्याप्य व्यापक भाव मान्या है । जो कदाचित् अन्य पदार्थोंके व्याप्तिज्ञानतैं अन्य पदार्थकी अनुमिति होती होवै तौ पर्वतविषे वह्निव्याप्य धूमके ज्ञानतैं जलकी भी

अनुमिति होणी चाहिये। यातैं ता अनुमानविषे केवल व्यतिरेकिरूपता भी संभवती नहीं। ता केवल अन्वयिके तथा केवलव्यतिरेकिके असंभव हुए ता अनुमानविषे अन्वय व्यतिरेकिरूपता भी संभवती नहीं। यातैं सो अनुमान वेदांत सिद्धांतविषे एक अन्वयिरूप ही होवै है। तहां पूर्व उक्त अन्वयव्याप्तिवाले अनुमानका नाम अन्वयि है। शंका--जिस पुरुषकूं पूर्व उक्त साधन साध्य दोनोंका सामानाधिकरण्यरूप अन्वयव्याप्तिका ज्ञान नहीं भया है, किंतु साध्याभाव साधनाभाव इन दोनोंका सामानाधिकरण्यरूप व्यतिरेकव्याप्तिका ही ज्ञान भया है। तिस पुरुषकूं भी ता व्यतिरेकव्याप्तिके ज्ञानतैं ता साध्यकी अनुमिति होवै है सो नहीं होणी चाहिये। समाधान—ता अन्वयव्याप्तिके ज्ञानतैं रहित पुरुषकूं ता व्यतिरेक व्याप्तिके ज्ञानतैं ता साध्यकी अनुमिति नहीं होती। किन्तु तहां अर्थापत्ति प्रमाणतैं ही ता साध्यकी प्रमा होवै है। जैसे पृथिवी मात्रविषे स्थित गंधगुण ता पृथिवीविषे जलादिक इतर पदार्थोंके भेदतैं विना अनुपपन्न हुआ ता पृथिवीविषे ता इतर भेदकी कल्पना करावै है इति। अनुमितिप्रमाणनिरूपणम् इति॥२॥ अब तीसरी उपमिति प्रमाका निरूपण करे हैं तहां 'सादृश्यप्रमितिः उपमितिः' अर्थ—सादृश्यकूं विषय करणेहारी जा प्रमा है सा उपमितिप्रमा कही जावै है। जैसे नगरविषे देख्या है गोपिंड जिस पुरुषने तथा गवय पशुके जानणेकी है इच्छा जिस पुरुषकूं सो पुरुष किसी वनवासी पुरुषतैं पूंछताभया जो गवय पशु कैसा होवै है। आगेतैं सो वनवासी पुरुष ता नगरवासी पुरुषके प्रति गौके सदृश गवय होवै है या प्रकारका वचन कहता भया। ता वचनकूं श्रवण करिकै सो नगरवासी पुरुष कोई कालविषे वनकूं जाता भया। ता वनविषे ता गवयपिंडकूं देखिकै यह गवय गौके सदृश है या प्रकारका ज्ञान ता पुरुषकूं होवै है। तिसतैं अनंतर इस गवयके सदृश

हमारी गौ है या प्रकारका ज्ञान तिस पुरुषकूं होवै है । इसी ज्ञान-का नाम उपमिति प्रमा है तहां ता गवय पशुनिष्ठ जो गौके सादृ-श्यका ज्ञान है सो तौ ता उपमिति प्रमाका करण होणेतैं उपमान प्रमाण है और आपणी गौनिष्ठ जो ता गवयके सादृश्यका ज्ञान है सो ज्ञान ता उपमान प्रमाणका फलरूप उपमिति प्रमा है इति । यह लौकिक उदाहरण ता उपमितिका कह्या, अब ता उपमितिका वैदिक उदाहरण कहे हैं । आकाशका असंगपणा तथा व्यापकपणा निश्चय कर्‍या है जिस पुरुषने और ब्रह्मके असंगपणेकूं तथा व्याप-कपणेकूं जिस पुरुषने जान्या नहीं ऐसा अधिकारी पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुसे पूछे है । हे भगवन् ! ब्रह्मका क्या स्वरूप है ? तिसतैं अनंतर सो गुरु ता शिष्यके प्रति आकाशके न्याईं सो ब्रह्म असंग है तथा व्यापक है इस प्रकारका उत्तर कहे है । तिसतैं अनंतर सो शिष्य एकांत देशमें विचार करिकै आपणे ब्रह्मरूप आत्माविषे असंग व्यापकतारूप करिकै आकाशके सादृशकूं अनुभव करै है अर्थात आकाशकी न्याईं असंग तथा व्यापक ब्रह्म मैं हूं या प्रकारका अनुभव ता अधिकारी पुरुषकूं होवै है इति । शंका—आत्माविषे असंगतारूप आकाशका सादृश्य है । इस अर्थविषे कौन प्रमाण है समाधान—श्रुति स्मृति आचार्यवाक्य इन तीनों करिकै सो अर्थ सिद्ध है । तहां श्रुति ' आकाशवत्सर्वगतश्चनित्यः ' अर्थ—आत्मा आकाशकी न्याईं सर्वत्र व्यापक है तथा नित्य है । इस श्रुतिने आत्माकूं आकाशकी न्याईं व्यापक कह्या हैऔर 'यथा सर्वगतं सौ-क्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते। सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते' अर्थ-जैसेसर्वत्रस्थित हुआ भी आकाश आपणे असंग स्वभावतैं कोई पदार्थकरिकै लिपायमान होता नहीं तैसे सर्व देहोंविषे स्थित हुआ भी यह आत्मा आपणे असंगस्वभावतैं कोई पदार्थकरिकै लिपा-

यमान होता नहीं इति । इस गीतास्मृतिने आत्माकूं आकाशकी न्याईं है असंग कह्या है और 'दृशि स्वरूपं गगनोपमं परम्' इस वचनकरिकै आचार्योंने भी आत्माकूं आकाशकी न्याईं व्यापक कह्या है। यातैं आत्माविषे आकाशकी सदृश ताकूं लेके सो उक्त उपमितिका उदाहरण संभवै है इति । अथवा शुक्ति रजत स्वप्नप-दार्थ आदिकोंविषे मिथ्यापणेकूं निश्चयकरिकै आकाशादिक प्रपं-चके स्वरूप जानणेकी इच्छा करता हुआ यह अधिकारी पुरुष यह प्रपंच शुक्ति रजतादिकोंकी न्याईं मिथ्या है या प्रकारके गुरुके वच-नकूं श्रवण करिकैं एकांत देशमें विचार करिकै इस प्रपंचविषे शुक्ति-रजतादिकोंके मिथ्यात्वरूप सादृश्यकूं अनुभव करे है। अर्थात् यह आकाशादिक प्रपंच शुक्ति रजतादिकोंकी न्याईं मिथ्याही ही है।या प्रकारका अनुभव ता अधिकारी पुरुषकूं होवै है । यह उपमितिका उदाहरण भी वेदांत सिद्धांतविषे अनुकूल है इति। इहां नैयायिक तौ ता गवयनिष्ठ गोसादृश्य ज्ञानतैं अनंतर गवय गवयपदका वाच्य है या प्रकारके ज्ञानकूं ही उपमितिप्रमा माने हैं। तथा ता उपमानकूं सादृश्यविशिष्ट पिंडज्ञान १ वैधर्म्यविशिष्ट पिंडज्ञान २ असाधा-रण धर्मविशिष्ट पिंडज्ञान ३ इस भेदकरिकै तीन प्रकारका माने है। सो नैयायिकोंका मत न्यायप्रकाशके षष्ठपरिच्छेदविषे उपमान नि-रूपणविषे विस्तारतैं प्रतिपादन कऱ्या है,जिसकूं जिज्ञासा होवै तिसने तहांसे जानि लेणा इति। इति उपमितिप्रमानिरूपणम्। अब चतुर्थी शाब्दी प्रमाका निरूपण करे हैं तहां'वाक्यकरणिकाप्रमा शाब्दीप्र-मा' अर्थ—वाक्यरूप कारण करिकै जन्य जा प्रमा है सा शाब्दी प्रमा कही जावै है। तैसे 'तत्त्वमसि'इस वैदिक वाक्यकूं श्रवण क-रिकै इस अधिकारी पुरुषकूं जा 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारकी प्रमा होवै है तथा 'घटमानय। गामानय' इत्यादिक लौकिक वाक्योंकूं श्रवण करिकै इस पुरुषकूं घट गौ आदिकोंके आनयनकी जा प्रमा

होवै है ता प्रमाका नाम शाब्दी प्रमा है इति।तहां जिस वाक्यकरिके सा शाब्दी प्रमा जन्य होवै है ता वाक्यका लक्षण कहे हैं'आकांक्षा-योग्यतासन्निधिमत्पदसमुदायः वाक्यम्'अर्थ—आकांक्षा योग्यता सन्निधि इन तीनोंवाले जे पद हैं तिन पदोंके समुदायका नाम वाक्य है।जैसे'तत्त्वमसि'इत्यादिक वैदिक वाक्य तत् त्वंम् आदिकपदोंका समुदायरूप हैं । तथा'घटमानय' इत्यादिक लौकिक वाक्य घटम् आनय इत्यादिक पदोंका समुदायरूप हैं इति । अब जिन पदोंके समुदायका नाम वाक्य हैं तिन पदोंका लक्षण करे हैं । तहां 'वर्ण-समूहः पदम्'अर्थ—कक्कारादि वर्णोंका जो समूह है ताका नाम पद है।जैसे कलश इत्यादिक पद कक्कारादिक वर्णोंका समूहरूप है तहां ता पदके घटक कक्कारादिक वर्णोंविषे जो एक ज्ञानकी विषयता है यह ही समूहपणा है । यद्यपि नैयायिकोंके मतविषे ते कक्कारादिक वर्ण शब्दरूप होणेतें क्षणिक हैं अर्थात् तृतीय क्षणविषे नाशवान् हैं तथा तिन वर्णोंका समुदायरूप पद भी क्षणिक है तथा तिन पदों-का समुदायरूप वाक्य भी क्षणिक है तथा तिन वाक्योंका समुदा-रूप पद वेद भी क्षणिक है, तथापि वेदांतसिद्धांतविषे ते वर्णक्षणिक नहीं हैं किंतु आकाशादिकोंकी न्याई सृष्टिके आदिकालविषे माया उपहित ईश्वरतें तिन वर्णोंकी उत्पत्ति होवै है और प्रलयकालविषे तिन वर्णोंका विनाश होवै है मध्यकालविषे तिन वर्णोंका उत्पत्ति विनाश होता नहीं या कारणतें ही'सोऽयं गकारः इत्यादिक प्रत्यभिज्ञानकूं भी प्रमारूपता होवै है।और'उत्पन्नो गकारःविनष्टो गकारः'इत्यादिक प्रतीति तौ गकारादिकवर्णोंके उच्चारणके उत्पत्ति विनाशकूंही विषय करे हैं।गकारादिक वर्णोंके उत्पत्ति विनाशकूं विषय करती नहीं।यातें वर्ण पद वाक्यभेद यह सर्व शब्दरूप होणेतें क्षणिक हैं यह नैयायिकों का मत असंगत है और मीमांसक तौ तिन वर्णोंकूं तथा वर्णसमु-

दायरूप वेदकूं उत्पत्ति विनाशतैं रहित नित्य मानै हैं, सो मीमांसकोंका मत भी असंगत है। जिस कारणतैं 'छन्दांसि जज्ञिरे तस्मायजुस्तस्मादजायत अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः' इत्यादिक श्रुतिने सृष्टिके आदिकालविषे माया उपहित ईश्वरतैं वेदोंकी उत्पत्ति कथन करी है। और 'अत एव च नित्यत्वम्' इस सूत्रविषे श्री व्यास भगवानने वेदोंका प्रलयपर्यंत स्थायित्वरूप नित्यपणा कथन कऱ्या है। यातैं सो मीमांसकोंका मत भी असंगत है इति। तहां पूर्व आकांक्षा योग्यता संनिधि इन तीनोंवाले पदोंके समूहकूं वाक्य कह्या था। ताके विषे प्रथम आकांक्षाका स्वरूप वर्णन करे हैं। तहां 'अन्वयानुपपत्तिः आकांक्षा' अर्थ—जिस पदतैं विना अन्वय नहीं संभवै है तिस पदका जो तिस पदके साथ समभिव्याहार है ताका नाम आकांक्षा है। जैसे 'घटमानय' इस वाक्यतैं श्रोता पुरुषकूं घटके ले आवणेका बोध होवै है। सो बोध केवल 'घटम्' इस कारक पदतैं भी होता नहीं। तथा केवल 'आनय' इस क्रियापदतैं भी होता नहीं। किंतु तिन दोनों पदोंके विद्यमान हुए ही सो बोध होवै है। यातैं ता 'घटम्' पदकूं जो 'आनय' पदका समभिव्याहार है। तथा ता आनय पदकूं जो घट पदका समभिव्याहार है यह ही तिन दोनों पदोंकूं परस्पर आकांक्षा है। समभिव्याहार नाम समीपताका है। यद्यपि आकांक्षा नाम इच्छाका है सो इच्छा चेतनका ही धर्म होवै है जड़ पदोंका धर्म होता नहीं। तथापि ते पद श्रोता पुरुषकी स्वविषयक आकांक्षाके जनक होवै हैं। यातैं तिन पदोंकूं भी आकांक्षावाला कह्या है इति। अब योग्यताका वर्णन करे हैं तहां 'वाक्यार्थाबाधः योग्यता' अर्थ—वाक्यके अर्थका जो प्रमाणांतर करिकै अबाध है ताका नाम योग्यता है। जैसे 'घटमानय' इस वाक्यका अर्थ जो घटका आनयन है ताका कोई

भी प्रत्यक्षादिक प्रमाण करिकै बाध होता नहीं। यह ही तिन घटादिक पदोंविषे योग्यता है इति। अब संनिधिका वर्णन करे हैं। तहां 'पदानामविलंबोच्चारणं संनिधिः' अर्थ—पदोंका जो विलंबतैं रहित उच्चारण है ताका नाम संनिधि है जैसे'घटमानय'इस वाक्यविषे घटम् इस पदतैं उत्तर विलंबतैं रहित जो आनय इस पदका उच्चारण है ताका नाम संनिधि है इति। इस प्रकारके आकांक्षा योग्यता संनिधि इन तीनोंवाले पदोंका जो समुदाय है ताका नाम वाक्य है। तहां 'पदसमुदायः वाक्यम्' इतनामात्र ही जो ता वाक्यका लक्षण करते तौ प्रहरादिक कालका विलंब करिकै उच्चारण कऱ्ये हुए घटादिक पदोंके समुदायविषे ता वाक्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतैं ता लक्षणविषे संनिधिवाले पदोंकूं वाक्य कह्या है। तहां प्रहर प्रहरतैं पीछे उच्चारण कऱ्ये हुए तिन घटादिक पदोंविषे सा अविलंबतैं उच्चारणरूप संनिधि है नहीं। यातैं ता पद समुदायविषे ता वाक्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'संनिधिमत्पदसमुदायः वाक्यम्' इतनामात्र ही जो ता वाक्यका लक्षण करते तौ 'अग्निना सिंचेत्'अर्थ—अग्निकरिकै वृक्षोंका सिंचन करे। इस प्रमाणभूत वाक्यविषे भी ता वाक्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती जिस कारणतैं सा उक्त संनिधि इन पदोंविषे भी है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतैं ता लक्षणविषे तिन पदोंका योग्यता विशेषण कथन कऱ्या है। तहां अग्निविषे सिंचनकी करणता प्रत्यक्षप्रमाण करिकै बाधित है यातैं ते पद ता उक्त योग्यतावाले नहीं हैं। यातैं अग्निना सिंचेत् इसपर समुदायविषे ता वाक्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'योग्यतासंनिधिमत्पदसमुदायः वाक्यम्' इतनामात्र ही जो ता वाक्यका लक्षण करते

तौ 'गौरश्वः पुरुषो हस्ती' इस पद समुदायविषे ता वाक्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती जिस कारणतैं सा उक्त सन्निधि तथा योग्यता इन पदोंविषे भी है। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतैं तिन पदोंका आकांक्षा विशेषण कथन कऱ्या है तहां ते गो अश्वादिक पद परस्पर आकांक्षावाले हैं नहीं। यातैं ता पद समूहविषे ता वाक्यके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति। शंका–इस प्रकारके उक्त वाक्यकूं जो शाब्दी प्रमाकी करणता होवै तौ अव्युत्पन्न पुरुषकूं भी ता वाक्यतैं शाब्दी प्रमा होणी चाहिये। तहां इस पदका यह अर्थ है या प्रकारके ज्ञानतैं रहित पुरुषका नाम अव्युत्पन्न है। समाधान–जैसे सो वाक्य ता शाब्दी प्रमाका कारण होवै है तैसे ता वाक्यनिष्ठ पदोंके संगतिका ज्ञान भी ता शाब्दी प्रमाका कारण होवै है। ता अव्युत्पन्न पुरुषकूं सो संगतिका ज्ञान है नहीं। यातैं ता वाक्यके श्रवण हुए भी ता अव्युत्पन्न पुरुषकूं सा वाक्यार्थ प्रमा होती नहीं। तहां शाब्दीप्रमा वाक्यार्थप्रमा शाब्दबोध यह तीनों शब्द एक ही अर्थके वाचक होवै हैं। अब ता संगतिका स्वरूप वर्णन करे हैं तहां 'पदपदार्थयोः स्मार्यस्मारकभावसंबंधः संगतिः' अर्थ--पद पदार्थ इन दोनोंका जा स्मार्यस्मारकभाव संबंध है ताका नाम संगति है। जैसे घटपदकूं श्रवण करिके इस पुरुषकूं घटरूप अर्थकी स्मृति होवै है। तहां घटपद तौ ता स्मृतिका जनक होणेतैं स्मारक कह्या जावै है और सो घटरूप अर्थ ता स्मृतिका विषय होणेतैं स्मार्य कह्या जावै है इस प्रकारके स्मार्यस्मारकभाव संबंधका नाम संगति है। इसी संगतिकूं शास्त्रकार वृत्ति भी कहे हैं इति। और सा वृत्तिरूप संगति शक्ति १ लक्षणा २ इस भेदकरिकै दो प्रकारकी होवै है। यद्यपि अन्य शास्त्रोंविषे शक्ति १ गौणी २ लक्षणा ३ इस भेदकरिकै सा वृत्ति तीन प्रकारकी कथन करी है तथापि इहां ता गौणी वृत्तिका लक्षणाविषे अंतर्भाव मानि-

के सा वृत्ति दो प्रकारकी कथन करी है । अब ता दो प्रकारकी वृत्तिविषे प्रथम शक्तिवृत्तिका निरूपण करे हैं ।तहां 'पदपदार्थयोर्वाच्यवाचकभावसम्बन्धः शक्तिः' अर्थ—पद पदार्थ इन दोनोंका जो वाच्यवाचकभावसम्बन्ध है ताका नाम शक्ति है । जैसे घटपद तथा घटरूप अर्थ दोनोंका वाच्यवाचकभाव सम्बन्ध है । तहां घटपद तौ वाचक है और घटरूप अर्थ वाच्य है । तहां पदजन्य ज्ञानका जो विषय होवै है सो वाच्य कह्या जावै है और पदार्थके स्मृतिका जो जनक होवै है सो वाचक कह्या जावै है ।इसी शक्तिकूं शास्त्रविषे मुख्या वृत्ति इस नाम करिके भी कथन करे हैं इति । और सा मुख्यवृत्तिरूप शक्ति भी योग १ रूढि २ इस भेदकरिके दो प्रकारकी होवै है । तहां ' अवयवशक्तिः योगः ' अर्थ—पदके प्रकृतिप्रत्ययरूप अवयवोंविषे जो अर्थका बोधक शक्ति है ताका नाम योगशक्ति है । जैसे पाचकादिक पदोंकी पाककर्त्तादिरूप अर्थविषे योगशक्ति है। तहां पच् धातुतैं अनंतर अक प्रत्यय आइके पाचक यह शब्द सिद्ध होव है।तहां पच धातुकी तौ पाकमें शक्ति है और अक प्रत्ययकी कर्तामें शक्ति है । तिन दोनों अवयवोंकी शक्तितैं पाककर्ता पुरुषका बोध होवै है । इसी योगशक्तिवाले पाचकादिक पदोंकूं शास्त्रविषे यौगिकपद कहे हैं इति । और ' समुदायशक्तिः रूढिः' अर्थ—पदके प्रकृतिप्रत्ययरूप अवयवसमुदायविषे जा अर्थका बोधक एक शक्ति है ताका नाम रूढिशक्ति है । जैसे घटादिक पदोंकी घटादिरूप अर्थविषे रूढिशक्ति है। इसी रूढिशक्तिवाले पदोंकूं शास्त्रविषे रूढपद कहे हैं इति। इहां नैयायिक सा शक्ति योग १ रूढि २ योगरूढि ३ यौगिकरूढि ४ इस भेदकरिके चारि प्रकारकी माने हैं और ता शक्तिकी चारि प्रकारता करिके ता पदकूं भी योग १ रूढ २ योगरूढ ३

यौगिकरूढ ४ इस भेद करिकै चारि प्रकारका माने हैं। तहां पंकज आदिक पदोंकूं योग रूढ माने हैं और उद्भिद आदिक पदोंकूं यौगिकरूढ माने हैं। यह नैयायिकोंका मत न्यायप्रकाशके षष्ठ परिच्छेदविषे शब्दप्रमाणके निरूपणविषे विस्तारतैं कथन कऱ्या है सो तहांसे जानि लेणा इति। अब ता उक्त शक्तिके ज्ञानका प्रकार वर्णन करे हैं। ता शक्तिका इस पुरुषकूं व्यवहारतैं ज्ञान होवै है। जैसे गुरु पितादिरूप उत्तम वृद्ध पुरुषके 'घटमानय' इस वचनकूं श्रवण करिके शिष्य पुत्रादिरूप मध्यम वृद्ध पुरुष ता घटके ले आवणेवास्तैं प्रवृत्त होवै है और ता उत्तम वृद्ध पुरुषके समीप स्थित जो बालक है सो बालक ता मध्यम वृद्ध पुरुषके गमन आगमनरूप प्रवृत्तिकूं देखिके ता मध्यम वृद्ध पुरुषके ज्ञानका अनुमान करे है सो अनुमान यह है। 'इयं प्रवृत्तिः ज्ञानसाध्या प्रवृत्तित्वात् मदीयप्रवृत्तिवत्' अर्थ—इस मध्यम वृद्ध पुरुषकी जा यह प्रवृत्ति है सा ज्ञान करिके जन्य है प्रवृत्तिरूप होणेतैं जा जा प्रवृत्ति होवै है सा ज्ञान करिके जन्य ही होवै है। जैसे हमारी प्रवृत्ति इष्ट साधनताज्ञान करिकै जन्य होवै है इति। इस प्रकार सो बालक ता मध्यम पुरुषकी प्रवृत्तिके हेतुभूत ज्ञानका अनुमान करिके तिसतैं अनंतर तिस ज्ञानविषे ता उत्तम वृद्ध पुरुषके वाक्यजन्यताका अनुमान करे है। सो अनुमान यह है। 'इदं ज्ञानमेतद्वाक्यजन्यमेतद्वाक्यान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात् दंडजन्यघटादिवत्' अर्थ—इस मध्यम पुरुषके प्रवृत्तिका हेतुभूत जो ज्ञान है इस उत्तम वृद्ध पुरुषके घटमानय इस वाक्य करिकै जन्य है सो ज्ञान इस वाक्यके अन्वयव्यतिरेकके अनुसारी होणेतैं जो जो पदार्थ जिस पदार्थके अन्वय व्यतिरेकके अनुसारी होवै है सो सो पदार्थ तिस पदार्थ करिकै जन्य ही होवै है। जैसे दंडके विद्यमान हुए घटरूप कार्यकी उत्पत्ति होवै है और

ता दंडके अभाव हुए ता घटरूप कार्यकी उत्पत्ति होती नहीं। या प्रकारका जो दंडका अन्वयव्यतिरेक है तिसके अनुसारी ही घट होवै है। यातैं सो घट ता दंड करिकै जन्य ही होवै है। तैसे इस उत्तम वृद्ध पुरुषके'घटमानय'इस वाक्यके अन्वय व्यतिरेकके अनुसारी होणेतैं सो मध्यम पुरुषज्ञान इस वाक्य करिकै ही जन्य है इति। इस प्रकार सो बालक ता मध्यम पुरुषके ज्ञानविषे ' घट-मानय ' इस वाक्यजन्य ताका अनुमान करिकै पश्चात् ता मध्यम पुरुषकृत घटके आनयनकूं देखिकै ता घटपदकी तिस घटव्यक्तिविषे शक्तिकूं निश्चय करे है। अर्थात् ' घटमानय ' इस वाक्यविषे स्थित घटपदकी इस घटव्यक्तिविषे शक्ति है ता प्रकारका ता बालककूं शक्तिज्ञान होवै है। इस प्रकार ता बालककूं प्रथम वृद्धव्यवहारतैं ही घटादिक पदार्थोंके शक्तिका ज्ञान होवै है। तिसतैं अनंतर व्याकरण १ उपमान २ कोश ३ आप्तवाक्य ४ वाक्यशेष ५ विवरण ६ सिद्धपदकी समीपता ७ इनोंतैं भी पदोंके शक्तिका ज्ञान होवै है। तिन व्याकरणादिकोंतैं जिस प्रकार पदोंके शक्तिका ज्ञान होवै है सो प्रकार न्यायप्रकाशके षष्ठ परिच्छेद विषे शब्दप्रमाणके निरूपणविषे हमने विस्तारतैं निरूपण कर्‍या है। ग्रंथके विस्तार भयतैं इहाँ निरूपण कर्‍या नहीं। जिसकूं जानणेकी इच्छा होवै तिसने तहांसे जानिलेणा इति। अब ता शक्तिविषयभूत अर्थका मतभेदसे निरूपण करे हैं। तहां नैयायिकतो यह कहे हैं। इस पदतैं श्रोता-पुरुषकूं इस अर्थका बोध होवो या प्रकारकी जा ईश्वरकी इच्छा है ताका नाम शक्ति है और नवीन नयायिकतो उक्त प्रकारकी जीवकी इच्छाकूं भी शक्ति माने हैं। सा घटादिक पदोंकी शक्ति घटादिरूप पदार्थविषे ही होवै है। घटादिक पदार्थोंके रूप संबंध-रूपसंसर्गविषे सा शक्ति होती नहीं। जिस कारणतैं घट पदके श्रवणतैं श्रोता पुरुषकूं ता घटरूप अर्थका ही स्मरण होवै है। ता

संसर्गका स्मरण होता नहीं। और 'घटमानय' इत्यादिक वाक्यविषे स्थित घटादिक पदोंके अर्थोंका परस्पर संसर्गरूप जो वाक्यार्थ है ता वाक्यार्थका तौ तिन घटादिक पदोंके समभिव्याहारतें ही बोध होवै है। यातें ता संसर्गविषे घटादिक पदोंकी शक्ति मानणी निष्फल है इति। और मीमांसक तौ यह कहे हैं। घटादिक पदोंकी केवल घटादिरूप अर्थविषे ही शक्ति नहीं होवै है किंतु कार्यान्वित घटादिकोंविषे ही घटादिक पदोंकी शक्ति होवै है। इहां पुरुषके प्रयत्नरूप कृति करिकै साध्य जा क्रिया है ताका नाम कार्य है। ता कार्यके संबन्धवालेका नाम कार्यान्वित है। जैसे 'घटमानय' इस वाक्यविषे घटकी आनयनरूप क्रिया ता पुरुषके प्रयत्न करिकै साध्य होणेतैं कार्य है। ता आनयनरूप कार्यके संबन्धवाला घट है। यातें सो घट कार्यान्वित कह्या जावै है। तिस कार्यान्वित घटविषे ही घट पदकी शक्ति है। इस प्रकार पटादिक पदोंकी भी ता कार्यान्वित पटादिकोंविषे ही शक्ति जानणी। जो कदाचित् घटादिक पदोंकी कार्यान्वित घटादिकोंविषे शक्ति नहीं मानिये तौ घटादिक पदार्थोंके संसर्गरूप वाक्यार्थका बोध नहीं होवैगा। तथा पूर्व उक्त रीतिसे बालकूं प्रथम कार्यान्वित घटादिकोंविषे ही घटादिक पदोंके शक्तिका ज्ञान होवै है सो भी नहीं होवैगा। तथा जिस कारणतैं कृतिसाध्यत्वरूप कार्यताका ज्ञान ही पुरुषके प्रवृत्तिका हेतु होवै है। केवल इष्टसाधनता ज्ञान पुरुषके प्रवृत्तिका हेतु होता नहीं। चंद्रमंडलादिकोंविषे इष्टसाधनता ज्ञानके हुए भी इस पुरुषकी प्रवृत्ति होती नहीं। यद्यपि विषभक्षण कूपपतन आदिकोंविषे ता कार्यता ज्ञानके हुए भी इस पुरुषकी प्रवृत्ति होती नहीं तथापि इष्टसाधनता ज्ञानके समानकालीन जो कार्यताज्ञान है सोई ही इस पुरुषके प्रवृत्तिका हेतु होवै है। तिन विषभक्षणादिकोंविषे इस पुरुषकूं इष्टसाधनता ज्ञान है नहीं। यातें प्रवृत्ति

होवै नहीं, यातैं ता कृतिसाध्यत्वरूप कार्यताके वाचक जे लिङ् लोट् तव्य इत्यादिक पद हैं तिन पदोंकरिकै घटित वाक्य ही प्रमाणवाक्य होवै है। जैसे 'घटमानय' इत्यादिक लौकिक वाक्य हैं। तथा 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिक वैदिक वाक्य हैं। तिन लिङादिक पदोंतैं रहित वाक्य प्रमाण होते नहीं। जैसे 'भूतले घटः' इत्यादिक लौकिक वाक्य हैं। तथा 'तत्त्वमसि' इत्यादिक वैदिक वाक्य हैं इति। और वेदांत सिद्धांतका तौ यह मत है। घटादिक पदोंकी केवल घटादिरूप अर्थविषे वा कार्यान्वित घटादिकोंविषे शक्ति नहीं है किंतु इतरान्वित घटादिकोंविषे ही तिन घटादिक पदोंकी शक्ति है। यद्यपि बालककूं प्रथम कार्यान्वित घटादिकोंविषे ही घटादिक पदोंके शक्तिका ज्ञान होवै हैं तथापि पश्चात् गौरव दोषतैं ता कार्य अंशका परित्याग करिकै इतरान्वित घटादिकोंविषे ही तिन घटादिक पदोंके शक्तिका ज्ञान होवै है। सो इतर पदार्थ कार्य होवै अथवा ता कार्यतैं भिन्न होवै और जैसे 'घटमानय' इस कार्यपर वाक्यतैं शक्तिके ग्रहणका प्रकार पूर्व दिखाया था तैसे 'पुत्रस्ते जातः' इत्यादिक सिद्धार्थपर वाक्यतैं भी सो शक्तिका ग्रहण होवै है। जैसे कोई धनी पुरुषकूं पुत्र जन्म्या था तिस पुत्रके पद करिकै अंकित वस्त्रकूं लेके वार्त्ताहार पुरुष ता धनी पुरुषके समीप जाइकै ता वस्त्रकूं ताके आगे राखिकै 'पुत्रस्ते जातः' या प्रकारका वचन कहता भया। ताकूं श्रवण करिकै तिस धनी पुरुषकूं पुत्रके जन्मके ज्ञानतैं हर्ष होता भया। ता हर्षतैं ताका मुख विकासमान होता भया। तिसकूं देखिकै पुत्र पदवी शक्तिज्ञानतैं रहित दूसरा कोई पुरुष ता मुख विकासनरूप हेतु करिकै ता धनी पुरुषके हर्षका अनुमान करता भया। तिसतैं अनंतर ता हर्षविषे ज्ञानजन्यत्वका अनुमान करता भया। तिसतैं अनंतर ता ज्ञानविषे अन्वय व्यतिरेक

कारिकै 'पुत्रस्ते जातः' इस वाक्यजन्यत्वका अनुमान करता भया। तिसतैं अनंतर ता उत्पत्तिवाले बालकपिंडविषे ता पुत्रपदकी शक्तिका निश्चय करता भया इति। यातैं जैसे 'घटमानय, स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिक कार्यपर वाक्य प्रमाणरूप है। तैसे 'भूतले घटः' 'तत्त्वमसि' इत्यादिक सिद्धार्थपर वाक्य भी प्रमाणरूप ही हैं इति। और सा पूर्व उक्त घटादिक पदोंकी शक्ति घटत्वादिक जातिविषे ही है घटादिक व्यक्तिविषे नहीं है, जो कदाचित् सा शक्ति घटादिक व्यक्तियोंविषे मानिये तौ ते घटादिक व्यक्तियां अनंत हैं। यातैं ते शक्तियां भी अनंत मानियां होवैंगी। तथा घटव्यक्तिविषे घट पदके शक्तिका ज्ञान भया है तिस व्यक्तितैं भिन्न घटका भी ता घटपदतैं बोध होवै है सो भी नहीं होणा चाहिये। जिस कारणतैं ता घटव्यक्तिविषे ता घटपदके शक्तिका ज्ञान भया नहीं और सा घटत्वजाति सर्वघटव्यक्तियोंविषे एक है यातैं ता जातिविषे शक्तिमानणेमें सो शक्तिका अनंतपणा है तथा व्यभिचार दोष प्राप्त होवै नहीं। यातैं घटादिक पदोंकी घटत्वादिक जातिविषे ही शक्तिमानणी उचित है। शंका-घटादिक पदोंकी जो घटत्वादिक जातिविषे ही शक्ति मानोंगे 'तौ घटमानय' इस वाक्यकूं श्रवण कारिकै श्रोता पुरुषकूं ता घट पदतैं घटत्वजातिका ही बोध होवैगा घटव्यक्तिका बोध होवैगा नहीं और ता घटव्यक्तिके बोधतैं विना ता घटव्यक्तिका आनयन भी संभवैगा नहीं। समाधान-ता श्रोता पुरुषकूं ता घटपदतैं घटत्व जातिका ही बोध होवै है। परंतु ता घट व्यक्तितैं विना ता घटत्व जातिका स्वतंत्र आनयन संभवता नहीं। यातैं ता श्रोता पुरुषकूं आक्षेपतैं ता घट व्यक्तिका बोध होवै है। अथवा ता घट पदकी लक्षणातैं ता घटव्यक्तिका बोध होवै है तहां केएक ग्रंथकार समान वृत्ति वेद्यत्वकूं ही

आक्षेप कहे हैं और के एक अनुमानकूं आक्षेप कहे हैं और केएक अर्थापत्तिंकू आक्षेप कहे हैं। यह तीनों पक्ष न्यायप्रकाशके षष्ठ परिच्छेदविषे स्पष्ट करिकै निरूपण कऱ्ये हैं ते तहांसे जानिलेणे इति । अथवा घटत्वादिक जातिविशिष्ट घटादिक व्यक्तिविषे ही घटादिक पदोंकी शक्ति है। केवल जातिविषे वा केवल व्यक्तिविषे सा शक्ति नहीं है। परंतु जातिविषे शक्ति तौ ज्ञात हुई शाब्दबोधका उपयोगी होवै है और व्यक्तिविषे शक्ति तौ स्वरूपतें ही उपयोगी होवै है, ज्ञान हुई उपयोगी होती नहीं इस प्रकारकी शक्तिकूं ही शास्त्रविषे कुब्ज शक्ति कहे हैं इति । शंका--पूर्व घटादिक पदोंकी इतरान्वित घटादिकोंविषे शक्ति कही थी और अभी तिन घटादिक पदोंकी घटत्वजातिविषे घटत्वजातिविशिष्ट घट व्यक्तिविषे शक्ति सिद्ध करी । यातैं पूर्व उत्तर ग्रंथका विरोध प्राप्त होवै है । समाधान--सा शक्ति अनुभाविका १ स्मारिका २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है तहां पूर्व इतरान्वित घटादिकोंविषे घटादिक पदोंकी अनुभाविका शक्ति कही थी और अभी घटत्वजातिविषे वा घटत्वजातिविशिष्ट घटव्यक्तिविषे घट पदकी स्मारिका शक्ति कथन करी है। यातैं ता पूर्व उत्तर ग्रंथका विरोध होवै नहीं । इस प्रकार मीमांसकोंके मतविषे भी कार्यान्वित घटादिकोंविषे घटादिक पदोंकी आनुभाविका शक्ति है और घटत्वादिक जातिविषे स्मारिका शक्ति है इति । तहां इतने पर्यंत प्रथम शक्तिवृत्तिका निरूपण कऱ्या । अब दूसरी लक्षणा वृत्तिका निरूपण करे हैं। तहां 'शक्यसंबंधः लक्षणा' अर्थ--पूर्व उक्त शक्तिका जो विषय होवै है ताका नाम शक्य है। इसी शक्यकूं वाच्य भी कहे हैं। ता शक्य पदार्थका जो लक्ष्यमाण पदार्थके साथ संबंध है ताका नाम लक्षणा है जैसे किसी आप्त वक्ता पुरुषने मंडपस्थ

पुरुषके भोजन करावणेके अभिप्राय करिकै 'मंडपं भोजयया' प्रकारका वचन किसी पुरुषके प्रति कह्या ता वचनकूं श्रवण करिकै सो श्रोता पुरुष जड मंडपविषे भोजन कर्तृत्वकी अयोग्यताकूं जानिकै ता मण्डप पदकी मण्डपस्थ पुरुषविषे लक्षणा करे है। तहां मंडप पदका शक्य अर्थ जो गृहविशेष है ताका ता पुरुषके साथ संयोग संबंध है। इसीका नाम लक्षणा है इति। अब ता लक्षणावृत्तिका विभाग वर्णन करे हैं। तहां सा लक्षणावृत्ति केवललक्षणा १ लक्षितलक्षणा २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है। तहां 'शक्यसाक्षात्संबंधः केवललक्षणा' अर्थ—पदके शक्य अर्थका जो लक्ष्यमाण अर्थके साथ साक्षात् संबध है ताका नाम केवल लक्षणा है। सा केवललक्षणा जहल्लक्षणा १ अजहल्लक्षणा २ जहदजहल्लक्षणा ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारकी होवै है। तहां 'शक्यार्थपरित्यागेन तत्संबन्ध्यर्थांतरे वृत्तिः जहल्लक्षणा' अर्थ—पदके शक्य अर्थका परित्याग करिकै ता शक्य अथके संबंधवाले अन्य पदाथविषे जा पदकी लक्षणा वृत्ति है ताका नाम जहल्लक्षणा है। जैसे इस श्रोता पुरुषकूं गङ्गाके तीरविषे घोषका बोध होवै इस प्रकारके अभिप्राय करिकै आप्त वक्ता पुरुषने उच्चारण कर्‍या जो 'गंगायां घोषःप्रतिवसति' या प्रकारका वाक्य है ता वाक्यकूं श्रवण करिकै सो श्रोता पुरुष ता गंगापदके शक्य अर्थरूप जल प्रवाहविषे ता घोषकी आधारताके अनुपपत्तिकूं देखता हुआ ता गंगापदकी तीरविषे लक्षणा करे हैं। तहां गंगापदका शक्य अर्थ जो जलका प्रवाह है ताका परित्याग करिक ता शक्य अर्थके संयोगसंबंधवाला जो तीररूप अर्थ है ता तीरविषे जा गंगापदकी लक्षणावृत्ति है इसीकूं जहल्लक्षणा कहे हैं इति। अब अजहल्लक्षणाका वर्णन करे है तहां 'शक्यार्थापरित्यागेन तत्संबंध्यर्थांतरे वृत्तिः अजहल्लक्षणा'

अथ पदकेशक्य अर्थका न परित्याग करिकै ता शक्य अर्थके संबं-धवाले अन्यपदार्थविषे जा ता पदकी लक्षणा वृत्ति ताका नाम अजहल्लक्षणा है, जैसे मञ्चस्थ पुरुषके बोधनके अभिप्राय करिकै आप्त वक्ता पुरुषने उच्चारण कऱ्या जो 'मंचाः क्रोशन्ति' अर्थ—यह मंच शब्द करे है या प्रकारका वचन है ता वचनकूं श्रवण करिकै सो श्रोता पुरुष जडमंचोंविषे शब्दकर्तृत्वके अनुपपत्तिकूं देखता हुआ ता मंचपदकी मंचस्थ पुरुषविषे लक्षणा करे है। तहां मंचपदके शक्य अर्थरूप मंचका न परित्याग करिकै जा ता मंचपदकी मंचस्थ पुरुषविषे लक्षणावृत्ति है इसीकूं अजहल्लक्षणा कहे हैं इति। अब जहदजहल्लक्षणाका वर्णन करे हैं। तहां शक्यैक-देशपरित्यागनेकस्मिन् देशेवृत्तिः जहदजहल्लक्षणा' अर्थ—पदके शक्य अर्थके एक देशका परित्याग करिकै एक देशविषे जा पदकी लक्ष-णा वृत्ति है ताका नाम जहदजहल्लक्षणा है। इसी लक्षणाकूं भागत्या-ग लक्षणा भी कहे हैं। जैसे देवदत्त पुरुषके अभेद बोधनके तात्पर्य करिकै आप्तवक्ता पुरुषने उच्चारण कऱ्या जो 'सोऽयं देवदत्तः' यह वाक्य है ता वाक्यकूं श्रवण करिकै सो श्रोता पुरुष 'सः अयम्' इन दोनों पदोंकी देवदत्त पिंडमात्रविषे लक्षणा करे है। तहां 'तद्देशका-लविशिष्टदेवदत्तपिंड ःसः' इस पदका शक्य अर्थ है। तहां तिन दोनों शक्य अर्थोंका अभेद संभवता नहीं। यातैं ता 'सः' पदके शक्य अर्थविषे जो तद्देशकालविशिष्टत्वरूप एकदेश है ताका परित्याग करिकै ता देवदत्तपिंडरूप एक देशविषे जा 'सः' पदकी लक्षणावृत्ति है तथा अयं पदके शक्य अर्थविषे जो एतद्देशकालविशिष्टत्वरूप एकदेश है ताका परित्याग करिकै ता देवदत्तपिंडरूप एकदेशविषे जा अयंपदकी लक्षणा वृत्ति है इसकूं जहदजहल्लक्षणा कहे हैं। अथवा जैसे जीवब्रह्मके अभेद

बोधनके तात्पर्य करिकै ब्रह्मवेत्ता गुरुने उच्चारण कऱ्या जो 'तत्त्वमसि' यह महावाक्य है तिसकूं श्रवण करिकै अधिकारी श्रोता पुरुष 'तत् त्वं' इन दोनों पदोंकी अखंड चैतन्यविषे लक्षणा करे है। तहां मायोपहित चैतन्य तत् पदका शक्यअर्थ है और स्थूल सूक्ष्मादि शरीर उपहितचैतन्य त्वंपदका शक्य अर्थ है। तहां तिन दोनों शक्य अर्थोंका अभेद संभवता नहीं और ता वाक्यविषे तत्त्वं पदोंके सामानाधिकरण्य करिकै तत् त्वं दोनों पदार्थका अभेद ही प्रतीत होवै है। यातैं तत् पदके शक्य अर्थविषे ता मायारूप एकदेशका परित्याग करिकै ता चैतन्यरूप एकदेशविषे जा तत्पदकी लक्षणावृत्ति है तथा त्वंपदके शक्य अर्थविषे स्थूल सूक्ष्मादि शरीररूप एकदेशका परित्याग करिकै ता चैतन्यरूप एकदेशविषे जा त्वं पदकी लक्षणावृत्ति है इसीकूं सिद्धांतविषे जहदजहल्लक्षणा कहे हैं तथा भागत्यागलक्षणा कहे हैं। ता लक्ष्य अर्थरूप अखंड चैतन्योंका अभेद संभवै है इति। शंका—तत् त्वं इन दोनों पदोंकी जो एक अखंड चैतन्यविषे ही लक्षणा होवै तौ एक ही पद करिकै ता अखंड चैतन्यरूप ब्रह्मका साक्षात्कार संभव होइ सकै है यातैं दूसरा पद व्यर्थ होवैगा। तथा एक अर्थके बोधक दो पदोंके कहणेतैं पुनरुक्ति दोष भी प्राप्त होवैगा। समाधान—पद तौ आपणे अर्थका केवल स्मरणमात्र ही करावै है दूसरे पदतैं विना सो एकपद शाब्दबोधका हेतु होता नहीं। यातैं प्रथम तौ तत् त्वं इन दोनों पदोंतैं भागत्याग लक्षणा करिकै ता निर्विकल्पकअखंड चैतन्यका स्मरणमात्र होवै है तिसतैं अनंतर ता पद समुदायरूप तत्त्वमसि वाक्यतैं ब्रह्मात्मैक्यविषयक 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका शाब्द अपरोक्ष अनुभव होवै है सो अपरोक्ष अनुभव एक पदतैं संभवता नहीं यातैं सो दूसरा पद व्यर्थ नहीं है। किंतु

ते दोनों पद सार्थक हैं। और पूर्व उक्त प्रकारतें तत् त्वं इन दोनों पदोंके वाच्यार्थका भेद ही है यातैं पुनरुक्ति दोषकी भी प्राप्ति होवै नहीं इति। तहां जहल्लक्षणाविषे सर्व वाच्य अर्थका परित्याग होवै है और तत्त्वं पदके सर्व वाच्यार्थका परित्याग होता नहीं किंतु एक-देशका परित्याग होवै है। यातैं ता तत्त्वं पदविषे जहल्लक्षणा भी संभवती नहीं। और अजहल्लक्षणाविषे वाच्यार्थतैं अधिक अर्थका भी ग्रहण होवै है और तत्त्वंपदके वाच्यार्थतैं अधिक किसीका अर्थ ग्रहण होता नहीं। यातैं ता तत्त्वंपदविषे अजहल्लक्षणा भी संभवती नहीं। किंतु पूर्व उक्त रीतिसे जहदजहल्लक्षणा ही संभवै है। इसी कारणतैं आचार्योंने 'तत्त्वमस्यादिवाक्येषु लक्षणा भागलक्षणा' इस वचन करिकै तत्त्वमसि आदिक वाक्योंविषे भागत्यागलक्षणा ही कथन करी है इति। इहां कैएक ग्रंथकार तत्त्वमसि आदिक वाक्योंविषे भागत्याग लक्षणातैं विना ही अखंड चैतन्यका बोध माने हैं तिनोंका यह अभिप्राय है। जैसे 'अनित्यो घटः' इस वाक्य-विषे घटत्वविशिष्ट घटव्यक्ति घटपदका वाच्य अर्थ है ता वाच्य अर्थका एकदेशरूप जा घटत्व जाति है ता घटत्व जातिका अनित्यत्वके साथ अन्वय संभवता नहीं, किंतु ता घटव्यक्तिका ही ता अनित्यत्वके साथ अन्वय संभवै है तहां घटपदकी घटव्य-क्तिविषे भागत्यागलक्षणातैं विना ही योग्यताके बलतैं ता घट-पदकी शक्ति वृत्ति करिकै उपस्थित घटव्यक्तिका ही ता अनित्य-त्वके साथ अन्वय होवै है। तैसे तत् त्वं पदके वाच्य अर्थका एक-देशरूप जे परोक्षत्व अपरोक्षत्व सर्वज्ञत्व अल्पज्ञत्व असंसारित्व संसारित्व इत्यादिक धर्म हैं, तिनोंका परस्पर अभेद संभवता नहीं किंतु चैतन्यरूप विशेष्य अंशका ही अभेद संभवै है। यातैं ता तत् त्वं पदविषे भागत्याग लक्षणातैं विना ही योग्यताके बलतैं ता तत् त्वं पदकी शक्ति वृत्ति करिकै उपस्थित अखंड चैतन्यका ही

अभेदान्वय बोध होवै है। यातैं तत्त्वमसि आदिक वाक्यों विषे भाग-त्याग लक्षणा मानणी व्यर्थ है इति। सो यह मत सूत्र आचार्योंकी उक्तितैं विरुद्ध होणेतैं असंगत है इति। तहां इतने पर्यंत केवल लक्षणाका निरूपण कऱ्या अब दूसरी लक्षित लक्षणाका निरूपण करे हैं। तहां 'शक्यपरंपरासंबंधः लक्षितलक्षणा' अर्थ—पदके शक्य अर्थका जो लक्ष्यमाण अर्थके साथ परंपरा संबंध है ताका नाम लक्षितलक्षणा है। जैसे मधुकर शब्द करे है इस अर्थके बोधन करणेवासते आप्तवक्ता पुरुषने उच्चारण कऱ्या जो 'द्विरेफो रौति' यह वाक्य है तिस वाक्यकूं श्रवण करिकै श्रोता पुरुष ता द्विरेफ पदके शक्य अर्थरूप दो रकारोंविषे शब्द कर्तृत्वके अनुपपत्तिकूं देखता हुआ द्विरेफ पदकी मधुकर व्यक्तिविषे लक्षणा करे है। सा लक्षणा लक्षितलक्षणा कही जावै है। तहां द्विरेफ पदका शक्य अर्थ दो रकार हैं। तिन दो रकारोंका ता मधुकर व्यक्तिके साथ कोई साक्षात्संबन्ध तौ संभवता नहीं, किंतु तिन दो रकारोंका तौ भ्रमर पदके साथ संबंध है और ता भ्रमर पदका ता मधुकर व्यक्तिके साथ संबंध है। इस प्रकार तिन दो रकारोंका स्वघटितपदवाच्यत्वरूप परंपरासंबंध ता मधुकर व्यक्तिके साथ है। यहां स्वशब्दकरिकै ता द्विरेफ पदके शक्य अर्थरूप दो रकारोंका ग्रहण करणा। तिन दो रकारों करिकै घटित भ्रमरपद है। ता भ्रमरपदका वाच्यत्व ता मधुकर व्यक्तिविषे है इसी शक्य अर्थपरंपरा संबंधकूं लक्षितलक्षणा कहे हैं इति। इहां केएक शास्त्रकार ता शक्तिलक्षणातैं भिन्न तीसरी गौणी वृत्ति भी मानै हैं जैसे 'सिंहो देवदत्तः' अर्थ—यह देवदत्तनामा पुरुष सिंह है। इस वाक्यविषे सिंहपदकी देवदत्तनामा पुरुष विषे गौणी वृत्ति है इति। परंतु यह गौणीवृत्ति लक्षणावृत्तितैं भिन्न सिद्ध होती नहीं किंतु उक्त लक्षितलक्षणाके ही अंतर्भूत है। तहां सिंह पदका सिंह पशु शक्य अर्थ। यह ता शक्य अर्थका क्रूरता

शूरताके साथ संबंध है। और ता क्रूरता शूरताका देवदत्तनामा पुरुषके साथ संबंध है । इस प्रकार ता सिंह पदके शक्य अर्थका ता देवदत्त पुरुषके साथ स्ववृत्तिक्रूरतादिमत्त्वरूप परंपरासंबंध है। यातैं सा गौणीवृत्ति लक्षितलक्षणाके अन्तभूत ही है इति। इस प्रकार जिस पुरुषकूं पदोंके शक्तिवृत्तिका तथा लक्षणावृत्तिका ज्ञान होवै है तिस पुरुषकूं ही ता उक्त वाक्यतैं शाब्दी प्रमा होवै है ता वृत्ति-ज्ञानतैं अव्युत्पन्न पुरुषकूं ता वाक्यतैं शाब्दी प्रमा होती नहीं। किंवा जैसे शक्ति लक्षणारूप वृत्तिका ज्ञान ता शाब्दी प्रमाकी उत्पत्तिविषे कारण होवै है तैसे आकांक्षा १ योग्यता २ आसत्ति ३ तात्पर्य ४ इन चारोंका ज्ञान भी ता शाब्दीय प्रमाकी उत्पत्तिविषे कारण होवै है । तहां आकांक्षा योग्यता इन दोनोंका स्वरूप तौ पूर्व निरूपण करि आये हैं । अब आसत्तिका निरूपण करे हैं। तहां 'शक्तिलक्षणाऽन्यतरसम्बन्धेनाव्यवधानेन पदजन्यपदार्थोपस्थितिः आसत्तिः' अर्थ–पदका आपणे अर्थविषे जो शक्तिरूप संबंध है वा लक्षणारूप संबंध है ता संबधकरिकै जो व्यवधानतैं रहित पदजन्य पदार्थकी स्मृति है ताका नाम आसत्ति है । जैसे 'घटमानय' इस वाक्यकूं श्रवण करिकै श्रोता पुरुषकूं घटपदतैं शक्तिरूप संबन्ध करिकै घटरूप अर्थकी स्मृति होवै है और आनय इस पदतैं शक्तिरूप संबन्ध करिकै आनयनरूप क्रियाकी स्मृति होवै है। तथा 'गंगायां घोषः' इस वाक्यकूं श्रवण करिकै श्रोता पुरुषकूं गंगापदतैं लक्षणारूपसम्बन्धकरिकै तीररूप अर्थकी स्मृति होवै है और घोष पदतैं शक्तिरूप सम्बन्धकरिकै घोषरूप अर्थकी स्मृति होवै है इसीका नाम आसत्ति है इति। अब तात्पर्यका निरूपण करे हैं तहां सो तात्पर्य वक्तृतात्पर्य १ शब्दतात्पर्य २ इस भेदकरिकै दो प्रकारका होवै है । तहां 'पुरुषाभिप्रायः वक्तृतात्पर्यम्' अर्थ–इस हमारे वचनतैं श्रोता पुरुषकूं इस अर्थका बोध होवो या प्रकारकी

जा ता वक्तापुरुषकी इच्छा विशेष है ताका नाम वक्तृतात्पर्य है ता वक्तृतात्पर्यका ज्ञान शाब्दबोधके प्रति कारण होता नहीं।काहेतैं जिस पदार्थके विद्यमान हुए जो काय उत्पन्न होवै है और जिस पदार्थके नहीं विद्यमान हुए जो कार्य घटके प्रति कारण होवै है सो पदार्थ ही तिस कार्यके प्रति कारण होवै है जैसे कुलाल दंड चक्र आदिक घटके प्रति कारण होवै हैं। जिस पदार्थके नहीं विद्यमान हुए भी जो कार्य उत्पन्न होवै है सो पदार्थ तिस कार्यके प्रति कारण होता नहीं किंतु सो पदार्थ तिस कार्यके प्रति अन्यथा सिद्ध ही होवै है जैसे रासभादिक ता घटके प्रति अन्यथा सिद्ध है तैसे ता वक्तृतात्पर्यज्ञानके अभाव हुए भी सो शाब्दबोध देखणेविषे आवै है।इस हमारे वाक्यतैं श्रोतापुरुषकूं इस अर्थका बोध होवो इस प्रकारकी इच्छारूप तात्पर्य शुक पक्षी आदिक अव्युत्पन्न पुरुषोंका है नहीं तौ भी व्युत्पन्न श्रोता पुरुषकूं ता शुक पक्षी आदिकोंके वाक्यतैं सो शाब्दबोध देखणेविषे आवै है। यातैं ता वक्तृतात्पर्य ज्ञानकूं शाब्दबोधके प्रति कारणता संभवै नहीं इति। और 'तदर्थप्रतीतिजननयोग्यत्वं शब्दतात्पर्यम्' अर्थ—तिस तिस शब्दविषे जो तिस तिस वाक्यार्थबोधके उत्पन्न करणेकी योग्यता है ताका नाम शब्दतात्पर्य है। इस शब्दतात्पर्यका ज्ञान शाब्दबोधके प्रति नियमतैं कारण होवैहै तहां लौकिक शब्दोंका तात्पर्य तौ प्रकरणादिकोंकरिकै निश्चय होवै है। जैसे 'सैंधवमानय' इस वाक्यविषे स्थित जो सैंधव पद है सो लवण अश्व दोनोंका वाचक होवै है। तहां भोजनकालविषे ता वाक्यकूं श्रवण करिकै श्रोता पुरुषकूं ता भोजन प्रकरणके वशतैं ता सैंधव पदका लवणविषे ही तात्पर्य निश्चय होवै है और गमनकालविषे ही ता वाक्यकूं श्रवण करिकै ता श्रोता पुरुषकूं ता गमन प्रकरणके वशतैं ता सैंधव पदका अश्वविषे ही तात्पर्य निश्चय होवै है। जो कदाचित् तिस तात्पर्यज्ञानकूं शाब्दबोधका कारण नहीं मानिये तौ एक ही

सैंधव पदतैं कभी लवणका बोध कभी अश्वका बोध नहीं होवैगा। यातैं तिस तात्पर्यके अज्ञानकूं शाब्दबोधके प्रति अवश्य करणता मानी चाहिये इति। और वैदिक शब्दोंका तात्पर्य तौ षट्प्रकारके लिंगोंकरिके निश्चय होवै है। ते षट्लिंग शास्त्रविषे यह कहे हैं।तहां श्लोक—'उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम् । अर्थवादोपपत्ती च लिंगं तात्पर्यनिर्णये' अर्थ—उपक्रम उपसंहार१ अभ्यास२ अपूर्वता ३ फल ४ अर्थवाद ५ उपपत्ति६ यह षट्लिंग वैदिक शब्दोंके तात्पर्यका निर्णय करावै है इति। अब यथाक्रमतैं इन षट्लिंगोंके लक्षण तथा उदाहरण कहे हैं। तहां 'प्रकरणप्रतिपाद्यस्याद्वितीयवस्तुनो आद्यंतयोःप्रतिपादनमुपक्रमोपसंहारौ' अर्थ—प्रकरण करिकैंही प्रतिपादित जो ब्रह्मरूप अद्वितीय वस्तु है ता अद्वितीय वस्तुका जो ता प्रकरणके आदिविषे तथा अंतविषे प्रतिपादन है ताका नाम उपक्रम उपसंहार है। तहां आदिविषे प्रतिपादनका नाम उपक्रम है और अंतविषे प्रतिपादनका नाम उपसंहार है। जैसे सामवेदकी छांदोग्य उपनिषद्के षष्ठ अध्यायके आदिविषे उद्दालक मुनिने श्वेतकेतु पुत्रके प्रति यह वचन कहा है। 'सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' अर्थ—हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु। यह दृश्यमान सर्व जगत् आपणी उत्पत्तितैं पूर्व सत् ब्रह्मरूप ही होता भया। सो सत् वस्तु एक अद्वितीयरूप ही है। अर्थात् सजातीय विजातीय स्वगत भेदतैं रहित है। इस प्रकार ता षष्ठ अध्यायके आदिविषे जो अद्वितीय वस्तुका प्रतिपादन है ताका नाम उपक्रम है और तिसी षष्ठ अध्यायके अंतविषे यह कहा है 'एतदात्म्यमिदं सर्वं' अर्थ--यह दृश्यमान सर्व जगत् अद्वितीय ब्रह्मरूप ही है ता अद्वितीय ब्रह्मतैं भिन्न नहीं है। इस प्रकार ता षष्ठ अध्यायके अंतविषे जो ता अद्वितीय सत् ब्रह्मका प्रतिपादन है ताका नाम उपसंहार है। यह उपक्रम

उपसंहार दोनों मिलिके एक लिंग कह्या जावै है इति ॥ १ ॥ और 'प्रकरणप्रतिपाद्यस्य पुनः पुनः प्रतिपादनमभ्यासः' अर्थ-प्रकरणके आदि अंतविषे प्रतिपादन कर्‌या जो वस्तु है ता वस्तुका ता प्रकरणके मध्यविषे जो पुनः पुनः प्रतिपादन है ताका नाम अभ्यास है। जैसे तिस षष्ठ अध्यायविषे ही 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' इस वाक्यकूं नववार पठन करिकै ता अद्वितीय सत् वस्तुका ही पुनः पुनः प्रतिपादन कर्‌या है इति ॥ २॥ और 'प्रकरणप्रतिपाद्यस्य मानांतराविषयता अपूर्वता'। अर्थ--प्रकरणकरिकै प्रतिपादित जो वस्तु है ता वस्तुकूं जो श्रुति प्रमाणतैं भिन्न प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंका अविषयपणा है ताका नाम अपूर्वता है। सा अद्वितीय वस्तुकी अपूर्वता ता षष्ठ अध्याय विषे 'यं वै सोम्यैतमणिमानं-नलिभालयसे' इत्यादिक वचनों करिकै प्रतिपादन करी है इति॥ ३॥ और 'प्रकरणप्रतिपाद्यस्य श्रूयमाणं तज्ज्ञानात्तत्प्राप्तिप्रयोजनफलम्' अर्थ-प्रकरण करिक प्रतिपादित जो वस्तु है ता वस्तुके ज्ञानतैं श्रुतिने कथन कर्‌या जो तिस वस्तुकी प्राप्तिरूप प्रयोजन है ताका नाम फल है। जैसे तिसी षष्ठ अध्यायविषे यह कह्या है।'आचार्यवान्पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये' अर्थ-जिस अधिकारी पुरुषतैं ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रका श्रवण कर्‌या है सो अधिकारी पुरुष ही तत्त्वमसि आदिक वाक्यों करिकै प्रत्यक्अभिन्न ब्रह्मकूं 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारतैं साक्षात्कार करै है और तिस ब्रह्मवेत्ता पुरुषका तितने कालपर्यंत ही अवस्थान होवै है जितने कालपर्यंत प्रारब्ध कर्मके फल भोग करिकै देहादिक बंधनतैं नहीं मुक्त होवै है। और भोग करिकै ता प्रारब्ध कर्मके निवृत्त हुए सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्मरूप ही होवै है इति। इस श्रुतिने अद्वितीय ब्रह्मके ज्ञानतैं अद्वितीय ब्रह्मकी प्राप्तिरूप प्रयोजन कथन कर्‌या है। इसीका नाम फल है इति॥४॥ और 'प्रकरणप्रतिपाद्यस्य प्रशंसनमर्थवादः'

अर्थ--प्रकरण करिकै प्रतिपादित जो वस्तु है ता वस्तुका जो स्तुतिरूप प्रशंसन है ताका नाम अर्थवाद है। जैसे तिसी षष्ठ अध्यायविषे यह कह्याहै।'येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातम्' अर्थ—हे श्वेतकेतु जिसएक वस्तुके श्रवणकरिके अश्रुत वस्तु भी श्रुत होवै है जिस वस्तुके मनन करिकै अमत वस्तुभी मननका विषय होवै है । और जिस वस्तुके विज्ञान करिकै अविज्ञान वस्तु भी विज्ञात होवै है सो एक वस्तु तुमने आपणे गुरुवोंसे पूछा है वा नहीं इति । इस वचन करिकै ता अद्वितीय ब्रह्म वस्तुका स्तुतिरूप प्रशंसन कर्‍या है ।इसीका नाम अर्थवाद है इति ॥ ५ ॥ और 'प्रकरणप्रतिपाद्यस्यदृष्टां तैः प्रतिपादनमुपपत्तिः' अर्थ-प्रकरण करिकै प्रतिपादित जो वस्तु है ता वस्तुका अनेक दृष्टांतों करिकै जो प्रतिपादन है ताका नाम उपपत्ति है । जैसे तिसी छठे अध्यायविषे मृत्तिका सुवर्णादिक दृष्टांतों करिकै कारणतैं भिन्न कार्यकी सत्ताका निषेध करिकै ता अद्वितीय ब्रह्म वस्तुका प्रतिपादन कर्‍या है, इसीका नाम उपपत्ति है इति ॥ ६ ॥ यह उद्दालक श्वेतकेतुका संवाद आत्मपुराणके द्वादश अध्यायविषे हमने विस्तारतैं निरूपण कर्‍या है । सो तहांसे जानिलेणा और जैसे छांदोग्य उपनिषद्के छठे अध्यायका उक्त षड्लिंगों करिकै अद्वितीय ब्रह्मविषे तात्पर्य निश्चय होवै है तैसे सर्व उपनिषदोंका ता अद्वितीय ब्रह्मविषे ही तात्पर्य है। इस प्रकार उक्त षड्लिंगों करिकै सर्व वेदांत वाक्योंका जो अद्वितीय ब्रह्मविषे तात्पर्य निश्चय करना है ताका नाम श्रवण है । अब प्रसंगतैं मननका तथा निदिध्यासनका स्वरूप वर्णन करैं हैं। तहां 'श्रुतस्यार्थस्योपपत्तिभिश्चितनं मननम्' । अर्थ—ता श्रवण करे हुए अद्वितीय ब्रह्मरूप अर्थका जो श्रुति अनुकूल अनुमानादिरूप युक्तियों करिकै चिंतन है ताका नाम मनन है इति। और 'विजातीयप्रत्ययतिरस्कारेण सजातीयप्रत्ययप्रवाहीकरणं

निदिध्यासनम्'। अर्थ-विजातीय वृत्तियोंका तिरस्कार करिकै जो सजातीय वृत्तियोंका प्रवाह करणा है ताका नाम निदिध्यासन है। तहां देहादिक अनात्म पदार्थाविषे जो आत्मबुद्धि है तथा द्वैत प्रपंचका जो दर्शन है ताका नाम विजातीय वृत्ति है। और 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारके वृत्तिका नाम सजातीय वृत्ति है इति। तहां श्रवण करिकै तौ प्रमाणगत असंभावना निवृत्ति होय है और मनन करिकै प्रमेयगत असंभावना निवृत्ति होवै है और निदिध्यासन करिकै विपरीत भावना निवृत्त होवै है। तहां देहादिकोंविषे जो आत्मबुद्धि है ताका नाम विपरीत भावना है और प्रमाणगत असंभावना है तथा प्रमेयगत असंभावना इन दोनोंका आगे तृतीयपरिच्छेदविषे निरूपण करेंगे। इस प्रकार श्रवण मनन निदिध्यासन करिकै असंभावना विपरीत भावनाके निवृत्त हुए तैं अनंतर शोधन कऱ्या है तत्त्वं पदार्थ जिसने ऐसे अधिकारी पुरुषकूं तत्त्वमसि आदिक महावाक्योंतैं 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न होवै है। ता ब्रह्म साक्षात्कारतैं इस अधिकारी पुरुषकूं अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षकी प्राप्ति होवै है। इस प्रकार श्रवणादिकोंका ब्रह्मसाक्षात्कारद्वारा मोक्षविषे उपयोग होवै है इति। अब उक्त श्रवणादिकोंके अधिकारीका वर्णन करें हैं। विवेकादिक चतुष्टयसाधनकरिकै संपन्न जो संन्यासी है तिसकूं ही यह श्रवणादिक तीनों ब्रह्मसाक्षात्कारके अतरंग साधन हैं। तहां श्रुति। 'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः' अर्थ—हे मैत्रेयी। मुमुक्षु जनने यह आत्मसाक्षात्कार करणे योग्य है अर्थात् मोक्षरूप इष्टके प्राप्तिका यह आत्मसाक्षात्कार ही साधन है और ता आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतैं इस अधिकारी पुरुषने श्रवण करणा तथा मनन करणा तथा निदिध्यासन करणा इति। इस श्रुतिने आत्मसाक्षात्कारकी

प्राप्तिवासतैं श्रवण मनन निदिध्यासन इन तीन साधनोंका विधान कन्या है और लौकिक वैदिक कर्मोंकरिकै विक्षिप्त चित्तविषे तें श्रवणादिक संभवते नहीं। तथा 'संन्यस्य श्रवणं कुर्यात्' इत्यादिक वचनोंने भी संन्यासपूर्वक ही श्रवणादिकोंकी कर्त्तव्यता कथन करी है। यातैं विवेकादिक चतुष्टय साधन संपन्न संन्यासीकूं ही आत्म-साक्षात्कारकी प्राप्तिवासतैं ते श्रवणादिक कर्त्तव्य हैं इति। अब ते विवेकादिक चतुष्टय साधन वर्णन करें हैं। विवेक १ वैराग्य २ शमादि षट्संपत् ३ मुमुक्षुता ४ यह चतुष्टय साधन कहे जावे हैं। तहां आत्मा तौ नित्य है और आत्मातैं भिन्न ब्रह्मलोक पर्यंत सर्व अनात्म वस्तु अनित्य हैं या प्रकारका जो श्रुति स्मृति युक्तियों करिकै विचार है ताका नाम विवेक है। तहां 'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः' 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः।' 'अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्। विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति' इत्यादिक श्रुति स्मृतियों करिकै तौ आत्माका नित्यपणा सिद्ध है और 'तद्यथेह कर्मचिता लोकः क्षीयते एवमेवामुत्रपुण्यचितो लोकः' 'अंतवंत इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः' इत्यादिक श्रुति स्मृतियों-करिकै तथा जो जो कार्य होवै हैं सो सो अनित्य ही होवे हैं जैसे घटादिक हैं इत्यादिक अनुमानरूप युक्तियोंकरिकै अनात्म वस्तु-वोंका अनित्यपणा सिद्ध है इति। इस प्रकारके विवेक करिकै इस अधिकारी पुरुषकूं सर्व अनात्म वस्तुवों विषे वैराग्य उत्पन्न होवे है। तहां इस लोकविषे जितनेक विषय सुखके साधन स्रक् चंदन वनितादिक हैं तथा स्वर्गादिक परलोकविषे जितनेक विषय सुखके साधन अमृतपान अप्सरादिक हैं तिन सर्व साधनों सहित सर्व विषय सुखों विषे अनित्यत्वादिक दोष बुद्धिकरिकै जो श्वानवांतपायसकी न्याईं त्यागकी इच्छा है ताका नाम वैराग्य है। तहां श्रुति-'परीक्ष्य लोकान्क-

मंचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन' अर्थ—कर्म उपासना करिके प्राप्त होणेयोग्य जे ब्रह्मलोकादिक लोक हैं तिनोंका अनित्यपणा निश्चय करिके तथा कर्मोंकरिके मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती या प्रकारका निश्चयकरिके ब्रह्मजिज्ञासु पुरुष तिन कर्मोंतैं तथा कर्मसाध्य लोकोंतैं वैराग्यकूं प्राप्त होवै इति। इस प्रकारके वैराग्यकी उत्पत्तितैं अनंतर इस अधिकारी पुरुषकूं शम १ दम २ उपरति ३ तितिक्षा ४ श्रद्धा ५ समाधान ६ यह षट् संपत् प्राप्त होवै हैं इस संपत्का स्वरूप आगे तृतीय परिच्छेदविषे वर्णन करैंगे। तहां श्रुति।' शांतो दांत उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति' अर्थ—ता शमादिक षट् संपत् युक्त होइके यह अधिकारी पुरुष आपणे मनविषे 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकार आत्माकूं साक्षात्कार करै इति। तिसतैं अनंतर इस अधिकारी पुरुषकूं मोक्षके प्राप्तिकी उत्कट इच्छारूप मुमुक्षुता प्राप्त होवै है।इहां विवेक वैराग्य षट्संपत् मुमुक्षुता यह चतुष्टय साधन समुचित हुए अधिकारीका विशेषण होवै हैं। इस प्रकार आचार्य मानैं हैं और अन्य कैएक ग्रंथकार तौ केवल मुमुक्षुताकूं ही अधिकारीका विशेषण माने हैं और विवेकादिकोंकूं ता मुमुक्षुताका साधन मानैं हैं इति।इस प्रकारका विवेकादिक चतुष्टय साधनों करिके संपन्न पुरुषकूं ही संन्यासको अधिकार होवै है ऐसा चतुष्टयसाधनसंपन्न संन्यासी ही ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति वासतैं ब्रह्मवेत्ता गुरुके शरणकूं प्राप्त होइके वेदांतशास्त्रके श्रवणादिकोंकूं करै।तहां श्रुति।'तद्विज्ञानाथ सद्गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' अर्थ—सो चतुष्टयसाधनसंपन्न अधिकारी पुरुष सर्व कर्मोंका संन्यास करिके मोक्षकी प्राप्तिका साधनरूप ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति वासतैं हस्तविषे किंचित् भेट लेके श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जावै।तहां शिष्यके संशयकी निवृत्ति

करणेविषे उपयोगी जो शास्त्रका ज्ञान है ता ज्ञानवाले गुरुकूं श्रोत्रिय कहे हैं और करामलकवत् संशय विपरीत भावनातें रहित जो अखंड-एकरस आनंद ब्रह्मका साक्षात्कार है ता साक्षात्कारवाले गुरुकूं ब्रह्मनिष्ठ कहें हैं इन दोनों विशेषणवाले गुरुके उपदेशतें ही शिष्यकूं आत्माका साक्षात्कार होवै है इति। अब ता संन्यासका स्वरूपनिरूपण करैं हैं। तहां 'विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागः संन्यासः' अर्थ-श्रुति स्मृतिरूप शास्त्रनैं इस अधिकारी पुरुषके प्रति कर्त्तव्यतारूप करिके विधान करे जे अग्निहोत्र संध्योपासनादिक कर्म हैं तिन सर्वकर्मोंका जो विधिपूर्वक परित्याग है ताका नाम संन्यास है। सो कर्म संन्यासका विधि आत्मपुराणके एकादश अध्यायविषे अतिविस्तारतें निरूपण कर्या है। तहां 'कर्मणां त्यागः संन्यासः' इतनामात्र ही जो ता संन्यासका लक्षण करते तौ अविहित कर्मोंके वा निषिद्ध कर्मोंके त्याग करणेहारे पुरुषविषे भी संन्यासीपणा प्राप्त होता। ताके निवृत्तकरणे वासतें तिन कर्मोंका विहित यह विशेषण कथन कर्या है और ता लक्षणविषे 'विधिना' यह पद जो नहीं कथन करते तौ आलस्यादिक दोष हैं विहित कर्मोंके परित्याग करणेहारे पुरुषविषे भी सो संन्यासीपणा प्राप्त होता। ताके निवृत्त करणे वासतें विधिपूर्वक कर्मोंके त्यागकूं संन्यास कह्या है इति। इस उक्त संन्यासका वैराग्य ही कारण होवै है अर्थात् वैराग्यवान् पुरुषकूं ही सो संन्यास करणे योग्य है। तहां श्रुति। 'यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' अर्थ—यह अधिकारी पुरुष जिस दिनविषे वैराग्यकूं प्राप्त होवै तिसी दिनविषे सर्वकर्मोंके संन्यासकूं करै इति। तहां स्मृति। 'वैराग्यं परमेतस्य मोक्षस्य परमो विधिः' अर्थ—इस संन्यासका पर वैराग्य ही परम अवधि है इति। इस श्रुति स्मृति करिकै सो वैराग्य ही ता संन्यासका हेतु सिद्ध होवै है और सो संन्यास भी ता वैराग्यकी तारतम्यता करिकै कुटीचक

१ बहूदक २ हंस ३परमहंस४ इन भेदों करिकै चारि प्रकारका होवै है। अब ता वैराग्यकी न्यून अधिकताके निरूपण करणेवासतैं ता वैराग्यका विभाग वर्णन करै हैं। तहां सो वैराग्य अपर वैराग्य १ पर वैराग्य २ इन भेदों करिकै दो प्रकारका होवै है। तिन दोनों वैराग्योंविषे प्रथम अपर वैराग्य भी यतमान १ व्यतिरेक २ एकेंद्रिय ३ वशीकार ४इन भेदों करिकै चारि प्रकारका होवै है तहाँ इस संसारविषे यह वस्तु सार है और यह वस्तु असार है या प्रकारका जो सार असारका विवेक है ताका नाम यतमान वैराग्य है। १। और चित्तविषे जे राग द्वेषादिक दोष हैं तिन दोषोंके मध्यविषे इतने दोष तौ हमारे निवृत्त हुए हैं और इतने दोष बाकी रहे हैं इस प्रकारका विचार करिकै तिन विद्यमान दोषोंके निवृत्त करणेवासतैं जो प्रयत्न है ताका नाम व्यतिरेक वैराग्य है।२।और मनविषे विषयोंकी इच्छाके विद्यमान हुए भी जो इंद्रियोंके निरोधका प्रयत्न है ताका नाम एकेंद्रिय वैराग्य है।३। और इस लोकके तथा परलोकके जे विषय हैं तिनोंकूं नाशवान् जानिकै जो तिनोंके त्यागकी इच्छा है ताका नाम वशीकार वैराग्य है। यह ही वशीकार वैराग्यका स्वरूप पतंजलि भगवान्नैं 'दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्' इस सूत्र करिकै कथन कऱ्या है इति। ४। और सो वशीकार वैराग्य भी मंद १ तीव्र २ तीव्रतर ३ इन भेदों करिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां पुत्र स्त्री धन इत्यादिक प्रिय पदार्थोंके वियोग हुए इस संसारकूं धिक्कार है या प्रकारकी बुद्धि करिकै जो तिन विषयोंके त्यागकी इच्छा है ताका नाम मंद वैराग्य है। ।१। और इस जन्मविषे हमारेकूं पुत्र स्त्री धनादिक पदार्थ मत प्राप्त होवैं या प्रकारकी स्थिर बुद्धि करिकै जो तिन विषयोंके त्यागकी इच्छा है ताका नाम तीव्र वैराग्य है। २। और पुनरावृत्ति करिकै

युक्त जे ब्रह्मलोकपर्यंन्त लोक हैं ते सर्व लोक हमारेकूं मत प्राप्त होवैं या प्रकारकी स्थिर बुद्धि करिके जो तिन सर्व विषयोंके परित्यागकी इच्छा है ताका नाम तीव्रतर वैराग्य है। ३। तहां मंद वैराग्यके प्राप्त हुए इस पुरुषकूं कोई प्रकारके संन्यासका अधिकार होता नहीं। तहां स्मृति। 'यदा मनसि वैराग्यं जायते सर्ववस्तुषु। तदैव संन्यसेद्विद्वानन्यथा पतितो भवेत्।' अर्थ–जिस कालविषे इस पुरुषके मनविषे सर्व वस्तुविषयक वैराग्य उत्पन्न होवै तिस कालविषे ही यह विवेकी पुरुष सर्व कर्मोंके संन्यासकूं करे। ता वैराग्यतैं विना संन्यासकूं करता हुआ यह पुरुष पतित होवे है इति। और तीव्र वैराग्यके प्राप्तहुए इस पुरुषकूं कुटीचक बहूदक इन दो संन्यासोंविषे अधिकार होवै है। तहां जिस तीव्र वैराग्यवान् पुरुषका शरीर तीर्थयात्रा करणेविषे अशक्त होवै तिसकूं तौ कुटीचक संन्यास विषे अधिकार है और जिसका शरीर तीर्थयात्रा करणेविषे अशक्त होवै तिसकूं बहूदक संन्यासविषे अधिकार है और तीव्रतर वैराग्यके प्राप्त हुए इस पुरुषकूं हंस संन्यासविषे अधिकार होवै है। तहां कुटीचक बहूदक हंस इन तीन संन्यासोंका स्वरूप तथा तिनोंके आचार मनु पाराशरस्मृति आदिक धर्मशास्त्रोंविषे प्रसिद्ध हैं। तथा आत्मपुराणविषे भी कथन करे हैं इति। और पूर्व उक्त सर्व वैराग्यतैं उत्कृष्ट जो वैराग्य है ताका नाम पर वैराग्य है इस पर वैराग्यका स्वरूप आगे वर्णन करेंगे। ऐसे पर वैराग्यके प्राप्त हुए इस अधिकारीपुरुषकूं परमहंस संन्यासविषे अधिकार होवै है। सो परमहंस संन्यास भी विविदिषा संन्यास १ विद्वत्संन्यास २ इन भेदों करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां विवेकादिचतुष्टयसाधनसम्पन्न पुरुषनैं तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिवासतैं कन्या जो संन्यास है ताका नाम विविदिषा संन्यास है। तहां श्रुति। 'एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजंति' अर्थ–विरक्त पुरुषकूं प्राप्त होणे योग्य जो यह

आत्मारूप लोक है तिसके प्राप्तिकी इच्छा करते हुए अधिकारी पुरुष संन्यासकूं करे हैं इहां यह तात्पर्य है। आत्मलोक १ अनात्मलोक २ इन भेदों करिके लोक दो प्रकारका होवे है। तहां 'अथ त्रयो वाव लोका मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोकः' इत्यादि श्रुतिनैं सो अनात्मलोक मनुष्य लोक १ पितृलोक २ देवलोक ३ इन भेदों करिकै तीन प्रकारका कथन कन्या है। और 'अथ यो हवाऽस्माल्लोकात्स्वं लोकमदृष्ट्वा प्रैति स एतमविदितो न भुनक्ति। आत्मानमेव लोकमुपासीत'। 'किं प्रजया करिष्यामो येषांनोऽयमात्माऽयं लोकः' इत्यादिक श्रुतियोंने आत्मलोक कथन कन्या है। यातैं ता उक्त श्रुतिविषे लोक शब्द करिके ता आत्मारूप लोकका ग्रहण करणा उचित है इति। और सो उक्त विविदिषा संन्यास भी दो प्रकारका होवै है। एक तौ जन्मकी प्राप्ति करणेहारे कर्मोंका त्यागरूप होवै है और दूसरा प्रष मन्त्रके उच्चारणपूर्वक दंड धारणादिक आश्रमरूप होवै है तहां काम्यकर्म तथा फलकी इच्छा पूर्व करे हुए नित्यकर्म इस पुरुषकूं जन्मकी प्राप्ति करे हैं। तिन कर्मोंका जो त्याग है सो प्रथम विविदिषा संन्यास कह्या जावै है। ताकेविषे भी काम्यकर्मका तौ स्वरूपतैं ही परित्याग विवक्षित है और नित्यकर्मोंका स्वरूपतैं परित्याग विवक्षित नहीं है किंतु तिन नित्यकर्मोंका फलकी इच्छामात्रका परित्यागविवक्षित है तहां ता प्रथमविविदिषा संन्यासविषे यह श्रुति प्रमाण है। 'न कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः' अर्थ-पूर्व-अधिकारी पुरुष काम्यकर्मों करिके तथा फलकी इच्छापूर्वक करे हुए नित्यकर्मों करिकै मोक्षके साधनरूप ब्रह्मसाक्षात्कारकूं नहीं प्राप्त होते भये हैं। तथा पुत्र पौत्रादिक प्रजा करिके तथा गौ सुवर्णादिक धन करिके ता ब्रह्मसाक्षात्कारकूं नहीं प्राप्त होते भये हैं किंतु ते पूर्व विरक्त पुरुष जन्मोंकी प्राप्ति करणेहारेकर्मोंके त्यागरूप

संन्यास करिकै ही ता ब्रह्म साक्षात्कारकूं प्राप्त होते भये हैं।यातैं इदानींकालके अधिकारी पुरुषोंने भी ता कर्मकेत्यागरूप संन्यास करिकै ही ता ब्रह्मसाक्षात्कारकूं संपादन करणा इति। यह श्रुति ता प्रथम विविदिषा संन्यासकूं ही कथन करे हैं। तहां जिन विरक्त गृहस्थादिकोंकूं किसी प्रबल निमित्तके वशतैं दंडधारणादिरूप आश्रम संन्यासके करणेका प्रतिबन्ध होवे है तिन गृहस्थादिकोंकूं इस प्रथम विविदिषा संन्यासविषे ही अधिकार है। इस विविदिषा संन्यासविषे स्त्रियोंका भी अधिकार है। काहेतैं श्रुति स्मृति इतिहास पुराण आदिकोंविषे जनक याज्ञवल्क्य अजातशत्रु कहोल मैत्रेयी गार्गी इत्यादिकोंकूं ब्रह्म साक्षात्कारकी प्राप्ति कथन करी है। तिन सर्वोंकूं ता उक्त विविदिषा संन्यासकरिकै ही ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति भई है।शंका—यज्ञोपवीतका धारणरूप उपनयन संस्कारवालेकूं ही वेदके अध्ययन करणेविषे अधिकार होवे है और स्त्रियोंकूं ता उपनयन संस्कारका अभाव है यातैं तिन स्त्रियोंकूं वेदके अध्ययन करणेका अधिकार ही नहीं है और 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्'यह श्रुति भी स्त्री शूद्रोंकूं वेदके अध्ययनका निषेध करे है और 'तत्त्वमसि' आदिक वैदिक वाक्योंतैं ही ब्रह्म साक्षात्कारकी प्राप्ति होवे है ता महावाक्यके श्रवणका अनधिकारी होणेतैं तिन स्त्रियोंकूं तथा शूद्रोंकूं ता ब्रह्मज्ञानविषे अधिकार ही नहीं है समाधान—'स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परां गतिम्'इस वचन करिकै श्रीभगवान्‌ने स्त्री शूद्रोंकूं भी मोक्षकी प्राप्ति कथन करी है और'यद्ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यंतो मनुष्या मन्यंते' इस श्रुतिनैं मनुष्यमात्रकूं ही ब्रह्मविद्या करिकै सर्वात्मभावकी प्राप्ति कथन करी है और सो ब्रह्मज्ञान वेदांत शास्त्रके श्रवणतैं विना संभवता नहीं यातैं यह व्यवस्था सिद्ध होवे है वेद अध्ययनके अधिकारी

जे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यह तीन वर्णवाले पुरुष हैं तिनोंकूं तौ उपनिषद्रूप वेदांतके श्रवणादिकोंतैं ही ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्ति होवै है और पूर्व अनेक जन्मोंके पुण्य कर्मकरिकै शुद्ध हुआ है अंतःकरण जिनोंका ऐसे जे वेद अध्ययनके अनधिकारी स्त्री शूद्रादिक हैं तिनोंकूं तौ वेदांत अर्थके प्रतिपादक पुराणदिकोंके श्रवणतैं ही ता ब्रह्मज्ञानकी उत्पत्ति होवै है इस कारणतैं इतिहास पुराणोंविषे विदुरादिक शूद्रोंकूं भी ता ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति कथंन करी हैं। जभी शूद्रोंकूं भी ता ब्रह्मज्ञानविषे अधिकार सिद्ध भया तभी मैत्रेयी गार्गी आदिक ब्राह्मणी स्त्रियोंकूं ता ब्रह्मज्ञानविषे अधिकार है याके विषे क्या कहणा है इति। और केएक ग्रंथकार तौ यह व्यवस्था करे हैं। बृहदारण्यक उपनिषद्विषे याज्ञवल्क्य मुनिने आपणी मैत्रेयी स्त्रीके प्रति साक्षात् श्रुति वचनों करिकै ही ब्रह्मविद्याका उपदेश कर्‍या है और तिसी बृहदारण्यक उपनिषदविषे गार्गीके साथ याज्ञवल्क्य मुनिका संवाद प्रसिद्ध है। यातैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन वर्णोंकी स्त्रियोंकूं आत्मज्ञानविषे उपयोगी वेदांत श्रुतियोंके श्रवणविषे अधिकार सिद्ध होवै है और उपनयन संस्कारके अभावतैं तिन स्त्रियोंकूं वेदके अध्ययनविषे अधिकार नहीं है। प्रथम गुरुने उच्चारण करे हुए वेदवाक्योंका जो पश्चात् शिष्य करिकै उच्चारण है ताका नाम अध्ययन है। जो कदाचित् स्त्रियोंकूं वेदांतके श्रवणका अधिकार नहीं होता तौ याज्ञवल्क्य मुनि मैत्रेयी स्त्रीके प्रति तथा गार्गीके प्रति साक्षात् वेदकी श्रुतियों करिकै ब्रह्मविद्याका उपदेश न करता। यह याज्ञवल्क्य मैत्रेयीका संवाद आत्मपुराणके सप्तम अध्यायविषे स्पष्ट करिकै निरूपण कर्‍या है इति। अब दूसरे आश्रमरूप विविदिषा संन्यासविषे श्रुति स्मृति प्रमाण कहें हैं तहां श्रुति 'दंडमाच्छादनं कौपीनं परिगृहेच्छेषं विसृजेत्' अर्थ—दंडकूं तथा शीत निवृत्ति अर्थ कंथाकूं

तथा कौपीनकूं तथा कमंडलु आदिकोंकूं यह संन्यासी ग्रहण करै। तिसते भिन्न सर्व वस्तुका परित्याग करे इति। तहां स्मृति 'संसारमेव निःसारं दृष्ट्वा सारदिदृक्षया। प्रव्रजंत्यकृतोद्वाहाः परं वैराग्यमाश्रिताः॥ अर्थ-ब्रह्मलोक पर्यंत सर्व संसारकूं निःसार देखिके परमात्म वस्तुरूप सारके देखणेकी इच्छा करिकै परं वैराग्यकूं प्राप्त हुए विरक्तपुरुष गृहस्थ आश्रमतैं पूर्व ही आश्रमरूप विविदिषा संन्यासकूं धारण करैं हैं इत्यादिक श्रुति स्मृति वचन ता आश्रमरूप विविदिषा संन्यासकूं कथन करैं हैं इति। तहां इतने पर्यंत दो प्रकारके विविदिषा संन्यासका निरूपण कर्‍या। अब विद्वत्संन्यासका निरूपण करैं हैं तहां ब्रह्मचर्य आश्रमविषे वा गृहस्थ आश्रमविषे वा वानप्रस्थ आश्रमविषे वेदांत श्रवणादिकोंकरिकै जिस पुरुषकूं ब्रह्मसाक्षात्कार उत्पन्न हुआ है ऐसे तत्त्ववेत्ता पुरुषने चित्तके विक्षेपकी निवृत्तिरूप जीवन्मुक्तिवासतैं कर्‍या जो संन्यास है ताका नाम विद्वत्संन्यास है यह विद्वत्सन्यास भी श्रुति स्मृति प्रमाण करिकै सिद्ध है। तहां श्रुति 'एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति। एतं वैतमात्मनं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरंति। नदंडं न शिखां न यज्ञोपवीतं नाच्छादनं चरति परमहंसः' अर्थ–इस परमात्माकूं 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकार साक्षात्कार करिकै विद्वान् पुरुष परमहंस संन्यासी होवै है और इस आत्माकूं साक्षात्कार करिकै तत्त्ववेत्ता पुरुष पुत्र–एषणा वित्त–एषणा लोक–एषणा इन तीन एषणाओंका परित्याग करिकै भिक्षावृत्तिकूं धारण करे है। अर्थात्–विद्वत्संन्यासकूं करे है और सो तत्त्ववेत्ता परमहंस संन्यासी दंडकूं तथा शिखाकूं तथा यज्ञोपवीतकूं तथा आच्छादनकूं नहीं धारण करे है इति। तहां स्मृति 'यदा तु विदितं तत्त्वं परं ब्रह्म सनातनम्। तदैकदंडं संगृह्य सोपवीतां शिखां त्यजेत्। ॥१॥ कंथाकौपीनवासास्तु दंडधृग्ध्यानतत्परः। एकाकी

रमते नित्यं तंदेवा ब्राह्मणंविदुः। २। कपालं वृक्षमूलानि कुचैलम-
सहायता। समता चैवसर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम्। ३। 'अर्थ-
जिस कालविषे यह अधिकारी पुरुष परब्रह्मरूप सनातन तत्त्वकूं
साक्षात्कार करै तिसी कालविषे एक दंडकूं ग्रहण करिकै यज्ञोप-
वीत सहित शिखाकूं परित्याग करै ॥ १ ॥ और जो विद्वान्
पुरुष शीतकी निवृत्तिवास्तैं केवल कंथा कौपीन वस्त्रोंकूं धारण
करै है तथा सर्वदा अंतर आत्माके ध्यानविषे तत्पर रहै है तथा
एकाकी विचरै है तिस विद्वान् पुरुषकूं देवता ब्रह्मवेत्ता परमहंस
संन्यासी कहैं हैं ॥२॥ और जिस विद्वान् पुरुषने भिक्षावासते मृत्ति-
कामयकपालहस्तविषे धारण कर्‍या है और वृक्षोंके मूलविषे जिस-
का निवास है और कुत्सित वस्त्रोंकूं जिसने धारण कर्‍या है और
जिसकूं कोईकी सहायता नहीं है तथा सर्व भूतोंविषे जिसकी सम
बुद्धि है यह सर्व मुक्त परमहंसके लक्षण हैं। अर्थात् इन उक्त
लक्षणों करिकै सो मुक्त परमहंस जान्या जावै है इति ॥ ३ ॥
इत्यादिक श्रुति स्मृति वचन ता विद्वत्संन्यासकूं कथन करैं हैं।
इस विद्वत्संन्यासका जीवन्मुक्ति ही फल है। इन विद्वत्परम-
हंस सन्यासियोंका चिह्न तथा आचार अव्यक्त होवै है। या कारणतैं
ही श्रुति स्मृति वचनोंविषे कहां तौ तिनोंकूं दंड वस्त्रादिकोंका
अभाव कह्या है और कहां तिनोंकूं दंड वस्त्रादिकोंका धारण कह्या
है। सो तिन विद्वत्संन्यासियोंका अव्यक्त चिह्न तथा अव्यक्त
आचार आत्मपुराणके एकादश अध्यायके आदिविषे स्पष्ट करिकैं
कथन कर्‍या है इति। शंका–पूर्व विविदिषा संन्यासकूं ब्रह्मज्ञानका
हेतु कह्या सो संभवता नहीं, काहेतैं जनक अजातशत्रु आदिकोंकूं
ता विविदिषा संन्यासके अभाव हुए भी सो ब्रह्मज्ञान श्रुति स्मृति
आदिकोंतैं जान्या जावै है समाधान-सो विविदिषासंन्यास केवल
इस जन्मका ही ता ब्रह्मज्ञानका कारण नहीं होवै है। किंतु जन्मां

तरविषे कन्या हुआ भी सो विविदिषा संन्यास ता ब्रह्मज्ञानका कारण होवै है । यातें तिन जनकादिकोंकूं इस जन्मविषे ता विविदिषा संन्यासके अभाव हुए भी जन्मांतरके विविदिषा संन्यासतें ही सो ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ है । इस प्रकार ता ब्रह्मज्ञानरूप कार्यतें ता जन्मांतरके संन्यासरूप कारणका अनुमान होवै है । किंवा 'यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' इस श्रुतिने वैराग्यवान् पुरुषके प्रति सर्व अंगों सहित विविदिषा संन्यासका विधान करिकै पुनः तिसी प्रकरणविषे 'यद्यातुरःस्यान्मनसा वाचा संन्यसेत्' अर्थ—जभी यह पुरुष व्याधि आदिकों करिकै अति आतुर होवै तभी दूसरे अंगोंतें विना ही केवल मन करिकै वा वाणी करिकै ता संन्यासकूं करै । इस श्रुतिने आतुर संन्यासका विधान कन्या है । तहां मरणके समीप प्राप्त हुए ता आतुर संन्यासीकूं तिस कालविषे श्रवणादिकों करिकै आत्मज्ञानकी प्राप्ति संभवती नहीं । यातें सो आतुर संन्यास तिस पुरुषकूं दूसरे जन्मविषे ता आत्मज्ञानकी प्राप्ति करै है,यह अवश्य अंगीकार करणा होवैगा । अन्यथा सो आतुर संन्यास ही व्यर्थ होवैगा या कारणतें भी ता जन्मांतरके विविदिषा संन्यासकूं आत्मज्ञानकी कारणता संभवै है । शंका—यह आतुर संन्यास पूर्व उक्त विविदिषा संन्यासतें भिन्न ही संन्यास है । और 'संन्यासाद्ब्रह्मणः स्थानम्' इस स्मृतिने ता आतुर संन्यासका ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप फल कथन कन्या है यातें सो आतुर संन्यास व्यर्थ नहीं है।समाधान—इस आतुर संन्यासविषे भी विरक्त पुरुषका ही अधिकार होवै है और विविदिषा संन्यासके प्रकरणविषे ही इस आतुर संन्यासका विधान कन्या है।यातें यह आतुर संन्यास पूर्व उक्त विविदिषा संन्यासतें भिन्न संन्यास नहीं है । किंतु ता विविदिषा संन्यासके अंतर्भूता ही है । और'संन्यासाद्ब्रह्मणः स्थानम्' यह स्मृति तौ ता आतुर

संन्यासके ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप अवांतर फलकूं कथन करै है। ता करिकै आत्मज्ञानरूप मुख्य फलका निषेध होइ सकै नहीं। अथवा सो स्मृति कुटीचकादिरूप स्मार्त संन्यासके ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप फलकूं कथन करै है। यातैं ता आतुर संन्यासका भी आत्मज्ञानकी प्राप्ति ही मुख्य फल है। जन्मांतरके संन्यासतैं भी आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवै है यह वार्त्ता श्रीसर्वज्ञमहामुनिने संक्षेपशारीरक ग्रंथविषे भी कथन करी है। तहां श्लोक'जन्मांतरेषु यदि साधनजातमासीत् संन्यासपूर्वकमिदं श्रवणादिरूपम्। विद्यामवाप्स्यति जनःसकलोऽपि यत्र तत्राश्रमादिषु वसन्न निवारयामः' अर्थ—जो कदाचित् इन अधिकारी पुरुषोंके पूर्व जन्मों विषे संन्यासपूर्वक श्रवणादिक साधन सिद्ध हुए होवैं तौ ते अधिकारी जन जिस तिस गृहस्थादिक आश्रमविषे वसते हुए तिन पूर्व साधनोंके बलतैं तहां ही ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होवै हैं। इस अर्थकूं हम निवारण करते नहीं इति। यातैं तिन जनकादिकोंकूं पूर्व जन्मके विविदिषा संन्यास करिकै आत्मज्ञानकी प्राप्ति संभवै है यह सिद्ध भया इति। तहां पूर्व 'आत्मावाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः' इस श्रुतिवचनकरिकै अधिकारी पुरुषके प्रति आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतैं श्रवणादिकोंकी कर्त्तव्यता कथन करी थी। ताके विषे केएक ग्रंथकार तौ श्रवणादिकोंविषे विधि अंगीकार करते नहीं और केएक विधि अंगीकार करैं हैं। तहां प्रथम पक्षतौ वाचस्पतिमिश्रका है और द्वितीय पक्ष विवरणाचार्यका है। तहां वाचस्पति मिश्रका यह अभिप्राय है विवेकादिकसाधन चतुष्ट संपन्न जिज्ञासु जनने करे जे श्रवणादिक हैं तिन श्रवणादिकोंकूं आत्मज्ञानकीकारणता अन्वय व्यतिरेक करिकै ही निश्चय होवै है। यातैं श्रवणादिकोंविषे विधि संभवता नहीं अप्राप्त अर्थविषे ही विधि होवै है। जैसे यागविषे स्वर्गकी कारणता प्रत्यक्षादिक प्रमाणों करिकै अप्राप्त है। यातैं ता कारणताका

बोधक ' स्वर्गकामो यजेत' यह वचन विधिरूप है । यद्यपि श्रवणाकों विषे ब्रह्मसाक्षात्कारकी कारणता ता उक्त श्रुति प्रमाणतैं भिन्न किसी प्रमाण करिकै प्राप्त नहीं है तथापि अतिसूक्ष्मता करिकै दुर्विज्ञेय जे षड्जादिक स्वर हैं तिन स्वरोंके साक्षात्कार प्रति गांधर्व शास्त्रके अभ्यासकूं अन्वय व्यतिरेक करिकै कारणता प्राप्त है और तिन स्वरोंकी न्याईं ब्रह्म भी अतिसूक्ष्म होणेतैं दुर्विज्ञेय है । यातैं ता ब्रह्मसाक्षात्कारके प्रति भी वेदांत शास्त्रके श्रवणकूं कारणता ता अन्वय व्यतिरेक करिकै प्राप्त ही है। ऐसे प्राप्त अर्थविषे विधि संभवता नहीं और श्रोतव्य इस वचनविषे जो तव्य यह प्रत्यय प्रतीत होवै है ता प्रत्ययका विधि अर्थ नहीं है किंतु योग्यता अर्थ है । अर्थात् आत्मा श्रवण करणे योग्य है इस प्रकार 'मंतव्यः निदिध्यासितव्यः' इन दोनों वचनोंविषे भी विधिका अभाव जानिलेणा इति। और आचार्योंका तौ यह अभिप्राय है'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः'इस श्रुतिविषे विवेकादिक चतुष्टय साधन संपन्न संन्यासीके प्रति आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतैं मनन निदिध्यासनरूप फलोपकारी अंगोंसहित श्रवणनामा अंगी विधान कऱ्या है । तहां जो पदार्थ साक्षात् फलका साधनरूप करिकै श्रवण कऱ्या जावै है सो पदार्थ अंगी कह्या जावै है तथा शेषी कह्या जावै है तथा प्रधान कह्या जावै है और ता अंगीके समीप ही जो पदार्थ फलतैं विना कर्त्तव्यतारूप करिकै श्रवण कऱ्या जावै है सो पदार्थ अंग कह्या जावै है तथा शेष कह्या जावै है तथा सहकारी कह्या जावै है । ते अंग भी स्वरूपोपकारी १ फलोपकारी २ इन भेदों करिकै दो प्रकारके होवै हैं । तहां जे अंग अंगीके स्वरूपकी उत्पत्ति विषे उपकार करैं हैं ते अंग स्वरूपोपकारी कहे जावै हैं। इन स्वरूपोपकारी अंगोंकूं ही मीमांसक सन्निपत्योपकारी अंग कहे हैं । और जे अंग ता अंगीजन्य फलकी उत्पत्तिविषे उपकार करैं हैं ते

अंग फलोपकारी अंग कहे जावे हैं। इन फलोपकारी अंगोंकूं ही मीमांसक आराडुपकारी अंग कहें हैं। जैसे इहां प्रसंगविषे वेदांत शास्त्रका श्रवण प्रमाणका विचाररूप होणेतैं साक्षात् ब्रह्मज्ञानरूप फलका साधनरूप करिकै विधान कर्‍या है यातैं सो श्रवण तौ अंगी कह्या जावे है और ता श्रवणरूप अंगीके समीप विधान करे जे विवेकादिक चारि साधन हैं तिनोंका ज्ञानतैं भिन्न दूसरा कोई फल तहां कथन कर्‍या नहीं। यातैं ते विवेकादिक साधनता श्रवणरूप अंगीके स्वरूपकी उत्पत्तिविषे उपकारी होणेतैं स्वरूपोपकारी अंग कहे जावे हैं और ता श्रवणरूप अंगीके समीप ही फलतैं विना मनन निदिध्यासनका विधान कर्‍या है यातैं ते मनन निदिध्यासन दोनों ता श्रवणरूप अंगीके ब्रह्म साक्षात्काररूप फलकी उत्पत्तिविषे उपकारी होणेतैं फलोपकारी अंग कहे जावें हैं। यातैं 'श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः' इस वचननैं मनन निदिध्यासनरूप फलोपकारी अंगोंसहित श्रवणनामा अंगी विधान करीता है। अर्थात् साधन चतुष्टय संपन्न संन्यासीनैं ब्रह्म साक्षात्कारकी प्राप्तिवासतैं मनन निदिध्यासनरूप अंगों सहित श्रवणरूप अंगी अवश्य संपादन करणा इति। तहां श्रवणकूं ब्रह्म साक्षात्कारकी कारणता पूर्व उक्त अन्वय व्यतिरेक कारिकै ही सिद्ध है। यातैं ता श्रवणका विधान करणेहारा 'श्रोतव्यः' यह विधि अपूर्व विधिरूप नहीं है किंतु नियम विधिरूप है अथवा परिसंख्या विधिरूप है। अब यथा क्रमतैं तिन अपूर्वादिक तीन विधियोंके लक्षण कहे हैं। तहां 'अप्राप्तार्थबोधको विधिः अपूर्वविधिः' अर्थ-प्रमाणंतर कारिकै अप्राप्त अर्थका कर्त्तव्यतारूप करिकै बोधन करणेहारा जो विधि है ताका नाम अपूर्व विधि है। जैसे 'व्रीहीन् प्रोक्षति' यह वचन अपूर्व विधि है। तहां इस वचनतैं विना अन्य किसी प्रमाण करिकै सो

व्रीहियोंका प्रोक्षण प्राप्त है नहीं यातैं अप्राप्त अर्थको बोधक होणेतैं सो विधि अपूर्वविधि कह्या जावै है इति। और 'पक्षे प्राप्तस्याप्राप्तांशपूरको विधिःनियमविधिः अर्थ—पक्षविषे प्राप्त अर्थके अप्राप्त अंशका पूरण करणेहारा जो विधि है ताका नाम नियम विधि है। जैसे 'व्रीहीनवहन्यात्'यह विधि है। तहां यज्ञविषे उपयोगी जे व्रीहि हैं तिनोंके तुषोंकी निवृत्ति दो उपायोंतैं होवै है। एक तौ अवघातरूप उपाय है और दूसरा नखविदलनरूप उपाय है। तहां मुसलसे व्रीहियोंके कूटणेका नाम अवघात है और नखोंसे तुषोंकी निवृत्ति करणेका नाम नखविदलन है।तहां जिस पक्षविषे ता नखविदलनकी प्राप्ति होवै है तिस पक्षविषे ता अवघातकी प्राप्ति है नहीं। ता पक्षप्राप्त अवघातके अप्राप्त अंशका 'व्रीहीनवहन्यात्' यह वाक्य पूरण करे है। अर्थात् अवघात करिकैही तिन व्रीहियोंके तुषोंकी निवृत्ति करणी।इस कहणेतैं ता नखविदलनरूप उपायकी निवृत्ति अर्थसे सिद्ध होवै है इति। और 'उभयप्राप्तावितरव्यावृत्तिबोधको विधिः परिसंख्याविधिः' अर्थ—एक ही कालविषे दो पदार्थोंके प्राप्त हुए एक पदार्थकी व्यावृत्ति बोधक जो विधि है ताका नाम परिसंख्याविधि है। जैसे 'इमामगृभ्णन्रशनाऽमृतस्य' इस मंत्र करिकै यज्ञविषे अश्व गर्दभ दोनोंके रशना ग्रहणकी प्राप्ति हुए 'अश्वाभिधानीमादत्ते'इस वचननें ता गर्दभ रशनाके ग्रहणकी व्यावृत्ति विधान करी है। कोई अश्वरशनाके ग्रहणका विधान करता नहीं। सो अश्वरशनाका ग्रहण उक्त मंत्र करिकै ही प्राप्त है। यातैं 'अश्वाभिदानीमादत्ते'। यह वचन परिसंख्या विधि कह्या जावै है यद्यपि नियमविधिविषे तथा परिसंख्याविधिविषे इतरकी निवृत्ति समान है तथापि नियमविधिविषे इतरकी निवृत्ति आर्थिकी होवै है। और परिसंख्या विधिविषे सा इतरकी निवृत्ति विधेय होवै है

इतनी दोनोंविषे विशेषता है इति। तैसे प्रसंगविषे भी 'श्रोतव्यः' यह नियम विधि है अर्थात् सो साधनसंपन्न जिज्ञासु वेदांतशास्त्रकूं ही श्रवणकरे। अथवा सो जिज्ञासु वेदांतशास्त्रतैं अन्यशास्त्रकूं नहीं श्रवण करै या प्रकारका परिसंख्याविधि है। शंका–जिस स्थलविषे दो साधन प्राप्त होवै हैं तहां ही अप्राप्त अंशका पूरण करणेहारा नियमविधि अंगीकार कऱ्या जावै है। यह पूर्व नियमविधिका लक्षण कथन कऱ्या था। सो लक्षण इहां श्रवणविधिविषे संभवता नहीं। जिस कारणतैं सो ब्रह्म वेदांतशास्त्रतैं भिन्न किसी प्रमाणका विषय है नहीं किंतु एक वेदांतशास्त्रका ही विषय है,जो कदाचित् ता ब्रह्मसाक्षात्कारविषे वेदांतश्रवणतैं भिन्न भी कोई साधन होता तौ ता श्रवणविषे नियमविधि संभवता, जो कहो ता ब्रह्मसाक्षात्कारके प्रति एकपक्षविषे पुराणादिकोंका श्रवण भी साधनरूप करिकै प्राप्त है ताके निवृत्त करणेवासतैं वेदांतश्रवणविषे सो नियमविधि संभवै है। सो यह कहणा भी संभवता नहीं काहेतैं आत्मपुराणकूं वेदांतमूलकता होणेतैं ता पुराणके श्रवणकूं वेदांतश्रवणतैं भिन्न साधनरूपता नहीं है किंतु सो अध्यात्मपुराणका श्रवण भी वेदांतका ही श्रवण है और जो कहो एकपक्षविषे रागीपुरुषोंके गीतादिकोंके श्रवणकी प्राप्ति होणेतैं ताके निवृत्तकरणेवासते वेदांतश्रवणविषे सो नियमविधि संभवै है सो यह कहणा भी संभवता नहीं। जिस कारणतैं ता श्रवणविधितैं अन्य वचनों करिकै ही मुमुक्षुजनके प्रति तिन रागी गीतोंके श्रवणका निषेध कऱ्या है और जो कहो एकपक्षविषे द्वैतशास्त्रके श्रवणकी प्राप्ति होणेतैं ताके निवृत्तकरणे वासतैं ता वेदांतश्रवणविषे नियमविधि संभवै है सो यह कहणा भी संभवता नहीं। जिस कारणतैं ता द्वैत शास्त्रकूं अद्वैतका विरोधीपणा होणेतैं ता अद्वितीय ब्रह्मज्ञानके प्रति साधनरूपता

ही संभवती नहीं । और 'न चक्षुषा पश्यति नापि वचा।यतो वाचो निवर्त्तते यन्मनसा न मनुते ' इत्यादिक श्रुतियोंने ब्रह्मविषे वेदांततैं भिन्न चक्षु वाक् मन आदिकोंकी अविषयता कथन करी है यातैं ता ब्रह्मज्ञानविषे प्रत्यक्षादिकोंकूं भी साधनरूपता प्राप्त है नहीं । यातैं तिन प्रत्यक्षादिकोंके निवृत्तकरणे वासतैं भी ता वेदांत-श्रवणविषे नियमविधि संभवती नहीं यातैं ता वेदांत श्रवणविषे नियमविधि कहणा असंगत है । और उक्त रीतिसे ता अन्य साधनका अभाव होणेतैं ताके निवृत्तकरणेवासतैं ता वेदांत श्रवण-विषे परिसंख्याविधि भी संभवती नहीं । समाधान—यद्यपि वेदांत-शास्त्रतैं भिन्न पुराणादिकोंकूं स्वतंत्र ब्रह्मसाक्षात्कारकी साधनता नहीं है तथापि वेदांतशास्त्रके श्रवणकी न्याई पुराणादिकोंका श्रवण भी स्वतंत्र ब्रह्मसाक्षात्कारका साधन है या प्रकारकी भ्रांति-करिके ता पुराणादिकोंके श्रवणकूं भी ता ब्रह्मज्ञानके प्रति स्वतंत्र साधनताके प्राप्त हुए ताके निवृत्त करणेवासतैं ता वेदांत श्रवण विषे नियमविधिका अंगीकार तथा परिसंख्याविधिका अंगीकार संभवै है। अथवा ब्रह्मवेत्ता गुरुतैं विना स्वतंत्र आपणी बुद्धिसे वेदांतविचारके निवृत्तकरणेवासतैं ता श्रवणविषे नियमविधिका वा परिसंख्याविधिका अंगीकार है। अर्थात् इस अधिकारी पुरुषने श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके मुखतैं ही वेदांतशास्त्रका श्रवण करणा । ता गुरुतैं विना स्वतंत्र केवल आपणी बुद्धिसे ता वेदांतशास्त्रका विचार नहीं करणा। यह वार्त्ता पूर्ववृद्ध पुरुषोंनैं भी कही है । तहां श्लोक 'नियमः परिसंख्या वा विध्यर्थो हि भवेद्यतः। अनात्मदर्शने-नैव परात्मानमुपास्महे' अर्थ—जिस कारणतैं 'श्रोतव्यः' इस विधि-वाक्यका नियम वा परिसंख्या ही अर्थ है तिस कारणतैं हम अना-त्मवस्तुवोंके चिंतनका परित्याग करिके केवल परमात्माका ही चिंतन करे है इति । शंका—'श्रोतव्यः' इस विधिवाक्यनैं वेदांत

श्रवणका विधान करता है यह वार्त्ता पूर्व आपनैं कथन करी और श्रुतिस्मृतिरूप शास्त्रविषे काम्य १ नित्य२ नैमित्तिक ३ प्रायश्चित्त ४ इन चारि प्रकारके कर्मका ही विधान कऱ्या है । तिन चारोंविषे सो श्रवण काम्य कर्मरूप है अथवा नित्यकर्म रूप है अथवा नैमित्तिक कर्मरूप है ॥ १ ॥ अथवा प्रायश्चित्तरूप है । तहां प्रथम काम्यपक्ष जो अंगीकार करो सो संभवता नहीं । काहे तैं 'स्वर्गकामो यजेत' इस वचनविषे जैसे स्वर्गरूप फलका उद्देश करिकै यागका विधान कऱ्या है तैसे कोई फलका उद्देशकरिकै ता श्रवणका विधान कऱ्या नहीं और जो कहो जैसे रात्रिसत्रनामा यागके विधायक वाक्यविषे फलके अश्रवण हुए भी ब्रह्मज्ञानविषे पुरुषकी प्रवृत्ति करावणे वासतैं ता यागका फल कल्पना कऱ्या जावै है तैसे ता श्रवणका भी ब्रह्मज्ञान रूप फल हम कल्पना करेंगे। सो यह कहणा भी संभवता नहीं काहेतैं गृहस्थादिकोंविषे ता ब्रह्मज्ञानरूप फलके कामनाका ही असंभव है । उलटा तिन गृहस्थादिकोंविषे ता ब्रह्मज्ञानतैं उद्वेग ही देखणेविषे आवैहै।याकारणतैं ही तिन रागीपुरुषोंके अभिप्रायका बोध लोक कह्या है।'अपि वृंदावने शून्ये शृगालत्वं सइच्छति।नतु निर्विषयं मोक्षं कदाचिदपि गौतम 'अर्थ--हे गौतम।सो रागवान् पुरुष शून्य वृन्दावनविषे शृगाल होणेकी तौ इच्छा करे है परंतु निर्विषयमोक्षकी सो रागवान् पुरुष कदाचित्भी इच्छा करता नहीं इति।किंवा 'वेदानिमं लोकममुं च परित्यज्यात्मानमन्विच्छेत्' इत्यादिक श्रुतितैं साधनचतुष्टयसंपन्न जिज्ञासु संन्यासीकूं आत्मज्ञानकी ही प्राप्ति वासतैं श्रवणादिकोंकी कर्त्तव्यता निश्चय होवे है। यातैं गृहस्थादिकोंकूं तिन श्रवणादिकोंविषे अधिकार ही नहीं है । जो कहो तिन संन्यासियोंकूं ही सो श्रवण काम्य कर्मरूप होवो सो यह कहणा

भी संभवता नहीं।काहेतें जो कदाचित् संन्यासिके प्रति सो श्रवण काम्य कर्मरूप होवै तौ काम्य कर्मके न करणेतें प्रत्यवायकी प्राप्ति होती नहीं ।यातें ता श्रवणके न करणेतें ता संन्यासिकूं प्रत्यवायकी प्राप्ति नहीं होणी चाहिये और वेदांतश्रवणके परित्यागतें ता संन्यासीकूं प्रत्यवायकी प्राप्ति श्रुति स्मृतिविषे कथन करी है । यातें ता संन्यासीके प्रति ता श्रवणकूं काम्य कर्मरूपता संभवती नहीं और सो श्रवण नित्यकर्मरूप है यह द्वितीयपक्ष जो अंगीकार करो सो भी संभवता नहीं।काहेतें'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्' इस वचननैं जैसे गृहस्थके प्रति जीवनकालपर्यंत अग्निहोत्ररूप नित्यकर्मका विधान कऱ्या है तैसे इस अधिकारीपुरुषके प्रति जीवनकालपर्यंत ता श्रवणका कोई वचननैं विधान कऱ्या नहीं यातें ता श्रवणविषे नित्यकर्मरूपता संभवती नहीं और सो श्रवणनैमित्तिक कर्मरूप है यह तृतीयपक्ष जो अंगीकार करो सो भी संभवता नहीं,काहेतें जैसे अग्निहोत्री पुरुषके गृहके दाह हुए ता निमित्तकूं लैके वेदनैं इष्टिका विधान कऱ्या है तैसे इहां कोई निमित्त कथन कऱ्या नहीं।जिस निमित्तकूं लैके सो श्रवण नैमित्तिककर्मरूप होवै और सो श्रवणप्रायश्चित्त कर्मरूप है यह चतुर्थ पक्ष जो अगीकारकरो सो संभवता नहीं।काहेतें 'तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते' इस वचननैं जैसे ब्रह्महत्यारूप पापके निवृत्त करणेवासतें अश्वमेध यज्ञरूपप्रायश्चितका विधान कऱ्या है तैसे कोई श्रुति वचननैं किसी पापकी निवृत्तिवासतें ता श्रवणका विधान कऱ्या नहीं । यातें ता श्रवणकूं प्रायश्चित्तरूपता भी संभवती नहीं।यातें कोई प्रकार करिके भी ता वेदांतश्रवणविषे विधि संभवता नहीं । ऐसी शंकाके प्राप्त हुए अब विविदिषा संन्यासीके प्रति तो ता श्रवणकूं नित्यकर्मरूपता और गृहस्थादिकोंके प्रति ता श्रवणकूं काम्यकर्मरूपता वर्णन करेहैं। तहां जैसे गृहस्थ पुरुषकूं अग्निहोत्र संध्योपासनादिक

नित्यकर्मोंके न करणेतैं श्रुति स्मृतिनैं प्रत्यवायकी प्राप्ति कथन करी है। तथा 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्, इत्यादिक श्रुतियोंनैं जीवत्कालपर्यंत तिन अग्निहोत्रादिक नित्यकर्मोंका विधान कऱ्या है तैसे विविदिषा संन्यासीके प्रति भी वेदांत श्रवणादिकोंके न करणेतैं प्रत्यवायकी प्राप्ति तथा जीवत्कालपर्यंत तिन श्रवणदिकोंकी कर्त्तव्यता श्रुति स्मृतिनैं कथन करी है। यातैं जैसे गृहस्थके प्रति ते अग्निहोत्र संध्योपासनादिक नित्यकर्मरूप हैं तैसे विविदिषा संन्यासीके प्रति भी ते वेदांत श्रवणादिक नित्यकर्मरूप हैं। तहां श्रुति 'अरुन्मुखान्यतीन्शालावृकेभ्यः प्रायच्छम्' अर्थ–वेदांत विचारतैं रहित संन्यासियोंकूं हनन करिकै मैं इंद्र श्वानों के ताईं देता भया हूं इति। इस श्रुतिका अर्थ–आत्मपुराणके द्वितीय अध्यायविषे इंद्रप्रतर्दनके संवादविषे विस्तारतैं कथन कऱ्या है। तहां स्मृति 'नित्यं कर्म परित्यज्य वेदांतश्रवणं विना। वर्त्तमानस्तु संन्यासी पतत्येव न संशयः। अर्थ–अग्निहोत्र संध्योपासनादिक नित्यकर्मोंका परित्याग करिकै जो विविदिषा संन्यासी वेदांत शास्त्रके श्रवणादि कोंकूं न कर्त्ता हुआ वर्त्तमान होवैहै सो संन्यासी पतितही होवैहै इति। इत्यादिक श्रुति स्मृतियोंनैं ता विविदिषा संन्यासीकूं वेदांत श्रवणके न करणेतैं प्रत्यवायकी प्राप्ति कथन करी है। और 'आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदांतचिंतया। दद्यान्नावसरं किंचित्कामादीनां मनागपि।' अर्थ–यह विविदिषा संन्यासी जाग्रततैं लैके सुषुप्ति पर्यंत तथा ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप गमनतैं लैके मरणपर्यंत कालकूं वेदांत शास्त्रके चिंतन करिकै व्यतीत करै। आपणे चित्तविषे काम क्रोधादिक विकारोंके प्राप्तिका अवसर किंचित्मात्र भी नहीं देवै इति। इस स्मृतिनैं तथा इस स्मृतिका मूलभूत श्रुतिनैं ता विविदिषा संन्यासीके प्रति जीवत्कालपर्यंत वेदांतशास्त्रके श्रवणादिकोंकी कर्त्तव्यता विधान करी

है। यातैं ता संन्यासीके प्रति श्रवणादिकोंकूं नित्यकर्मरूपता ही सिद्ध होवै है। किंवा ता उक्त श्रुति स्मृतिके बलतैं ता श्रवणकूं संन्यासीके प्रति नित्यकर्मरूपता केवल हमीनैं ही नहीं अंगीकार करी थी, किंतु पूर्व आचर्योंनै भी अंगीकार करी है। तहां श्लोक 'त्वंपदार्थविवेकाय संन्यासः सर्वकर्मणाम् । श्रुत्याऽभिधीयते यस्मात्तत्त्यागी पतितो भवेत् ' अर्थ—'तत्त्वमसि' इस महावाक्यविषे स्थित जो त्वं पद है ता त्वंपदका वाच्य अर्थ जो अंतःकरण विशिष्ट चैतन्य है ताके विषे अंतःकरणका परित्याग करिकै लक्ष्य अर्थरूप जो प्रत्यक् चैतन्य है ता प्रत्यक् चैतन्यका जो ब्रह्मरूप करिकै ज्ञान है याका नाम त्वंपदार्थविवेक है। ता त्वंपदार्थके विवेकवासतैं ही श्रुतिनैं अग्निहोत्र संध्योपासनादिक सर्व कर्मोंका संन्यास विधान कऱ्या है और जो पुरुष ता संन्यासकूं धारण करिके तिस त्वंपदार्थके विवेककूं नहीं करे है सो संन्यासी पतित होवै है इति। इस वचन करिकै श्रीवार्तिककार सुरेश्वराचार्यनैं श्रवणादिकोंतैं रहित संन्यासीकूं पतितपणा कथन कऱ्या है इस प्रकार सर्वज्ञ महामुनिने भी संक्षेप शारीरक ग्रंथविषे कह्या है। तहां श्लोक। 'कारकस्य करणेन तत्क्षणाद्भिक्षुरेष पतितो भवेद्यथा। व्यंजकस्य परिवर्जनात्तथा सद्यएव पतितो भवेदसौ' अर्थ—जैसे यह संन्यासी यज्ञादिक कर्मोंके करणे करिकै शीघ्र ही पतित होवै है तैसे वेदांतशास्त्रके श्रवणादिकोंके नहीं करणेंतै भी शीघ्रही पतित होवै है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। विविदिषा संन्यासीके प्रति ता वेदांतश्रवणकूं नित्यकर्मरूपता होणेतैं ता श्रवणविषे 'श्रोतव्यः' यह उक्त नित्यविधि संभवै है इति। और गृहस्थादिकोंके प्रति ते वेदांतशास्त्रके श्रवणादिक काम्यकर्मरूप हैं तहां जिस कर्मके करणे करिकै ता फलकी प्राप्ति होवै और न करणे करिकै प्रत्यवायकी

प्राप्ति होवै नहीं ता कर्मकूं काम्यकर्म कहे हैं। जैसे जिस पुरुषकूं स्वर्गके प्राप्तिकी इच्छा होवै है सो पुरुष तौ ज्योतिष्टोमयागकूं करे है। ता करिकै तिस पुरुषकूं स्वर्गरूप फलकी प्राप्ति होवै है और जिस पुरुषकूं ता स्वर्गके प्राप्तिकी इच्छा नहीं होवै है सो पुरुष ता ज्योतिष्टोमयागकूं करता नहीं। परंतु ता ज्योतिष्टोम यागके न करणे करिकै तिस पुरुषकूं कोई प्रत्यवायकी प्राप्ति होती नहीं। या कारणतैं सो ज्योतिष्टोम याग काम्यकर्म कह्या जावै है। तैसे जिस गृहस्थकूं ब्रह्मज्ञानकी इच्छा होवै सो गृहस्थ तौ वेदांतशास्त्रके श्रवणादिकोंकूं करै। तिन श्रवणादिकों करिकै ता गृहस्थकूं ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति होवै है और जिस गृहस्थकूं ता ब्रह्मज्ञानकी इच्छा नहीं होवै सो गृहस्थ तिन श्रवणादिकोंकूं नहीं करै, परन्तु तिन श्रवणादिकोंके नहीं करणेतैं ता गृहस्थकूं कोई प्रत्यवायकी प्राप्ति होती नहीं। यातैं तिन गृहस्थादिकोंके प्रति तिन श्रवणादिकोंकूं काम्यकर्मरूपता ही सिद्ध होवै है। शंका—विवेकादिक चतुष्टयसाधनसंपन्न पुरुषकूं ही ब्रह्म जिज्ञासा होवै है। ब्रह्मके जानणेकी इच्छाका नाम ब्रह्मजिज्ञासा है और गृहस्थादिकोंविषे ते चतुष्टयसाधन संभवते नहीं यातैं ता ब्रह्म जिज्ञासाके अभावतैं तिन गृहस्थादिकोंके प्रति ता श्रवणकूं काम्यकर्मरूपता भी संभवती नहीं। समाधान—अत्यन्त बहिर्मुख गृहस्थादिकोंकूं ता साधन संपत्तिके अभावतैं ता ब्रह्मजिज्ञासाके अभाव हुए भी जे केएक गृहस्थ पुरुष परमेश्वर करिकै अनुगृहीत हैं तथा फलकी इच्छातैं रहित होइके नित्य नैमित्तिक कर्मकूं करे हैं। या कारणतैं ही शुद्ध अंतःकरणवाले हैं। तथा गुरु ईश्वरविषे श्रद्धाभक्तिवाले हैं। ऐसे उत्तम गृहस्थोंकूं ता विवेकादिक साधन संपत्ति करिकै सा ब्रह्मजिज्ञासा संभवै है और कोई प्रतिबंधके वशतैं तिन गृहस्थोंकूं

संन्यास आश्रमकी अप्राप्ति हुए भी वेदांत शास्त्रके श्रवणादिकोंविषे तिनोकी प्रवृत्ति संभवै है। ऐसे साधनसंपन्न गृहस्थादिकोंके प्रति ही सो श्रवणविधि काम्यरूप है, जो कदाचित् तिन गृहस्थादिकोंकी ब्रह्मजिज्ञासापूर्वक श्रवणादिकोंविषे प्रवृत्ति नहीं मानिये तौ गृहस्थाश्रमादिकोंविषे उत्पन्न भया है ब्रह्मसाक्षात्कार जिनोंकूं ऐसे तत्त्ववेत्ता पुरुषोंके प्रति जीवन्मुक्तिवासतैं श्रुति स्मृतिने जो विद्वत्संन्यासका विधान कऱ्या है सो व्यर्थ होवैगा और जो कहो विविदिषा संन्यासतैं भिन्न कोई विद्वत्संन्यास है नहीं सो यह कहणा संभवता नहीं । जिस कारणतैं पूर्व श्रुति स्मृति प्रमाणके बलतैं भिन्न विद्वत्संन्यासका निरूपण करि आये हैं। किंवा अधिकारी फल साधन इन तीनोंके भेदतैं भी सो विद्वत्संन्यास ता विविदिषासंन्यासतैं भिन्न ही सिद्ध होवै है। तहां विविदिषा संन्यासविषे जिज्ञासु अधिकारी होवै है और विद्वत्संन्यासविषे तत्त्ववेत्ता अधिकारी होवै है और विविदिषा संन्यासका तौ तत्त्वज्ञान फल होवै है और विद्वत्संन्यासका जीवन्मुक्ति फल होवै है और विविदिषा संन्यासीने तो तिस तत्त्वज्ञानरूप फलवासतैं श्रवणादिक साधन अनुष्ठान करते हैं और विद्वत्संन्यासीने ता जीवन्मुक्तिरूप फलवासतैं मनोनाशवासनाक्षयादिक साधन अनुष्ठान करिते हैं इस प्रकार अधिकारी फल साधन इन तीनोंका भेद होणे तैं सो विद्वत्संन्यास ता विविदिषा संन्यासतैं भिन्नही मान्या चाहिये । सो विद्वत्संन्यास भी सार्थ होवै जबी तिन गृहस्थादिकोंकूं वेदांत श्रवणविषे अधिकार तथा श्रवणादिकों करिकै ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति अंगीकार करिये । यातैं तिन गृहस्थादिकोंकूं ते श्रवणादिक काम्य कर्मरूप हैं यह उक्त अर्थ संभवै है किंवा तिन गृहस्थादिकोंकूं वेदांत शास्त्रके श्रवणतैं महान् पुण्यकी उत्पत्ति भी

शास्त्रने कथन करी है। तहां श्लोक-'दिनेदिने तु वेदांतश्रवणाद्भक्तिसंयुतात्। गुरुशुश्रूषया लब्धात्कृच्छ्राशीतिफलं लभेत्'अथ–ब्रह्मवेत्ता गुरुकी सेवा करिकै प्राप्त भया तथा गुरु ईश्वरकी भक्ति करिकै युक्त ऐसा जो दिनदिनविषे वेदांतशास्त्रका श्रवण है तिस वेदांतश्रवणतैं यह अधिकारी पुरुष अस्सीकृच्छ्रके फलकूं प्राप्त होवै है इति। इहां यह तात्पर्य है, यद्यपि वेदांत श्रवणादिकोंके न करणेतैं गृहस्थादिकोंकूं प्रत्यवायकी प्राप्ति होती नहीं तथापि आत्मज्ञानतैं रहित पुरुषकूं महान् हानिकी प्राप्ति श्रुति स्मृतिनैं कथन करी है। यातैं तिन गृहस्थादिकोंने भी वेदांत श्रवणादिकोंकरिकै ता आत्मज्ञानकूं अवश्य करिकै संपादन करणा। तहां श्रुति-न चेदिहावेदिर्महती विनष्टिः' अर्थ–अधिकारी मनुष्य शरीरकूं पाइकै जभी यह पुरुष आत्माकूं नहीं जाने है तभी इस पुरुषको महान् हानि होवै है इति।अन्य श्रुति-यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः'अथएतदक्षरं गार्गि विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः' अर्थ–हे गार्गी! जो पुरुष इस अक्षर परमात्माकूं न जानिकै इस लोकतैं लोकांतरविषे गमन करे है सो अज्ञानी पुरुष होपण जानणा। तात्पर्य यह-जैसे लोकविषे प्राप्त हुए धनके उपकृगतैं रहित पुरुषकूं कृपण कहे हैं तैसे नित्य प्राप्त आत्मरूप धनके साक्षात्काररूप उपभोगतैं रहित अज्ञानी पुरुष भी कृपण भी है और हे गार्गी! जो पुरुष इस अक्षर परमात्माकूं साक्षात्कार करिकै इस शरीरतैं मरणकूं प्राप्त होवै है सो तत्त्ववेत्ता पुरुष ब्राह्मण जानणा इति। अन्य श्रुति 'यो ह वा अस्माल्लोकात्स्वं लोकमदृष्ट्वा प्रैति स एतमविदितो न भुनक्ति 'अर्थ–जो पुरुष इस आत्मरूप लोककूं'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकार न जानिकै इस स्थूलशरीररूप लोकतैं मरणकूं प्राप्त होवैं है तिस अज्ञानी पुरुपकूं सो आत्मरूप लोक अज्ञात हुआ शोकमोहादिक दोषोंकी निवृत्ति करिकै पालन

करता नहीं इति । तहां स्मृति-'अन्यथा संतमात्मानं योऽन्यथा प्रतिपद्यते।किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा' अर्थ—जो पुरुष अकर्ता अभोक्ता आत्माकूं कर्ता भोक्ता जाने है तिस आत्मापहारी चौर पुरुषनेकौन पापकर्म नहीं कऱ्या। किंतु सर्व पापकर्म कऱ्ये इति। इत्यादिक अनेक श्रुतिस्मृतियोंने आत्मज्ञानतैं रहित पुरुषोंकी निंदा करी है यातैं तिन गृहस्थादिकोंने भी श्रवणादिकों करिकै ता आत्मज्ञानकूं अवश्य संपादन करणा इति।इहां कैएक आचार्य तौ ऐसे कहे हैं,विवेकादिक साधन चतुष्टय संपन्न संन्यासियोंकूं ही वेदांत शास्त्रके श्रवणादिकोंविषे अधिकार है । गृहस्थादिकोंकूं तिन श्रवणादिकोंविषे अधिकार ही नहीं है और श्रुतियोंविषे याज्ञवल्क्य जनकादिकोंके तत्त्वज्ञानके प्रतिपादक जे उपाख्यान हैं तिन उपाख्यानोंका ब्रह्मात्माके बोधनविषे ही तात्पर्य है आपणे अर्थविषे तात्पर्य नहीं है । इस मतवाले आचार्योंका यह अभिप्राय है। श्रुतियों तथा आचार्योंने संन्यास आश्रमकूं ही ता श्रवणका अंगरूप कह्या है और अंगतैं विना अंगीकी सिद्धि होती नहीं । यातैं साधन संपन्न संन्यासियोंकूं ही श्रवणविषे अधिकार है गृहस्थादिकोंकूं नहीं । तहां 'ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति' अर्थ—लौकिक वैदिक सर्व व्यापारोंतैं रहित होइकै केवल ब्रह्मके चिंतनपरायण जो पुरुष हैं ताका नाम ब्रह्मसंस्थ है । ऐसा ब्रह्मसंस्थ संन्यासी ही मोक्षकूं प्राप्त होवै है इति। इस श्रुतिके व्याख्यानविषे श्रीभाष्यकारोंने संन्यासियोंकूं ही ब्रह्मनिष्ठाविषे अधिकार सिद्ध कऱ्या है । और 'त्यक्ताशेषक्रियस्यैव संसारं प्रजिहासतः।जिज्ञासोरेव चैकात्म्यं त्रय्यंतेष्वधिकारिता'अर्थ—त्याग करी है लौकिक वैदिक सर्व क्रिया जिसने तथा सर्व संसारकूं दुःखरूप जानिकै ताके परित्यागकी है इच्छा जिसकूं ऐसा जो जिज्ञासु है तिस जिज्ञासुकूं ही वेदांतशास्त्रके श्रवणविषे अधिकारीपणा है तथा तिन श्रवणादिकों करिकै आत्मज्ञानकी प्राप्ति

होवै है इति। इस वचन करिकै श्रीवार्तिककार सुरेश्वराचार्यनैं भी तिन संन्यासियोंकूं ही श्रवणविषे अधिकार सिद्ध कर्‍या है। और 'अंतः संन्यस्य कर्माणि सर्वाण्यात्मावबोधतः। हित्वाऽविद्यां धियेयेत् यात्तद्विष्णोः परमं पदम्। वेदानिमं लोकममुं च परित्यज्यात्मानमन्विच्छम्' अर्थ-सर्व कर्मोंका संन्यास करिकै आत्मज्ञानतैं अविद्याका परित्याग करिकै यह अधिकारी पुरुष ता आत्मज्ञान करिकै ही मोक्षरूप विष्णुके परमपदकूं प्राप्त होवै है और वेदप्रतिपादित अग्निहोत्रादिक कर्मोंकूं तथा इस लोककूं तथा परलोककूं परित्याग करिकै तू आत्माके प्राप्तिकी इच्छा कर अर्थात् आत्मज्ञानवास्तै श्रवणादिकोंकूं कर इति। इत्यादिक श्रुतियोंतैं भी तिन संन्यासियोंकूं ही श्रवणादिकोंविषे अधिकार सिद्ध होवै है। यातैं संन्यासियोंके प्रति तौ सो श्रवण नित्यकर्मरूप है और गृहस्थादिकोंके प्रति सो श्रवण काम्यकर्मरूप है। यह पूर्व उक्त व्यवस्था संभवती नहीं किंतु जैसे गृहस्थके प्रति अग्निहोत्रादिक नित्य कर्मरूप तथा काम्य कर्मरूप होवै हैं तैसे संन्यासियोंके प्रति ही ते श्रवणादिक नित्य कर्मरूप तथा काम्य कर्मरूप होवो। ऐसे मानणेविषे पूर्व उक्त आचार्योंके वचनोंका तथा श्रुति वचनोंका विरोध होता नहीं इति। तहां पूर्व अपर पर इस भेद करिकै दो प्रकारका वैराग्य कह्या था तहां ता वैराग्यकी तारतम्यताकरिकै संन्यासके भेद निरूपण प्रसंगतैं श्रवणादिक विधिका विस्तारतैं निरूपण कर्‍या। अब ता क्रम प्राप्त पर वैराग्यका निरूपण करे हैं। 'गुणेषु वैतृष्ण्यं परवैराग्यम्' अर्थ-सत्त्व रज तम इन तीनों गुणोंके परिणामरूप जे इस लोकके तथा पर लोकके विषय हैं तिन सर्व विषयोंकी तृष्णातैं रहितपणेका नाम पर वैराग्य है। यह परवैराग्यका स्वरूप पतंजलि भगवान्‌ने भी योगशास्त्रविषे कह्या है। तहां सूत्र 'ततः परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्'-अर्थ-प्रत्यक् आत्माके

ज्ञानतैं इस पुरुषकूं जो गुणोंके परिणामरूप सर्व विषयोंविषे तृष्णातैं रहितपणा होवै है सो पर वैराग्य कह्या जावै है इति।सो यह पर वैराग्य निर्विकल्प नामा असंप्रज्ञात समाधिका अंतरंग साधन होवै है। यह वार्त्ता भी ता पतंजलि भगवान्‌नें कही है।तहां सूत्र-'तीव्रसंवेगानामासन्नः समाधिलाभः' अर्थ-ता परवैराग्यवाले पुरुषोंकूं शीघ्रही ता असंप्रज्ञात समाधिकी प्राप्ति होवै है इति। तहां पूर्व तात्पर्यके निरूपण प्रसंगतैं श्रवणादिकोंका निरूपण कऱ्या, अब तिसी प्रकृत अर्थकूं निरूपण करे हैं। जैसे पूर्व उक्त उपक्रम उपसंहारादिक षट्‌लिंगों करिकै वेदांतवाक्योंके तात्पर्यका निर्णय होवै है तैसे कर्मकांडके वाक्योंका भी तिन षट्‌लिंगों करिकै ही तात्पर्यका निणय होवै है। इस प्रकारके उक्त तात्पर्यकी जो अनुपपत्ति है सोई ही पूर्व उक्त लक्षणका बीज होवै है।सा तात्पर्यकी अनुपपत्ति तिस तिस लक्षणाके निरूपणविषे पूर्व कथन करि आये हैं। शंका-एक पदार्थका दूसरे पदार्थविषे जो संबंधरूप अन्वय है ता अन्वयकी अनुपपत्ति ही ता लक्षणका बीज है।जैसे'गंगायां घोषः'इस उक्त उदाहरणविषे गंगापदके शक्य अर्थरूप जलप्रवाहविषे घोषका आधारता संबंधरूप अन्वय बनता नहीं। यातैं ता अन्वयकी अनुपपत्तितैं ही ता गंगापदकी तीरविषे लक्षणा करी जावै है, तैसे सर्वत्र ता अन्वयानुपपत्तितैं ही लक्षणा संभवै है, यातैं अन्वयानुपपत्ति ही ता लक्षणाका बीज है। समाधान-जो कदाचित् सर्वत्रसा अन्वयानुपपत्ति ही लक्षणाका बीज मानिये तौ यष्टिधर पुरुषोंके भोजन करावणेवासतैं किसी आप्तवक्ता पुरुषने उच्चारण कऱ्या जो 'यष्टीः प्रवेशय' यह वचन है तिस वचनकूं श्रवण करिकै श्रोता पुरुष ता यष्टिपदकी यष्टिधर पुरुषोंविषे लक्षणा करे है सा लक्षणा नहीं होणी चाहिये। काहेतें जैसे पुरुषोंका ता प्रवेशरूप क्रियाविषे संबंधरूप अन्वय संभवै है तैसे तिन काष्ठविशेषरूप यष्टियोंका भी ता प्रवेशक्रियाविषे सो अन्वय संभवै है।

यातैं सो अन्वयानुपपत्तिरूप लक्षणाका बीज तहां संभवता नहीं, किंतु तात्पर्यकी अनुपपत्तिरूप ही लक्षणाका बीज तहां संभवै है। और 'गंगायां घोषः' इत्यादिक जितने लक्षणाके उदाहरण पूर्व कथन करे हैं तहां सर्वत्र सो तात्पर्यकी अनुपपत्तिरूप बीज विद्यमान है। यातैं सर्वत्र अनुमत होणेतैं सो तात्पर्यकी अनुपपत्ति ही लक्षणाका बीज है। व्यभिचारी होणेतैं सा अन्वयानुपपत्ति लक्षणाका बीज नहीं है इति। तहां नैयायिक शक्तिवृत्तिकी न्याईं लक्षणावृत्ति भी केवल पदविषे ही माने हैं। वाक्यविषे लक्षणावृत्ति मानते नहीं। तिनोंके मतके खंडन करणेवासतैं वाक्यविषे भी लक्षणा सिद्ध करे हैं। तहां सा उक्त लक्षणा केवल पदविषे ही नहीं होवै है, किंतु वाक्यविषे भी सा लक्षणा होवै है। जैसे 'गंभीरायां नद्यां घोषः' इस पदसमूहरूप वाक्यकी तीरविषे लक्षणा अंगीकार करी है। या कारणतैं ही वेदविषे अर्थवाद वाक्योंकी स्तुतिविषे लक्षणा अगीकार करी है। तहां विधिवाक्य करिकै प्राप्त अर्थकी स्तुतिका बोधक जो वाक्य है ताका नाम अर्थवाद है और गुणीविषे जो गुणका कथन है ताका नाम स्तुति है। जो कदाचित् वाक्यविषे लक्षणा नहीं अंगीकार करिये किंतु पदमात्रविषे ही लक्षणा अंगीकार करिये तो ता अर्थवाद वाक्यविषे स्थित एक पदकी लक्षणा करिकै ही ता स्तुतिरूप अर्थका बोध होइ सकै है दूसरे पद व्यर्थ होवैंगे। यातैं ता पदसमूहरूप वाक्यकी ही ता स्तुतिविषे लक्षणा मानी चाहिये। या कारणतैं ही शास्त्रकारोंने तिन अर्थवादवाक्योंकी विधिवाक्यके साथ पदैकवाक्यता अंगीकार करी है। तहां आकांक्षाके वशतैं पदका जो विधिवाक्यके साथ अन्वय है ताका नाम पदैकवाक्यता है। यद्यपि ते अर्थवाद वचन पदरूप नहीं हैं किंतु पदोंका समूहरूप होणेतैं वाक्यरूप ही हैं, तथापि ते अर्थवाद वाक्य लक्षणावृत्ति करिकै एक स्तुतिरूप पदार्थके बोधक होणेतैं पदस्थानीय कह्या जावै हैं।

ऐसे पदरूप अर्थवादवाक्योंको जा विधिवाक्यके साथ एकवाक्यता है सा पदैकवाक्यता कही जावै है। जैसे 'वायव्यं श्वेतं पशुमालभेत' अर्थ—वायु है देवता जिसका ऐसे श्वेत पशुकूं यह पुरुष हनन करे । इस विधिवाक्यने वायुदेवता संबंधी यागका विधान कर्‍या है और तिसी प्रकरणविषे 'वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता' अर्थ-यह सो वायु देवता शीघ्रगतिवाला है इस अर्थवाद वाक्यने ता वायु देवताकी स्तुति करी है यातैं शीघ्रफलकी प्राप्ति करणेहारे वायु-देवतासंबन्धी यागकूं यह पुरुष करे, इस प्रकारतैं ता पदरूप अर्थवादवाक्यकी ता विधिवाक्यके साथ जो एकवाक्यता है ताका नाम पदैकवाक्यता है इति । और आपणे आपणे अर्थविषे तात्पर्यवाले जे वाक्य हैं तिन वाक्योंकी परस्पर अंग अंगीभाव आकांक्षाके वशतैं जो एकवाक्यता होवै है ताका नाम वाक्यैकवाक्यता है। जैसे 'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत' अर्थ—स्वर्गकी कामनावाला पुरुष दर्शपूर्णमासनामा यागकूं करै। इस विधिवाक्यनैं दर्शपूर्णमासनामा अगी यागका विधान कर्‍या है और तिसी प्रकरणविषे 'समिधो यजति' इस वचननैं समिधनामा अंगयोगका विधान कर्‍या है और अंगीयागकूं अंगरूप यागकी अपेक्षा अवश्य होवै है। यातैं स्वर्गकाम पुरुष समिधादिक अंगयागविशिष्ट दर्शपूर्णमासरूप अंगीयागकूं करै या प्रकारतैं ता अंगबोधक वाक्यकी जो अंगीबोधक वाक्यके साथ एकवाक्यता होवै है ताका नाम वाक्यैकवाक्यता है इति। किंवा जैसे पूर्व उक्त तात्पर्यज्ञान वाक्यार्थज्ञानविषे कारण होवै है तैसे अवांतर वाक्योंके अर्थका ज्ञान भी महावाक्यके अर्थज्ञानविषे कारण होवै है। ता अवांतर वाक्यार्थज्ञानतैं विना सो महावाक्यार्थ ज्ञान होता नहीं तहां महावाक्यके अंतर प्रविष्ट जो वाक्य हैं तिनोंका नाम अवांतर वाक्य है यातैं यह सिद्ध भया शक्तिलक्षणारूपवृत्तिका ज्ञान तथा आकांक्षाका ज्ञान तथा योग्यता-

का ज्ञान तथा आसक्तितथा तात्पर्यका ज्ञान तथा अवांतर वाक्यार्थका ज्ञान यह पूर्व उक्त सर्व ता वाक्यके सहकारी होवै हैं। तिन सर्व सहकारियोंकरिकै संपन्न हुआ सो वाक्य परोक्षप्रमाका तथा अपरोक्षप्रमाका जनक होवै है। तहां जो वाक्य परोक्ष अर्थका प्रतिपादक होवै है सो वाक्य तौ परोक्ष प्रमाका जनक होवै है। 'स्वर्गकामो यजेत, सदेव सौम्येदमग्रआसीत्, दशमोऽस्ति' इत्यादिक वैदिक लौकिक वाक्य परोक्ष स्वर्गादिकोंके प्रतिपादक होणेतैं परोक्ष प्रमाके जनक होवै हैं। शंका—परोक्ष अर्थका प्रतिपादक वाक्य परोक्ष प्रमाका जनक होवै है यह पूर्व आपने कह्या। तहां ता अर्थविषे परोक्षपणा क्या है? ऐसी जिज्ञासाके हुए अब ता अर्थनिष्ठ परोक्षताका लक्षण कहे हैं। 'योग्यविषयस्यानावृतसंवित्तादात्म्याभावः परोक्षत्वम्' अर्थ—अज्ञानकृत आवरणतैं रहित जो साक्षी चैतन्य है ताका नाम अनावृत संवित् है। ऐसे अनावृत संवित्के साथ प्रत्यक्ष योग्यविषयके तादात्म्यका जो अभाव है यह ही ता विषयविषे परोक्षपणा है। जैसे स्वर्गादिक योग्यविषयोंका अनावृतसाक्षी चैतन्यके साथ तादात्म्य है नहीं यातैं ते स्वर्गादिक परोक्ष कहे जावै हैं और जिस कालविषे घटपटादि विषयाकार अंतःकरणकी वृत्ति नहीं उत्पन्न भई तिस कालविषे तिन घटपटादिक योग्य विषयोंका ता अनावृत साक्षी चैतन्यके साथ तादात्म्य है नहीं। यातैं तिस कालविषे ते घटपटादिक भी परोक्ष कहे जावै हैं तहां इस लक्षणविषे विषयका योग्य यह विशेषण जो नहीं कहते तौ धर्म अधर्मविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होती। जिस कारणतैं ता धर्म अधर्म ता अनावृत साक्षी चैतन्यके साथ तादात्म्य ही है परन्तु सो धर्माधर्म प्रत्यक्षके योग्य नहीं है किंतु अयोग्य है। यातैं योग्यपदके कहणेतैं ता धर्माधर्मविषे भी सो परोक्षपणा संभवै है इति। ऐसे परोक्ष अर्थकूं विषय करणेहारा जो प्रमा ज्ञान है सो ज्ञान भी परोक्ष कह्या जावै है अर्थात्

ऐसे परोक्ष अर्थका विषय करणा ही ता प्रमाज्ञानविषे परोक्षपणा है। जैसे 'स्वर्गोऽस्ति अयं धर्माधर्मवान् दशमोऽस्ति' इत्यादिक वाक्यजन्य प्रमाविषे जो स्वर्ग धर्माधर्म दशम इत्यादिक परोक्ष अर्थका विषयकपणा है यह ही परोक्षपणा है। अथवा प्रमाण चैतन्यविषे जो विषय चैतन्यतैं भिन्नपणा है यह ही ता प्रमाज्ञानविषे परोक्षपणा है जैसे 'स्वर्गोऽस्ति' इत्यादि वाक्यजन्य वृत्त्यवच्छिन्न प्रमाणचैतन्यविषे स्वर्गादिविषयावच्छिन्न चैतन्यतैं जो भिन्नपणा है यह ही ता स्वर्गादिक विषयक ज्ञानविषे परोक्षपणा है। इस प्रकार अनुमितिआदिक ज्ञानोंविषे भी सो परोक्षपणा जानि लेणा। तहां परोक्षस्थलविषे अंतःकरणकी वृत्तिविषय देशविषे जाती नहीं किंतु शरीरके भीतर ही सा वृत्ति उत्पन्न होवै है। यातैं ता विषयवृत्तिरूप उपाधियोंकी भिन्नभिन्न देशविषे स्थिति होणेतैं ता वृत्ति अवच्छिन्न चैतन्यके साथ ता विषयावच्छिन्न चैतन्यकी एकता होती नहीं। यह वार्त्ता पूर्व प्रत्यक्षनिरूपणविषे कहि आये हैं यातैं ता वृत्ति अवच्छिन्नप्रमाण चैतन्यविषे विषयावच्छिन्न चैतन्यतैं भिन्नतारूप ज्ञाननिष्ठ परोक्षपणा संभवै है इति। और जो वाक्य अपरोक्ष अर्थका प्रतिपादक होवै है सो वाक्य अपरोक्ष प्रमाका जनक होवै है। जैसे 'तत्त्वमसि' यह वैदिक वाक्य ब्रह्मात्मरूप अपरोक्ष अर्थका प्रतिपादक होणेतैं 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारकी अपरोक्ष प्रमाका जनक होवै है और 'दशमस्त्वमसि' यह लौकिक वाक्य दशम पुरुषरूप अपरोक्ष अर्थका प्रतिपादक होणेतैं 'अहं दशमः' या प्रकारकी अपरोक्ष प्रमाका जनक होवै है। शंका-जिस अपरोक्ष अर्थका प्रतिपादक हुआ वाक्य अपरोक्षप्रमाका जनक होवै है तिस अर्थविषे सो अपरोक्षपणा क्या है ? समाधान—ऐसी जिज्ञासाके हुए अब ता अर्थनिष्ठ अपरोक्षताका लक्षण कहे हैं। 'योग्यविषयस्यानावृतसंवित्तादात्म्यमपरोक्षत्वम्' अर्थ-योग्य विषयका जो अनावृत साक्षी चैतन्यके साथ तादात्म्य है यह ही ता विष-

यविषे अपरोक्षपणा है जैसे घटपटादि आकार वृत्तिकालविषे तिन घट पटादिकोंका अनावृत साक्षि चैतन्यके साथ तादात्म्य होवै है यह ही तिन घट पटादिकोंविषे अपरोक्षपणा है और धर्माधर्मका यद्यपि ता अनावृत साक्षि चैतन्यके साथ तादात्म्य है तथापि सो धर्माधर्म प्रत्यक्षके योग्य नहीं है। यातैं इस लक्षणविषे विषयका योग्य इस विशेषणके कहणेतैं ता धर्माधर्मविषे ता अपरोक्षपणाके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। यद्यपि सिद्धांतविषे नित्य अपरोक्षरूप एक ही चतन्य है ता एक चैतन्यविषे साक्षी चैतन्य तौ अनावृत है और विषय चैतन्य आवृत है या प्रकारका भद कहणा संभवता नहीं। तथापि विषय अंतःकरणादिक उपाधियोंके भेदतैं ता चैतन्यका भेद पूर्व कथन करि आये हैं और घटादिक पदार्थोंविषे लोकोंकासंशय अनवभास विपर्यय देखणेविषे आवै है और अंतःकरण उपहित साक्षी चैतन्यविषे किसीकूं भी ते संशयादिक होते नहीं।यातैं ता कार्य केबलतैं सो घटादि अवच्छिन्न चैतन्य तौआवृत कह्या जावै है और सो साक्षी चैतन्य अनावृत कह्या जावै है जो कदाचित् ता साक्षी चैतन्यकूं भी अनावृत मानिये तौ प्रकाशकके अभावतैं जगत्‌विषे अंधता प्राप्त होवैगी। अर्थात् कोई वस्तुका भान नहीं होवैगा। यातैं ता साक्षीकूं सर्वदा अनावृत ही मान्या चाहिये और घटादि विषयावच्छिन्न चैतन्यतौ घटादि आकार वृत्तिकी उत्पत्तितैं पूर्व आवृत होवै है और ता वृत्तिकालविषे आवरणतैं रहित हुआ ता साक्षी चैतन्यसे अभिन्न होवै है। तिस कालविषे तिन घटादिक विषयोंका जो ता अनावृत साक्षी चैतन्यके साथ तादात्म्य है यह ही तिन घटादिक विषयोंविषे अपरोक्षपणा है इति। शंका—पूर्व विषय प्रत्यक्षके लक्षणविषे घटादिक विषयोंका साक्षी चैतन्यके साथ तादात्म्य कह्या था सो तादात्म्य क्या है अर्थात् एकताका नाम तादात्म्य है अथवा भेद सहित अभेदका नाम तादात्म्य है। तहां प्रथम

पक्ष तौ संभवता नहीं। जिस कारणतैं तम प्रकाशकी न्याईं जड चैतन्यका विरोध होणेतैं एकता संभवती नहीं। तैसे द्वितीय पक्ष भी संभवता नहीं । जिस कारणतैं समान सत्तावाले भेद अभेदका परस्पर विरोध होणेत एक अधिकरणविषे स्थिति ही संभवती नहीं। ऐसी शंकाके प्राप्त हुए अब तिस तादात्म्य लक्षण कहे हैं ।'तद्भिन्नत्वे सति तदभिन्नसत्ताकत्वं तादात्म्यम्' अर्थ— जिस पदार्थतैं जो वस्तु भिन्न प्रतीत होवै है और जिस पदार्थकी सत्तातैं जिस वस्तुकी सत्ता भिन्न होती नहीं तिस पदार्थविषे जो तिस वस्तुका संबंध है ताका नाम तादात्म्य है । जैसे घट पटादिक कार्योंका मृत्तिका तंतु आदिक उपादानकारणविषे तादात्म्य है। तहां 'अयं घटः अयं पटः' या प्रकारकी प्रतीतितैं ते घट पटादिक आपणे मृत्तिका ततु आदिक उपादानकारणतैं भिन्न हुए भासैं हैं और ता उपादान कारणकी सत्तातैं तिन घट पटादिक कार्योंकी भिन्न सत्ता है नहीं । यातैं तिन घट पटादिक कार्योंका आपणे मृत्तिका तंतु आदिक उपादानकारणविषे तादात्म्य संभवै है। इस प्रकार कल्पित रजत सर्पादिकोंका भी आपणे अधिष्ठानविषे तादात्म्य ही होवै है। तसे जिस कालविषे अतःकरणकी वृत्ति चक्षु आदिक इंद्रिय द्वारा बाहर निकसिके घटादि आकार नहीं भई थी तिस कालविषे ते घटादिक विषय स्वावच्छिन्न चैतन्यविषे अध्यस्त थे और जभी सो वृत्ति बाह्य निकसिकै घटादि आकार होवै है तभी ता वृत्ति विषयरूप उपाधियोंकी एकदेशविषे स्थिति करिकै तत् उपहित चैतन्योंकी भी एकता ही होवै है अर्थात् घटादि अवच्छिन्न चैतन्य तथा वृत्ति अवच्छिन्न चैतन्य तथा अंतःकरण विशिष्ट प्रमाता चैतन्य तथा अंतःकरण उपहित साक्षी चैतन्य इन सर्वोंकी ता कालविषे एकता

होवै है। तिस कालविषे ते घटकादिक साक्षी चैतन्यविषे अध्यस्त होवै हैं और अध्यस्त वस्तुकी अधिष्ठानतैं भिन्न सत्ता होती नहीं। जैसे कल्पित रजत सर्पादिकोंकी शुक्ति रज्जु आदिक अधिष्ठानतैं भिन्न सत्ता नहीं है इस प्रकार तिन घटादिकोंविषे जो साक्षी चैतन्यकी सत्तातैं भिन्न सत्तातैं रहितपणा है यह ही तिन घटादिकोंका ता साक्षी चैतन्यके साथ तादात्म्य है और यह साक्षी-के साथ तादात्म्य ही तिन घटादिकोंविषे अपरोक्षपणा है इति। ऐसे अपरोक्ष अर्थका प्रतिपादक वाक्य अपरोक्ष प्रमाका ही जनक होवैं है। जैसे 'दशमस्त्वमसि' इस वाक्यविषे दशम पुरुष त्वं-पदार्थतैं अभिन्न होणेतैं अपरोक्ष ही है। यातैं ता अपरोक्ष अर्थकी प्रतिपादकता करिकै ता वाक्यतैं श्रोता पुरुषकूं 'अहं दशमः' या प्रकारकी अपरोक्ष प्रमा ही उत्पन्न होवै है। ता वाक्यतैं अपरोक्ष प्रमा उत्पन्न होवै नहीं। शंका–'गामानय' स्वर्गोऽस्ति' इत्यादिक सर्व वाक्योंका परोक्षप्रमाके उत्पन्न करणेका ही स्वभाव होवै है और वस्तुके स्वभावका अन्यथापणा होता नहीं। यातैं 'दशमस्त्वमसि' इस वाक्यतैं भी ता दशम पुरुषकूं प्रथम आपणा परोक्षज्ञान ही उत्पन्न होवै है। तिसतैं अनंतर मनरूप इंद्रिय करिकै आपणे दशम-पणका साक्षात्कार होवै है। काहेतैं जो जो प्रत्यक्ष ज्ञान होवै है सो सो इंद्रिय करिकै ही जन्य होवै है यातैं आत्माके प्रत्यक्षविषे ता आत्मवृत्ति सुख दुःखादिकोंके प्रत्यक्षविषे भी सो इंद्रियरूप करण करिकै जन्यत्व अवश्य मानणा होवैगा। तहां बाह्य चक्षु आदिक इंद्रियोंकूं तौ ता अंतर प्रत्यक्षके उत्पन्न करणेका सामर्थ्य है नहीं। परिशेषतैं ता मनकूं ही अन्वय व्यतिरेक करिकै ता प्रत्यक्ष ज्ञानकी करणता मानणी होवैगी। जो कदाचित् ता प्रत्यक्षविषे मनकूं करण नहीं मानोगे तौ 'अहं सुखी अहं दुःखी' इस प्रकारके सुख दुःखादिकोंके प्रत्यक्ष ज्ञानविषे अप्रमापणा ही प्राप्त होवैगा। यातैं

ता दशम पुरुषकूं मन करिकै ही आपणे दशमपणेका साक्षात्कार होवै है। ता वाक्य करिकै होता नहीं। समाधान—सुख दुःखादिकोंके साक्षात्कारका करणरूप करिकै जो मनविषे इंद्रियपणा सिद्ध होवै तौ ता दशम पुरुषके साक्षात्कारविषे ता मनकू करणता संभवै, परंतु ता मनविषे सो इंद्रियपणा ही संभवता नहीं। यह वार्त्ता पूर्व प्रत्यक्ष प्रमाके निरूपणविषे कथन करि आये हैं और सुख दुःखादिकोंका ज्ञान तौ नित्य साक्षीरूप होणेतैं किसी भी करण करिकै जन्य नहीं है। यातैं ता सुखादिज्ञानका करणरूपकरिकै ता मनकूं इंद्रियरूपता संभवती नहीं। शंका-सुख दुःखादिकोंके ज्ञानकूं जो नित्य साक्षीरूप मानोगे तौ ता नित्यसाक्षीरूप ज्ञानका उत्पत्ति तथा विनाश संभवता नहीं। यातैं मेरेकूं अभी सुखका ज्ञान उत्पन्न भया है और दुःखका ज्ञान नष्ट भया है इस लोकोंके अनुभवका विरोध होवैगा, तथा इस पुरुषकूं कालांतरविषे तिन सुख दुःखादिकोंकी स्मृति भी नहीं होवैगी। जिस कारणतैं अनुभवके ध्वंसजन्य संस्कारोंतैं ही सो स्मृति होवै है। समाधान--ता साक्षीचैतन्यके उत्पत्ति विनाशके अभाव हुए भी ता साक्षीचैतन्यके विषय जे सुख दुःखादिक हैं तिनोंका उत्पत्ति विनाश होवै है। ता करिकै ता साक्षीरूप अनुभवविषे भी सो उत्पत्ति विनाश व्यवहार संभवै है। तथा संस्कारोंकी उत्पत्तिकरिकै कालांतरविषे तिन सुख दुःखादिकोंकी स्मृति भी संभवै है। यातैं सुख दुःखादिकोंके ज्ञानविषे ता मनकूं करणरूपता संभवती नहीं। इस प्रकार आत्माके साक्षात्कारविषे भी ता मनकूं करणता संभवती नहीं। काहेतैं श्रुतिनैं शुद्ध आत्माकू तौ मनवाणीका अविषय कह्या है। यातैं ता शुद्ध आत्माके साक्षात्कारविषे तौ ता मनकूं करणता संभवती नहीं। तैसे सोपाधिक आत्माके

साक्षात्कारविषे भी ता मनकूं करणता संभवती नहीं जिस कारणतें 'कामः संकल्पो विचिकित्सा' इत्यादिक श्रुतिनें ता मनकूं वृत्तिज्ञानका उपादानकारण कह्या है और उपादानकारणकूं तिस कार्यके प्रति करणरूपता होती नहीं किंतु निमित्तकारणकूं ही करणरूपता होवै है। जैसे घटके प्रति उपादानकारणरूप मृत्तिकाकूं करणरूपता नहीं है किंतु निमित्तकारणरूप दंडादिकोंकूं ही करणरूपता है। तैसे वृत्तिज्ञानके प्रति उपादानकारणरूप मनकूं ता वृत्तिज्ञानके प्रति करणरूपता संभवती नहीं किंवा जैसे चाक्षुषज्ञानकी उत्पत्तिविषे सूर्यादिकोंका आलोक चक्षु इंद्रियका सहकारी होवै है तैसे सो मन भी शब्दादिक प्रमाणोंका सहकारी होवै है। यातें जैसे ता आलोककूं पृथक् प्रमाणता नहीं है तैसे ता मनकूं भी पृथक् प्रमाणता संभवती नहीं किंवा जैसे चक्षु आदिक इंद्रियोंके रूपादिक असाधारणविषय होवै हैं तैसे ता मनका कोई असाधारणविषय है नहीं और अंतःकरण तथा ताके सुख दुःखादिक धर्म तौ पूर्व उक्तरीतिसे केवल साक्षी भास्य ही हैं यातें असाधारणविषयके अभावतें भी ता मनविषे साक्षात्कारकी करणता संभवती नहीं। यह वार्त्ता आचार्योंने भी कही है। तहां श्लोक–प्रमाणसहकारित्वाद्विषयस्याप्यभावतः।न प्रमाण मनोऽस्माकं प्रमादेरासयत्वतः' अर्थ–प्रमाणका सहकारी होणेतें तथा असाधारणविषयके अभावतें तथा प्रमाज्ञानादिकोंका आश्रय होणेतें ता मनकूं प्रमाणरूपता सिद्धांतविषे अंगीकार नहीं है इति। और प्रमाणजन्य अपरोक्षज्ञानकूं ही अपरोक्ष भ्रमका निवर्त्तकपणा होवै है। यातें 'अहं दशमः' इस साक्षात्कारविषे ता मनकूं करणरूपता संभवती नहीं। किंतु 'दशमस्त्वमसि' इस वाक्यकूं ही करणरूपता संभवै है यह सिद्ध भया। इस प्रकार तत्त्वमसि इस वाक्यविषे भी तत् पदका लक्ष्य अर्थ जो ब्रह्म है ता ब्रह्मका त्वं पदके लक्ष्य अर्थ साक्षीके साथ सर्वदा अभेद है

यातैं ता अनावृतसाक्षीके साथ तादात्म्यवाला होणेतैं सो ब्रह्म नित्य अपरोक्ष है। तहां श्रुति--'यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म' अर्थ--जो ब्रह्म सर्वका आत्मारूप होणेतैं साक्षात् अपरोक्षरूप है ऐसे अपरोक्ष ब्रह्मके प्रतिपादक जे 'तत्त्वमसि' इत्यादिक महावाक्य हैं तिन वाक्योंतैं इस पुरुषकूं 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारकी अपरोक्षप्रमा ही उत्पन्न होवै है। इहां अपरोक्ष प्रत्यक्ष साक्षात्कार यह तीनों शब्द एक ही अर्थके वाचक होवै हैं। शंका--तत्त्वमसि इस वाक्यतैं जो 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारकी अपरोक्षप्रमा उत्पन्न होती होवै तौ सर्व लोकोंकूं ता वाक्यके श्रवणतैं सो अपरोक्षप्रमा उत्पन्न होणी चाहिये। समाधान--जो पुरुष विवेकादिक चतुष्टय साधनोंकरिकै संपन्न है तथा शोधन कऱ्या है तत्त्वं पदार्थ जिसनैं तथा श्रवण मनन निदिध्यासनकरिकै निवृत्त हो गई है असंभावना विपरीतभावना जिसकी ऐसे साधन संपन्न अधिकारी पुरुषकूं ही तत्त्वमसि वाक्यतैं अहं ब्रह्मास्मि या प्रकारकी अपरोक्ष प्रमा उत्पन्न होवै है, साधनरहित पुरुषकूं उत्पन्न होवै नहीं। ऐसी अपरोक्ष-प्रमाकी उत्पत्तिविषे सो तत्त्वमसि वाक्य ही करण है मन करण नहीं है,किंतु श्रवणादिक संस्कृत शुद्ध मन सहकारी कारण है किंवा ब्रह्मात्म साक्षात्कारविषे ता वेदवाक्यकूं ही करणता है। यह अर्थ केवल पूर्व उक्त युक्तियोंकरिकै ही सिद्ध नहीं है किंतु श्रुतिप्रमाणकरिकै भी सिद्ध है।तहां श्रुति।'सर्वे वेदा यत्पदमामनंति। तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि।नावेदविन्मनुते तं बृहंतम्' अर्थ--सर्व वेद जिस परमात्मपदकूं साक्षात् वा परंपरातैं कथन करैं हैं अर्थात् जिसपरमात्मविषयक साक्षात्कारकूं उत्पन्न करैं हैं और केवल उपनिषद्रूप शब्द प्रमाण-करिकै जानणेयोग्य जो परमात्मा पुरुष है तिसका स्वरूप मैं तुम्हारे-सैं पूछता हूं और वेदांतवाक्योंके ज्ञानतैं रहित पुरुष ता ब्रह्मकूं नहीं जानि सकता इति।इत्यादिक श्रुतियां ता ब्रह्मसाक्षात्कारविषे वेदांत-

वाक्यकूं ही प्रमाणरूपता कथन करै हैं। और 'मनसैवानुद्रष्टव्यम्। दृश्यते त्वग्र्या बुद्ध्या' इत्यादिक श्रुतियां तौ ता ब्रह्मसाक्षात्कारविषे ता शुद्धमनकूं सहकारीपणा कथन करैं हैं। यातैं तिन श्रुतियोंका भी विरोध होवै नहीं। जो कदाचित् ता उक्त श्रुतितैं मनकूं आत्मसाक्षात्कारविषे करण ही मानिये तौ आत्मसाक्षात्कारविषे मनकी करणताकूं निषेध करणेहारी जे 'यन्मनसा न मनुते। अप्राप्य मनसा सह' इत्यादिक श्रुतियां हैं तिनोंका विरोध होवैगा। ता विरोधके निवृत्त करणेवास्तैं ता उक्त श्रुतितैं मनकूं सहकारी कारण ही मानणा योग्य है। यद्यपि 'यद्वाचाऽनभ्युदितम्। यतो वाचो निवर्त्तंते' इत्यादिक श्रुतियोंने ता आत्मसाक्षात्कारविषे ता वाक्य प्रमाणका भी निषेध कर्‍या है तथापि तिन श्रुतियोंने ता शब्दका शक्तिवृत्तितैं निषेध कर्‍या है अर्थात् सो शब्द शक्तिवृत्ति करिकै ता ब्रह्मका बोध नहीं करै है और भागत्याग लक्षणाकरिकै तौ ते तत्त्वमसि आदिक वाक्य ता ब्रह्मके बोधक ही होवै हैं। यातैं ता ब्रह्मसाक्षात्कारविषे तत्त्वमसि आदिक महावाक्यकूं ही करणरूपता संभवै है इति। इति शाब्दी प्रमा समाप्ता॥४॥ अब पंचमी अर्थापत्ति प्रमाका निरूपण करै हैं तहां 'अनुपपद्यमानार्थदर्शनात्तदुपपादकभूतार्थांतरकल्पनमर्थापत्तिप्रमा' अर्थ—अनुपपद्यमान अर्थके ज्ञानतैं ता अर्थके उपपादकरूप अर्थांतरकी जो कल्पना है ताका नाम अर्थापत्ति प्रमा है। जैसे दिनविषे नहीं भोजन करणेहारे देवदत्त नामा पुरुषके शरीरकी स्थूलतारूप जो पीनत्व है सो पीनत्व रात्रि भोजनतैं बिना बनता नहीं। यातैं ता पीनत्वके ज्ञानतैं तिस देवदत्त पुरुषके रात्रि भोजनकी कल्पना करी जावै है। ता कल्पनाका नाम अर्थापत्ति प्रमा है। तहां यह दिवा अभोजी पुरुषका पीनत्व रात्रिभोजनतैं बिना बनता नहीं या प्रकारका ज्ञान तौ ता अर्थापत्ति प्रमाका करण होणेतैं अर्थापत्ति प्रमा कह्या जावै है और यह

पुरुष रात्रिविषे भोजन करै है या प्रकारका ज्ञान अर्थापत्तिप्रमा कह्या जावै है इति। इहां नैयायिक तौ अर्थापत्ति प्रमाणकूं अंगीकार करतें नहीं किंतु व्यतिरेकी अनुमानकरिकैही ता रात्रि भोजनका ज्ञान माने हैं। ता अनुमानका यह आकार है।' अयं देवदत्तः रात्रौ भुंक्ते दिवाऽभुंजानत्वे सति पीनत्वात् यन्नवं तन्नवं यथा दिवारात्रावभुंजानः' अर्थ—यह देवदत्त नामा पुरुष रात्रिविषे भोजन नहीं करै है। दिनविषे नहीं भोजन करता हुआ पीन होणेतैं जो पुरुष रात्रिविषे भोजन नहीं करै है सो पुरुष दिनविषे नहीं भोजन करता हुआ पीन भी नहीं होवै है। जैसे दिन रात्रिविषे नहीं भोजन करणेहारा पुरुष पीन नहीं होवै है यातैं सो अर्थापत्ति प्रमाण पृथक् नहीं है इति। सो यह नैयायिकोंका मत असंगत है। काहेतैं पूर्व अनुमति प्रमाके निरूपणविषे ता व्यतिरेकी अनुमानका विस्तारतैं खंडन करि आये हैं यातैं ता व्यतिरेकी अनुमानकरिकै ता रात्रि भोजनका ज्ञान संभवता नहीं किंतु ता उक्त अर्थापत्ति प्रमाणतैं ही सो रात्रि भोजनका ज्ञान संभवै है। यातैं सो अर्थापत्ति प्रमाण पृथक् प्रमाण ही मान्या चाहिये और ते नैयायिक जिस पदार्थका व्यतिरेकी अनुमान करिकै ज्ञान मानैं हैं तिस पदार्थका ता अर्थापत्ति प्रमाणकरिकै ही ज्ञान संभव है। यातैं सो व्यतिरेकी अनुमान मानणा व्यर्थ ही है इति। और सो उक्त अर्थापत्ति प्रमा दृष्टार्थापत्ति १ श्रुतार्थापत्ति २ इन भेदोंकरिकै दो प्रकारकी होवै है तहां देखेहुए अर्थका नाम दृष्ट अर्थ है। ता दृष्ट अर्थकी अनुपत्तितैं ताके उपपादकरूप अर्थांतरकी जो कल्पना है ताका नाम दृष्टार्थापत्ति है और श्रवण करे हुए अर्थका नाम श्रुत अर्थ है, ता श्रुत अर्थकी अनुपपत्तितैं ताके उपपादकरूप अर्थांतरकी जो कल्पना है ताका नाम श्रुताथापत्ति है। तिन दोनों अर्थापत्तियों-

विषे प्रथम दृष्टार्थापत्तिका उदाहरण कहैं हैं। जैसे दोषवान् पुरुषकूं पुरोवर्त्ति शुक्तिविषे रजतकूं विषय करणेहारा 'इदं रजतम्' या प्रकारका भ्रमरूप विशिष्ट अनुभव होवै है ता अनुभवका विषयरूप जो रजत है ता रजतका ता शुक्तिरूप अधिष्ठानके ज्ञानतैं अनंतर 'नेदं रजतम्' या प्रकारका बाध प्रतीत होवै है। यातैं सो रजतका बाध्यत्व दृष्ट अर्थ है। सो बाध्यत्वरूप दृष्ट अर्थ ता रजतके सत्य मानणेविषे संभवना नहीं किंतु ता रजतके मिथ्या मानणेविषे ही संभवै है। यातैं सो रजतका बाध्यत्वरूप दृष्ट अर्थ ता रजतके मिथ्यापणेतैं विना नहीं बनता हुआ ता रजतके मिथ्यापणेकी कल्पना करावै है ता कल्पनाका नाम दृष्टार्थापत्ति प्रमा है इति। अब प्रसंगतैं भ्रमस्थलविषे वेदांत सिद्धांत संमत अनिर्वचनीय ख्यातिकी सिद्धि करणेवासतैं प्रथम अन्य शास्त्र उक्त ख्यातियोंका निरूपण कारिकै खंडन करै है। तहां मीमांसक तौ ता भ्रमस्थलविषे अख्याति मानैं हैं। तिन मीमांसकोंका यह अभिप्राय है। सर्व ज्ञान यथार्थ ही होवै है कोई भी ज्ञान अयथार्थ होता नहीं यातैं भ्रमस्थलविषे 'इदं रजतम्' इस विशिष्ट भ्रमज्ञानविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। शंका-जो कदाचित् 'इदं रजतम्' इस ज्ञानकूं विशिष्टभ्रमज्ञान नहीं मानोंगे तौ तिस ज्ञानतैं अनंतर रजतार्थी पुरुषकी ता पुरोवर्ति शुक्तिविषे प्रवृत्ति नहीं होणी चाहिये और ता रजतार्थी पुरुषकी ता पुरोवर्ति शुक्तिविषे प्रवृत्ति तौ प्रत्यक्ष देखणेविषे आवै है यातैं ता प्रवृत्तिकी अनुपपत्तितैं 'इदं रजतम्' इस ज्ञानकूं जो विशिष्ट भ्रमज्ञानरूपता ही सिद्ध होवै है। समाधान-'इदं रजतम्' इस ज्ञानकूं जो विशिष्टभ्रमरूप नहीं मानिये तौ भी इस रजतार्थी पुरुषकी ता पुरोवर्ति शुक्तिविषे प्रवृत्ति बनि सकै है सो दिखावैं हैं 'इदं रजतम्' यह एक विशिष्ट भ्रमज्ञान नहीं है किंतु दो ज्ञान होवै हैं। तहां

'इदं' यह तौ पुरोवर्तिविषयक प्रत्यक्ष ज्ञान होवै है और 'रजतम्' यह रजत विषयके स्मृतिज्ञान होवै है। ते दोनों ज्ञान यथार्थ ही हैं। तहां तिन दोनों ज्ञानोंका परस्पर भेद है। तथा तिन दोनों ज्ञानोंके विषयभूत पुरोवर्ति रजत इन दोनोंका भी परस्पर भेद है परन्तु दोषके वशतैं इस पुरुषकूं तिन दोनों ज्ञानोंका भेद तथा तिन दोनों विषयोंका भेद ग्रहण होता नहीं। ता भेदाग्रहतैं ही इस रजतार्थी पुरुषकी ता पुरोवर्ति शुक्तिविषे प्रवृत्ति बनि सकै है। यातैं ता प्रवृत्तिवासतैं ता विशिष्ट भ्रमज्ञानकी कल्पना करणी व्यर्थ है किंवा जो कदाचित् किसी भी ज्ञानकूं अयथार्थ मानिये तौ इस पुरुषकूं कोई भी ज्ञानविषे यथार्थपणेका निश्चय नहीं होवैगा किंतु सर्व ज्ञानोंविषे ता यथार्थपणेका संशय ही रहैगा यातैं ता यथार्थ ज्ञान साध्य प्रवृत्ति निवृत्ति आदिक सर्व व्यवहारोंका लोप होवैगा। या कारणतैं ही 'ज्ञानस्य व्यभिचारित्वे विश्वासः किं निबंधनः' यह वचन शास्त्रकारोंने कह्या है। इस प्रकारतैं ता रजतत्वविशिष्ट भ्रमरूप अनुभवका अभाव होणेतैं अनुभूयमान रजतका दृष्टबाध्यत्व ता रजतके मिथ्यापणेकूं कल्पना करावै है यह वेदांतियोंका कहणा असंगत है इति। सो यह अख्यातिवादी मीमांसकका मत भी समीचीन नहीं है। तहां ता अख्यातिवादी विशिष्ट भ्रमज्ञानविषे जो प्रमाणका अभाव कह्या था सो असंगत है। जिस कारणतैं सो विशिष्ट भ्रमज्ञान अनुमान प्रमाण करिकै ही प्रसिद्ध है सो अनुमान यह है।'पुरोवर्तिनि रजतार्थिप्रवृत्तिः विशिष्टज्ञानसाध्य प्रवृत्तित्वात् संवादिप्रवृत्तिवत्' अर्थ–पुरोवर्ति शुक्तिविषे जो रजतार्थी पुरुषकी प्रवृत्ति होवै है सो प्रवृत्ति 'इदं रजतम्' इस विशिष्ट ज्ञानकरिकै साध्य है। प्रवृत्तिरूप होणेतैं लोकविषे जो जो प्रवृत्ति होवै है सो सो विशिष्ट ज्ञानकरिकै ही साध्य

होवै है । जैसे सत्य रजत विषयक प्रवृत्ति 'इदं रजतम्' इस पुरोवर्ति रजतविशेष्यक रजतत्व प्रकारक विशिष्टज्ञान करिकै साध्य होवै है इति । यह अनुमान ही ता विशिष्ट भ्रमज्ञानविषे प्रमाण है । किंवा ता अख्यातिवादीने जो ज्ञानमात्रकूं यथार्थपणा कह्या था सो भी असंगत है। काहेतैं यद्यपि ज्ञानमात्रकूं स्वरूपतैं तौ यथार्थपणा ही है । तथापि विषयके बाधकरिकै तथा अबाधकरिकै ता ज्ञानविषे यथार्थपणा तथा अयथार्थपणा दोनों संभवै हैं अर्थात् जिस ज्ञानका विषय अबाधित होवै है सो ज्ञान तौ यथार्थ कह्या जावै है। जैसे ' अयंघटः अयंपटः ' इत्यादिक ज्ञान है और जिस ज्ञानका विषय बाधित होवै है सो ज्ञान अयथार्थ कह्या जावै है।जैसे शुक्तिविषे 'इदं रजतम्' तथा रज्जुविषे 'अयं सर्पः' इत्यादिक ज्ञान हैं जो कदाचित् 'इदं रजतम्' इस ज्ञानकूं रजतरूप विषयके बाधतैं भ्रमरूप नहीं मानिये तौ 'नेदं रजतम्' इस उत्तर ज्ञानकरिकै पुरोवर्ति शुक्तिविषे जो रजतका बाध प्रतीत होवै है सो नहीं होणा चाहिये । जिस कारणतैं प्राप्त अर्थका ही प्रतिषेध होवै है । अप्राप्त अर्थका प्रतिषेध होता नहीं । शंका–'नेदं रजतम्' इस ज्ञानकरिकै 'इदं रजतम्' इस ज्ञानका वा ता ज्ञानके विषयभूत रजतका बाध होता नहीं किंतु ता रजतविषयक प्रवृत्ति आदिक व्यवहारका ही बाध होवै है । समाधान–'नेदं रजतम्' इस ज्ञानविषे पुरोवर्ति रजतका निषेध ही अनुभव होवै है । ता व्यवहारका निषेध अनुभव होता नहीं । जो कदाचित् ता ज्ञाननैं रजतका व्यवहार निषेध करता होवै तौ 'नेदं रजतम्' या प्रकारका व्यवहार ही ता ज्ञानका आकार होणा चाहिये । सो ऐसा ज्ञानका आकार है नहीं यातैं 'नेदं रजतम्' इस निषेधके बलतैं भी 'इदं रजतम्' यह विशिष्ट भ्रमज्ञान ही सिद्ध होवै है सो विशिष्ट भ्रमज्ञान ही ता पुरोवर्ति

शुक्तिविषे रजतार्थी पुरुषके प्रवृत्तिका कारण है । सो अख्यातिवादी उक्त भेदाग्रह ता प्रवृत्तिका कारण नहीं है । जो कदाचित् ता भेद ज्ञानके अभावरूप भेदाग्रहकूं ही ता प्रवृत्तिका कारण मानिये तौ ता भेदाग्रहकूं सर्वदा विद्यमान होणेतैं इस पुरुषकी सो प्रवृत्ति सर्वदा होणी चाहिये और सो अख्यातिवादी जो ता रजतके स्मृतिज्ञानतैं सो प्रवृत्ति मानैं सो भी संभवता नहीं । काहेतैं सो स्मृतिज्ञानका विषयभूत रजत देशांतरविषे ही विद्यमान है । ता पुरोवर्ति शुक्तिविषे विद्यमान है नहीं यातैं ता स्मृतिज्ञानतैं इस रजतार्थी पुरुषकी ता देशांतरविषे ही प्रवृत्ति होवैगी । ता पुरोवर्ति शुक्तिविषे प्रवृत्ति नहीं होवैगी । यातैं ता अख्यातिवादीने भी ता स्मर्यमाण रजतका पुरोवर्ति शुक्तिविषे आरोपण करिकै ता रजत प्रकारक पुरोवर्ति विशेष्यक 'इदं रजतम्' यह विशिष्टज्ञान ही ता प्रवृत्तिका कारण मान्या चाहिये सो विशिष्ट भ्रमज्ञान निर्विषय होवेगा नहीं । किंतु सविषय ही कहणा होवेगा और 'नेदं रजतम्' इस ज्ञानकरिके ता रजतरूप विषयका ता पुरोवर्ति शुक्तिविषे ही बाध प्रतीत होवै है । यातैं ता रजतके बाध्यत्वकी अनुपपत्तिकरिकै ता रजतविषे सो मिथ्यापणा संभवै है इति । और शून्यवादी माध्यमिक तथा कई एक तांत्रिकता भ्रमस्थलविषे असत् ख्याति मानैं हैं तहां शून्यवादीके मतविषे तौ ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय इत्यादिक सर्व पदार्थ असत् हैं । यातैं असत् शुक्तिविषे असत् रजत ही 'इदं रजतम्' इस ज्ञानका विषय है और तांत्रिकोंके मतविषे तौ शुक्ति आदिक व्यावहारिक पदार्थ असत् नहीं है किंतु ता शुक्तिविषे जो रजत प्रतीत होवै है सो रजत ही असत् है यातैं 'इदं रजतम्' यह ज्ञान असत् रजतकूं ही विषय करै है और शुक्तिके ज्ञानतैं अनन्तर इस पुरुषकूं हमारेकूं इस शुक्तिविषे असत् रजत ही प्रतीत होता भया या प्रकारका अनुभव होवै है

त्ता अनुभवतैं ता रजतका असत्‌पणा ही सिद्ध होवे है। यातैं ता भ्रमज्ञानके विषय रजतादिक असत् ही माने चाहिये इति।सो यह असत् ख्यातिवादीका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ता रजतकूं जो असत् मानिये तौ असत् वस्तुका प्रत्यक्ष ज्ञान होता नहीं । यातैं ता रजतकूं विषय करणेहारे 'इदं रजतम्' इस ज्ञानकूं प्रत्यक्षरूपता नहीं होणी चाहिये, जो कदाचित् असत् वस्तुका भी प्रत्यक्ष ज्ञान होता होवै तौ शशशृंग वंध्यापुत्रादिक असत् पदार्थोंका भी लोकोंकूं प्रत्यक्षज्ञान होणा चाहिये।यातैं ता रजतकूं असत् रूपता संभवती नहीं किंवा असत् कोई वस्तु है अथवा नहीं है । तहां जो कहो असत् कोई वस्तु है तौ ताका असत्‌पणा कहणा संभवता नहीं और जो कहो असत् कोई वस्तु नहीं है तौ ता असत्‌का ज्ञान ही कैसे संभवगा । विषयतैं विना कोई ज्ञान होता नहीं । यातैं भ्रमज्ञानके विषयभूत रजतादिकोंका असत्‌पणा संभवता नहीं इति । और कई एक शास्त्रकार ता भ्रमस्थलविषे सत्‌ख्याति अंगीकार करै हैं।तिनोंका यह अभिप्राय है शुक्तिके आरंभक अवयवोंके साथ रजतके आरंभक अवयव सर्वदा मिले रहैं है और जैसे ते शुक्तिके अवयव सत्य हैं तैसे ते रजतके अवयव भी सत्य ही हैं और जभी दोषसहित चक्षु इंद्रियका तिन अवयवोंके साथ संयोग संबंध होवै है तभी ते अवयव सत्य रजतकी उत्पत्ति करै हैं। या कारणतैं ही ता रजतके सत्यरूपताकूं विषय करणेहारा सत् 'इदं रजतम्' या प्रकारका प्रत्यक्ष लोकोंकूं होवै है और शुक्तिके ज्ञानतैं ता सत्य रजतका आपणे अवयवोंविषे ध्वंस होवे है इति। सो यह सत् ख्यातिवादीका मत भी समीचीन नहीं है । काहेतैं ता शुक्ति-विषे जो कदाचित् सत्य रजत उत्पन्न होता होवै तौ 'नेदं रजतम्' इस अनुभवकरिकै ता शुक्तिविषे रजतका बाध नहीं होणा चाहिये जिस कारणतैं सत्य वस्तुका बाध होता नहीं जो कदाचित् सत्य

वस्तुका भी बाध होता होवै तौ ता सत्य शुक्तिका भी बाध होणा चाहिये। और सो रजतका बाध तौ सर्वकूं प्रत्यक्ष सिद्ध है। यातैं ता रजतविषे सत्यरूपता संभवती नहीं और सत् 'इदं रजतम्' यह उक्त प्रत्यक्ष तौ ता रजतके सत्ताकूं विषय करता नहीं किंतु ता रजतके अधिष्ठानकी सत्ताकू ही विषय करे है यातैं ता प्रत्यक्षके बलतैं भी ता रजतकी सत्यरूपता सिद्ध होवै नहीं। किंवा शुक्तिके अवयवोंके साथ रजतके अवयव सर्वदा मिले रहैं यह कहणा भी असंगत है। काहेतैं ता रजतकी उत्पत्तितैं पूर्व जैसे ते शुक्तिके अवयव प्रत्यक्ष प्रतीत होवै हैं तैसे ते रजतके अवयव भी प्रत्यक्ष प्रतीत होणे चाहिये और रजत तैजस द्रव्य होवै है। ता तैजस द्रव्यका अग्निके संयोगतैं नाश होता नहीं यातैं अत्यंत अग्निके संयोगकरिकै ता शुक्तिके भस्म हुए लोकोंकूं ते रजतके अवयव प्राप्त होणे चाहिये। और जहां गुंजापुंजविषे अग्निका भ्रम होवै है तहां ता सत्य अग्निकरिकै तिस गुंजापुंजका नाश होणा चाहिये उसतैं आदि लैके अनेक प्रकारके दूषण ता सत्ख्यातिवादविषे प्राप्त होवै हैं। यातैं सो सत्ख्यातिवाद अत्यंत असंगत है इति। और क्षणिक विज्ञान्वादी योगाचार तौ ता भ्रमस्थलविषे आत्मख्याति मानैं हैं। ताका यह अभिप्राय है शरीरके अंतरस्थित जो क्षणिक विज्ञान ज्ञान है सोई ही आत्मा है। ता विज्ञान आत्मातैं भिन्न कोई भी अंतर बाह्य पदार्थ है नहीं। किंतु सर्वपदार्थ ता विज्ञानके ही आकारविशेष हैं। यातैं शुक्तिविषे जो रजत प्रतीत होवै है सो रजत भी ता अंतर विज्ञानका ही धर्म है। सो अंतर रजत ही दोषके बलतैं बाह्यकी न्याईं प्रतीत होवै है और 'नेदं रजतम्' इस ज्ञानतैं ता रजतका स्वरूपतैं बाध होता नहीं। किंतु ता अंतर रजतविषे इदं तारूप बाह्यपणेका ही बाध होवै है इति। सो यह आत्मख्या-

तिवादीका मत भी समीचीन नहीं है। काहेतैं तिन रजतादिकोंके अंतरपणेविषे कोई भी प्रमाण तथा युक्ति नहीं है। सर्वलोकोंकूं चक्षु आदिक इंद्रियोंकरिकै ते रजतादिक पदार्थ बाह्य देशविषे ही प्रतीत होवै हैं। केवल सुख दुःखादिक ही अंतर प्रतीत होवै हैं। जो कदाचित् सुख दुःखादिकोंकी न्याईं ते रजतादिक भी अंतर ही होवैं तौ चक्षु आदिक इंद्रिय तौ विना भी तिन रजतादिकोंका प्रत्यक्ष होणा चाहिये सो होता नहीं यातैं ते रजतादिक बाह्य ही माने चाहिये। किंवा इदंता नाम सन्निहितपणेका है।ता इदंताका जो 'नेदं रजतम्' इस ज्ञानकरिकै निषेध मानिये तो ता रजतविषे दूरतारूप असन्निहितपणा ही प्राप्त होवैगा। अत्यंत सन्निहित विज्ञानरूपता प्राप्त होवैगी नहीं। यातैं 'नेदं रजतम्' यह ज्ञान ता रजतके इदंतामात्रकूं निषेध करे है यह विज्ञानवादीका कहणा मिथ्या ही है। इस विज्ञानवादीके मतका विस्तारतैं खंडन तौ न्यायप्रकाशके द्वितीय परिच्छेदविषे कऱ्या है सो तहांसे जानि लेणा इति।और नैयायिक जो ता भ्रमस्थलविषे अन्यथाख्याति मानै हैं तिनोंका यह अभिप्राय है।'इदं रजतम्'इस भ्रमज्ञानका विषय जो रजत है सो रजत ता पुरोवर्त्ति शुक्तिविषे नहीं है किंतु सो रजत कांताकर हट्टादिरूप देशांतरविषे ही स्थित है। ता सत्य रजतके अनुभवजन्य संस्कारवाले पुरुषके दोषयुक्त चक्षु इंद्रियका जभी ता रजतके सदृश पुरोवर्त्ति शुक्तिके साथ संयोग सम्बन्ध होवै है तभी ता सादृश्य दर्शन करिकै उद्बुद्ध हुए संस्कारतैं ता पुरुषकूं ता देशांतरवार्त्ति रजतकीस्मृति होवै है। तिसतैं अनंतर दोषके वशतैं सो पुरोवार्त्ति शुक्ति ही ता देशांतरीय रजतरूपकारिकै प्रत्यक्ष होवै है। अर्थात् ता स्मृतिज्ञानके विषयभूत रजतका रजतत्वधर्म ता पुरोवार्त्ति शुक्तिविषे'इदं रजतम्'या प्रकार प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है। इसीका नाम अन्यथाख्याति है

तहां अन्य वस्तुकी जो अन्यरूपतैं प्रतीति है ताका नाम अन्यथाख्याति है जैसे पुरोवर्त्ति शुक्तिकी रजतत्वरूपतैं प्रतीति है तथा पुरोवर्त्ति रज्जुकी सर्पत्वरूपतैं प्रतीति है इस प्रकार भ्रांतिज्ञानके पुरोवर्त्ति शुक्ति आदिकोंविषे प्राप्त भये जे रजतादिक हैं तिनोंका 'नेदं रजतम्' इस ज्ञानकरिके निषध भी संभव होइ सके है। शंका—देशांतरवर्त्ति रजतका जो पुरोवर्त्ति शुक्तिविषे भान अंगीकार करोगे तौ 'इदं रजतम्' इस भ्रमज्ञानकूं ता रजत अंशविषे प्रत्यक्षरूपता नहीं संभवैगी। काहेतें विशिष्टप्रत्यक्षविषे विशेषण विशेष्य दोनोंके साथ इंद्रियका सन्निकर्ष ही कारण होवे है। जसे 'दंडी पुरुषः' इस विशिष्टप्रत्यक्षविषे दण्डरूप विशेषणके साथ तथा पुरुषरूप विशेष्यके साथ चक्षु इन्द्रियका संयोग सम्बन्ध कारण है। तैसे पुरोवर्त्ति शुक्तिरूप विशेष्यके साथ तौ चक्षु इन्द्रियका संयोग सम्बन्ध है परंतु ता देशांतरवर्त्ति रजतरूप विशेषणके साथ ता चक्षु इन्द्रियका कोई भी सम्बन्ध नहीं है यातैं 'इदं रजतम्' इस भ्रमज्ञानकूं ता रजत अंशविषे प्रत्यक्षरूपता नहीं होवैगी और तुम नैयायिकोंनैं 'इदं रजतम्' इस भ्रमज्ञानकूं ता रजत अंशविषे प्रत्यक्ष मान्या है समाधान—विशिष्ट प्रत्यक्षविषे विशेषण इंद्रियके सन्निकर्षकूं हम कारण मानते नहीं किंतु विशेष्यके साथ जो इंद्रियका संबंध है तथा विशेषणका जो ज्ञान है तथा विशेषण विशेष्य दोनोंके असंबंधका जो अग्रहण है इत्यादिक सामग्रीकूं ही हम विशिष्ट प्रत्यक्षविषे कारण माने हैं। सो कारणसामग्री ता भ्रमस्थलविषे विद्यमान ही है। तहां पुरोवर्त्ति शुक्तिरूप विशेष्यके साथ चक्षु इंद्रियका संयोग संबंध भी है। तथा ता रजतरूप विशेषणका स्मृतिरूप ज्ञान भी है। तथा दोषके वशतैं ता विशेषण विशेष्य दोनोंके असंबंधका अग्रहण भी है। ता कारणसामग्रीके विद्यमान हुए 'इदं रजतम्' इस रजत-

विषयक भ्रमज्ञानविषे प्रत्यक्षरूपता भवै है। यातैं ता रजतरूप विशेषणके साथ चक्षु इंद्रियके सन्निकर्षका कछु प्रयोजन नहीं है। जो कदाचित् ता विशेषण इंद्रियके सन्निकर्षकूं विशिष्ट प्रत्यक्षविषे नियमतैं कारणता होवै तौ 'सोऽयं देवदत्तः' इस प्रत्यभिज्ञाज्ञानकूं प्रत्यक्षरूपता नहीं होवैगी। काहेतैं तत्देशकालविशिष्टत्वरूप तत्ता विशेषणकूं अतीत होणेतैं ता विशेषणके साथ चक्षु इंद्रियका सन्निकर्ष ही संभवता नहीं और उक्त रीतिसैं ता विशेषणके ज्ञानकूं जो ता विशिष्ट प्रत्यक्षविषे कारण मानिये तौ तिस तत्तारूप विशेषणका स्मरणज्ञान तहां विद्यमान ही है। तथा ता देवदत्त पुरुषके साथ चक्षु इंद्रियका संयोग संबंध भी विद्यमान ही है। यातैं ता प्रत्यभिज्ञाज्ञानविषे प्रत्यक्षरूपता संभवै है। शंका—'सोऽयं देवदत्तः' इस ज्ञानकूं देवदत्तनामा पुरुष अंशविषे ही प्रत्यक्षरूपता है। तिस तत्ता अंशविषे प्रत्यक्षरूपता नहीं है किंतु स्मृतिरूपता है और स्मृतिज्ञानविषे इंद्रिय अर्थके सन्निकर्षकी अपेक्षा होती नहीं। समाधान—'सोऽयं देवदत्तः' इस ज्ञानकूं जो तत्ता अंशविषे स्मृतिरूप मानोंगे तौ ता एक ही ज्ञानविषे प्रत्यक्षत्व स्मृतित्व इन दोनों धर्मोंका सांकर्य होवैगा। सो सांकर्य दोष जातिका बाधक होवै है। यातैं प्रत्यक्षत्व स्मृतित्व इन दोनों धर्मोंविषे जातिरूपता ही नहीं संभवैगी। यातैं 'सोऽयं देवदत्तः' इस ज्ञानकूं ता तत्ता अंशविषे भी प्रत्यक्षरूप ही मान्या चाहिये। इस प्रकार इंद्रिय सन्निकर्षतैं विना ही जैसे तत्ता अंशका प्रत्यक्ष होवै है तैसे इंद्रिय सन्निकर्षतैं विना ही ता देशांतरवर्त्ति रजतका पुरोवर्त्ति शुक्तिविषे 'इदं रजतम्' यह विशिष्ट भ्रम प्रत्यक्ष संभवै है। अथवा ता देशांतरवर्त्ति शुक्तिके साथ चक्षु इंद्रियका सो रजतविषयक स्मृतिज्ञानरूप अलौकिक संबंध है और पुरोवर्त्ति शुक्तिके साथ ता चक्षु इंद्रियका संयोगरूप लौकिक संबंध है यातैं 'इदं रजतम्' इस भ्रमज्ञानकूं ता रजत अंशविषे

प्रत्यक्षरूपता संभवै है। तहां संयोग १ संयुक्तसमवाय२ संयुक्तसमवेतसमवाय ३ समवाय ४ समवेतसमवाय ५ विशेषणता ६ इन षट् सन्निकर्षोंकूं नैयायिक लौकिक सन्निकर्ष कहे हैं और सामान्यलक्षण १ ज्ञानलक्षण २ योगजधर्मलक्षण ३ इन तीन सन्निकर्षोंकूं अलौकिक सन्निकर्ष कहे हैं तिन दोनों प्रकारके सन्निकर्षोंका निरूपण न्यायप्रकाशके षष्ठ परिच्छेदविषे प्रत्यक्ष निरूपणविषे विस्तारतें कऱ्या है सो तहांसैं जानिलेणा। इस प्रकार 'इदं रजतम्' यह भ्रमज्ञान अन्यथा ख्यातिरूप ही है। यातैं ता भ्रमज्ञानके विषयभूत रजतका मिथ्यापणा संभवता नहीं इति। सो यह अन्यथा ख्यातिवादी नैयायिकका मत भी समीचीन नहीं है। काहेतैं 'इदं रजतम्' इस भ्रमज्ञानके विषयभूत रजतकी जो देशांतरविषे स्थिति मानिये तौ ता रजतके साथ चक्षु इंद्रियका संयोगरूप सन्निकर्ष संभवता नहीं और इंद्रिय असंबद्ध वस्तुका प्रत्यक्ष होता नहीं यातैं ता रजतके ज्ञानकूं प्रत्यक्षरूपता ही नहीं होवैगी । और 'इदं रजतम्' इस भ्रमज्ञानतैं अनंतर 'रजतं साक्षात्करोमि' या प्रकारका अनुभव लोकोंकूं होवै है। ता अनुभवतैं ता रजतज्ञानकी प्रत्यक्षरूपता ही सिद्ध होवै है। किंवा ता नैयायिकनैं जो विशेषणके ज्ञानकूं तथा विशेष्य इंद्रियोंके सन्निकर्षकूं विशिष्ट प्रत्यक्षका सामग्रीपणा कह्या था सो भी संभवता नहीं । जिस कारणतैं ता सामग्रीकूं 'दंडी पुरुषः' इत्यादिक सर्व विशिष्ट प्रत्यक्षोंविषे कारणता देखणेविषे आवती नहीं किंतु विशेषण विशेष्य दोनोंके साथ इंद्रियके सन्निकर्षकूं ही कारणता देखणेविषे आवै है। और 'सोऽयं देवदत्तः' यह प्रत्यभिज्ञाज्ञान भी केवल देवदत्त अंशविषे ही प्रत्यक्षरूप है तत्ता अंशविषे प्रत्यक्षरूपता नहीं है। किंतु ता तत्ता अंशविषे स्मृतिरूप ही है और 'सोऽयं देवदत्तः' इस प्रत्यक्षज्ञानकूं तत्ता अंशमें स्मृति-

रूप माननेविषे जो नैयायिकनैं प्रत्यक्षत्व स्मृतित्व इन दोनों धर्मोंके जातिपणेका बाधक सांकर्य दोष कह्या था सो भी असंगत है । काहेतैं वेदांत सिद्धांतविषे अविद्यातैं अतिरिक्त कोई जडजाति अंगीकार ही नहीं है। किंतु सा अविद्या ही जिस जिस कार्यविषे अनुगत हुई तिस तिस जातिरूपकरिकै प्रतीत होवे है। यातैं सिद्धांतविषे ता जातिसांकर्यकूं दोषरूपता संभवै नहीं किंवा ता नैयायिकनैं ता देशांतरवर्त्तिरजतके साथ चक्षु इंद्रियका जो ज्ञानरूप सन्निकर्ष मान्या था सो भी संगत है। काहेतैं ज्ञानकूं भी जो चक्षुका सन्निकर्ष मानिय तौ जहां इस पुरुषकूं पर्वतविषे वह्निका अनुमिति ज्ञान होवे है तहां भी ता वह्निका प्रत्यक्ष ज्ञान ही होणा चाहिये। काहेतैं 'पर्वतो वह्निमान्' इस ज्ञानविषे पर्वत तौ विशेष्य है और वह्नि विशेषण है। तहां पर्वतके साथ तौ चक्षु इंद्रियका संयोगसंबध और वह्निके साथ ता वह्निका स्मृति ज्ञानरूप संबध है । ता इंद्रिय अर्थके सन्निकर्षजन्य होणेतैं ता वह्निज्ञानकूं प्रत्यक्षरूपता ही होवेगी ताकरिकै अनुमान प्रमाणका ही लोप होवैगा। यातैं ता ज्ञानकूं इंद्रियका सन्निकर्षपणा संभवता नहीं । किंवा 'इदं रजतम्' इस भ्रमज्ञानके विषयभूत रजतकी जो देशांतरविषे स्थिति मानिये तौ ता रजतार्थी पुरुषकी ता देशांतरविषे ही प्रवृत्ति होणी चाहिये पुरोवर्त्तिविषे प्रवृत्ति नहीं होणी चाहिये । जिस कारणतैं ज्ञान जहां आपणा विषय होवै है तहां ही पुरुषकूं नियमसे प्रवृत्ति करे है। यातैं देशांतरविषे स्थित रजत पुरोवर्त्ति शुक्तिविषे प्रतीत होवै है। यह अन्यथाख्यातिवादी नैयायिकका मत अत्यंत असंगत है इति । इस प्रकार भ्रमस्थलविषे अख्याति१ असत्ख्याति२ सत्ख्याति३ आत्मख्याति ४ अन्यथाख्याति ५ इन उक्त पंच ख्यातियोंके असंभव हुए षष्ठी अनिर्वचनीय ख्याति ही अंगीकार करनी चाहिये। अर्थात् ता भ्रमकालविषे शुक्तिविषे अनिर्वचनीय रजत उत्पन्न

होवै है ऐसा मान्या चाहिये । शंका—लोकप्रसिद्ध रजतकी उत्पत्ति अवयवादिक सामग्रीतैं होवै है सा अवयवादिक सामग्री ता शुक्तिदेशविषे है नहीं । यातैं ता शुक्तिविषे रजतकी उत्पत्ति संभवती नहीं । जो कहो पुण्य पापरूप अदृष्ट ही ता रजतकी उत्पादक सामग्री है सो भी संभवता नहीं । जिस कारणतैं ता अवयवादिक दृष्ट सामग्रीतैं विना सो अदृष्ट कोई कार्यकूं उत्पन्न करि सकता नहीं । जो कदाचित् ता दृष्ट सामग्रीतैं विना ही सो अदृष्ट किसी कार्यकूं उत्पन्न करता होवै तौ मृत्तिका, कुलालादिक दृष्ट सामग्रीतैं विना ही ता अदृष्टत घटादिकोंकी उत्पत्ति होणी चाहिये । समाधान—प्रसिद्ध रजतका उत्पादक जा अवयवादिरूप लौकिक सामग्री है सा लौकिक सामग्री ता भ्रमके विषयभूत रजतका उत्पादक नहीं होवै है । किंतु ता लौकिक सामग्रीतैं विलक्षण सामग्री ही ता रजतका उत्पादक होवै है सो दिखावे हैं । सत्य रजतके अनुभवजन्य संस्कारवाले पुरुषके चक्षु इंद्रियका जभी पुरोवर्त्ति शुक्तिके साथ संयोग संबंध होवै है तभी ता चक्षुद्वारा बाह्य निकसे हुए अंतःकरणकी ता शुक्तिके इदमाकार तथा चाकचिक्याकार वृत्ति उत्पन्न होवै है ता चाकचिक्यरूप सादृश्यके दर्शनतैं ता पूर्वदृष्ट रजतके संस्कार उद्बुद्ध होवै है।सोउद्बुद्ध संस्काररूप दोष है सहकारी जिसका ऐसी जा ता इदमंशावच्छिन्न चैतन्यविषे रहणेहारी तथा ता शुक्तिक शुक्तित्व नीलपृष्ठ त्रिकोणादिक विशेष अंशकूं आच्छादन करणेहारी अविद्या है सा अविद्या क्षोभकूं प्राप्त होइकै रजताकार परिणामकूं प्राप्त होवै है । तथा ता रजतविषयक ज्ञानाकार परिणामकूं प्राप्त होवै है । इसीका नाम अनिर्वचनीय ख्याति है । इस प्रकारकी रीति रज्जु सर्पादिक सर्व भ्रमस्थलविषे जानिलेणी।शंका—ता भ्रमस्थलविषे सा अविद्या उक्त रीतिसे रजतादिरूप

अर्थाकार परिणामकूं तौ प्राप्त होवो परंतु ता अविद्याका ज्ञानाकार परिणाम मानणा असंगत है। काहेतैं ता अविद्याका ज्ञानाकार परिणाम माननेका कोई प्रयोजन नहीं है और प्रयोजनतैं विना किसी अर्थका अंगीकार करणा व्यर्थ ही होवै है और जो ऐसा कहो 'इदं रजतम्' इस प्रकारके व्यवहारवासतैं सा अविद्याकी रजताकार वृत्ति अवश्य माननी चाहिये सो यह कहणा भी संभवता नहीं। काहेतैं सुख दुःखादिकोंकी न्याईं सो प्रातिभासिक रजत साक्षी चैतन्यविषे ही अध्यस्त है। यातैं ता रजताकार वृत्तितैं विना ही ता साक्षी चैतन्य करिकै सो रजतविषयक व्यवहार सिद्ध होइ सके है। ता व्यवहारवासतैं रजताकार अविद्याकी वृत्ति मानणी निष्फल है और जो ऐसा कहो ता रजतके अपरोक्षपणेकी सिद्धिवासतैं ही ता अविद्या वृत्तिका अंगीकार है सो यह कहणा भी संभवता नहीं। जिस कारणतैं ता अविद्या वृत्तितैं विना भी अनावृत साक्षी चैतन्यके तादात्म्यतैं सुख दुःखादिकोंकी न्याईं ता रजतका अपरोक्षपणा संभव होइ सके है। यातैं ता रजतके अपरोक्षपणेवासतैं भी ता वृत्तिका अंगीकार करणा निष्फल है और जो ऐसा कहो ता रजताकार अविद्याकी वृत्ति जो नहीं अंगीकार करिये तौ ता रजतका कालांतरविषे स्मरण ही नहीं होवैगा। काहेतैं अनुभवके नाशजन्य संस्कारोंतैं ही स्मरण ज्ञान होवै है और नित्य होणेतैं साक्षी चैतन्यरूप अनुभवका नाश संभवता नहीं। यातैं सा रजताकार अविद्याकी वृत्ति अंगीकार करिकै ता वृत्तिके नाश करिकै ता वृत्ति उपहितत्वरूपतैं साक्षीका भी नाश होणेतैं ता रजतविषयक संस्कारकी उत्पत्ति तथा ता संस्कारकरिके स्मृतिज्ञानकी उत्पत्ति संभवै है। यातैं ता रजतकी स्मृतिके जनक संस्कारकी उत्पत्तिवासतैं सा रजताकार अविद्याकी वृत्ति अवश्य अंगीकार करनी चाहिये। सो यह कहणा भी सम्भवता नहीं। काहेतैं ता रजत-

भ्रमतैं पूर्व उत्पन्न भई जा इदमाकार वृत्ति है ता इदमाकार वृत्तिके नाश करिकै ही ता वृत्ति उपहितत्वरूपतैं साक्षीका नाश होणेतैं ता रजतविषयक संस्कारकी उत्पत्ति तथा ता संस्कारतैं स्मृतिकी उत्पत्ति संभव होइ सके है। अथवा जैसे सुख दुःखादिरूप विषयके नाश करिकै ता सुख दुःखादि उपहितत्वरूपतैं साक्षीका भी नाश होणेतैं ता सुख दुःखादिविषयक संस्कारोंकी उत्पत्ति तथा स्मृतिज्ञानका उत्पत्ति होवै है तैसे ता रजतरूप विषयके नाश करिकै ही ता रजत उपहितत्वरूपतैं साक्षीका भी नाश होणेतैं ता रजत विषयक संस्कारकी उत्पत्ति तथा स्मृतिज्ञानकी उत्पत्ति सम्भव होइ सके है। यातैं ता रजतविषयक स्मृतिके जनक संस्कारकी उत्पत्तिवासतैं भी ता रजताकार अविद्यावृत्तिका अंगीकार निष्फल है। समाधान—ता रजतकी स्मृतिका जनक जो संस्कार है तिस संस्कारकी उत्पत्तिवासतैं ही ता रजताकार अविद्या वृत्तिका अंगीकार है। काहेतैं ता रजतका अनुभवरूप साक्षी चैतन्य उत्पत्ति विनाशतैं रहित होणेतैं नित्य है। यातैं ता साक्षी चैतन्यका स्वरूपतैं तौ नाश संभवता नहीं और ता रजताकार अविद्यावृत्तिके अंगीकार किये हुए ता वृत्तिके नाश करिकै ता वृत्ति उपहितत्वरूपतैं ता साक्षीका भी नाश संभवै है। तिसतैं रजतविषयक संस्कारकी उत्पत्ति तथा ता संस्कारतैं स्मृतिज्ञानकी उत्पत्ति बनि सकै है। यातैं ता रजतस्मृतिके जनक संस्कारकी उत्पत्तिवासतैं सा रजताकार अविद्याकी वृत्ति अवश्य मानी चाहिये और ता वादीने जो इदमाकार वृत्तिके नाशतैं रजत स्मृतिजनक संस्कारकी उत्पत्ति कही थी सो कहणा भी असंगत है। काहेतैं अनुभव संस्कार स्मृति इन तीनोंका समान वस्तुविषयकत्वरूपतैं ही परस्पर कार्य कारणभाव होवै है। अन्य वस्तुविषयक अनु-

भवतैं अन्य वस्तुविषयक संस्कार वा स्मृति होवै नहीं, जो कदाचित् ऐसा होता होवै तौ घटविषयक अनुभवतैं पटविषयक संस्कार तथा स्मृति भी होणी चाहिये । यातैं ता इदमाकार वृत्तितैं रजतविषयक संस्कारकी उत्पत्ति तथा स्मृतिकी उत्पत्ति संभवै नहीं और ता वादीनैं जो पूर्व रजतरूप विषयके नाशतैं ता रजत संस्कारकी उत्पत्ति कही थी सो कहणा भी असंगत है । काहेतैं लोकविषे घटादिकविषयोंके नाशतैं तिन घटादिकोंके संस्कारकी उत्पत्ति देखणेविषे आवती नहीं किन्तु तिन घटादिकोंके विद्यमान हुए ही तिन घटादिकोंके ज्ञानके नाशतैं संस्कारोंकी उत्पत्ति देखणेविषे आवै है । यातैं सर्वत्र ता ज्ञानके नाशतैं ही संस्कारोंकी उत्पत्ति माननी चाहिये और जो कहो सुख दुःखादिकोंविषे ता सुखादिरूप विषयके नाशतैं ही संस्कारोंकी उत्पत्ति देखणेविषे आवै है सो कहणा भी संभवता नहीं । जिस कारणतैं तहां भी संस्कारोंकी उत्पत्तिवासतैं सुख दुःखादि आकारवृत्ति अंगीकार करी जावै है । अथवा अंतःकरणकूं तथा ताके सुख दुःखादिक धर्मोंकूं वृत्तितैं विना ही साक्षी भास्यपणा रहो तथा तिन सुखादिकोंके नाशकरिकै तत् उपहित साक्षीके नाशतैं संस्कारोंकी उत्पत्ति भी रहो तथापि अविद्याके कार्य जे बाह्य घटादिक पदार्थ हैं तिनोंके संस्कारकी उत्पत्ति तौ ता घटादि आकार वृत्तिके नाशतैं ही देखणेविषे आवै है । तैसे सो प्रातिभासिक रजत भी अविद्याका कार्य है । यातैं ता रजताकार वृत्तिके नाशतैं ही ता रजतके संस्कारकी उत्पत्ति मानी चाहिये । जो कदाचित् ऐसा नहीं मानिये तौ आचार्योंके ग्रंथोंविषे जो स्वप्न पदार्थाकार वृत्तिका अंगीकार कर्‌या है तथा जाग्रत् स्वप्नविषे जो अहमाकार वृत्तिका अंगीकार कर्‌या है सो सर्व असंगत होवैगा । जिस कारणतैं वृत्तितैं विना भी केवल साक्षीकरिकै तिन पदार्थोंका प्रकाश संभव होइ सकै है ।

यातैं ता रजतकी स्मृतिके हेतुभूत संस्कारकी उत्पत्तिवासतैं सा अनिर्वचनीय रजताकार अविद्यावृत्ति अवश्य मानी चाहिये इति। इहां कई एक ग्रंथकार तौ ऐसा कहे हैं जैसे घटाकार वृत्ति उपहित साक्षी चैतन्यविषे जो ता घटका तादात्म्य है यह ही ता घटनिष्ठ अपरोक्षपणा है। तैसे ता प्रातिभासिक रजतनिष्ठ अपरोक्षपणेकी सिद्धिवासतैं ता रजताकार अविद्याकी वृत्ति अवश्य मानी चाहिये। ता वृत्तितैं विना ता रजतविषे सो अपरोक्षपणा ही नहीं संभवैगा इति। कई एक ग्रंथकार तौ ऐसा कहे हैं जो जो व्यवहार कादाचित्क होवै है सो सो व्यवहार कादाचित्क ज्ञान करिकै ही साध्य होवै है। जैसे 'अयं घटः' यह कादाचित्क व्यवहार कादाचित्क घटज्ञान-करिकै साध्य है। तैसे 'इदं रजतम्' यह व्यवहार भी कादाचित्क है यातैं ता रजतविषयक कादाचित्क ज्ञानकरिकै ही साध्य होवैगा। तहां साक्षीरूप ज्ञानविषे तौ कादाचित्कपणा संभवता नहीं किंतु ता अविद्यावृत्तिरूप ज्ञानविषे ही सो कादाचित्कपणा संभवै है। यातैं ता रजत व्यवहारके कदाचित्कपणेकी सिद्धिवासतैं ता रजत गोचर अविद्याकी वृत्ति अवश्य अंगीकार करी चाहिये। जो कदा-चित् साक्षीरूप नित्यज्ञानकारिकै भी सो कादाचित्क व्यवहार होता होवै तौ घटादिक पदार्थोंका सो कादाचित्क व्यवहार भी ता साक्षी चैतन्य करिकै ही सिद्ध होइ सकैगा। यातैं घटादि आकार अंतःकरणकी वृत्ति भी नहीं सिद्ध होवैगी इति। और कोई एक ग्रंथकारोंनैं जो प्रातिभासिक रजतादि आकार अविद्या वृत्तिका खण्डन कऱ्या है सो प्रौढीवादतैं जानणा। आपणे बुद्धिकी उत्कर्षताका जो जनावणा है ताका नाम प्रौढीवाद है। यातैं पूर्व उक्त रीतिसैं भ्रमस्थलविषे सा अविद्या रजतादि वि-षयाकार तथा ताके ज्ञानाकार परिणामकूं प्राप्त होवै है यह अर्थ निर्दोष सिद्ध भया इति। शंका—ता भ्रमस्थलविषे शुक्तिविषे अवि-

यातैं रजतकी उत्पत्ति होवो तथापि ता रजतविषे मिथ्यापणा कैसे है ? समाधान–लोकविषे भी ऐंद्रजालिक पुरुषकी मायाकरिकै रचित पदार्थ मिथ्याही देखणेविषे आवै है। तैसे अविद्याका कार्य होणेतैं ते रजतादिक भी मिथ्या ही हैं। ऐसे रजतादिकोंके मिथ्यापणेविषे सा पूर्व उक्त दृष्टार्थापत्ति ही प्रमाण है इति। अब दूसरी श्रुतार्थापत्तिका निरूपण करे हैं। तहां 'तरति शोकमात्मवित्' अर्थ–आत्मज्ञानवाला पुरुष शोककूं नाश करे है। यहां शोक शब्द करिकै प्रमातृत्व कर्तृत्व आदिक सर्व बंधका ग्रहण करणा। इस श्रुति वचनतैं श्रवण कर्या जो बंधविषे आत्मज्ञान करिकै निवर्त्यपणा सो ज्ञान निवर्त्यपणा ता बंधकूं सत्य मानणेविषे संभवता नहीं। जिस कारणतैं सत्य वस्तुकी ज्ञान करिकै निवृत्ति होती नहीं, किंतु क्रिया करिकै ही निवृत्ति होवै है। जैसे घटादिकोंकी मुद्गर प्रहारादिरूप क्रियाकरिकै निवृत्ति होवै है और मिथ्यावस्तुकी तौ ज्ञानकरिकै ही निवृत्ति होवै है। जैसे रज्जु सर्पकी रज्जुके ज्ञानतैं निवृत्ति होवै है। यातैं सो आत्मज्ञान करिकै निवर्त्यपणा ता बंधके मिथ्यापणेतैं विना अनुपपन्न हुआ ता बंधके मिथ्यापणेकी कल्पना करावै है इसका नाम श्रुतार्थापत्ति है। शंका–सत्यवस्तुकी ज्ञानतैं निवृत्ति नहीं होती यह आपका कहणा अयुक्त है। काहेते श्रीरामकृत सेतुके दर्शनतैं सत्य पापकी निवृत्ति शास्त्र प्रमाणतैं जानी जावै है और गरुडके ध्यानतैं सत्यविषकी निवृत्ति देखणेविषे आवै है। तैसे सत्य बंधकी भी आत्मज्ञानतैं निवृत्ति क्यों नहीं होवै। यातैं ता बंधके मिथ्यापणेतैं विना भी सो ज्ञान निवर्त्यपणा बनि सकै है। समाधान–सत्यबंधकी ज्ञानतैं निवृत्तिविषे जो तुमनैं सेतुका दर्शनरूप तथा गरुडका ध्यानरूप दृष्टांत कह्या है सो दृष्टांत दार्ष्टांतिकतैं विषमतावाला होणेतैं ता उक्त अर्थकी सिद्धि करि सकै नहीं। सा

विषमता दिखावे है । तहां सेतुके केवल दर्शनमात्रतैं ब्रह्महत्यादिक पापोंकी निवृत्ति होती नहीं किंतु धर्मशास्त्रविषे कथन कर्‍ये जे ब्रह्मचर्य शौच सत्यभाषण आदिक नियम हैं तिन नियमों करिकै सहकृत ता सेतुदर्शनतैं ही ता पापकी निवृत्ति होवै है । जो कदाचित् तिन नियमोंतैं विना केवल ता सेतुके दर्शनमात्रतैं पापकी निवृत्ति होती होवै तौ तहां रहणेहारे म्लेच्छादिकोंके भी ता सेतुके दर्शनतैं पापकी निवृत्ति होणी चाहिये । जो कहो ता सेतुके दर्शनमात्रतैं तिन म्लेच्छादिकोंके भी पाप कर्मकी निवृत्ति होवै है तौ पापकी निवृत्तिवासतैं ता सेतुके दर्शनकर्ता पुरुषके प्रति तिन नियमोंका विधान करणेहारा धर्मशास्त्र ही अप्रमाण होवैगा । यातैं क्रियारूप नियमों करिकै मिश्रित होणेतैं सो सेतुदर्शन भी क्रियारूप ही है ज्ञानरूप नहीं है । ता क्रियारूप सेतुके दर्शनतैं ता सत्य पापकी निवृत्ति बनि सके है । तैसे गरुडका ध्यान भी मानसक्रियारूप है । यातैं ता क्रियारूप ध्यानतैं ता सत्य विषकी निवृत्ति भी बनि सके है और इहां प्रसंगविषे अन्य साधनकी अपेक्षातैं रहित केवल आत्मज्ञान करिकै ही बंधका निवर्त्त्यपणा श्रुतिनैं कथन कर्‍या है सो ज्ञान निवर्त्त्यपणा ता बंधके सत्यपणाविषे संभवता नहीं । यातैं सो ज्ञान निवर्त्त्यपणा ता बंधके मिथ्यापणेकूं कल्पना करावै है इति । शंका—पूर्वज्ञान निवर्त्त्यपणेतैं प्रमातृत्वादिक बंधका मिथ्यापणा सिद्ध कर्‍या । तहां प्रमाता किसका नाम है अर्थात् आत्माका नाम प्रमाता है, अथवा अंतःकरणका नाम प्रमाता है । तहां 'असंगो ह्ययं पुरुषः' इत्यादिक श्रुतियोंने आत्माकूं असंग कह्या है और प्रमाज्ञानके आश्रयकूं प्रमाता कहे हैं यातैं ता असंग आत्माविषे सो प्रमातापणा संभवता नहीं तैसे अंतःकरणविषे भी सो प्रमातापणा संभवता नहीं । काहेतैं सो अंतःकरण भूतोंक कार्य होणेतैं घटादिकोंकी न्याईं जड है

और प्रमातृत्वादिकर्म चेतनके हैं यातैं जड अंतःकरणविषे सो प्रमातापणा संभवता नहीं । समाधान—केवल आत्माकूं तथा केवल अंतःकरणकूं प्रमातापणा हम मानते नहीं किंतु अंतःकरणविशिष्ट चैतन्यकूं ही हम प्रमाता माने हैं । सो प्रमाता ही कर्त्ता होवै है तथा भोक्ता होवै है । तहां प्रमाज्ञानका आश्रय होणेतैं सो अंतःकरणविशिष्ट चैतन्य प्रमाता कह्या जावै है और प्रयत्नरूप प्रकृतिका आश्रय होणेतैं कर्ता कह्या जावै है और धर्म अधर्म करिकै जन्य जो सुख दुःखका अनुभवरूप भोग है ता भोगका आश्रय होणेतैं भोक्ता कह्या जावै है । ते प्रमातृत्व कर्तृत्व भोक्तृत्व तीनों ता अंतःकरण विशिष्ट चैतन्यरूप प्रमाताके ही धर्म हैं केवल आत्माके तथा केवल अंतःकरणके ते प्रमातृत्वादिक धर्म नहीं हैं । शंका सो अंतःकरणविशिष्ट चैतन्यरूप प्रमाता ता अंतःकरणतैं तथा चैतन्यतैं पृथक् नहीं है और सो प्रमातृत्व धर्म केवल चैतन्यविषे तथा केवल अंतःकरणविषे रहता नहीं । यातैं ता अंतःकरणविशिष्ट चैतन्यविषे भी सो प्रमातृत्वधर्म कैसे रहैगा किंतु नहीं रहैगा । समाधान—जैसे केवल आत्माविषे तथा केवल अंतःकरणविषे सो प्रमातापणा वास्तवतैं नहीं है । तैसे ता अंतःकरणविशिष्ट चैतन्यविषे भी सो प्रमातापणा वास्तवतैं नहीं है । किंतु जैसे शुक्तिविषे रजतका आरोप कऱ्या जावै है तैसे ता अंतःकरणविशिष्ट चैतन्यविषे ता प्रमातापणेका आरोप कऱ्या जावै है । शंका—जैसे शुक्तिविषे रजतके आरोपतैं पूर्व इस पुरुषकूं देशांतरविषे स्थित रजतका यथार्थ अनुभव हुआ है ता अनुभवजन्य संस्कारतैं ही ता शुक्तिविषे रजतका आरोप होवै है तैसे ता विशिष्ट चैतन्यविषे ता प्रमातापणेका आरोप तबी संभवै है जबी ता आरोपतैं पूर्व किसी वस्तुविषे ता प्रमातापणेका यथार्थ अनुभव हुआ होवै । ता यथार्थ अनुभवतैं विना सो आरोप

संभवता नहीं । समाधान—जिस वस्तुका आरोप होवै है तिस वस्तुका अनुभवमात्र पूर्व चाहिये । सो अनुभव यथार्थ होवै अथवा भ्रमरूप होवै । तहां अनादि संसारविषे इस जीवकूं ता अंतःकरणविशिष्ट चैतन्यविषे प्रमातापणेका भ्रम होता आया है ता पूर्व पूर्व भ्रमरूप अनुभवजन्य संस्कारोंतैं उत्तर उत्तर ता प्रमातापणेका आरोप संभवै है । इस प्रकार कर्तृत्व भोक्तृत्वका आरोप भी जानि लेणा । इहां नैयायिक तो केवल आत्माके ही ते प्रमातृत्वादिक धर्म माने हैं सो तिनोंका कहणा श्रुतिस्मृतिप्रमाणतैं विरुद्ध होणेतैं असंगत है । तहां 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च । असंगो ह्ययं पुरुषः । शरीरस्थोऽपि कौंतेय न करोति न लिप्यते' इत्यादिक श्रुति स्मृति वचनोंनैं निरुपाधिक आत्माकूं निर्गुण असंग निर्लेप कह्या है ऐसे असंग आत्माविषे ते प्रमातृत्वादिक धर्म संभवते नहीं । यातैं ता अंतःकरणविशिष्ट चैतन्यके ही ते प्रमातृत्वादि धर्म मान्ये चाहिये । जो कदाचित् ते प्रमातृत्वादिक धर्म केवल आत्माके मानिये तौ तिन धर्मोंवाले आत्माविषे असंग निर्गुण निर्लेप रूपता संभवती नहीं यातैं आत्माकी असंग निर्गुण निर्लेपरूपकूं कथन करणेहारे ते उक्त श्रुति स्मृति वचन अप्रमाणरूप होवैंगे । किंवा ता प्रमातृत्वादिक बंधकूं जो आरोपित नहीं मानिये किंतु सत्य मानिये तौ सत्य वस्तुकी ज्ञानतैं निवृत्ति होती नहीं यातैं नैयायिकोंके मतविषे ता बंधकी निवृत्तिरूप मोक्ष ही नहीं संभवैगा । यातैं भी ता बंधकूं कल्पित ही मान्या चाहिये इति । शंका—अंतःकरणविशिष्ट चैतन्यके प्रमातृत्वादिक धर्म पूर्व कहे सो संभवता नहीं । काहेतैं आत्मा असंग है तथा निरवयव है और अंतःकरण सावयव है तथा क्रियावाला है । ऐसे आत्माका ता अंतःकरणके साथ कोई प्रकारका भी संबंध संभवता नहीं और सम्बन्धतैं

विना सो विशिष्टपणा सम्भवता नहीं जो कदाचित् संबन्धतैं विना भी विशिष्टपणा होता होवै तौ हिमाचलविशिष्ट विंध्याचल है या प्रकारका व्यवहार भी होणा चाहिये किंवा सो अंतःकरण सत्य है वा मिथ्या है। तहां प्रथम सत्यपक्ष जो अंगीकार करो तौ ता सत्य अंतःकरणके संबंधकूं भी सत्यरूपता ही होवैगी।ता सत्यसम्बन्धकी ज्ञानतैं निवृत्ति होवैगी नहीं यातैं किसी भी जीवात्माका मोक्ष नहीं होवैगा। ता मोक्षके अभाव हुए ता मोक्षका प्रतिपादन करणेहारा शास्त्र ही अप्रमाणरूप होवैगा और सो अंतःकरण मिथ्या है यह द्वितीय पक्ष जो अंगीकार करो सो भी संभवता नहीं। जिस कारणतैं ता अंतःकरणके मिथ्यापणेविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। जो कदाचित् प्रमाणतैं विना भी अंतःकरणकूं मिथ्या मानोगे तौ आत्माविषे भी सो मिथ्यापणा क्यों नहीं होवै। यातैं अंतःकरण-विशिष्ट चैतन्यके ते प्रमातृत्वादिक धर्म हैं यह कहणा असंगत है। समाधान—जैसे शुक्तिके अज्ञानतैं ता शुक्तिविषे रजत कल्पित होवै है तैसे आत्माके अज्ञानतैं ता प्रत्यक् आत्माविषे यह अंतःकरणा-दिक स्वरूपतैं अध्यस्त होवै हैं। अर्थात् कल्पित होवै हैं तहां अध्यस्त कल्पित आरोपित यह तीनों शब्द एक ही अर्थके वाचक होवै हैं। इतने कहणेकरिकै ता अंतःकरणके कल्पितपणेविषे यह अनुमान बोधन कर्या। 'अंतःकरणमध्यस्तं जडत्वात् दृश्यत्वादाविद्यक-त्वाच्च शुक्तिरजतवत्' अर्थ—अंतःकरण प्रत्यक् आत्माविषे अध्यस्त है। जड होणेतैं तथा दृश्य होणेतैं आविद्यक होणेतैं जो जो पदार्थ जड तथा दृश्य तथा आविद्यक होवै है सो सो पदार्थ अध्यस्त ही होवै है, जैसे शुक्ति रजत जड दृश्य आविद्यक होणेतैं अध्यस्त है इति। इस अनुमान प्रमाण करिकै ता अंतःकरणविषे कल्पितपणा ही सिद्ध होवै है तथा 'अतोऽन्यदार्त्तं' अर्थ—चैतन्य आत्मातैं अन्य सर्व पदार्थ मिथ्या हैं। इस श्रुति प्रमाणतैं भी ता अंतःकरणविषे

कल्पितपणा ही सिद्ध होवे है । यातैं सो अंतःकरण कल्पित ही है । किंवा 'जडोऽहं चेतनोऽहम्' इस प्रकारके अनुभवतैं जड अंतःकरणादिकोंका तो आत्माविषे अध्यास प्रतीत होवे है और चेतन आत्माका अंतःकरणविषे अध्यास प्रतीत होवे है । यातैं सिद्धांत विषे आत्माका तथा अंतःकरणादिक अनात्माका परस्पर अध्यास विवक्षित है परन्तु ताके विषे इतना भेद है जैसे अंतःकरणादिक स्वरूपतैं आत्माविषे अध्यस्त हैं तैसे आत्मा अंतःकरणादिकोंविषे स्वरूपतैं अध्यस्त नहीं है किंतु ता अंतःकरणविषे सो आत्मा संसर्गरूपतैं अध्यस्त है । जो कदाचित् अंतःकरणादिकोंकी न्याईं आत्माकूं भी स्वरूपतैं अध्यस्त मानिये तो अधिष्ठानके ज्ञान करिके जैसे तिन अंतःकरणादिकोंका बाध होवे है तैसे ता आत्माका भी बाध होणा चाहिये । और सर्वका साक्षीरूप होणेतैं बाधके अयोग्य आत्मा परमार्थ सत्य है ऐसे आत्माका बाध संभवता नहीं। यातैं ता अंतःकरणविषे आत्माका स्वरूपतैं अध्यास संभवता नहीं किंतु संसर्गरूपतैं ही अध्यास संभवे है । इसी प्रकारके आत्म अनात्मके अध्यासकूं श्रीभगवान् भाष्यकार शारीरक मीमांसाके आदिविषे वर्णन करते भये हैं । इस प्रकार असंग आत्माविषे अंतःकरणादिकोंके वास्तवसंबंधके अभाव हुए भी आध्यासिक संबंध संभवै है। ता आध्यासिक संबंध करिके ही आत्माकूं अंतःकरणविशिष्टता है । यातैं ता अंतःकरण विशिष्ट चैतन्यविषे ते प्रमातृत्वादिक धर्म संभवै हैं इति। शंका—अंतःकरणादिक आत्माविषे अध्यस्त हैं यह आपका कहणा तबी संभवै है जबी अध्यासका स्वरूप निर्णय होवै है। ता अध्यासके स्वरूप निर्णयतैं विना अंतःकरणादिकोंकूं अध्यस्त कहणा संभवता नहीं। ऐसी शंकाके प्राप्त हुए अब ता अध्यासका लक्षण

कहे हैं। 'परत्र परावभासः अध्यासः' अर्थ—अन्यविषे जो अन्यका अवभास है ताका नाम अध्यास है। सो अध्यास ज्ञानाध्यास १ अर्थाध्यास इन २ भेदोंकरिके दो प्रकारका होवे है। तहां ज्ञानाध्यास पक्षविषे तौ ता अवभास पद करिकै भ्रांतिज्ञानका ग्रहण करणा और अर्थाध्यास पक्षविषे ता अवभास पद करिकै ता भ्रमज्ञानके विषयभूत रजतादिक अर्थका ग्रहण करणा। यातैं सो उक्त अध्यासका लक्षण तिन दोनों अध्यासोंविषे घटै है इति। अब यथाक्रमतैं ता ज्ञानाध्यासका तथा अर्थाध्यासका लक्षण कहे हैं। तहां'अतस्मिंस्तद्बुद्धिः ज्ञानाध्यासः' अर्थ—जिस वस्तुकी अधिकरणताके अयोग्य अधिकरणविषे सजाति वस्तुकी बुद्धि है ताका नाम ज्ञानाध्यास है जैसे वास्तवतैं रजतकी अधिकरणताके अयोग्य शुक्तिविषे जा'इदं रजतम्' या प्रकारकी बुद्धि है तथा वास्तवतैं अंतःकरणादिरूप अनात्मकी अधिकरणताते अयोग्य आत्माविषे जा अनात्मबुद्धि है ताका नाम ज्ञानाध्यास है इति। और'प्रमाणाजन्यज्ञानविषयत्वे सति पूर्वदृष्टत्वानधिकरणमर्थाध्यासः' अर्थ—जो पदार्थ प्रमाण करिकै अजन्य ज्ञानका विषय होवे है तथा पूर्वदृष्टत्व धर्मका अधिकरण नहीं होवे है सो पदार्थ अर्थाध्यास कह्या जावे है। जैसे शुक्तिविषे रजत तथा आत्माविषे अंतःकरणादिक अर्थाध्यासरूप हैं। तहां ता शुक्ति रजतकूं विषय करणेहारे जो 'इदं रजतम्' यह ज्ञान है सो ज्ञान अप्रमारूप होणेतैं किसी भी प्रमाणकरिकै जन्य नहीं है। यातैं सो रजत ता प्रमाण अजन्य ज्ञानका विषय भी है और सो रजत आपणी प्रतीतितैं पूर्व था नहीं यातैं सो रजत पूर्व दृष्टत्व धर्मका अनधिकरण भी है। यातैं ता रजतविषे अर्थाध्यास रूपता संभवे है। इस प्रकारका अर्थाध्यासका लक्षण रज्जु सर्पादिकोंविषे भी जानि लेणा। तहां 'पूर्व

दृष्टत्वानधिकरणम् ' इतनामात्र ही जो ता अर्थाध्यासका लक्षण करते तौ अबी नवीन उत्पन्न हुए घटविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती, जिस कारणतैं सो घट भी ता पूर्वदृष्टत्व धर्मका अनधिकरण ही है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतैं ता लक्षणविषे प्रमाणजन्य ज्ञानका विषयत्व कह्या है सो ता घटविषे है नहीं किंतु ता घटविषे प्रमाणजन्य ज्ञानका विषयत्व ही है । यातैं ता घटविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । और 'प्रमाणाजन्यज्ञानविषयत्वम्' इतनामात्र ही जो ता अर्थाध्यासका लक्षण करते तौ स्मरण करे जे शिव विष्णु गंगादिक पदार्थ हैं तिनोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । जिस कारणतैं प्रमाण अजन्य स्मृतिज्ञानका विषयत्व तिनोंविषे भी है । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतैं ता लक्षणविषे ' पूर्वदृष्टत्वानधिकरणम् ' यह पद कथन कर्‍या है । तहां पूर्वदृष्ट पदार्थकी ही स्मृति होवै है । यातैं तिन स्मर्यमाण पदार्थोंविषे ता पूर्वदृष्टत्व धर्मका अनधिकरणपणा नहीं है किंतु अधिकरणपणा ही है । यातैं तिन स्मर्यमाण पदार्थोंविषे ता अर्थाध्यासके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति । तहां इस उक्त अर्थाध्यासके लक्षणविषे प्रमाण शब्द करिके प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मका बोधक जो 'तत्त्वमसि' आदिक महावाक्य हैं ताका ग्रहण करणा तिस महावाक्यरूप प्रमाण करिके अजन्य जो वृत्ति अभिव्यक्त चैतन्यरूप ज्ञान है ता ज्ञानका विषयपणा घटादिक व्यावहारिक पदार्थोंविषे तथा शुक्ति रजतादिक प्रातिभासिक पदार्थोंविषे विद्यमान ही है और चैतन्य आत्मातैं भिन्न सर्व अनात्म पदार्थ क्षणक्षणविषे परिणामकूं प्राप्त होवै हैं । यातैं तिन घटादिक पदार्थोंविषे ता पूर्वदृष्टत्वधर्मका अनधिकरणपणा भी है । यातैं सो उक्त अर्थाध्यासका लक्षण व्यावहारिक प्रातिभासिक सर्व पदा-

र्थोंका साधारण है। तात्पर्य यह वेदांत सिद्धांतविषे ब्रह्म चैतन्यतैं भिन्न जितने कि घटादिक व्यावहारिक पदार्थ हैं तथा शुक्तिरजतादिक प्रातिभासिक पदार्थ हैं ते सर्व ता ब्रह्म चैतन्यविषे अध्यस्त होणेतैं अर्थाध्यासरूप ही हैं यातैं ता उक्त अर्थाध्यासके लक्षणकूं व्यावहारिक प्रातिभासिक सर्व पदार्थोंका साधारण लक्षणपणा युक्त है इति। और कई एक ग्रंथकार तौ यह कहे हैं सो उक्त अर्थाध्यासका लक्षण केवल प्रातिभासिक रजतादिकोंका ही है घटादिक व्यावहारिक पदार्थोंका सो लक्षण नहीं है। यातैं ता लक्षणविषे स्थित प्रमाण शब्द करिके तत्त्वमसि आदिक प्रमाणका ग्रहण नहीं करणा। किंतु ता प्रमाण शब्द करिकै अज्ञात अर्थके बोधक प्रत्यक्षादिक प्रमाणका ही ग्रहण करणा ता प्रत्यक्षादिक प्रमाण अजन्यज्ञानका विषयपणा केवल शुक्ति रजतादिक प्रातिभासिक पदार्थोंविषे ही है, घटादिक व्यावहारिक पदार्थोंविषे है नहीं यातैं प्रातिभासिक शुक्ति रजतादिरूप अर्थाध्यासका ही सो उक्त लक्षण है इति। अब ता उक्त अर्थाध्यासका विभाग वर्णन करे हैं। तहां सो उक्त अर्थाध्यास प्रातीतिक १ व्यावहारिक २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां 'आगंतुकदोषजन्यः प्रातीतिकः' अर्थ-जो पदार्थ आगंतुक दोषकरिकै जन्य होवै है सो पदार्थ प्रातीतिक कह्या जावै है। इसी प्रातीतिककूं प्रातिभासिक भी कहे हैं जैसे शुक्तिविषे रजत तथा रज्जुविषे सर्प तथा मरुभूमिविषे जल इत्यादिक पदार्थ आगंतुक दोष करिकै जन्य होणेतैं प्रातीतिक कहे जावै हैं। तहां सो प्रातीतिक पदार्थका जनकदोष प्रमातृ दोष १ विषयदोष २ करणदोष ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां राग भयादिक प्रमातागत दोष है और सादृश्यादिक विषयगत दोष है और काच कामलादिक चक्षु आदिककरणगत दोष है। इस प्रकारके तीन दोषां

करिकै जन्य होणेतैं ते शुक्ति रजतादिक प्रातीतिक अर्थाध्यासरूप है इति। और ' प्रातीतिकभिन्नः व्यावहारिकः ' अर्थ—आगंतुक दोषजन्य प्रातीतिक पदार्थतैं भिन्न जो पदार्थ है सो व्यावहारिक कह्या जावै है। जैसे आकाशतैं आदि लैके घटपर्यंत पदार्थ व्यावहारिक अर्थाध्यासरूप हैं तहां आत्मज्ञानतैं पूर्व जिन पदार्थोंका बाध नहीं होवै है ते पदार्थ व्यावहारिक कहे जावै हैं और आत्मज्ञानतैं पूर्व ही जिन पदार्थोंका बाध होवै है ते पदार्थ प्रातीतिक तथा प्रातिभासिक कहे जावै हैं इति। और कईएक ग्रंथकार तौ ता प्रातीतिक व्यावहारिक अर्थाध्यासका या प्रकारका साधारण लक्षण कहे हैं। ' दोषप्रयोगसंस्कारजन्यत्वमध्यासत्वम् ' अर्थ—पूर्व उक्त दोष तथा शुक्ति आदिक अधिष्ठानके साथ चक्षु आदिक इंद्रियका संबंधरूप संप्रयोग तथा देशांतरीय रजतादिकोंके अनुभवजन्य संस्कार इन तीनों करिकै जो जन्यपणा है यह ही तिन रजतादिकोंविषे अध्यस्तपणा है। यद्यपि सिद्धांतविषे अविद्या अनादि होणेतैं तिन दोषादिकोंतैं जन्य नहीं है। यातैं ता अविद्या अध्यासविषे इस उक्त लक्षणकी अव्याप्ति ही होवै है। तथापि यह उक्त लक्षण अंतःकरणादिरूप कार्य अध्यासका ही है अनादि अविद्याका सो लक्षण नहीं। यातैं ता लक्षणका अलक्ष्यरूप अविद्याविषे ता लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं तात्पर्य यह। सो कार्य अध्यास ही जाग्रत् स्वप्नविषे इस जीवके अनर्थका हेतु होवै है और सो अविद्या अध्यास सुषुप्तिविषे विद्यमान हुआ भी अनर्थका हेतु होता नहीं। यातैं सो उक्त लक्षण ता कार्य अध्यासका ही है। शंका—ता उक्त लक्षणविषे दोष संप्रयोग संस्कार इन तीन पदोंके कहणेका क्या प्रयोजन है ? समाधान—ता लक्षणविषे तिन तीन पदोंके कहणे करिकै ता अध्यासके यह दो लक्षण सिद्ध होवै हैं। 'दोषजन्यत्वे-

सति संस्कारजन्यत्वमध्यस्तत्वम्॥ १॥ अथवा संप्रयोगजन्यत्वे सति संस्कारजन्यत्वमध्यस्तत्वम्'॥ २॥ अर्थ-जो पदार्थ दोष करिकै जन्य हुआ संस्कार करिकै जन्य होवै है सो पदार्थ अध्यस्त कह्या जावै है॥ १॥ अथवा जो पदार्थ संप्रयोग करिकै जन्य हुआ संस्कार करिकै जन्य होवै है सो पदार्थ अध्यस्त कह्या जावै है॥ २॥ तहां प्रथम लक्षणविषे संस्कारजन्य स्मृतिविषे अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतैं दोषजन्य यह पद कथन कऱ्या है और दोषरूप विषयकरिकै जन्य जा दोषकी प्रत्यक्षप्रमा है ताके विषे अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतैं ता लक्षणविषे संस्कारजन्य यह पद कथन कऱ्या है। तैसे द्वितीय लक्षणविषे भी संस्कारजन्य स्मृति ज्ञानविषे अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतैं संप्रयोगजन्य यह पद कथन कऱ्या है और ता संप्रयोगजन्य प्रत्यक्ष प्रमाविषे अतिव्याप्तिके करणेवासतैं संस्कारजन्य यह पद कथन कऱ्या है। यद्यपि इस द्वितीय लक्षणकी 'सोऽयं देवदत्तः' इस प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्षविषे अतिव्याप्ति होवै है। जिस कारणतैं सा प्रत्यभिज्ञा संप्रयोग संस्कार दोनों करिकै जन्य ही है। तथापि ता लक्षणविषे 'प्रत्यभिज्ञाभिन्नत्वे सति' इस विशेषणके कहणेतैं ता प्रत्यभिज्ञाविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं इति। शंका-आत्माविषे जो अंतःकरणादिकोंका अध्यास है ताके विषे संप्रयोगजन्यत्व संभवता नहीं। जिस कारणतैं ता अधिष्ठान आत्माके साथ चक्षु आदिक इंद्रियोंका संबंध है नहीं यातैं ता अंतःकरणादिकोंके अध्यासविषे ता उक्त लक्षणकी अव्याप्ति ही होवै है। समाधान-तहां संप्रयोग शब्द करिकै अधिष्ठान आत्माके सत्तादिक सामान्य अंशका ज्ञान ही विवक्षित है। सो सामान्य ज्ञान ता अंतःकरणादिकोंके अध्यासतैं पूर्व विद्यमान ही है। सो अधिष्ठान आत्माका सामान्य ज्ञान कोई इंद्रिय

कारिके जन्य नहीं किंतु आपणे स्वयं ज्योतिस्वभावतैं ही है । यातैं ता अंतःकरणादिकोंके अध्यासविषे ता उक्त लक्षणकी अव्याप्ति होवै नहीं इति । शंका—पूर्व दोषकूं तथा संस्कारकूं रजतादिरूप अर्थका जनकपणा कह्या सो संभवता नहीं । जिस कारणतैं ता दोष संस्कारकूं रजतादिकोंके ज्ञानका ही जनकपणा देख्या है । समाधान—ता उक्त दोष संस्कारके हुए भी ता रजतादिरूप अर्थकी तथा ताके ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है । ता दोष संस्कारके अभाव हुए ता रजतादिरूप अर्थकी तथा ताके ज्ञानकी उत्पत्ति होती नहीं इस प्रकारके अन्वय व्यतिरेक करिकै ता दोष संस्कारकूं अर्थाध्यास ज्ञानाध्यास दोनोंके प्रति कारणता सिद्ध होवै है । यातैं ता ज्ञानाध्यासकी न्याईं ता अर्थाध्यासकूं भी दोष संस्कार करिकै जन्यता संभवै है इति । इस उक्त अभिप्राय करिकै ही श्रीभगवान् भाष्यकारनें 'स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः' यह अध्यासका लक्षण कर्‍या है । यह अध्यासका लक्षण ज्ञानाध्यासका तथा अर्थाध्यासका साधारण है । तहां ज्ञानाध्यास पक्षविषे तौ ता भाष्य उक्त लक्षणका यह अर्थ करणा । स्मृति कहिये संस्कारजन्य होणेतैं स्मृतिके सदृश ऐसा जो परत्र पूर्व दृष्टावभास कहिये पूर्व दृष्ट अर्थके सजातीय अर्थका ज्ञान है ताका नाम ज्ञानाध्यास है । जैसे शुक्तिविषे 'इदं रजतम्' यह ज्ञान है और अर्थाध्यास पक्षविषे ता भाष्य उक्त लक्षणका यह अर्थ करणा । स्मृतिरूप कहिये प्रमाण अजन्यज्ञानका विषय ऐसा जो पूर्व दृष्ट अर्थके सजातीय अर्थ है ताका नाम अर्थाध्यास है । जैसे शुक्ति आदिकोंविषे रजतादिक हैं इति । इस प्रकार अध्यासके सिद्ध हुए प्रमातृत्व कर्तृत्व भोक्तृत्व आदिक बंधकूं अध्यस्त होणेतैं मिथ्यापणा बनि सके है । यातैं 'तरति शोकमात्मवित्' इस उक्त श्रुति वचनतैं श्रवण कर्‍या जो बंधविषे ज्ञान निवर्त्यत्व सो ता बंधके मिथ्यापणेतैं विना अनुपपन्न हुआ ता बंधके

मिथ्यापणेकूं कल्पना करावै है यह पूर्व उक्त श्रुतार्थापत्ति सिद्ध भई। इति अर्थापत्ति प्रमा निरूपणम् ॥ ९ ॥ अब षष्ठाभावप्रमाका निरूपण करे हैं। तहां 'योग्यानुपलब्धिकरणिकाप्रमा अभावप्रमा' अर्थ–योग्य ऐसी जा अनुपलब्धि है सा अनुपलब्धि है करणं जिस प्रमाका सा प्रमा अभावप्रमा कही जावै है। तहां जिसे अधिकरणविषे जिस अभावका ज्ञान होवैं है तिस अधिकरणविषे जो तिस अभावके प्रतियोगीका ज्ञान है ताका नाम उपलब्धि है तिस उपलब्धिकूं उपलंभ भी कहे हैं। ता उपलब्धिके अभावका नाम अनुपलब्धि है तथा अनुपलंभ है। सा अनुपलब्धि ही अभावप्रमाका करण होवैं है। जैसे जिस भूतलविषे 'घटोऽस्ति' या प्रकारका घटका ज्ञान होवै है तिस भूतलविषे 'घटो नास्ति' या प्रकारका घटाभावका ज्ञान होता नहीं। किंतु 'घटोऽस्ति' इस ज्ञानका जहां अभाव होवै है तहां ही 'घटो नास्ति' या प्रकारका घटाभावका ज्ञान होवै है। यातैं ता घटज्ञानके अभावरूप अनुपलब्धिविषे ता घटाभावविषयक प्रमाकी करणता अन्वयव्यतिरेक करिकै सिद्ध है, परंतु ता अनुपलब्धिविषे योग्यता भी अपेक्षित है। जो कदाचित् केवल ता अनुपलब्धिमात्रतैं ही सा अभावप्रमा उत्पन्न होती होवै तौ अंधकारविषे विद्यमान हुए घटकी भी उपलब्धि होती नहीं। यातैं घटके उपलब्धिका अभावरूप अनुपलब्धि तहां विद्यमान ही है। तथा आत्माविषे विद्यमान हुए धर्म अधर्मकी भी उपलब्धि होती नहीं।यातैं ता धर्माधर्मके उपलब्धिका अभावरूप अनुपलब्धि तहां विद्यमान ही है। यातैं ता अनुपलब्धि करिकै ता अंधकारविषे भी घटाभावकी प्रमा उत्पन्न होणी चाहिये तथा आत्माविषे धर्माधर्मके अभावकी प्रमा उत्पन्न होणी चाहिये। और उक्त स्थलविषे सा अभावविषयक प्रमा उत्पन्न होती नहीं यातैं अभाव प्रमाकी उत्पत्ति करणेविषे ता अनुपलब्धिकूं योग्यता-

की अपेक्षा अवश्य होवे है। तहां ता अनुपलब्धि करिके जिस अभावका ज्ञान होवे है ता अभावके प्रतियोगीका आरोप करिके जहां ता प्रतियोगीके उपलब्धिका अपादन कऱ्या जावे है ता उपलब्धिका अभावरूप जा अनुपलब्धि है सा योग्यानुपलब्धि कही जावे है जैसे प्रकाशवाले भूतलविषे 'यदि अत्र घटः स्यात् तर्हि उपलभ्येत' अर्थ—इस भूतलविषे जो कदाचित् घट होवै तौ इस भूतलकी न्याईं सो घट भी प्रतीत होवे परन्तु प्रतीत होता नहीं। यातैं इस भूतलविषे घट नहीं है इस प्रकार घटरूप प्रतियोगीके सत्त्वका आरोपण करिके ता घटके उपलब्धिका आपादन कऱ्या जावे है। यातैं ता घटके उपलब्धिका अभावरूप सा घटकी अनुपलब्धि योग्य कही जावे है। ता योग्यानुपलब्धितैं ता प्रकाशवाले भूतलविषे 'घटो नास्ति' या प्रकारकी अभावप्रमा उत्पन्न होवे है और अंधकारविषे विद्यमान हुआ भी घट प्रतीत होता नहीं और आत्माविषे विद्यमान हुआ भी धर्माधर्म प्रतीत होता नहीं। यातैं इस अंधकारविषे जो घट होवै तौ प्रतीत होवै तथा आत्माविषे जो धर्माधर्म होवै तौ प्रतीत होवै या प्रकारतैं घटादिरूप प्रतियोगीके सत्त्वका आरोपण करिके ताके उपलब्धिका आपादन कऱ्या जाता नहीं। यातैं ता अंधकारविषे घटकी अनुपलब्धि तथा आत्मा विषे धर्माधर्मकी अनुपलब्धि योग्य नहीं है। या कारणतैं अंधकारविषे घटके अभावका तथा आत्माविषे धर्माधर्मके अभावका अनुपलब्धितैं ज्ञान होता नहीं किंतु अनुमानादिकोंतैं ता अभावका ज्ञान होवै है। तहां सा उक्त योग्यानुपलब्धि तौ करण है और अभाव प्रमा फल है इति। इहां नैयायिक यह कहे हैं। पूर्व उक्त योग्यानुपलब्धि करिके सहकृत इंद्रियरूप प्रत्यक्ष प्रमा करिके ही भूतलादिकोंविषे घटादिकोंके अभावका ज्ञान होइ सके है। ता अभावके ज्ञानवासतैं ता योग्यानुपलब्धिकूं पृथक् प्रमाणता मानणेविषे

गौरव दोषकी ही प्राप्ति होवै है और जो कोई ऐसा कहै ता घटाभावका अधिकरण जो भूतल है तिसके साथ तो चक्षु इंद्रियका संयोग संबंध है परंतु ता घटाभावके साथ ता चक्षु इंद्रियका कोई संबंध है नहीं। यातें ता अभावके ज्ञानविषे इंद्रियकूं करणता संभवती नहीं सो यह कहणा भी असंगत है। काहेतें ता अभावके साथ इंद्रियका संयोगादिरूप संबंधके अभाव हुए भी विशेषण विशेष्यभावरूप संबंध विद्यमान है। ता संबंध करिकै ता अभावका इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष ज्ञान संभवै है इति। सो यह नैयायिकोंका मत समीचीन नहीं है। काहेतें चक्षु आदिक इंद्रियका भूतलादिक अधिकरणके साथ ही संयोगादिरूप संबंध है। ता अभावके साथ कोई भी संबंध है नहीं। यातें ते चक्षु आदिक इंद्रिय ता भूतलादिरूप अधिकरणके ज्ञानविषे ही चरितार्थ हैं। अभाव ज्ञानविषे ता इंद्रियकूं करणता नहीं है और नैयायिकोंनें जो इंद्रियका अभावके साथ विशेषण विशेष्यभाव सम्बंध मान्या है सो भी असंगत है। काहेतें दो पदार्थोंका परस्पर सम्बन्ध होवै है सो संबन्ध तिन दोनों संबंधियोंतैं भिन्न होवै है। तथा तिन दोनों संबंधियोंके आश्रित होवै है तथा एक होवै है जैसे चक्षु भूतलका संयोग संबंध ता चक्षु भूतलरूप दोनों संबंधियोंतैं भिन्न भी है। तथा तिन दोनों सम्बन्धियोंके आश्रित भी है तथा एक भी है। इस प्रकारका सम्बन्धका लक्षण ता विशेषण विशेष्य भावविषे घटता नहीं। काहेतें 'घटाभाववत् भूतलम्' इस प्रतीतिविषे घटाभाव विशेषण है और भूतल विशेष्य है। और 'भूतले घटाभावः' इस प्रतीतिविषे भूतल विशेषण है और घटाभाव विशेष्य है। तहां ता अभावविषे रही जा विशेषणता है ताका नाम विशेषण-भाव है। और ता अभावविषे रही जा विशेष्यता है ताका नाम विशे-

ष्यभाव है । तहां सो विशेषणभाव तौ ता विशेषणरूप ही है और सो विशेष्यभाव भी ता विशेष्यरूप ही है ता विशेषण विशेष्यतैं सो विशेषण विशेष्य भाव भिन्न नहीं है और अभेदविषे आधार आधेयभाव होता नहीं । यातैं सो विशेषण विशेष्यभाव ता अभावरूप संबंधितैं भिन्न नहीं है । तथा ता संबंधीके आश्रित भी नहीं है तथा विशेषणता विशेष्यता रूपतैं दो प्रकारका होणेतैं एक भी नहीं है। यातैं ता विशेषण विशेष्यभावकूं इंद्रिय सम्बन्धरूपता संभवती नहीं। किंवा अभावके प्रत्यक्षविषे जो विशेषणता सन्निकर्षकूं कारण मानिये तौ व्यवहित भूतलविषे स्थित अभावका भी चक्षु इंद्रिय करिकै प्रत्यक्ष होणा चाहिये । जिस कारणतैं ता भूतलविषे सो अभाव विशेषणरूपतैं विद्यमान ही है । तथा चक्षु इंद्रियका भी ता भूतलके साथ संयुक्त संयोगादिरूप परंपरा सम्बध विद्यमान ही है । किंवा विशेषणताकूं भी जो इंद्रियका सन्निकर्ष मानिये तौ भूतलविषे स्थित घटका तथा ता घटविषे स्थित रूपादिकोंका भी ता विशेषणता सन्निकर्ष करिकै ही प्रत्यक्ष सम्भवै है । यातैं नैयायिकोंनैं अंगीकार कर्‍ये जे समवायादिक सन्निकर्ष हैं तिन सर्वोंका लोप होवैगा । यातैं ता विशेषण विशेष्य भावविषे सन्निकर्ष रूपता सम्भवती नहीं। और चक्षु आदिक इंद्रिय स्वअसंबद्ध अर्थके प्रत्यक्षकूं उत्पन्न करते नहीं यातैं ता अभावके ज्ञानविषे इंद्रिय करण नहीं है किंतु सा उक्त योग्यानुपलब्धि ही करण है इति । अब प्रसंगतैं करणका लक्षण कहे हैं । 'असाधारणकारणं करणम्' अर्थ—जिस कार्यका जो असाधारण कारण होवै है सो असाधारण कारण तिस कार्यका करण कह्या जावै है । जैसे प्रत्यक्ष प्रमाके चक्षुआदिक इंद्रिय असाधारण कारण होणेतैं करण हैं तथा उक्त अभाव प्रमाका योग्यानुपलब्धि असाधारण कारण होणेतैं करण है । इस प्रकार अनुमानादिकोंविषे भी करणका लक्षण जानि लेणा । तहां कार्यमात्रके प्रति साधारण कारण-

रूप जे अदृष्ट देशकाल आदिक हैं तिनोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्ति करणेवासतैं ता लक्षणविषे 'असाधारण' यह पद कथन कऱ्या है इति। तहां यह उक्त कारणका लक्षण कारणकरिके घटित है। यातैं ता कारणके लक्षणकी सिद्धिवासतैं कारणका लक्षण कहे हैं। 'नियतपूर्ववृत्ति कारणम्' अर्थ—जो पदार्थ जिस कार्यकी उत्पत्तितैं पूर्व नियम करिके वर्त्तै है सो पदार्थ तिस कार्यके प्रति कारण कह्या जावै है। जैसे घटरूप कार्यकी उत्पत्तितैं पूर्वकालविषे मृत्तिका कुलाल दंड चक्र आदिक नियम करिकै रहे हैं। यातैं ते मृत्तिकादिक ता घटरूप कार्यकी प्रति कारण कहे जावै हैं इति। अब ता उक्त कारणका विभाग वर्णन करे हैं। सो उक्त कारण उपादान कारण १ निमित्तकारण २ इस भेद करिके दो प्रकारका होवै है। तहां 'कार्यान्वितं कारणमुपादानकारणम्' अर्थ—कार्यविषे अन्वित कहिये तादात्म्य भावकूं प्राप्त भया जो कारण है सो उपादानकारण कह्या जावै है। जैसे घटरूप कार्यविषे अन्वित मृत्तिका ता घटका उपादान कारण है और पटरूप कार्यविषे अन्वित तंतु ता पटका उपादान कारण है तहां घटादिक कार्यके निमित्त कारणरूप जे कुलालादिक हैं तिनोंविषे इस उपादानकारणके लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतैं ता लक्षणविषे 'कार्यान्वितम्' यह पद कथन कऱ्या है। ते कुलालादिक निमित्तकारण घटादिरूप कार्यविषे अन्वित होते नहीं। यातैं तिनोंविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं और घटादिक कार्यविषे अन्वित जे रूपादिक हैं तिनोंविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतैं 'कारणम्' यह पद कथन कऱ्या है। ते रूपादिक ता घटके कारण हैं नहीं। यातैं तिनोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति। और 'कार्यानुकूलव्यापारवत्कारणं निमित्तकार-

णम्' अर्थ-कार्यकी उत्पत्तिके अनुकूल जो व्यापार है ता व्यापारवाला कारण निमित्तकारण कह्या जावै है। जैसे घटादिक कार्यकी उत्पत्तिके अनुकूल व्यापारवाले कुलालादिकता घटादिरूप कार्यके निमित्त कारण हैं और ब्रह्म तौ इस जगत्‌रूप कार्यका उपादान कारण तथा निमित्तकारण दोनों हैं। यातैं ता ब्रह्मविषे इस निमित्त कारणके लक्षणकी तथा उक्त उपादान कारणके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवे नहीं। शंका-ब्रह्मकूं प्रपंचका उपादान कारणपणा संभवता नहीं। काहेतैं लोकविषे समान स्वभाववाले मृत्तिका घटादिकोंका ही परस्पर उपादान उपादेय भाव देख्या है। विलक्षण स्वभाववाले पदार्थोंका सो उपादान उपादेय भाव कहीं भी देखता नहीं और ब्रह्म तौ चेतनरूप है और कार्यप्रपंच जडरूप है यातैं ब्रह्मप्रपंच दोनों परस्पर विलक्षण हैं। यातैं ता विलक्षण ब्रह्मकूं ता विलक्षण प्रपंचका उपादान कारणपणा संभवता नहीं और जो ऐसा कहो जैसे इंद्रियोंके अगोचर धर्म अधर्मविषे श्रुति ही प्रमाण है तैसे इंद्रियोंके अगोचर ब्रह्मविषे भी श्रुति ही प्रमाण है और 'यतो वा इमानि भूतानि जायंते' इत्यादिक श्रुति ब्रह्मतैं जगत्‌की उत्पत्ति स्थिति लयकूं कथन करती हुई ता ब्रह्मकूं ही जगत्‌का उपादान कारण कहे है। यातैं ता श्रुतिके बलतैं ही ब्रह्मकूं जगत्‌की उपादान कारणता सिद्ध है और श्रुति सिद्ध अर्थविषे युक्तिकी अपेक्षा होती नहीं सो यह कहणा भी संभवता नहीं काहेतैं युक्तिके विरोध हुए ता श्रुति अर्थका निर्णय होइ सकता नहीं। जो कदाचित् युक्तिके विरोध हुए भी श्रुति अर्थका निर्णय होता होवे तौ ता विरोधके निवृत्त करणेवासतैं जो उत्तर मीमांसाका आरंभ कर्‍या है सो आरंभ ही व्यर्थ होवेगा यातैं उक्त युक्तितैं विरुद्ध होणेतैं चेतनब्रह्मकूं जड जगत्‌की उपादान कारणता संभवती नहीं किंवा ता ब्रह्मकूं जग-

त्की निमित्तकारणता भी संभवती नहीं काहेतें लोकविषे घटादिक कार्योंके निमित्तकारणरूप जे कुलालादिक हैं ते कुलालादिक संगवान् तथा कर्ता ही देखणेमें आवै हैं । और ब्रह्मकूं तो श्रुति असंग तथा अकर्ता कहे हैं । यातें ता असंग अकर्ता ब्रह्मकूं जगत्की निमित्त कारणता भी संभवती नहीं यातें ता जड प्रपंचका जड प्रधान ही उपादान कारण मान्या चाहिये और कपिलस्मृति भी ता जड प्रधानकूं ही जगत्का उपादान कारण कहे हैं। और पूर्व उक्त युक्तिके तथा कपिलस्मृतिके विरोध हुए सा उक्त श्रुति भी ता प्रधानकूं ही जगत्का उपादान कारण कहे हैं । यातें सो जड प्रधान ही जड प्रपंचका उपादान कारण है इति । समाधान—माया उपहित ब्रह्म ही इस प्रपंचका उपादान कारण है तथा निमित्त कारण है और विलक्षण-पदार्थोंका कार्य कारणभाव नहीं होता । यह जो पूर्व सांख्यियोंनें कह्या था सो भी असंगत है । काहेतें लोकविषे चेतन पुरुषतें अचेतन केश नखादिकोंकी उत्पत्ति देखणेविषे आवै है । तथा अचेतन गोमयतें चेतन वृश्चिकादिकोंकी उत्पत्ति देखणेविषे आवै है। यातें विलक्षण पदार्थोंका भी कार्यकारणभाव लोकविषे प्रसिद्ध है। यातें चेतन ब्रह्मनें अचेतन प्रपंचकी उत्पत्ति संभवै है। और 'सोऽकामयत बहुस्याम् ' इत्यादिक श्रुतिने ब्रह्मकूं ही जगत्का उपादान कारण कह्या है । ता श्रुतिके विरोध हुए केवल युक्तिकूं अप्रमाणरूपता होणेतें सो उत्तर मीमांसाका आरंभ भी संभवै है। जिस कारणतें श्रुति अनुकूल युक्ति ही प्रमाणरूप होवै है । श्रुतितें विरुद्ध केवल युक्ति प्रमाणरूप होती नहीं । यातें उक्त श्रुतितें सो ब्रह्म ही जगत्का उपादान कारण सिद्ध होवै है और सांख्यियोंने कल्पना कन्या जो प्रधान है सो जगत्का उपादान कारण होइ सकता नहीं ।

जिस कारणतैं सो प्रधान अचेतन है और अचेतन वस्तुकी स्वतः प्रवृत्ति संभवती नहीं किंतु अचेतन रथादिकोंकी चेतन पुरुषके अधीन ही प्रवृत्ति देखणविषे आवै है और दृष्ट अर्थके अनुसार ही अदृष्ट अर्थकी कल्पना होवे है। यातैं ता प्रधानकूं जगत्की उपादान कारणता संभवती नहीं और जैसे मनु आदिक स्मृति श्रुतिमूलक हैं तैसें सा कपिलस्मृति श्रुतिमूलक नहीं है। या कारणतैं अप्रमाणरूप है श्रुतिमूलक स्मृति ही प्रमाणरूप होवे है। यातैं ता कपिलस्मृतितैं भी ता प्रधानकूं जगत्की कारणता सिद्ध होवै नहीं। शंका–तुम्हारे मतविषे भी असंग ब्रह्मकूं जगत्की कारणता कैसे संभवगी। समाधान–हमारे मतविषे असंग निर्विकार शुद्ध ब्रह्म जगत्का कारण नहीं है किंतु अनिर्वचनीय माया उपहित ब्रह्म ही जगत्का उपादान कारण तथा निमित्तकारण है। तहां आवरण शक्तिविशिष्ट मायारूप उपाधिकी प्रधानता करिकै तौ सो ब्रह्म जगत्का उपादान कारण है और ज्ञानशक्तिविशिष्ट माया उपहित आपणे स्वरूपकी प्रधानता करिकै सो ब्रह्म जगत्का निमित्त कारण है। तहां श्रुति। 'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय' अर्थ–सो माया उपहित ब्रह्म सृष्टितैं पूर्व भावी प्रपंच विषयक ज्ञानरूप ईक्षणकूं करता भया जो मैं परमेश्वर बहुत रूप होइकें उत्पन्न होवों इति। तहां इस श्रुतिविषे 'तदैक्षत' इस वचन करिकै ब्रह्मकूं जगत्की उत्पत्तितैं पूर्व ईक्षण कर्त्तृत्व कथन कऱ्या। ता करिकै ब्रह्मकूं जगत्का निमित्त कारणपणा सिद्ध होवै है। जैसे घटकी उत्पत्तितैं पूर्व ता घटकी उत्पत्तिके अनुकूल ज्ञानवाले कुलालादिकोंकूं ता घटके प्रति निमित्तकारणता ही होवै है। और 'बहुस्यां प्रजायेय' इस वचन करिकै ब्रह्मका बहुतरूप होणा कथन कऱ्या ता करिकै ब्रह्मकूं जगत्का उपादान कारणपणा सिद्ध होवै है जैसे घट शरावादिक बहुतरूप होणेहारी मृत्तिकाकूं तिन घट शरावादिक कार्योंका उपा-

दान कारणपणा प्रसिद्ध ही है इति। किंवा श्रीव्यासभगवान्‌ने भी ब्रह्मसूत्रोंविषे ता मायाउपहित ब्रह्मकूं ही जगत्‌का उपादान कारण तथा निमित्त कारण कह्या है। तहां सूत्र 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टांतानुपरोधात्' अर्थ—सो माया उपहित ब्रह्म ही जगत्‌का उपादान कारण तथा निमित्त कारण है। ऐसा मानणेविषे ही श्रुति उक्त प्रतिज्ञा तथा दृष्टांत संभवे है तहां श्रुतिविषे एक ब्रह्मके ज्ञानतैं जो सर्व जगत्‌का ज्ञान कथन कऱ्या है ताका नाम प्रतिज्ञा है और एक मृत्तिकाके ज्ञानतैं जो ता मृतिकाके घट शरावादिक सर्व कार्योंका ज्ञान कथन कऱ्या है ताका नाम दृष्टांत है। सा प्रतिज्ञा तथा दृष्टांत तबी संभवै है जबी ता ब्रह्मकूं सर्व जगत्‌का उपादान कारणके ज्ञानतैं ही कार्यका ज्ञान होवे है यातैं ता सूत्रतैं भी ब्रह्मकूं जगत्‌का अभिन्न निमित्त उपादान कारणपणा ही सिद्ध होवै है। इस अर्थकूं प्रथम परिच्छेदविषे ऊर्णनाभिके दृष्टांततैं विस्तारतैं कथन करि आये हैं इति। अब ता कारणका अन्य प्रकारतैं विभाग वर्णन करे हैं। सो उक्त कारण साधारण १ असाधारण २ इस भेद करिके पुनः दो प्रकारका होवै है। तहां कार्यमात्रका उत्पादक जो कारण है सो साधारण कारण कह्या जावै है। जैसे कार्यमात्रके जनक अदृष्ट देशकाल आदिक हैं और कार्य विशेषका उत्पादक जो कारण है सो असाधारण कारण कह्या जावै है जैसे चाक्षुषादिक प्रमाविषे चक्षु आदिक असाधारण कारण है इसी प्रकार घटाभावविषयक प्रम विषे उक्त घटानुपलब्धिकूं असाधारण कारणता होणतैं कारणरूपता संभवै है इति। अब ता अभावप्रमाके विषयभूत अभावका स्वरूप वर्णन करे हैं। तहां 'नञर्थोल्लिखितधीविषयः अभावः' अर्थ—नञ् शब्दके अर्थकूं विषय करणेहारी जा नास्ति या प्रकारकी प्रतीति है ता प्रतीतिका विषय अभाव कह्या जावै है। जैसे

'भूतले घटो नास्ति' या प्रकारकी प्रतीतिका विषय भूतलविषे घटका अभाव है इति । और सो उक्त अभाव एक अत्यंताभाव ही है । प्रागभावादिक भेद करिकै ता अभावकी चारि प्रकारताविषे कोई भी प्रमाण नहीं है । इहां नैयायिक तौ ऐसा कहे हैं । सो अभाव प्रागभाव १ प्रध्वंसाभाव २ अत्यंताभाव ३ अन्योन्याभाव ४ इन भेदों करिकै चारि प्रकारका होवै है । तहां घटकी उत्पत्तितैं पूर्व ता घटके अवयवरूप कपालोंविषे 'घटो भविष्यति' या प्रकारकी प्रतीति होवै है ता प्रतीतितैं तिन कपालोंविषे ता घटका प्रागभाव सिद्ध होवै है और मुद्गरप्रहारादिकों करिकै ता घटके भग्न हुएतैं अनंतर तिन कपालोंविषे 'घटो ध्वस्तः' या प्रकारकी प्रतीति होवै है । ता प्रतीतितैं तिन कपालोंविषे ता घटका प्रध्वंसाभाव सिद्ध होवै है और घटके अविद्यमान कालविषे 'भूतले घटो नास्ति' या प्रकारकी प्रतीति होवै है ता प्रतीतितैं ता भूतलविषे ता घटका अत्यंताभाव सिद्ध होवै है और भूतलविषे घटके विद्यमान हुए भी 'भूतले न घटः' या प्रकारकी प्रतीति होवै है ता प्रतीतितैं ता भूतलविषे ता घटका भेदरूप अन्योन्याभाव सिद्ध होवै है । इस प्रकारकी विलक्षण प्रतीतियोंके बलतैं ता एक ही घटका चारि प्रकारका अभाव सिद्ध होवै है । तहां प्रागभाव तौ अनादि होवै है तथा नाशवान् होवै है और प्रध्वंसाभाव तौ उत्पत्तिवाला होवै है तथा नाशतैं रहित होवै है । और अत्यंताभाव तथा अन्योन्याभाव यह दोनों अभाव उत्पत्ति विनाशतैं रहित होणेतैं नित्य होवै हैं । इन चारि अभावोंका विस्तारतैं निरूपण न्यायप्रकाशके चतुर्थ परिच्छेदविषे कऱ्या है सो तहांसे जानि लेणा इति । सो यह नैयायिकोंका मत समीचीन नहीं है । काहेतैं 'घटो भविष्यति' यह उक्त प्रतीति अभाववाचक न शब्दतैं रहित होणेतैं ता प्रागभावकूं विषय करती नहीं । किंतु

आगे भविष्यत्कालविषे होणेहारा जो घटका सत्ताके साथ संबंध है ता सत्तासंबंधकूं ही सा प्रतीति विषय करे है। यातैं ता प्रतीतितैं घटका प्रागभाव सिद्ध होइ सके नहीं किंवा ता घटका जो उत्पत्तितैं पूर्व प्रागभाव मानिये तौ उत्पत्तितैं पूर्व असत् होणेतैं ता घटकी उत्पत्ति ही नहीं होवैगी। जो कदाचित् असत्की भी उत्पत्ति होती होवै तौ असत् शशविषाण वंध्यापुत्रादिकोंकी भी उत्पत्ति होणी चाहिये। शंका-जैसे असत्की उत्पत्ति नहीं संभवती तैसे सत्की भी उत्पत्ति नहीं संभवती। काहेतैं जिस घटकी उत्पत्तिवासतैं कुलाल दंडचक्रादि कारकोंका व्यापार होवै है सो घट तौ तुम्हारे मतविषे आपणी उत्पत्तितैं पूर्व ही सिद्ध है। यातैं सो कारक व्यापार व्यर्थ ही होवैगा। समाधान-यद्यपि सो घट आपणी उत्पत्तितैं पूर्व मृत्तिकादि कारणरूप करिकै विद्यमान ही है तथापि ता कारक व्यापारतैं पूर्व ता घटकी अभिव्यक्ति होती नहीं और ता कारक व्यापारतैं अनन्तर ता घटकी अभिव्यक्ति होवै है। यातैं ता घटरूप कार्यकी अभिव्यंजकतामात्र करिकै ता कारक व्यापारकूं भी अथवत्ता बनि सकै है। किंवा उत्पत्तितैं कार्यकी कारणरूप करिकै सत्ता केवल उक्त युक्ति करिकै ही सिद्ध नहीं है। किंतु श्रुति सूत्र करिकै भी सिद्ध है तहां श्रुति। 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' अर्थ-हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु! यह दृश्यमान कार्य जगत् आपणी उत्पत्तितैं पूर्व सत् होता भया अर्थात् परम कारण परमात्मरूप करिकै सत् होता भया इति। तहां सूत्र। 'सत्त्वाच्चापरस्य' अर्थ-इस प्रपंचरूप कार्यका आपणी उत्पत्तिपूर्व कारणरूप करिकै सत्त्व होणेतैं इस वर्तमानकालविषे भी ता परम कारणतैं अनन्यत्व ही है अर्थात् ता परमकारणरूप परमात्मातैं भिन्नरूप करिकै अभाव ही है इति। जो कदाचित् ता

प्रागभावकूं अंगीकार करिये तौ इस उक्त श्रुति सूत्रका विरोध प्राप्त होवैगा। यातैं श्रुतिसूत्रतैं विरुद्ध होणेतैं सो प्रागभाव अंगीकार करणे योग्य नहीं है इति। किंवा ता प्रागभावकी न्याईं ता प्रध्वंसाभावविषे भी कोई प्रमाण नहीं है। काहेतैं ब्रह्मसाक्षात्कारतैं पूर्व इस कार्य प्रपंचका अत्यंत नाश होता नहीं। किंतु बीजांकुरकी न्याईं सृष्टिप्रलयकूं प्रवाहरूप करिके अनादिपणा ही होवै है। अर्थात् जैसे बीजतैं अंकुर होवै है ता अंकुरतैं पुनः बीज होवै है ता बीजतैं पुनः अंकुर होवै है तैसे सृष्टितैं अनन्तर प्रलय होवै है ता प्रलयतैं अनन्तर पुनः सृष्टि होवै है ता सृष्टितैं अनन्तर पुनः प्रलय होवै है। इस प्रकारतैं ते सृष्टि प्रलय प्रवाहरूप करिके अनादि होवै है और प्रलयकालविषे भी सो कार्य प्रपंच अत्यन्त नाश होता नहीं किंतु आपणे कारणविषे तिरोभूत हुआ रहे है। इस प्रकार इदानीं कालविषे भी भग्न हुए घटादिक कार्य आपणे कपालादिरूप कारणोंविषे तिरोभूत हुए रहे हैं। तिसी तिरोभाव अवस्थाकूं 'घटो ध्वस्तः' यह उक्त प्रतीति विषय करे है। यातैं ता उक्त प्रतीतितैं ता घटके प्रध्वंसाभावकी सिद्धि होइ सकै नहीं। किंवा प्रलयादिकोंविषे जो कदाचित् कार्यका अत्यन्त नाश मानिये तौ 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्। आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः' इत्यादिक श्रुति स्मृति वचनोंने जो सृष्टितैं पूर्व लीन हुए कार्यका कारणरूप करिके सत्त्व कथन कर्‍या है सो असंगत होवैगा। यातैं तिन श्रुति स्मृतितैं विरुद्ध होणेतैं सो प्रध्वंसाभाव भी अंगीकार करणे योग्य नहीं है इति। किंवा नैयायिकोंने अत्यंताभावकूं तथा अन्योन्याभावकूं जो उत्पत्ति विनाशतैं रहित नित्य मान्या है सो तिनोंका कहणा भी असंगत है। काहेतैं 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' यह श्रुति तौ ब्रह्मकूं सर्व द्वैतप्रपंचतैं रहित कहे है। और 'नेह नानास्ति किंचन'। यह श्रुति ता

ब्रह्मविषे सर्व द्वैत प्रपंचका निषेध करे है । और 'अतोऽन्यदार्त्तम्' यह श्रुति ता ब्रह्मतैं भिन्न सर्व प्रपंचकूं मिथ्या कहे है । जो कदाचित् ता अत्यंताभावकूं तथा अनोन्याभावकूं नित्य मानिये तो इन सर्व श्रुतियोंका विरोध होवैगा । यातैं तिन दोनों अभावोंकूं भी अनित्य मान्या चाहिये किंवा ता अभावके साथ चक्षुआदिक इंद्रियोंका कोई प्रकारका भी संबंध बनि सकता नहीं यह वार्त्ता पूर्व कथन करि आये हैं । यातैं 'भूतले घटो नास्ति' इस उक्त प्रत्यक्ष प्रतीति करिके ता नित्य अत्यंताभावकी सिद्धि संभवती नहीं । और 'घटः पटो न' इत्यादिक प्रतीति ता अन्योन्याभावकूं विषय करती नहीं किंतु घट पट दोनोंके अभेदका जो अत्यंताभाव है तिसकूं ही सा प्रतीति विषय करे है । यातैं ता उक्त प्रतीतितैं अन्योन्याभावकी सिद्धि होवै नहीं और इस भेदरूप अन्योन्याभावका प्रथम परिच्छेदविषे भी विस्तारतैं खंडन करि आये हैं । इस प्रकार प्रागभाव प्रध्वंसाभाव अन्योन्याभाव इन तीन अभावोंके अनिरूपण हुए एक अत्यंताभाव ही मान्या चाहिये और सो अत्यंताभावकी पारमार्थिक १ व्यावहारिक २ इस भेद करिके दो प्रकारका होवे है । तहां 'नेह नानाऽस्ति किंचन' इस श्रुतिनें प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मविषे बोधन कर्‍या जो जीव ईश्वर जगतरूप द्वैत प्रपंचका अत्यंताभाव है सो अत्यंताभाव पारमार्थिक कह्या जावे है । शंका—ता उक्त अत्यंताभावविषे पारमार्थिकपणा संभवता नहीं । काहेतैं प्रतियोगीकी सत्ताके अधीन ही अभावकी सत्ता होवे है और प्रपंचरूप प्रतियोगी कल्पित है यातैं ता प्रपंचका अत्यंताभाव भी कल्पित ही होवेगा किंवा ता प्रपंचके अत्यंताभावकूं जो पारमार्थिक मानोगे तो ब्रह्मकूं अद्वितीयरूप कहणेहारी एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म इस श्रुतिका भी विरोध होवैगा । समाधान-कल्पित वस्तुका अभाव

अधिष्ठानरूप ही होवै है । अधिष्ठानतैं भिन्न होता नहीं । यातैं कल्पित प्रपंचका अत्यंताभाव भी अधिष्ठान ब्रह्मरूप ही है ता अधिष्ठानतैं भिन्न नहीं है और ता अधिष्ठान ब्रह्मका पारमार्थिकपणा श्रुति स्मृतियों करिकै सिद्ध ही है यातैं अधिष्ठानरूपता करिकै ता अत्यंताभावविषे भी सो पारमार्थिकपणा संभवै है और सो अत्यंताभाव ता अधिष्ठानब्रह्मतैं भिन्न नहीं है यातैं ता अद्वैत बोधक श्रुतिका भी विरोध होवै नहीं शंका–ता अत्यंताभावकूं जो अधिष्ठानरूप मानोंगे तौ ता अधिष्ठानका अनुपलब्धि प्रमाण करिकै ज्ञान संभवता नहीं । यातैं तुमारे मतविषे ता अनुपलब्धि प्रमाणका अंगीकार ही व्यर्थ होवैगा । समाधान–भूतलादिकोंविषे जो घटादिकोंका अत्यंताभाव है ता अत्यंताभावकूं हम अधिष्ठानरूप मानते नहीं किंतु व्यावहारिक घटादिकोंका सो व्यावहारिक अत्यंताभाव अधिष्ठानतैं भिन्न ही होवै है । तिस व्यावहारिक अत्यंताभावके ज्ञानवास्तैं ही पूर्व अनुपलब्धि प्रमाण हमने अंगीकार कऱ्या है । यातैं अनुपलब्धि प्रमाणका अंगीकार व्यर्थ नहीं है इति इहां कैएक ग्रंथकार तौ यह कहे हैं । 'नेह नानाऽस्ति किंचन' इस श्रुतिने कथन कऱ्या जो ब्रह्मविषे प्रपंचका पारमार्थिक अत्यंताभाव है सो अत्यंताभाव ता अधिष्ठान ब्रह्मतैं भिन्न ही है अधिष्ठान स्वरूप नहीं है । जिस कारणतैं भाव अभावकी एकता संभवती नहीं और 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इस श्रुतिका तौ भावाद्वैतविषे तात्पर्य है । अर्थात् ब्रह्मतैं भिन्न दूसरा कोई भाव पदार्थ नहीं है । यातैं ब्रह्मतैं भिन्न ता अत्यंताभावके विद्यमान हुए भी ता अद्वैत श्रुतिका विरोध होवैं नहीं इति । सो यह मत समीचीन नहीं है । काहेतैं 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' यह श्रुति ब्रह्मकूं भाव अभावरूप सर्व द्वैत प्रपंचतैं' रहित कहे है । ता श्रुतिका

संकोच करिकै केवल भावाद्वैतपरता मानणेविषे कोई भी प्रमाण नहीं है और प्रपंचके अत्यंताभावकूं जो अधिष्ठान ब्रह्मतैं भिन्न मानिये ता अत्यंताभावविषे पारमार्थिकपणा भी नहीं संभवैगा। जिस कारणतैं अधिष्ठानतैं भिन्न अभाव प्रतियोगीकी सत्ताके समान सत्तावाला ही नियमतैं होवे है और प्रपंचरूप प्रतियोगी कल्पित है। यातैं ता कल्पित प्रपंचका अत्यंताभाव भी कल्पित ही होवेगा यातैं सो उक्त पक्ष समीचीन नहीं है इति। अब दूसरे व्यावहारिक अत्यंताभावका निरूपण करे है। तहां भूतलादिकोंविषे जो घटादिकोंका अत्यंताभाव है जिसकूं 'भूतले घटो नास्ति' इत्यादिक प्रतीति विषय करे है। सो अत्यंताभाव व्यावहारिक अत्यंताभाव कह्या जावे है। यह व्यावहारिक अत्यंताभाव ही पूर्व उक्त योग्यानुपलब्धि करिकै ग्रहण होवे है और ता भूतलविषे जो घटके अभेदका अत्यंताभाव है ता अत्यंताभावकूं ही नैयायिकोंने 'भूतले घटो न' इस प्रतीतिका विषयभेद कहा है तथा अन्योन्याभाव कहा है यातैं सो भेदरूप अन्योन्याभाव ता अत्यंताभावतैं भिन्न नहीं है। किंवा श्रुतिके यथार्थ तात्पर्यज्ञानतैं रहित नैयायिकोंने जो जीव ईश्वरादिकोंका भेद अंगीकार करा है तथा भूतलादिकोंविषे घटादिकोंका अत्यंताभाव अंगीकार करा है ते सर्व अभाव अनित्य ही होवे हैं। कोई भी अभाव नित्य होता नहीं। काहेतैं ब्रह्मतैं भिन्न जितनाकि भाव अभावरूप जगत् है सर्व जगत् सो अविद्याका कार्य है और तत्त्वमसि आदिक महावाक्यजन्य ब्रह्मात्मसाक्षात्कार करिकै ता अविद्याका नाश होइ जावे है। ता अविद्याके नाश हुए ता अविद्याके कार्यरूप प्रपंचका भी नाश होइ जावै है। इस प्रकार सर्व अनात्म प्रपंचकूं आत्मज्ञान करिकै निवृत्ति होणेतैं ता अभावका अनित्यपणा ही सिद्ध होवे है इति। इहां

केएक ग्रंथकार तौ न्यायशास्त्रकारोंके बुद्धिकूं अनुसरण करते हुए ता उक्त अभावकूं प्रागभाव १ प्रध्वंसाभाव २ अत्यंताभाव ३ अन्योन्याभाव४इस भेद करिकै चारि प्रकारका माने हैं। अब तिन चारों अभावोंके लक्षण कहे हैं। तहां आपणी उत्पत्ति पूर्व कार्यका जो आपणे उपादान करणविषे अभाव है ताका नाम प्रागभाव है। जैसे घटादिक कार्योंका आपणी उत्पत्तितैं पूर्व मृत्तिकादिक कारणोंविषे प्रागभाव है अर्थात् जो अभाव अनादि होवै है तथा आपणे प्रतियोगीका जनक होवै सो अभाव प्रागभाव कह्या जावै है। अथवा जो अभाव अनादि होवै है तथा नाशवान् होवै है सो अभाव प्रागभाव कह्या जावै है इति। और उत्पन्न हुए कार्यका जो आपणे उपादान कारणविषे अभाव है सो अभाव प्रध्वंसाभाव कह्या जावै है। जैसे मुद्गरादिकोंके प्रहारतैं अनन्तर कपालादिक कारणविषे घटादिक कार्यका प्रध्वंसाभाव है इति। और आपणे प्रतियोगीके असमानाधिकरण जो अभाव है सो अभाव अत्यंताभाव कह्या जावै है। जैसे भूतलादिकोंविषे घटादिकोंका अत्यंताभाव है। सो अत्यंताभाव आपणे प्रतियोगीके अधिकरणतैं भिन्न अधिकरणविषे ही रहे है इति। और जो अभाव आपणे प्रतियोगीके समानाधिकरण होवै है अथवा जिस अभावका तादात्म्य ही प्रतियोगी होवै है सो अभाव अन्योन्याभाव कह्या जावै है। इसी अन्योन्याभावकूं भेद भी कहे हैं। जैसे भूतलादिकोंविषे घटका अन्योन्याभावरूप भेद है सो अन्योन्याभाव ता भूतलविषे घटके विद्यमान कालविषे भी रहे है। यातैं सो अन्योन्याभाव प्रतियोगी समानाधिकरण कह्या जावै है इति। ते प्रागभावादिक सर्व अभाव मायाका कार्य होणेतैं अनित्य ही हैं। यातैं अत्यंताभाव अन्योन्याभाव यह दोनों अभाव तो नित्य हैं और प्रागभाव प्रध्वंसाभाव यह दोनों अभाव अनित्य हैं। यह नैयायिकोंका कहणा सर्व प्रपंचका निषेध करणे-

द्वारी श्रुतितैं विरुद्ध होणेतैं असंगत है इति।'अभावप्रमा निरूपणम्' ॥ ६॥ इस प्रकार पूर्व निरूपण करी जा प्रत्यक्ष १ अनुमिति २ उपमिति ३ शाब्द ४ अर्थापत्ति ५ अभावप्रमा ६ यह षट् प्रकारकी प्रमा है ता सर्व प्रमा करिकै आवरण शक्तिसहित अज्ञानकी ही निवृत्ति होवै है। ताके विषे भी अनुमिति आदिक परोक्ष प्रमा करिकै तो असत्त्वापादक आवरण शक्तिविशिष्ट अज्ञानकी निवृत्ति होवै है और अपरोक्ष प्रमा करिकै तौ अभावापादक आवरण शक्तिविशिष्ट अज्ञानकी निवृत्ति होवै है। ता आवरण शक्ति विशिष्ट अज्ञानकी निवृत्तितैं अनंतर घटादिकविषयोंका भान होवै है। इस प्रकार 'तत्त्वमसि' आदिक महावाक्यजन्य 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका अपरोक्षप्रमा करिकै ब्रह्मके आवरक मूलाज्ञानकी निवृत्ति हुए इस अधिकारी पुरुषकूं ता ब्रह्मका साक्षात्कार संभवै है। यातैं इस परिच्छेदविषे प्रमाका निरूपण सार्थक है इति।

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामिउद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानदगिरिणा विरचित प्राकृततत्त्वानुसंधाने द्वितीय परिच्छेदः समाप्तः॥ २॥



ॐ श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

तत्त्वानुसंधान-

तृतीयपरिच्छेदः ।



तहां पूर्व द्वितीय परिच्छेदके आदिविषे प्रमा १ अप्रमा २ इस भेद-करिकै दो प्रकारकी वृत्ति कथन करी थी । ताकेविषे प्रथम प्रमावृत्तिका तौ प्रमाणसहित तथा फलसहित ता द्वितीय परिच्छेदविषे विस्तारतैं निरूपण कऱ्या है अब इस तृतीय परिच्छेदविषे दूसरी अप्रमा वृत्तिका विस्तारतैं निरूपण करते हैं । शंका—'अहं ब्रह्मास्मि' यह प्रमा वृत्ति तौ अज्ञानकी वृत्ति करिकै इस अधिकारी पुरुषकूं ब्रह्मभावकी प्राप्ति करे है । यातैं ता प्रमावृत्तिका तौ ग्रंथविषे निरूपण करणा उचित है और अप्रमा वृत्तितैं इस अधिकारी पुरुषका कोई प्रयोजन सिद्ध होता नहीं । यातैं ग्रंथविषे ता अप्रमावृत्तिका निरूपण करणा निष्फल है । समाधान—प्रतिबंधतैं रहित हुई प्रमाकूं ही अज्ञानका निवर्त्तकपणा होवै है यातैं सो प्रतिबंध तथा ता प्रतिबंधके निवृत्तिका उपाय दोनों इस अधिकारी पुरुषने अवश्य जान्ये चाहिये । तहां असंभावना विपरीतभावना यह दोनों प्रतिबंध कहे जावै हैं । और श्रवण मनन निदिध्यासन यह तीनों ता प्रतिबंधके निवृत्तिके उपाय हैं तहां असंभावना विपरीतभावनाकूं आत्मज्ञानकी प्रतिबंधकता पराशरमुनिने भी कही है । तहां श्लोक। 'भावना विपरीता या या चासंभावना शुक । कुरुते प्रतिबंधं सा तत्त्वज्ञानस्य नापरम्' अर्थ—हे शुक ! विपरीतभावना तथा असंभावना यह दोनों ही आत्मज्ञानका प्रतिबंध करे हैं । दूसरा कोई प्रतिबध करता नहीं । यातैं अधिकारी पुरुषने श्रवणादिकों करिकै ता प्रतिबंधकी निवृत्ति

अवश्य करी चाहिये इति। किंवा श्रवणादिकोंकूं जो आत्मज्ञानकी साधनता है सो भी ता प्रतिबंधकी निवृत्तिद्वारा ही है साक्षात् नहीं और सा प्रतिबंधरूप असंभावना तथा विपरीतभावना वक्ष्यमाण-रीतिसे अप्रमाज्ञानके अंतर्भूत ही हैं। यातें सा अप्रमावृत्ति अवश्य निरूपण करणेयोग्य है। इस अभिप्राय करिके इस तृतीय परिच्छे-दविषे ता अप्रमा वृत्तिका विस्तारतें निरूपण करे हैं। तहां 'प्रमाभि-न्नं ज्ञानमप्रमा' अर्थ–पूर्व द्वितीय परिच्छेदविषे कथन करी जा प्रमा है ता प्रमातें भिन्न जो ज्ञान है सो अप्रमा कह्या जावे है।जैसे शुक्ति-विषे'इदं रजतम्' इत्यादिक ज्ञान ता प्रमाज्ञानतें भिन्न होणेतें अप्रमा कह्या जावे है। तहां 'ज्ञानमप्रमा' इतनामात्र ही जो ता अप्रमाका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'प्रमाभिन्नम्' यह पद नहीं कथन करते तौ प्रमाज्ञानविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतें ता लक्षणविषे 'प्रमाभिन्नम्' यह पद कथन कऱ्या है, ता प्रमाज्ञानविषे प्रमातें भिन्नपणा है नहीं। यातें ता प्रमाज्ञानविषे ता उक्त लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं। किंवा 'प्रमाभिन्नमप्रमा' इतनामात्र ही जो ता अप्रमाका लक्षण करते ता लक्षणविषे 'ज्ञानम्' यह पद नहीं कथन करते तो प्रमाज्ञानतें भिन्न जे घटादिक हैं तिनोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवा-सतें ता लक्षणविषे'ज्ञानम्'यह पद कथन कऱ्या है तिन घटादिकों-विषे ज्ञानरूपता है नहीं। यातें तिन घटादिकोंविषे ता अप्रमाके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं इति। अब ता अप्रमा वृत्तिका विभाग वर्णन करे हैं। सा उक्त अप्रमावृत्ति स्मृति १ अनुभूति २ इस भेद करिके दो प्रकारकी होवै है। तहां 'संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः', अर्थ–संस्कारमात्र करिके जन्य जो ज्ञान है सो स्मृति कह्या

जावै है । जैसे ' सा मे माता स मे पिता ' इत्यादिक ज्ञान संस्कारमात्रजन्य होणेतैं स्मृति कह्या जावे है । तहां इस लक्षणविषे ' मात्र ' यह पद जो नहीं कथन करते तौ 'सोऽयं देवदत्तः' इस प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्षविषे ता स्मृतिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। जिस कारणतैं सो प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष भी संस्कार करिकै जन्य ही होवै है । ता अतिव्याप्तिदोषके निवृत्त करणेवास्तैं ता लक्षणविषे ' मात्र ' यह पद कथन कऱ्या है । तहां सो प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष केवल संस्कार करिकै जन्य होता नहीं किंतु ता संस्कार सहकृत इंद्रियकरिकै जन्य होवै है । यातैं ता मात्रपदके कहणेनैं ता प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्षविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं किंवा ता लक्षणविषे 'ज्ञानम्' यह पद जो नहीं कथन करते तौ ता संस्काररूप प्रतियोगी करिकै जन्य जो ता संस्कारका ध्वंस है ताकेविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती । ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवास्तैं ता लक्षणविषे 'ज्ञानम्' यह पद कथन कऱ्या है । तहां ता ध्वंसविषे ज्ञानरूपता है नहीं । यातैं ता ध्वंसविषे ता स्मृतिके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवै नहीं । इहां यह अभिप्राय है । सो संस्कार वेग १ भावना २ स्थितिस्थापक ३ इन भेदों करिकै तीन प्रकारका होवै है । तहां जो संस्कार क्रिया करिकै जन्य होवै है तथा अन्य क्रियाका जनक होवै है सो संस्कार वेग कह्या जावै है । सो वेगनामा संस्कार बाणादिकोंविषे रहे है और जो संस्कार अनुभव ज्ञान करिकै जन्य होवै है और स्मृति ज्ञानका जनक होवै है सो संस्कार भावना कह्या जावै है । सो भावनाख्य संस्कार वेदांत सिद्धांतविषे तौ अंतःकरणमें ही रहे है और नैयायिकोंके मतविषे आत्मामें रहे है । जिस कारणतैं वेदांतियोंकूं अभिमत जो अहंकार है तिसकूं ही ते नैयायिक आत्मा माने हैं और अन्यथा कऱ्ये हुए वस्तुकी पूर्वकी न्याईं स्थिति करावणेहारा

जो संस्कार है सो स्थिति स्थापक कह्या जावै है। सो स्थिति स्थापक नामा संस्कार धनुष शाखादिकोंविषे रहे है। इन तीन प्रकारके संस्कारोंका न्यायप्रकाशके तृतीय परिच्छेदविषे विस्तारतैं निरूपण कर्या है सो तहांसे जानि लेणा। तहां वेग स्थिति स्थापक इन दोनों संस्कारोंकूं यद्यपि क्रियाका ही जनकपणा होवै है तथापि ता भावनाख्य संस्कारकूं ज्ञानका जनकपणा होवै है। यातैं ता स्मृतिके लक्षणविषे संस्कार शब्द करिकै सो भावनाख्य संस्कार ही विवक्षित है यातैं सो उक्त स्मृतिका लक्षण संभवै है इति। अब ता स्मृतिके विभागका निरूपण करे हैं। सा उक्त स्मृति यथार्थ १ अयथार्थ २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है। तहां यथार्थ अनुभव जन्य संस्कारतैं उत्पन्न भई जा स्मृति है सा यथार्थ स्मृति कही जावै है और अयथार्थ अनुभवजन्य संस्कारतैं उत्पन्न भई जा स्मृति है सा अयथार्थ स्मृति कही जावै है। तहां सा यथार्थ स्मृति भी अनात्मस्मृति १ आत्मस्मृति २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है। तहां 'व्यावहारिकः प्रपंचः मिथ्या दृश्यत्वात् शुक्तिरूप्यवत्' इस अनुमान करिके जन्य जो प्रपंचके मिथ्यात्वका अनुभव है ता अनुभवजन्य संस्कारतैं इस अधिकारी पुरुषकूं उत्पन्न भई जा प्रपंचके मिथ्यात्वकी स्मृति है सा स्मृति यथार्थ अनात्म स्मृति कही जावै है और 'तत्त्वमसि' इत्यादिक महावाक्यतैं जन्य जो 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका अनुभव है ता अनुभवजन्य संस्कारतैं इस अधिकारी पुरुषकूं उत्पन्न भई जा प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकी स्मृति है सा स्मृति यथार्थ आत्मस्मृति कही जावै है इति। इस प्रकार दूसरी अयथार्थ स्मृति भी अनात्मस्मृति १ आत्मस्मृति २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है। तहां 'वाचारंभणं विकारो नामधेयम्। अतोऽन्यदार्त्तम्। मायामात्रमिदं द्वैतम्' इत्यादिक श्रुतियों

करिके तथा पूर्व उक्त अनुमान करिके इस प्रपंचका मिथ्यापणा ही सिद्ध है। ऐसे मिथ्या प्रपंचविषे जो सत्यपणेका अनुभव है सो भ्रमरूपही है। ता अयथार्थ अनुभवजन्य संस्कारतें उत्पन्न हुई जा ता प्रपंचके सत्यपणेकी स्मृति है सा स्मृति अयथार्थ अनात्म-स्मृति कही जावै है। और अहंकारतें आदि लेके स्थूल देहपर्यंत सर्व अनात्मपदार्थ आत्मभावतें रहित हैं। यातें तिन अहंकारादि-कोंविषे जा आत्मत्व बुद्धि है सो अयथार्थ अनुभव ही है। ता अय-थार्थ अनुभवजन्य संस्कारतें उत्पन्न भई जा तिन अहंकारादिकोंवि-षे आत्मभावकी स्मृति है सा स्मृति अयथार्थ आत्मस्मृति कही जावै है। अथवा वास्तवतें कर्त्तापणेतें रहित आत्माविषे कर्तृत्व बुद्धिरूप अयथार्थ अनुभवजन्य संस्कारतें उत्पन्न भई जा कर्तृप-णेकी स्मृति है सा स्मृति अयथार्थ आत्मस्मृति कही जावै है इति। शंका—स्वप्नविषे जो पदार्थोंका ज्ञान होवै है सो भी अयथार्थ स्मृ-तिरूप ही है यातैं ता स्वप्नके ज्ञानका इहां ग्रहण क्यों नहीं कऱ्या। समाधान—सो स्वप्नका ज्ञान स्मृतिरूप नहीं है किंतु अनुभवरूप ही है। काहेतैं सो स्वप्नका ज्ञान जो कदाचित् स्मृतिरूप होता है तौ ता स्वप्नविषे लोकोंकूं सरथः या प्रकारका ही रथादिक पदा-र्थोंका ज्ञान होता परंतु ऐसा ज्ञान होता नहीं। किंतु मैं रथकूं दे-खता हूं या प्रकारका अनुभव ही ता स्वप्नविषे होवै है। यातैं स्वप्न-का ज्ञान अनुभवरूप ही है स्मृतिरूप नहीं। इस अर्थकूं आगे भी निरूपण करेंगे इति। तहां इतने पर्यंत स्मृतिका निरूपण कऱ्या। अब अनुभूतिका निरूपण करे हैं। तहां 'स्मृतिभिन्नं ज्ञानमनुभू-तिः' अर्थ—पूर्व उक्त स्मृतिज्ञानतें भिन्न जो ज्ञान है सो अनुभूति कह्या जावै है। इसी अनुभूतिकूं अनुभव भी कहे हैं। जैसे 'अयं घटः। इदं रजतम्' इत्यादिक ज्ञान ता स्मृतिज्ञानतें भिन्न होणेतैं अनुभवरूप है तहां 'ज्ञानमनुभूतिः' इतनामात्र ही जो ता अनुभव-

का लक्षण करते:तौ स्मृतिज्ञानविषे ता अनुभवके लक्षणकी अतिव्याप्ति होती। ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणेवासतैं ता लक्षण विषे 'स्मृतिभिन्नम्' यह पद कथन कन्या है और 'स्मृतिभिन्नमनुभूतिः' इतनामात्र ही जो ता अनुभवका लक्षण करते तौ ता स्मृतिज्ञानतैं भिन्न जे घटादिक हैं तिनोंविषे ता लक्षणकी अतिव्याप्ति होती ता अतिव्याप्ति दोषके निवृत्त करणे वासतैं ता लक्षणविषे 'ज्ञानम्'यह पद कथन कन्या है इति। अब ता अनुभूतिका विभाग वर्णन करे हैं। सा उक्त अनुभूति भी यथार्थ १अयथार्थ २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवे है। तहां अबाधित अर्थकूं विषय करणेहारी जा प्रमा है ताका नाम यथार्थ अनुभूति है। सा प्रमारूप यथार्थअनुभूति द्वितीय परिच्छेदविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं यातैं इहां पुनः निरूपण करते नहीं।अब अयथार्थ अनुभूतिका निरूपण करे हैं। तहां :'बाधितार्थविषयानुभूतिः अयथार्थानुभूतिः' अर्थ–विषयके अभावकी जा प्रमा है ताका नाम बाध है। ता बाधका जो विषय होवे ताका नाम बाधित है। सो बाधित अर्थ है विषय जिसका ऐसी जा अनुभूति है सा अनुभूति अयथार्थ अनुभूति कही जावै है। जैसे'नेदं रजतम्' इस बाधज्ञानके विषय होणेतैं बाधित जे शुक्ति रजतादिक हैं तिनोंकूं विषयकरणेहारी 'इदं रजतम्'इत्यादिक अयथार्थ अनुभूति कही जावै है। तहां प्रमाज्ञानविषे इस अयथार्थानुभूतिके लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतैं इस लक्षणविषे बाधितार्थविषय यह पद कथन कन्या है। और बाधित अर्थकूं विषय करणेहारी अयथार्थ स्मृतिविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतैं इस लक्षणविषे 'अनुभूतिः' यह पद कथन कन्या है इति। और सा अयथार्थ अनुभूति भी संशय १ निश्चय २ इस भेद क-

रिकै दो प्रकारकी होवै है। तहां 'एकस्मिन् धर्मिणि भासमानविरुद्धनानाकोटिकज्ञानं संशयः' अर्थ-एक ही धर्मीविषे भासमान जे परस्पर विरुद्ध नाना कोटि हैं तिनोंकूं विषय करणेहारा ज्ञान संशय कह्या जावै है। जैसे 'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' यह ज्ञान एक ही स्थाणुरूप धर्मीविषे वा पुरुषरूप धर्मीविषे स्थाणुत्व पुरुषत्वरूप विरुद्ध नानाकोटियोंकूं विषय करे हैं। यातैं सो ज्ञान संशय कह्या जावै है इति। और सो उक्त संशय भी प्रमाणसंशय १ प्रमेयसंशय २ इस भेद करिके दो प्रकारका होवै है। तहां प्रमाणविषे जा असंभावना है ताका नाम प्रमाण संशय है। और प्रमेयविषे जा असंभावना है ताका नाम प्रमेय संशय है। तहां सो प्रमाण संशय भी प्रमासंशय १ करणसंशय २ इस भेद करिके दो प्रकारका होवै है। तहां प्रमाण करिके जन्य प्रमाज्ञानविषे जो संशय है ताका नाम प्रमासंशय है। और ता प्रमाणके स्वरूपविषे जो संशय है ताका नाम करण संशय है तहां पूर्व अदृष्ट स्थलविषे स्थित जलके साथ चक्षु इंद्रियके संबंध हुएतैं अनंतर इस पुरुषकूं 'इदं जलम्' या प्रकारका प्रमाज्ञान होवै है परंतु इस पुरुषने ता स्थलविषे पूर्व कभी जल देख्या नहीं यातैं ता पुरुषकूं तिस जलज्ञानविषे यह ज्ञान प्रमा है वा नहीं। या प्रकारका ता जलज्ञानके प्रमात्वकूं तथा ता प्रमात्वके अभावकूं विषय करणेहारा संशय उत्पन्न होवै है। सो संशय प्रमासंशय कह्या जावै है। सो प्रमासंशय ता प्रमाज्ञानके प्रमात्वके निश्चयतैं ही निवृत्त होवै है। तहां 'तद्वति तत्प्रकारकत्वं प्रमात्वम्' अर्थ-ज्ञाननिष्ठ जो तिस धर्मवाले वस्तुविषे तद्धर्मविषयकत्व है यह ही प्रमात्व है। जैसे 'अयं घटः' इस ज्ञानविषे जो घटत्वधर्मवाले घटविषे ता घटत्व धर्मविषयकत्व है यह ही प्रमात्व है। इसी प्रमात्वकूं प्रामाण्य भी कहे हैं। तहां सो प्रमाज्ञाननिष्ठ प्रमात्व नैयायिकोंके मतविषे तौ परतःग्राह्य होवै है। और मीमांस-

कोंके मतविषे तथा वेदांत सिद्धांतविषे सो प्रमात्व स्वतः ग्राह्य होवै है। और ता प्रमात्वकी स्वतः ग्राह्यताविषे भी मीमांसकोंके नाना मत हैं। ते मीमांसकोंके मत तथा सो नैयायिकोंका मत इहां ग्रंथके विस्तारभयतैं लिखे नहीं किन्तु न्यायप्रकाशके षष्ठ परिच्छेदविषे ते सर्वमत स्पष्ट करिकै लिखे हैं जिसकूं जिज्ञासा होवै तिसने तहांसे जानि लेणे। अब वेदांत सिद्धांत संमत प्रमात्वके स्वतः ग्राह्यताका निरूपण करे हैं। तहां 'यावत्स्वाश्रयग्राहकग्राह्यत्वं स्वतो ग्राह्यत्वम्' अर्थ—ता प्रमात्वधर्मका आश्रयभूत जो प्रमा ज्ञान है ता प्रमाज्ञानके जितनेक्ि ग्राहक हैं तिनों करिकै जो ता प्रमात्मविषे ग्राह्यपणा है यह ही ता प्रमात्वविषे स्वतः ग्राह्यता है जैसे ता प्रमात्वधर्मका आश्रयरूप 'अयं घटः' यह वृत्तिज्ञान है। ता वृत्तिज्ञानकूं ग्रहण करणेहारा साक्षी चैतन्य है ता साक्षीचैतन्यनैं ता वृत्तिज्ञानकी न्याईं ताका प्रमात्व भी ग्रहण करा है यह ही ता प्रमात्वविषे स्वतः ग्राह्यता है इति। शंका—जैसे प्रमाज्ञानका प्रमात्व स्वतः ग्राह्य होवै है तैसे 'इदं रजतम्' इत्यादिक अप्रमाज्ञानका अप्रमात्व भी स्वतःग्राह्य ही होवैगा। समाधान—सो अप्रमात्व धम तौ परतः ग्राह्यही होवै है स्वतः ग्राह्य होता नहीं। तहां 'तदभाववति तत्प्रकारकत्वमप्रमात्वम्' अर्थ—ज्ञानविषे जो तिस धर्मके अभाववाले वस्तुमें तद्धर्मविषयकत्व है यह ही अप्रमात्व है। जैसे 'इदं रजतम्' इस ज्ञानविषे वास्तवतैं रजतके अभाववाली शुक्तिमें जो रजतविषयकत्व है यह ही अप्रमात्व है तहां ता अप्रमात्वका घटक जो शुक्तिविषे रजतका अभाव है ता अभावकूं सो वृत्तिज्ञान विषय करता नहीं। यातैं ता रजताभावघटित अप्रमात्वकूं सो साक्षी चैतन्य भी ग्रहण करि-सकता नहीं। किंतु सो साक्षी चैतन्य केवल ता अप्रमात्वधर्मके आश्रयभूत ज्ञानमात्रकूं ही ग्रहण करे है। जो कदाचित् वृत्तिज्ञानके

अविषयभूत अर्थकूं भी सो साक्षी प्रकाश करता होवै तौ घटादि आकार वृत्तिकालविषे पटादिकोंका ता साक्षी चैतन्य करिकै प्रकाश होणा चाहिये। यातें प्रमात्वकी न्याईं सो अप्रमात्व स्वतः ग्राह्य नहीं है । किंतु परतः ग्राह्य है तहां 'स्वाश्रयग्राहकातिरिक्त-सामग्रीग्राह्यत्वं परतो ग्राह्यत्वम्' अर्थ–ता अप्रमात्व धर्मका आश्रयभूत जो अप्रमाज्ञान है तिसका ग्राहक जा सामग्री है ता सामग्रीतैं भिन्न सामग्री करिकैं जो ग्राह्यत्व है यह ही ता अप्रमात्वविषे परतः ग्राह्यता है जैसे उक्त अप्रमात्व धर्मका आश्रयभूत 'इदं रजतम्' यह अप्रमाज्ञान है ता अप्रमाज्ञानका ग्राहक तौ साक्षी चैतन्य है। सो साक्षी चैतन्य ता अप्रमात्व धर्मकूं ग्रहण करता नहीं । किंतु ता साक्षी चैतन्यतैं भिन्न जा अनु-मानरूप सामग्री है ता करिकै ही सो अप्रमात्वधर्म ग्रहण होवै है यह ही ता अप्रमात्वविषे परतःग्राह्यत्व है। अब ता अनुमानका प्रकार दिखावैं हैं। तहां इस पुरुषकी इष्टसाधन ज्ञानतैं अनंतर ही प्रवृत्ति होवै है सा प्रवृत्ति भी संवादिप्रवृत्ति १ विसंवादिप्रवृत्ति २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है । तहां सफल प्रवृत्तिका नाम संवादि प्रवृत्ति है और निष्फल प्रवृत्तिका नाम विसंवादिप्रवृत्ति है ता विसंवादि प्रवृत्ति करिकै ही ता अप्रमात्वका अनुमान होवै है। सो अनुमान यह है 'शुक्तौ रजतज्ञानमप्रमा विसंवादिप्रवृत्ति-जनकत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथाप्रमा' अर्थ–शुक्तिविषे जो 'इदं रजतम्' यह ज्ञान है सो ज्ञान अप्रमारूप है निष्फल प्रवृत्तिका जनक होणेतैं जो जो ज्ञान अप्रमारूप नहीं होवै है सो सो ज्ञान निष्फल प्रवृत्तिका जनक भी नहीं होवै है। जैसे प्रमाज्ञान है इति । इस प्रकारके अनुमान करिकै यह पुरुष ता रजतज्ञानविषे अप्रमात्वकूं निश्चय करे है । यह ही ता अप्रमात्वविषे परतः ग्राह्यता है । किंवा

जैसे ता प्रमात्वके ज्ञानविषे स्वतःपणा है तैसे ता प्रमात्वकी उत्पत्तिविषे भी स्वतःपणा ही है। तहां ज्ञानके उत्पत्तिकी जा सामान्य सामग्री है ता सामग्रीमात्रकरिके जो जन्यता है यह ही ता प्रमात्वकी उत्पत्तिविषे स्वतःपणा है इस प्रकार ता अप्रमात्वके ज्ञानविषे जैसे परतःपणा है तैसे ता अप्रमात्वकी उत्पत्तिविषे भी परतःपणा ही है। तहां ज्ञानकी उत्पत्तिकी सामान्य सामग्रीतैं भिन्न जो दोष है ता दोष करिकै जो जन्यपणा है यह ही ता अप्रमात्वकी उत्पत्तिविषे परतःपणा है इति ॥ शंका--पूर्व उक्त रीतिसे ता प्रमात्वकी उत्पत्तिविषे तथा ज्ञानविषे जो स्वतःपणा मानोगे तौ पूर्व अदृष्ट स्थलविषे 'इदं जलम्' इस प्रकारके ज्ञानतैं अनंतर इस पुरुषकूं यह जलका ज्ञान प्रमा है वा नहीं या प्रकारका जो संशय होवै है सो नहीं होणा चाहिये। काहेतैं तुम्हारे मतविषे ता ज्ञानका प्रमात्व साक्षी चैतन्य करिकै निश्चित ही है और निश्चित अर्थविषे संशय होता नहीं। समाधान–तिस स्थलविषे ता संशयका उत्पादक जो दोष है ता दोषघटित संशयकी सामग्री ता प्रमात्वग्राहक सामग्रीतैं प्रबल है यातैं ता जलज्ञानविषे ता प्रमात्वका निश्चय होणेतैं सो प्रमात्वका संशय संभवै है। इस प्रकार ता स्वतः ग्राह्य प्रमात्वके निश्चय करिकै ता उक्त प्रमासंशयकी निवृत्ति बनि सकै है इति। अब करणसंशयका तथा ताके निवृत्तिके उपायका वर्णन करे हैं। तहां 'तत्त्वमसि' आदिक वेदांतवाक्य अद्वितीय ब्रह्मविषे प्रमाण है वा नहीं या प्रकारकी जो वेदांतवाक्यरूप प्रमाणविषे असंभावना है ताका नाम करणसंशय है। सो करणगत संशय ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखतैं वेदांतशास्त्रके श्रवणतैं निवृत्त होवै है। ता श्रवणका स्वरूप द्वितीय परिच्छेदविषे निरूपण करि आये हैं यातैं पुनः इहां निरूपण करते नहीं। सो उक्त श्रवण शारीरक मीमांसाके

प्रथम अध्यायके पठन करिकै सिद्ध होवै है इति । तहां इतने पर्यंत प्रमाणगत संशयका निरूपण कर्‍या अब दूसरे प्रमेयगत संशयका तथा ताके निवृत्तिके उपायका निरूपण करे हैं । तहां प्रमाणजन्य ज्ञानका जो विषय है ताका नाम प्रमेय है। ता प्रमेयविषे जो संशय होवै है ताका नाम प्रमेय संशय है। सो प्रमेयगत संशय भी अनात्मगत संशय१ आत्मगत संशय २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां अनात्मारूप जे स्थाणु आदिक हैं तिनोंविषे जो इस पुरुषकूं 'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' इत्यादिक संशय होवै है सो संशय अनात्मगत सशय कह्या जावै है । :यह अनात्मगत संशय साधारण धर्मके दर्शनतैं जन्य होवै है जैसे स्थाणुका तथा पुरुषका साधारण धर्म जो साढेतीन हस्त परिमाण उच्चपणा है ताके दर्शनतैं सो उक्त संशय उत्पन्न होवै है और तिन स्थाणु आदिकोंके असाधारण धर्मका ज्ञानरूप जो विशेष दर्शन है तिसतैं ता उक्त संशयकी निवृत्ति होवै है । तहाँ स्थाणुपणेका निश्चय करावणेहारे जे वक्र कोटरादिक हैं ते तौ स्थाणुका साधारण धर्म हैं और पुरुषपणेके निश्चय करावणेहारे जे हस्त पाद शिर आदिक अवयव हैं ते पुरुषका असाधारण धर्म हैं । ता असाधारण धर्मके ज्ञानतैं ता उक्त संशयकी निवृत्ति होइ जावै है इति।और इस पुरुषकूं जो आपणे आत्माविषे संशय होवै है सो संशय आत्मगत संशय कह्या जावै है। सो आत्मगत संशय विप्रतिपत्ति करिकै जन्य होणेतैं अनेक प्रकारका होवै है। तहां परस्पर विरुद्ध अर्थके प्रतिपादक जे वादियोंके अनेक वचन हैं ताका नाम विप्रतिपत्ति है। सा विप्रतिपत्ति श्रीभगवान् भाष्यकारने वर्णन करी है सो दिखावै हैं। तहां चैतन्यविशिष्ट जो यह स्थूल देह है सोई ही आत्मा है। इस प्रकार प्राकृतजीव तथा लोकायतिक माने हैं और चक्षु आदिक

इन्द्रिय ही आत्मा हैं इस प्रकार के एक दूसरे माने हैं और मन ही आत्मा है इस प्रकार के एक दूसरे माने हैं और क्षणिक विज्ञान ही आत्मा है इस प्रकार के एक दूसरे माने हैं। और शून्य ही आत्मा है इस प्रकार के एक दूसरे माने हैं और देह इंद्रियादिकोंतें भिन्न संसारी कर्त्ता भोक्ता आत्मा है इस प्रकार के एक दूसरे माने हैं और आत्मा केवल भोक्ता ही हैं कर्त्ता नहीं है इस प्रकार केएक दूसरे माने हैं। और कर्त्ता भोक्तातें भिन्न सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ईश्वर ही आत्मा है इस प्रकार के एक दूसरे माने हैं। और आत्मा उपाधिके संबंधतें कर्त्ता भोक्ता हुआ भी वास्तवतें सिद्ध ही है इस प्रकार केएक दूसरे माने हैं और ते पूर्व उक्त वादी तिस तिस देहादिरूप आत्माकी सिद्धिवासतैं यथायोग्य युक्ति प्रमाणादिक भी कथन करैं हैं। इस प्रकार परस्पर विरुद्ध अर्थके प्रतिपादक वादियोंके वचनरूप विप्रतिपत्तितैं इस पुरुषकूं सो आत्माका संशय अनेक प्रकारका होवै है। तहां सो आत्मा यद्यपि वास्तवतें एक अद्वितीयरूप है तथापि उपाधिके भेद करिकै सो आत्मा परमात्मा १ जीवात्मा २ यह दो प्रकारका कह्या जावै है। तहां 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य-विषे स्थित तत्पदका अर्थरूप जो माया उपहित ब्रह्म है ताका नाम परमात्मा है और त्वं पदका अर्थरूप जो तीन शरीर उपहित चैतन्य है ताका नाम जीवात्मा है। तिन दोनोंविषे प्रथम तत् पदार्थ परमात्माविषे ते अनेक प्रकारके संशय दिखावै हैं। तहां सो ब्रह्म अद्वितीय है अथवा सद्वितीय है और अद्वितीयरूप हुआ भी सो ब्रह्म आनंद गुणवाला है अथवा आनंद-स्वरूप है और सो ब्रह्म ज्ञान गुणवाला है अथवा ज्ञानस्वरूप है और सो ब्रह्मसत्ता जातिवाला है अथवा सत्तास्वरूप है और सो ब्रह्म सगुण है अथवा निर्गुण है इत्यादिक अनेक प्रकारके संशय

इस पुरुषकूं तिस तत् पदार्थ ब्रह्मविषे होवे हैं । अब त्वंपदार्थ जीवात्माविषे भी ते अनेक प्रकारके संशय दिखावे हैं । तहां यह आत्मा देह इन्द्रियादिकोंतें भिन्न है अथवा नहीं और देह इन्द्रियादिकोंतें भिन्न हुआ भी सो आत्मा कर्त्ता है अथवा अकर्त्ता है और अकर्त्ता हुआ भी सो आत्मा चिद्रूप है अथवा अचिद्रूप है और चिद्रूप हुआ भी सो आत्मा आनंदरूप है अथवा नहीं और आनंदरूप हुआ भी सो आत्मा परिणामी है अथवा कूटस्थ है और कूटस्थ हुआ भी सो आत्मा सत्ता जातिवाला है अथवा सत्तारूप है । इत्यादिक अनेक प्रकारके संशय इस पुरुषकूं तत्त्वंपदार्थ जीवात्माविषे होवे हैं । अब तत्त्वंपदार्थकी एकतारूप वाक्यार्थविषे संशय दिखावे हैं । इस जीवात्माकूं सच्चित् आनंदरूपता हुए भी परमात्माके साथ इस जीवात्माकी एकता संभवती है अथवा नहीं । अब मोक्षके साधनविषे संशयदिखावे हैं।जीव ब्रह्मकी एकताके हुए भी ता एकताका ज्ञान मोक्षका साधनहै अथवा नहीं और ता ज्ञानकूं मोक्षकी साधनता हुए भी सो ज्ञान कर्मसहित हुआ मोक्षका साधन है अथवा केवल ज्ञान मोक्षका साधन है । इत्यादिक सर्व संशय आत्मगत संशय कहे जावें हैं । ते सर्व आत्मगत संशय तर्करूप मनन करिके निवृत्त होवे हैं । तहां 'अनिष्टप्रसंजकः तर्कः' अर्थ—जा युक्ति प्रतिवादीके अनिष्टकी सिद्धि करे है सा युक्ति तर्क कही जावे है अर्थात् व्याप्यका आरोपण करिके जो व्यापकका आपादन है ताका नाम तर्क है । तहां व्याप्तिके आश्रयका नाम व्याप्य है और व्याप्तिके निरूपकका नाम व्यापक है । व्याप्तिका स्वरूप पूर्व द्वितीय परिच्छेदविषे निरूपण करि आये हैं । जैसे पर्वतविषे धूमकूं देखता हुआ भी जो प्रतिवादी ता पर्वतविषे अग्नि नहीं माने है ता प्रतिवादीके प्रति या प्रकारका तर्क कह्या जावे है । धूम वह्निका कार्य कारणभाव सर्वलोकविषे प्रसिद्ध है और कारणतें विना कार्य

होता नहीं यह वार्ता भी सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है। यातैं इस पर्वतविषे जो वह्नि नहीं होवै तो ता वह्निका कार्य धूम भी नहीं होणा चाहिये इति। तहां ता पर्वतविषे धूमकी अभावता प्रतिवादीकूं अनिष्ट है ता प्रतिवादीके अनिष्टकी सिद्धि इस उक्त तर्कतैं होवै है। और इस उक्त तर्कविषे वह्नि अभावरूप व्याप्यका आरोपण करिकै धूमाभावरूप व्यापकका आपादन कर्‍या जावै है। यातैं सो उक्त तर्कका लक्षण इस प्रसिद्ध तर्कविषे संभवै है। इस प्रकार आगे वक्ष्यमाण तर्कोंविषे भी ता उक्त लक्षणका समन्वय जानि लेणा। इति। अब ते आत्मसंशयके निवर्तक तर्क निरूपण करे हैं। तिन तर्कोंविषे भी प्रथम तत् पदार्थरूप परमात्माके अद्वितीयपणेका साधक तर्क कहे हैं जो कदाचित् यह आकाशादिक प्रपंच सत्य होवे तौ ब्रह्मकूं अद्वितीयरूप कहणेहारी 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इस श्रुतिका विरोध होवैगा अर्थात् सद्वितीय ब्रह्मकूं अद्वितीयरूप कहणेहारी सा श्रुति मिथ्यावादी होणेतैं अप्रमाणरूप होवैगी और ता श्रुतिकी अप्रमाणता आस्तिकवादीकू अनिष्ट ही है। यातैं ता प्रपंचकूं मिथ्या ही मान्या चाहिये। ता प्रपंचके मिथ्या हुए ता अद्वैत श्रुतिका विरोध होवै नहीं। शंका-ब्रह्मकूं जो अद्वितीय मानिये तौ भेदकूं प्रतिपादन करनेहारी श्रुतियोंका विरोध होवै है। तिन श्रुतियोंके विरोधतैं सा अद्वैत श्रुति ता अद्वैतका प्रतिपादक नहीं है किंतु किसी अन्य ही अर्थका प्रतिपादक है यातैं ता प्रपंचकी सत्यता मानणेविषे भी ता अद्वैत श्रुतिका विरोध होवै नहीं। समाधान-इस अधिकारी पुरुषकूं जो अर्थ इष्ट फलका हेतु होवै है तथा प्रत्यक्षादिक प्रमाणों करिकै अज्ञात होवै है तिस अर्थविषे ही श्रुतिका तात्पर्य होवै है। तहां सो अद्वैत तौ प्रत्यक्षादिक प्रमाणों करिकै अज्ञात है तथा ता अद्वैतब्रह्मके ज्ञानतैं इस अधिकारी पुरुषकूं 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति।

'तरति शोकमात्मवित्' इत्यादिक श्रुतियोंने मोक्षरूप निरतिशय पुरुषार्थकी प्राप्ति कथन करी है । यातैं ता श्रुतिका ता अद्वैतविषे ही तात्पय संभवै है । अन्य किसी अर्थविषे तात्पर्य संभवता नहीं और द्वैतरूप भेद तौ प्रत्यक्षादिक प्रमाण करिकै ज्ञात है । तथा ता भेदके ज्ञानतैं किसी इष्टफलकी भी प्राप्ति होती नहीं । उलटा 'उदरमंतरं कुरुतेऽथ तस्य भयं भवति मृत्योः समृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इत्यादिक श्रुतियोंनैं ता भेददर्शी पुरुषकूं अनर्थकी ही प्राप्ति कथन करी है । और 'अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुः,'इस श्रुतिने ता भेददर्शी पुरुषकूं पशुकी तुल्यता कहिके ता भेदकी निंदा ही करी है । यातैं ता भेदविषे श्रुतिका तात्पर्य संभवता नहीं, जो कदाचित् सा श्रुति भेदकूं ही कथन करैगी तौ प्रत्यक्ष सिद्धभेदकी अनुवादकता करिकै ता श्रुतिकूं अप्रमाणता ही प्राप्त होवैगी यातैं यह सिद्ध भया। फलवान् अज्ञात अर्थका बोधक होणेतैं सा अद्वैत श्रुति तौ प्रबल है और फलशून्य ज्ञान अर्थका बोधक होणेतैं सा भेद श्रुति दुबल है और लोकविषे भी प्रबल करिकै ही दुर्बलका बाध होवै है । कोई दुर्बल करिकै प्रबलका बाध होता नहीं । यातैं ता भेद श्रुतिके विरोध करिकै ता अद्वैत श्रुतिकूं अन्य परता संभवती नहीं किंतु ता अद्वैत श्रुतिके विरोध करिकैं ता भेद श्रुतिकूं ही अन्य परता संभवै है । यातैं ता अद्वैत श्रुतिके विरोधतैं ता प्रपंचविषे सत्यपणा संभवता नहीं । इस प्रकार ब्रह्मके अद्वितीयपणेका साधक तर्क करिकै सो ब्रह्म अद्वितीय है वा सद्वितीय है या प्रकारके संशयकी निवृत्ति होवै है इति । अब ता परमात्माके आनंदरूपताका साधक तर्क कहे हैं । सो परमात्मा जो कदाचित् आनंदरूप नहीं होवै तौ ता परमात्माके प्राप्तिकूं पुरु-

षार्थरूपता नहीं होवैगी। जिस कारणतैं आनंदकी प्राप्ति ही पुरुषार्थरूप होवै है। और ता परमात्माके प्राप्तिकूं जो अपुरुषार्थरूप मानोगे तौ ता परमात्माके प्राप्तिकूं पुरुषार्थरूप कहणेहारे 'आत्मलाभान्न परं विद्यते। पुरुषान्न परंकिंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः' इत्यादिक श्रुतिस्मृति वचनोंका विरोध होवैगा सो श्रुतिका विरोध सर्वकूं अनिष्ट ही है यातैं ता परमात्माकूं आनंदरूप ही मान्या चाहिये। इस प्रकारके तर्कतैं सो परमात्मा आनंदरूप है वा नहीं या प्रकारके संशयकी निवृत्ति होवै है इति। अब ता परमात्माके चैतन्यरूपताका साधक तर्क कहे हैं। सो परमात्मा कदाचित् चैतन्यरूप नहीं होवै तौ घटादिकोंकी न्याईं सूर्य चंद्रादिक जगत्का प्रकाशक नहीं होवैगा और ता परमात्माकूं जो जगत्का प्रकाशक नहीं मानोंगे तौ ता परमात्माकूं सूर्य चन्द्रादिक सर्व जगत्का प्रकाशक कहणेहारे जे 'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति—तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते' इत्यादिक श्रुति स्मृति वचन हैं तिनोंका विरोध प्राप्त होवैगा। सो श्रुति स्मृति वचनोंका विरोध सर्वकूं अनिष्ट ही है। यातैं ता परमात्माकूं चैतन्यरूप ही मान्या चाहिय। इस प्रकारके तर्क करिकै सो परमात्मा चैतन्यरूप है वा नहीं या प्रकारके संशयकी निवृत्ति होवै है इति। अब ता परमात्माके निर्गुणभावका साधक तर्क कहे हैं। सो परमात्मा जो कदाचित् सगुण होवै तौ ता परमात्माके निर्विशेष स्वरूपकूं कथन करणेहारे जे 'अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्' इत्यादिक श्रुति स्मृति वचन हैं तिन सर्व वचनोंका विरोध प्राप्त होवैगा। सो श्रुति स्मृतिका विरोध सर्वकूं अनिष्ट ही है यातैं ता परमात्माकूं निर्गुण ही मान्या चाहिय। इस प्रकारके तर्कतैं सो परमात्मा सगुण है

वा निर्गुण है या प्रकारके संशयकी निवृत्ति होवै है इति। अब त्वं पदार्थरूप आत्माके आनंदरूपता साधक तर्क कहे हैं। यह आत्मा जो कदाचित् आनंदरूप नहीं होवै तौ कोई भी जीव आपणे स्वार्थवासतैं प्रवृत्त नहीं होवैगा और सर्व प्राणियोंकी आपणे स्वार्थवासतैं ही प्रवृत्ति देखनेमें आवै है। ता लोकप्रसिद्धिका विरोध प्राप्त होवैगा। तथा याज्ञवल्क्य मुनिने मैत्रेयी स्त्रीके प्रति 'न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति' इत्यादिक श्रुति वचनों करिकै पतिजायादिक सर्व पदार्थोंकूं आपणे आत्मावासतैं ही प्रिय कह्या है। तिन श्रुति वचनोंका भी विरोध प्राप्त होवैगा। यातैं ता आत्माकूं आनंदरूप ही मान्या चाहिये। इस प्रकारके तर्कतैं आत्मा आनंदरूप है वा नहीं या प्रकारके संशयकी निवृत्ति होवै है इति। अब ता आत्माके चैतन्यरूपताका साधक तर्क कहे हैं यह आत्मा जो कदाचित् चैतन्यरूप नहीं होवै तौ घटादिकोंकी न्याई जडता करिकै सावयव होणेतैं अनात्मा ही होवैगा। ता करिकै प्रकाशक चैतन्यके अभावतैं जगतविषे अंधता ही प्राप्त होवैगी। तथा आत्माकूं चैतन्यरूप कहणेहारे जे 'योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यंत ज्योंतिः पुरुषः। अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति। क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत' इत्यादिक श्रुतिस्मृति वचन हैं तिन सर्व वचनोंका विरोध प्राप्त होवैगा। सो श्रुति स्मृतिका विरोध सर्वकूं अनिष्ट ही है। यातैं ता आत्माकूं चैतन्यरूप ही मान्या चाहिये। इस प्रकारके तर्कतैं आत्मा चैतन्यरूप है वा नहीं या प्रकारके संशयकी निवृत्ति होवै है इति। अब आत्माके अकर्त्तापणेका साधक तर्क कहे हैं। यह आत्मा जो कदाचित् कर्त्ता होवैगा तौ विकारीपणे करिकै परिणामी होणेतैं

अनित्य ही होवैगा। जो आत्माकूं अनित्य मानोंगे तौ आत्माकूं नित्य कहणेहारे जे 'अविनाशी वा अरेऽयमात्मा। नित्यः सर्वगतः स्थाणुः' इत्यादिक श्रुति स्मृति वचन हैं तिन सर्व वचनोंका विरोध प्राप्त होवैगा। सो श्रुति स्मृतिका विरोध सर्वकूं अनिष्ट ही है। यातैं ता आत्माकूं अकर्त्ता ही मान्या चाहिये। इस प्रकारके तर्कतैं यह आत्मा कर्त्ता है वा अकर्त्ता है या प्रकारके संशयकी निवृत्ति होवै है इति। अब तत् त्वं पदार्थके अभेदका साधक तर्क कहे हैं। सो तत् पदार्थरूप परमात्मा जो कदाचित् इस त्वं पदार्थ-रूप जीवात्मातैं भिन्न होवै तौ घटादिकोंकी न्याईं अनात्म भाव करिकै अनित्य ही होवैगा। और ता परमात्माकूं जो अनित्य मानिये तौ ता परमात्माकूं नित्यरूप कहणेहारे जे श्रुति स्मृति इति-हास पुराण आदिकोंके वचन हैं तिन सर्वोंका विरोध प्राप्त होवैगा। किंवा ता जीव ब्रह्मका जो भेद मानिये तौ ता जीव ब्रह्मके अभेदकूं कथन करणेहारे जे 'तत्त्वमसि। अहं ब्रह्मास्मि। अयमात्मा ब्रह्म। क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत' इत्यादिक श्रुति स्मृति वचन हैं तिन वचनोंका विरोध प्राप्त होवैगा। सो श्रुति स्मृति आदि-कोंका विरोध सर्वकूं अनिष्ट ही है। यातैं ता परमात्माकूं इस जीवा-त्मातैं अभिन्न ही मान्या चाहिये। इस प्रकारके तर्कतैं सो परमात्मा इस जीवात्मातैं भिन्न है वा अभिन्न है या प्रकारके संशयकी निवृत्ति होवै है इति। अब केवल ज्ञानविषे मोक्षकी साधनताका साधक तर्क कहे हैं। जो कदाचित् कर्ममिश्रित ज्ञान मोक्षका साधन होवै तौ स्वर्गादिकोंकी न्याईं कर्मजन्य होणेतैं ता मोक्षकूं भी अनित्य-पणा ही प्राप्त होवेगा और ता मोक्षकूं जो अनित्य मानिये तौ मुक्तपुरुषोंकूं भी पुनः संसारकी प्राप्ति होवैगी ता करिकै मुक्तपुरु-षकूं पुनः संसारकी प्राप्तिका निषेध करणेहारे 'न स पुनरावर्त्तते

यद्गत्वा न निवर्त्तंते तद्धाम परमं मम' इत्यादिक श्रुति स्मृति वचनोंका विरोध प्राप्त होवैगा । तथा केवल ज्ञानतैं मोक्षकी प्राप्तिकूं कथन करणेहारे जे 'ज्ञानादेव तु कैवल्यम् । नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय । ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः' इत्यादिक श्रुति स्मृति वचन हैं तिन सर्व वचनोंका विरोध प्राप्त होवैगा । सो श्रुति स्मृति वचनोंका विरोध सर्व आस्तिकोंकूं अनिष्ट है । यातैं सो कर्ममिश्रित ज्ञान मोक्षका साधन नहीं है। किंतु 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका अभेद ज्ञान ही ता मोक्षका साधन मान्या चाहिये । इस प्रकारके तर्कतैं कर्ममिश्रित ज्ञान मोक्षका साधन है अथवा केवल ज्ञान मोक्षका साधन है या प्रकारके संशयकी निवृत्ति होवै है इति । इस प्रकारके श्रुति उक्त तर्करूप मनन करिकै ही सो पूर्व उक्त आत्मगत संशय निवृत्त होवै है । इस तर्करूप मननका लक्षण पूर्व द्वितीय परिच्छेदविषे निरूपण करि आये हैं सो इहां भी जानि लेणा । यह उक्त मनन शारीरक मीमांसाके द्वितीय अध्यायके पठन करिकै सिद्ध होवै है इति । तहां पूर्व संशय निश्चय इस भेद करिकै दो प्रकारका अयथार्थ अनुभव कह्या था ताकेविषे प्रथम संशयका अब पर्यंत निरूपण कऱ्या । अब दूसरे निश्चयका निरूपण करे हैं। तहां 'संशयविरोधिज्ञानं निश्चयः' अर्थ-पूर्व उक्त संशयका विरोधी जो ज्ञान है सो निश्चय कह्या जावै है । तहां इस पुरुषकूं जिस पदार्थका निश्चय होवै है तिस पदार्थविषे संशय होता नहीं । यातैं ता निश्चयविषे संशयका विरोधीपणा स्पष्ट ही है इति । और सो उक्त निश्चय भी यथार्थ १ अयथार्थ २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहाँ 'अविसंवादिज्ञानं यथार्थनिश्चयः' अर्थ-फलविषे पर्यवसानवाला जो ज्ञान है ताका नाम यथार्थ निश्चय है अर्थात् जिस वस्तुके निश्चयतैं अनंतर प्रवृत्त हुए

पुरुषकूं ता वस्तुकी प्राप्ति होवै है सो निश्चय यथार्थ निश्चय कह्या जावै है। सो यथार्थ निश्चय पूर्व द्वितीय परिच्छेदविषे प्रमारूप करिकै कथन कर्‍या है। और इस तृतीय परिच्छेदविषे पूर्व यथार्थ स्मृतिरूप करिकै कथन कर्‍या है अर्थात् यथार्थ अनुभवका तथा यथार्थ स्मृतिका नाम यथार्थ निश्चय है इति। और 'विसंवादि ज्ञानम् अयथार्थनिश्चयः' अर्थ—फलतैं रहित जो ज्ञान है ताका नाम अयथार्थ निश्चय है। अर्थात् जिस वस्तुके निश्चयतैं अनंतर प्रवृत्त हुए पुरुषकूं ता वस्तुकी प्राप्ति नहीं होवै है सो निश्चय अयथार्थ निश्चय कह्या जावै है इति। सो अयथार्थ निश्चय भी तर्क १ विपर्यय २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां तर्कका लक्षण तथा उदाहरण इसी परिच्छेदविषे पूर्व निरूपणकरि आये हैं। यातैं पुनः इहां निरूपण करते नहीं। तहां वह्निवाले तथा धूमवाले पर्वतविषे वह्निके अभावकूं तथा धूमके अभावकूं विषय करणेहारा जो इस पर्वतविषे वह्नि नहीं होवै तौ धूम भी नहीं होवैगा। या प्रकारका तर्क है ता तर्कविषे अयथार्थ निश्चयपणा स्पष्ट ही है इति। अब विपर्ययका निरूपण करै हैं। तहां 'मिथ्याज्ञानं विपर्ययः' अर्थ—जो ज्ञान मिथ्या होवै है सो ज्ञान विपर्यय कह्या जावै है। जैसे शुक्तिविषे 'इदं रजतम्' यह ज्ञान तथा रज्जुविषे 'अयं सर्पः' यह ज्ञान मिथ्या ज्ञान होणेतैं विपर्यय कह्या जावै है। शंका—ता ज्ञानविषे मिथ्यापणा क्या है अर्थात् बाध्यत्वका नाम मिथ्यापणा है। अथवा निर्विषयत्वका नाम मिथ्यापणा है। तहां कोई भी ज्ञानका आपणे स्वरूप करिकै बाध होता नहीं यातैं बाध्यत्वका नाम मिथ्यापणा है यह प्रथम पक्ष तौ संभवता नहीं और कोई भी ज्ञान निर्विषय होता नहीं। यातैं सो द्वितीय पक्ष भी संभवता नहीं। ऐसी शंकाके प्राप्त हुए अब ता मिथ्याज्ञानका लक्षण कहे हैं। 'अतस्मिंस्तद्बुद्धिः मिथ्या-

ज्ञानम्' अर्थ–तिस अर्थतैं रहित वस्तुविषे जो तिस अथकी बुद्धि है ताका नाम मिथ्या ज्ञान है । जैसे रजततैं रहित शुक्तिविषे जो 'इदं रजतम्'यह रजत बुद्धि है ताका नाम मिथ्याज्ञान है। तहां यद्यपि ज्ञानका स्वरूपतैं बाध होता नहीं तथापि विषयके बाधतैं ता ज्ञानका बाध कह्या जावै है । सो बाध्यत्व ही ता ज्ञानविषे मिथ्यापणा है इति । और सो उक्त विपर्ययरूप भ्रम भी निरुपाधिक भ्रम १ सोपाधिकभ्रम २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां जो भ्रम अधिष्ठानके ज्ञानतैं निवृत्त होइ जावै है सो भ्रम तौ निरुपाधिक भ्रम कह्या जावै है और जो भ्रम अधिष्ठानके ज्ञान हुए भी निवृत्त नहीं होवै है सो भ्रम सोपाधिक भ्रम कह्या जावै है । तहां सो निरुपाधिक भ्रम भी बाह्य १ अंतर २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां शुक्ति रज्जु आदिकोंविषे जो'इदं रजतम् । अयं सर्पः' इत्यादिक भ्रमज्ञान होवै है सो भ्रमज्ञान तौ बाह्यनिरुपाधिक भ्रम कह्या जावै है और मैं अज्ञानी हूं ब्रह्मकूं नहीं जानता हूं या प्रकारका जो भ्रम है सो भ्रम अंतर निरुपाधिक भ्रम कह्या जावै है तहां शुक्ति रज्जु आदिक अधिष्ठानके ज्ञानतैं'इदं रजतम्।अयं सर्पः' इत्यादिक भ्रमकी निवृत्ति होइ जावै है । तथा आत्मारूप अधिष्ठानके ज्ञानतैं'अहं यज्ञः'या प्रकारके भ्रमकी निवृत्ति होइ जावै है । यातैं ता उक्त भ्रमविषे निरुपाधिक भ्रमरूपता संभवै है इति । इस प्रकार दूसरा सोपाधिक भ्रम भी बाह्य १ अंतर २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । तहां रक्तगुणतैं रहित शुक्ल स्फटिकविषे रक्तवर्णवाले जपा कुसुमादिक द्रव्यकी समीपता हुए जो'लोहितः स्फटिकः' या प्रकारका भ्रम होवै सो भ्रम बाह्य सोपाधिक भ्रम कह्या जावै है। तहां यह स्फटिक शुक्ल है रक्त नहीं है या प्रकारके ता स्फटिकरूप अधिष्ठानके ज्ञान हुए भी जब पर्यंत ता जपा कुसुमादिक उपा-

धिकी तहाँतैं निवृत्ति नहीं होवे है तब पर्यंत 'लोहितः स्फटिकः' इस भ्रमकी निवृत्ति होती नहीं यातैं 'लोहितः स्फटिकः' इस भ्रमविषे सोपाधिक भ्रमरूपता संभवे है । इस प्रकार तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं जो आकाशादिक प्रपंचका अनुभव होवे है सो भी बाह्य सोपाधिक भ्रम कह्या जावै है । शंका—'लोहितःस्फटिकः' इस भ्रमविषे तौ जपा कुसुमादिक उपाधि विद्यमान है यातैं ता भ्रमकूं तौ सोपाधिक-पणा संभवै है परंतु ता प्रपंच भ्रमविषे कोई उपाधि देखणेविषे आवता नहीं यातैं ता प्रपंच भ्रमकूं सोपाधिकपणा संभवता नहीं । समाधान—ता प्रपंचभ्रमविषे भी प्रारब्ध कर्मसहित विक्षेप शक्तिवाला अज्ञान ही उपाधिरूप है । काहेतैं 'अहं ब्रह्मास्मि' इस प्रकारके अधिष्ठान ब्रह्मके ज्ञान करिकै आवरण शक्तिवाले अ-ज्ञानके निवृत्त हुएं भी विक्षेपशक्तिवाले अज्ञानके वशतैं प्रारब्ध कर्मके नाशपर्यंत तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं भी सो आकाशादिक प्रपंचका अनुभव होवै है । यातैं 'लोहितः स्फटिकः' इस भ्रमकी न्याई ता प्रपं-च भ्रमकूं भी सोपाधिकपणा संभवै है इति । और मैं कर्त्ता हूं मैं भोक्ता हूं या प्रकारकी जा आत्माविषे कर्तृत्व भोक्तृत्वबुद्धि है सा बुद्धि अंतरसोपाधिकभ्रम कह्या जावै है । ता भ्रमविषे सो अंतःकरण ही उपाधिरूप जानणा, काहेतैं यह आत्मा वास्तवतैं तौ असंग निर्विकार है । ऐसे आत्माविषे स्वरूपतैं तौ सो कर्तृत्व भोक्तृत्व सम्भवता नहीं । किंतु ता अंतःकरणविषे रहे हुए ते कर्तृत्व भोक्तृ-त्वादिक धर्म अविवेकतैं ता आत्माविषे आरोपण करये जावै है । यातैं 'अहं कर्त्ता अहं भोक्ता' इत्यादिक बुद्धिविषे सोपाधिक भ्र-मरूपता संभवै है । इस प्रकार स्वप्नविषे जो रथादिक पदार्थोंका ज्ञान होवै है सो ज्ञान भी अंतर सोपाधिक भ्रम ही है स्मृतिरूप नहीं है । काहेतैं सो स्वप्नका ज्ञान जो कदाचित् स्मृतिरूप होता

तौ 'स रथः' या प्रकारका ही ता ज्ञानका आकार होता परन्तु ता स्वप्नविषे 'स रथः' इस प्रकारका ज्ञान होता नहीं किंतु 'अयं रथः रथं पश्यामि' या प्रकारका ही ज्ञान होवै है। यातैं सो स्वप्नका ज्ञान सोपाधिक भ्रमरूप अयथार्थ अनुभव ही है स्मृतिरूप नहीं। यातैं ता स्वप्नकूं अयथार्थ स्मृतिरूप मानणेहारे तार्किकोंका मत असंगत है। शंका–ता स्वप्नज्ञानकूं जो स्मृतिरूप नहीं मानोंगे किंतु अनुभवरूप मानोंगे तौ ता अनुभवको विषयभूत रथादिक पदार्थोंकी भी तहां उत्पत्ति मानणी होवैगी और स्वप्नविषे तिन रथादिकोंकी उत्पत्ति संभवती नहीं। काहेतैं जाग्रत् अवस्थाविषे जितने देशविषे तथा जितने कालविषे तिन रथादिकोंकी उत्पत्ति होवैहै तितना देशकाल ता स्वप्नविषे है नहीं और प्रसिद्ध रथादिकोंकी उत्पत्तिकी जा काष्ठ तक्षादिक सामग्री है सा सामग्री भी ता स्वप्नविषे है नहीं और कारण सामग्रीतैं विना कार्यकी उत्पत्ति होती नहीं। यातैं स्वप्नविषे तिन रथादिकोंकी उत्पत्ति संभवती नहीं यातैं स्वप्नविषे सो रथादिकोंका ज्ञान स्मृतिरूप ही मान्या चाहिये और सो स्वप्नका ज्ञान निद्रादोष करिकै जन्य है। यातैं 'स रथः' इस ज्ञानके स्थानविषे 'अयं रथः' या प्रकारका भ्रम होवै है। समाधान–जैसे हट्टादिकोंविषे स्थित व्यावहारिक रजतकी उत्पादक सामग्री सामग्रीतैं प्रातिभासिक विलक्षण ही होवै है तैसे जाग्रत् अवस्थाके रथादिकोंकी उत्पादक सामग्रीतैं सा स्वप्नरथादिकोंकी उत्पादक सामग्री भी विलक्षण ही होवै है। सा विलक्षण सामग्री दिखावै हैं जाग्रत् अवस्थाविषे सुख दुःखादिरूप भोगके देखणेहारे जे पुण्य पाप कर्म हैं तिन कर्मोंके उपराम हुए तथा स्वप्नके भोग देणेहारे जे कर्म हैं तिनोंके उद्भव हुए तथा चक्षु आदिक इंद्रियोंके लय हुए जाग्रतके रथादिक सर्व विषयोंकी जे संस्काररूप वासना है तथा इंद्रियादिकोंकी जे संस्काररूप वासना है तिन सर्ववास-

नाओंका आश्रयभूत तथा निद्रादोष करिकै युक्त ऐसा जो अंतःकरण है सो अंतःकरण ही ता स्वप्न अवस्थाविषे तिन रथादि विषयाकार परिणामकूं प्राप्त होवै है। तथा तिन रथादिकोंके ग्राहक चक्षु आदिक इंद्रियाकार परिणामकूं प्राप्त होवै है। तथा तिन रथादि विषयाकार वृत्तिरूप परिणामकूं प्राप्त होवै है इस प्रकार जाग्रत्के रथादिकोंके सामग्रीतैं स्वप्नके प्रातिभासिक रथादिकोंकी सामग्री विलक्षण ही होवै है। शंका– जैसे जाग्रत् अवस्थाविषे प्रमाता प्रमाण प्रमेय व्यवहार होवै है। तैसे स्वप्नविषे भी सो प्रमाता प्रमाण प्रमेय व्यवहार होवै है। यातैं स्वप्नके पदार्थोंकूं प्रातिभासिक कहणा संभवता नहीं। समाधान– जाग्रत्के पदार्थ भूतोंके कार्य होणेतैं चिरकाल पर्यंत स्थायी हैं और स्वप्नके रथादिक पदार्थ वासनाविशिष्ट अंतःकरणके परिणाम होणेतैं वासनामय हैं। या कारणतैं ही ते स्वप्नके पदार्थ अल्पकाल पर्यंत स्थायी हैं। इस प्रकार स्वप्नके पदार्थोंविषे जाग्रत्के पदार्थोंतैं विलक्षणता होणेतैं सो प्रातिभासिकपणा संभवै है और जैसे शुक्तिविषे रजतका ज्ञान दोष करिकै जन्य होवै है तैसे स्वप्नके पदार्थोंका ज्ञान भी निद्रारूप दोष करिकै जन्य होवै है। यातैं ता ज्ञानविषे भ्रमरूपता भी संभवै है। शंका–जाग्रत अवस्थाविषे सूर्यादिक ज्योतियोंके प्रकाश करिकै सहकृत चक्षु आदिक इंद्रिय विद्यमान हैं। यातैं तिन इंद्रियोंकरिकै रूपादिक पदार्थोंका ज्ञान संभवै है। और स्वप्न अवस्थाविषे तौ तिन चक्षु आदिक इंद्रियोंका अभाव होवै है यातैं ता स्वप्नविषे तिन रूपादिक पदार्थोंका अनुभव कैसे संभवैगा। समाधान–ता स्वप्नविषे जो वासनाविशिष्ट अंतःकरण विषय इंद्रियादिरूप परिणामकूं प्राप्त भया है ता अंतःकरण उपहित साक्षी चैतन्य ही ता स्वप्नके रथादिक पदार्थोंकूं प्रकाश करे है। शंका–

स्वप्नविषे सो साक्षी आप किसी दूसरे साक्षी करिकै प्रकाशित हुआ तिन रथादिकोंकूं प्रकाश करे है अथवा अप्रकाशित हुआ प्रकाश करे है तहां जो प्रथम पक्ष अंगीकार करोगे तौ अनवस्था दोषकी प्राप्ति होवैगी। काहेतैं ता प्रथम साक्षीकी न्याईं सो दूसरा साक्षी भी किसी तीसरे साक्षी करिकै प्रकाशित हुआ ही प्रकाश करेगा। तैसे सो तीसरा साक्षी भी किसी चतुर्थ साक्षी करिकै प्रकाशित हुआ ही प्रकाश करेगा। इस प्रकार पूर्व पूर्व साक्षीके प्रकाशवासतैं उत्तर उत्तर साक्षीके अंगीकार करणेतैं अनवस्था दोषकी प्राप्ति होवैगी और जो दूसरा पक्ष अंगीकार करोगे तौ अज्ञायमान होणेतैं जड हुआ सो साक्षी तिन स्वप्न पदार्थोंकूं कैसे प्रकाश करेगा। समाधान--सो साक्षी चैतन्य स्वयं प्रकाशमान है अर्थात् आप ही आपणे करिकै प्रकाशमान है। यातैं ता साक्षीविषे सो पूर्व उक्त अनवस्था तथा जडता प्राप्त होवै नहीं। ऐसा स्वप्रकाश साक्षी ही तिन स्वप्न पदार्थोंकूं प्रकाश करे है। या कारणतैं ही ता स्वप्न अवस्थाविषे ता साक्षीचैतन्यका स्वप्रकाशपणा जानणेकूं सुगम होवै है। शंका-'येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः।तमेव भांतमनुभाति सर्वम्। तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।न तत्र सूर्योभाति न चन्द्रतारकम्'इत्यादिक श्रुति योंनें ता साक्षी चैतन्यकूं सूर्य चन्द्रादिक सर्व जगत्का प्रकाशकपण' कह्या है। तथा तिन सूर्य चन्द्रादिक ज्योतियों करिकै अप्रकाशितपणा कह्या है यह ही ता साक्षी चैतन्यविषे स्वप्रकाशपणा है। यातैं सो साक्षी चैतन्यका स्वप्रकाशपणा जाग्रत अवस्थाविषे भी निर्णीत ही है। ता जाग्रत् अवस्थाकूं छोडिकै स्वप्न अवस्थाविषे ता साक्षी चैतन्यके स्वप्रकाशपणेकूं सुविज्ञेय कहना अनुचित है। समाधान-यद्यपि विवेकी पुरुषोंकूं जाग्रत् अवस्थाविषे भी सो साक्षीका स्वप्रकाशपणा सुविज्ञेय है तथापि अविवेकी पुरुषोंकूं ता

जाग्रत् अवस्थाविषे सो साक्षीका स्वप्रकाशपणा दुर्विज्ञेय ही है । काहेतें ता जाग्रत् अवस्थाविषे इस पुरुषके गमन आगमनादिक व्यवहार सूर्यरूप ज्योति करिकै होवै है और ता सूर्यरूप ज्योतिके अभाव हुए चन्द्ररूप ज्योति करिकै ते व्यवहार होवै हैं और ता चंद्ररूप ज्योतिके भी अभाव हुए अग्निरूप ज्योति करिकै ते व्यवहार होवै हैं और ता अग्निरूप ज्योतिके अभाव हुए गाढ अंधकारविषे शब्दरूप ज्योति करिकै ते व्यवहार होवै हैं। इस प्रकार जाग्रत् अवस्थाविषे व्यवहारके साधक सूर्यादिक अनेक ज्योतियों करिकै मिल्या हुआ सो साक्षी चैतन्यरूप ज्योति है। यातें ता जाग्रत् अवस्थाविषे अविवेकी पुरुषोंकूं ता साक्षी चैतन्यके स्वप्रकाशपणेका निर्णय होइ सकै नहीं। और स्वप्न अवस्थाविषे तौ ते जाग्रत् अवस्थाके सूर्य चंद्रादिक सर्व ज्योति लयहोइ जावै हैं। और ता स्वप्न अवस्थाविषे भी जाग्रत् अवस्थाकी न्याईं ते सर्व व्यवहार होवै हैं और जो जो व्यवहार होवै हैं सो सो किसी ज्योति करिकै ही साध्य होवै हैं। यातें तिन स्वप्न व्यवहारोंका साधक भी कोई ज्योति अवश्य मान्या चाहिये। यद्यपि ता स्वप्नविषे अंतःकरण तथा अज्ञान विद्यमान है तथापि सो अंतःकरण तहां विषयादि आकार परिणामकूं प्राप्त भया है। यातें ता अंतःकरणकूं भी ज्योतिपणा संभवता नहीं और अज्ञान तौ तमकी न्याईं प्रकाशकका विरोधी ही है यातें ता अज्ञानकूं भी ज्योतिपणा संभवता नहीं। पारिशेषतें सो साक्षी चैतन्यरूप ज्योति ही तिन स्वप्न व्यवहारोंका साधकरूप करिकै सिद्ध होवै है। इस प्रकारतें अविवेकी पुरुषोंकूं भी ता स्वप्न अवस्थाविषे ता साक्षी चैतन्यका स्वप्रकाशपणा निर्णय होइ सकै है यातें स्वप्न अवस्थाविषे साक्षी चैतन्यका स्वप्रकाशपणा सुविज्ञेय है यह

कहणा संभवै है । इसी अभिप्राय करिकै 'अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति' इस बृहदारण्यक श्रुतिने स्वप्न अवस्थाविषे ही ता साक्षी आत्माकूं स्वयंज्योति कह्या है । इहां स्वयंज्योति स्वप्रकाश स्वयंप्रकाशमान इन तीनों शब्दोंका एक ही अर्थ जानणा । तहां साक्षीका लक्षण तौ पूर्व द्वितीय परिच्छेदविषे कथन करि आये हैं । अब प्रसंगते ता साक्षी चैतन्यके स्वप्रकाशताका लक्षण कहे हैं। तहां 'चैतन्याविषयत्वं स्वप्रकाशत्वम्' अर्थ-इंद्रियजन्य वृत्तिविषे प्रतिबिंबित जो चैतन्य है ताका नाम फलचैतन्य है ता फलचैतन्यका जो अविषयपणा है यह ही ता साक्षी चैतन्यविषे स्वप्रकाशपणा है अथवा 'अवेद्यत्वे सति अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वं स्वप्रकाशत्वम्' अर्थ-उक्त फल चैतन्यका अविषय हुआ जो अपरोक्ष व्यवहारका योग्यपणा है यह ही ता साक्षी चैतन्यविषे स्वप्रकाशपणा है। इहां अपरोक्ष व्यवहार करिकै प्रमाणजन्य वृत्तिका ग्रहण करणा तहां अपरोक्ष व्यवहारके योग्य घटादिकोंविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतैं 'अवेद्यत्वे सति' यह पद कथन कऱ्या है । तिन घटादिकोंविषे जो फल चतन्यका अविषयत्वरूप अवेद्यपणा है नहीं । और अवेद्य धर्माधर्मविषे इस लक्षणकी अतिव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतैं 'अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वम्' यह पद कथन कऱ्या है सो अपरोक्ष व्यवहारयोग्यत्व ता धर्माधर्मविषे है नहीं । यातैं तहां अतिव्याप्ति होवै नहीं इति। शंका-ता स्वप्रकाशसाक्षी करिकै तिन स्वप्नके पदार्थोंका प्रकाश होवो । तथापि ते रथादिक पदार्थ ता स्वप्नविषे नवीन ही उत्पन्न होवे हैं इसविषे कौन प्रमाण है ? समाधान-साक्षात् वेदकी श्रुति ही ता अर्थविषे प्रमाण है । तहां श्रुति । 'न तत्र रथानरथयोगा नपंथानो भवंति अथ रथान्रथयोगान् पथः सृजति' अर्थ-जाग्रत अव-

रथाविषे जे व्यावहारिक रथ हैं तथा तिन रथोंविषे जुडनेहारे जे अश्व हैं तथा तिन अश्वोंके चलणेयोग्य जे मार्ग हैं तिन सर्वोंका स्वप्नविषे अभाव है। तो भी ता स्वप्नविषे रथोंकूं तथा अश्वोंकूं तथा मार्गोंकूं उत्पन्न करे हैं इति। यह श्रुति ता स्वप्नविषे जाग्रतके रथादिकोंके अभावकूं तथा प्रातिभासिक रथादिकोंकी उत्पत्तिकूं कथन करे हैं। यातैं तिन रथादिकोंकूं विषय करणेहारा सो स्वप्नका ज्ञान अनुभवरूप ही है स्मृतिरूप नहीं। शंका—इस प्रकार ता स्वप्नके ज्ञानकूं जो अनुभवरूप मानोंगे तौ तिन स्वप्नके रथादिक पदार्थोंकी जाग्रतविषे भी अनुवृत्ति होणी चाहिये। काहेतैं जे पदार्थ जिस अधिष्ठानविषे कल्पित होवैं हैं तिस अधिष्ठानके ज्ञानतैं ही तिन पदार्थोंका नाश होवे है। और ते स्वप्नके पदार्थ ब्रह्मचैतन्यविषे ही कल्पित हैं यातैं ता ब्रह्म चैतन्यके साक्षात्कार करिकै ही तिन स्वप्न पदार्थोंका नाश होवैगा। सो अधिष्ठान ब्रह्मका साक्षात्कार इस पुरुषकूं है नहीं और ता अधिष्ठान साक्षात्कारतैं भिन्न दूसरा कोई तिन स्वप्न पदार्थोंका निवर्त्तक है नहीं। यातैं जाग्रत् अवस्थाविषे तिन स्वप्न पदार्थोंकी अनुवृत्ति अवश्य होणी चाहिय। जो कदाचित् इस अर्थविषे इष्टापत्ति करोगे तौ सर्व लोकोंके अनुभवका विरोध होवैगा। अर्थात् सवलोक स्वप्नके पदार्थोंका जाग्रत्विषे अभाव ही माने हैं। यातैं ता स्वप्नके ज्ञानविषे अनुभवरूपता संभवती नहीं। समाधान—कार्यका नाश दो प्रकारका होवै है एक तौ बाध होवै है दूसरा लय होवै है तहां अधिष्ठानके वास्तवरूपके साक्षात्कार करिकै जो कार्यका आपणे उपादानकारणरूप अज्ञानसहित नाश है ताका नाम बाध है। जैसे शुक्तिरूप अधिष्ठानके साक्षात्कार करिकै रजतरूप कार्यका आपणे उपादानकारण अज्ञानसहित नाश होवै है इसीका नाम बाध

है । और ता उपादानकारणके विद्यमान हुए भी ता कार्यका जो तिरोभावमात्र है ताका नाम लय है । तहां स्वप्नके रथादिक पदार्थ अंतःकरण मायाद्वारा शुद्ध चैतन्यविषे अध्यस्त हैं और ता शुद्ध-चैतन्यरूप अधिष्ठानका साक्षात्कार इस पुरुषकूं जाग्रत्कालविषे है नहीं ! यातैं शुक्ति रजतकी न्याईं तिन स्वप्न पदार्थोंका बाधरूप नाश तौ होता नहीं परंतु सो स्वप्न पूर्व उक्तरीतिसे सोपाधिकभ्रम है । यातैं जैसे जपाकुसुमादिरूप उपाधिकी निवृत्तितैं स्फटिक-विषे लोहितकी निवृत्ति होवै है तैसे उपाधिकी निवृत्तितैं तिन स्वप्न पदार्थोंकी भी निवृत्ति संभवै है । यातैं जाग्रत् अवस्थाविषे तिन स्वप्न पदार्थोंकी अनुवृत्ति संभवती नहीं । तहां जाग्रत्के संस्कार तथा स्वप्नविषे भोग देणेहारा कर्म तथा निद्रादोष इन तीनों करिकै विशिष्ट जो अंतःकरण है सो अंतःकरण ही ता स्वप्नभ्रमविषे उपाधि है ता अंतःकरणरूप उपाधिकी निवृत्तितैं जाग्रत् अवस्थाविषे तिन स्वप्न पदार्थोंकी निवृत्ति होवै है। यद्यपि जाग्रत् अवस्थाविषे सो अंतःकरण स्वरूपतैं विद्यमान ही है तथापि ता जाग्रत् अवस्था-विषे सो अंतःकरण स्वप्न भोगप्रद कर्म निद्रादोष विशिष्ट नहीं है । तहां जो पदाथ आपणेविषे स्थित धर्मोंकूं आपणे संबंधीविषे आरोपण करे है सो पदार्थ उपाधि कह्या जावै है । जैसे जपाकुसुम आपणेविषे स्थित रक्तवर्णकूं आपणे संबंधी स्फटिकविषे आरोपण करे है यातैं सो जपाकुसुम उपाधि कह्या जावै है। तैसे सो अंतः-करण भी आपणे कर्तृत्व भोक्तृत्वादिक धर्मोंकूं आपणे संबंधी आत्माविषे आरोपण करै है । यातैं सो अंतःकरण भी उपाधि कह्या जावै है इस प्रकार स्वप्नज्ञानकूं सोपाधिक भ्रमरूप होणेतैं अनुभ-वरूपता ही संभवै है इति । इहां कैएक ग्रंथकार तौ यह कहे हैं । सो स्वप्नअध्यास सोपाधिक भ्रम नहीं है किंतु शुक्ति रजतभ्रमकी

न्याईं निरुपाधिक भ्रम ही है शंका–ता स्वप्न अध्यासकूं जो निरुपाधिक भ्रम मानोगे तौ तिन स्वप्न पदार्थोंकी जाग्रत्‌विषे भी अनुवृत्ति होणी चाहिये। काहेतैं ता निरुपाधिक भ्रमकी अधिष्ठानके ज्ञानतैं ही निवृत्ति होवै है और ता स्वप्न भ्रमका अधिष्ठान ब्रह्म चैतन्य है। ता ब्रह्म चैतन्यका इस पुरुषकूं जाग्रत् अवस्थाविषे साक्षात्कार है नहीं। यातैं तिन स्वप्न पदार्थोंका जाग्रत् अवस्थाविषे बाध होवैगा नहीं। समाधान–जैसे रजत भ्रमका अधिष्ठान जा शुक्ति है ता शुक्तिके नहीं साक्षात्कार हुए भी तथा ता रजत भ्रमके उपादान कारणरूप अज्ञानके विद्यमान हुए भी ता रजत भ्रमकी विरोधी दंडादिक पदार्थके ज्ञान करिकै निवृत्ति होइ जावै है। तैसे स्वप्न भ्रमके अधिष्ठानरूप ब्रह्म चैतन्यके नहीं साक्षात्कार हुए भी विरोधी जाग्रत् ज्ञान करिकै तिन स्वप्न पदार्थोंकी निवृत्ति बनि सके है। यातैं तिन स्वप्न पदार्थोंकी जाग्रत्‌विषे अनुवृत्ति होवै नहीं। यातैं ता रजत भ्रमकी न्याईं सो स्वप्न भ्रम भी निरुपाधिक भ्रम ही है। शंका–ता स्वप्न भ्रमकूं जो निरुपाधिक भ्रम मानोगे तौ ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पुरुषोंकूं सो स्वप्नभ्रम नहीं होणा चाहिये। काहेतैं तिन स्वप्न पदार्थोंका अधिष्ठान जो ब्रह्मचैतन्य है ता ब्रह्मके साक्षात्कार करिकै तिन ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंका सो स्वप्नभ्रमका उपादान कारणरूप ज्ञान निवृत्ति होइ गया है। समाधान–ता ब्रह्मसाक्षात्कार करिकै अज्ञानके निवृत्त हुए भी ता अज्ञानके कार्यभूत अंतःकरणादिकोंकी प्रारब्ध कर्मके नाशपर्यंत निवृत्ति होती नहीं। और पूर्व उक्त रीतिसे तिन स्वप्नपदार्थोंका अतःकरण ही साक्षात् उपादान कारण है। यातैं प्रारब्धके नाशपर्यंत तिन ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं भी सो स्वप्नभ्रम संभवै है। जो कदाचित् ब्रह्म साक्षात्कार करिकै अज्ञानकी निवृत्तितैं अनंतर तत्त्ववेत्ता

पुरुषकूं स्वप्नभ्रम नहीं मानोगे तौ तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं जाग्रत अवस्थाविषे भी शब्दादिक विषयोंका अनुभव नहीं होणा चाहिय । और जाग्रत् अवस्थाविषे सो तत्त्ववेत्ता पुरुषका व्यवहार प्रत्यक्ष प्रतीत होवै है । यातैं तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं सो स्वप्नभ्रम भी मान्या चाहिये । परन्तु सो तत्त्ववेत्ता पुरुष अज्ञानी पुरुपकी न्याईं आपणे स्वरूपविषे कोई व्यवहारमानता नहीं इति तहां पूव निरुपाधिक सोपाधिक इस भेद करिकै दो प्रकारका विपर्यय कह्या था । ताका अबपर्यंत निरूपण कऱ्या अब ता उक्त विपर्ययका ही अन्य प्रकारतैं विभाग कहे हैं । सो पूर्व उक्त भ्रमरूप विपर्यय पुनः दो प्रकारका होवै है एक तौ अंतःकरणकी वृत्तिरूप होवै है दूसरा अविद्याकी वृत्तिरूप होवै है । तहां स्वप्नके पदार्थोंका ज्ञान तथा मनोराज्य तथा नष्ट हुए पुत्रादिकोंका प्रत्यक्ष इत्यादिक भ्रम तौ अंतःकरणकी वृत्तिरूप होवै है और शुक्तिविषे रजतका ज्ञान तथा रज्जुविषे सर्पका ज्ञान इत्यादिक भ्रम अविद्याकी वृत्तिरूप होवै है इस प्रकार पूर्व उक्त संशय भी अविद्याकी वृत्तिरूप ही होवै है इति । इतनैं पर्यंत विपर्ययका निरूपण कऱ्या अब ता विपर्ययके निवृत्तिका उपाय वर्णन करे हैं । तहां पूर्व उक्त 'अहं अज्ञः' इत्यादिक निरुपाधिक विपर्यय तौ निदिध्यासन करिकै निवृत्त होवैं और सोपाधिक विपर्यय तौ तिस तिस उपाधिकी निवृत्तिता निवृत्त होवै हैं । तहां पूर्व उक्त विपरीत भावनारूप विपर्ययका निवर्त्तक जो निदिध्यासन है ताका स्वरूप पूर्व द्वितीय परिच्छेदविषे निरूपण करि आये हैं सो इहां भी जानि लेणा । सो निदिध्यासन शारीरक मीमांसाके तृतीय अध्यायके पठन करिकै सिद्ध होवे है । इस प्रकार श्रवण करिके प्रमाणगत असंभावनाके निवृत्त हुए तथा मनन करिकै प्रमेयगत असंभावनाके निवृत्त हुए

तथा निदिध्यासन करिकै विपरीतभावनाके निवृत्त हुए इस अधिकारी पुरुषकूं 'तत्त्वमसि' आदिक वाक्यतें 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न होवै है ता अपरोक्षज्ञानतें अज्ञानकी निवृत्ति पूर्वक परमानंदकी प्राप्ति होवे है। शंका—श्रवण मनन निदिध्यासनकूं करते हुए भी कितनेक पुरुषोंकूं सो ब्रह्म साक्षात्कार उत्पन्न होता नहीं याकेविषे क्या कारण है ? समाधान—ता आत्मज्ञानकी उत्पत्तिविषे जैसे सा पूर्व उक्त असंभावना तथा विपरीतभावना प्रतिबन्ध होवै है तैसे भूत १ भावी२ वर्त्तमान ३ यह तीन प्रकारका दूसरा भी प्रतिबन्ध होवै है। सो प्रतिबन्ध जिन पुरुषोंविषे विद्यमान होवै है तिन पुरुषोंकूं श्रवणादिकोंके करते हुए भी सो आत्मज्ञान उत्पन्न होता नहीं और जिन पुरुषोंकूं सो प्रतिबन्ध नहीं होवै है तिन पुरुषोंकूं विचार करते हुए 'तत्त्वमसि' वाक्यतें सो ब्रह्म साक्षात्कार अवश्य होवै है। यह वार्त्ता श्रीव्यास भगवान्ने भी ब्रह्मसूत्रोंविषे कही है। तहां सूत्र। 'ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात्' अर्थ—फल देणेवासतें सन्मुख भया जो कर्मविशेष है ताका नाम प्रस्तुत प्रतिबन्ध है अथवा ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्तिका विरोधी जो वासना विशेष है ताका नाम प्रस्तुत प्रतिबन्ध है। ऐसे प्रस्तुत प्रतिबंधके अभाव हुए इस पुरुषकूं श्रवण मननादिकोंतें इसी जन्मविषे ब्रह्म साक्षात्कार होवै है। और ता प्रस्तुत प्रतिबंधके विद्यमान हुए इस पुरुषकूं जन्मांतरविषे भी सो ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है। जैसे वामदेवादिकोंकूं हुआ है इति। तहां प्रतिबंधयुक्त पुरुषकूं आत्माकी दुर्विज्ञेयता श्रुति स्मृतिनें भी कथन करी है। तहां श्रुति।'श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वंतोपि बहवो यं न विद्युः' अर्थ—यह आत्मा बहुत पुरुषोंकूं तौ श्रवणवासतें भी

प्राप्त होता नहीं और बहुत पुरुष तौ इस आत्माकूं श्रवण करते हुए भी किसी प्रतिबंधके वशतैं साक्षात्कार करि सकते नहीं इति । इसी अर्थकूं 'आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्' इत्यादिक स्मृतिवचन भी कथन करे हैं इति । अब भूत १ भावी २ वर्त्तमान ३ इन तीन प्रतिबंधोंका स्वरूप तथा ताके निवृत्तिका उपाय वर्णन करे हैं । तहां पूर्व अनुभव कऱ्या जो कोई प्रिय विषय है तिसके दृढ संस्कारके वशतैं ब्रह्मचिंतनकालविषे जो ता विषयका पुनः पुनः स्मरण है ताका नाम भूतप्रतिबंध है । सो भूतप्रतिबंध ता विषय उपहित ब्रह्मके चिंतन करिकै निवृत्त होवै है । जैसे किसी संन्यासीकूं पूर्व गृहस्थ आश्रमविषे अनुभव कऱ्ये हुए महिषी आदिक पदार्थके पुनः पुनः स्मरण करिकै जभी श्रवण करते हुए भी तत्त्वज्ञान नहीं उत्पन्न भया तभी गुरुने ता भूत प्रतिबंधकी निवृत्ति करणे वासतैं ता संन्यासीके प्रति ता महिषी उपहित ब्रह्मके चिंतनका उपदेश कऱ्या । ता चिंतन करि कै ता संन्यासीका सो भूतप्रतिबंध निवृत्त होता भया । तिसतैं अनंतर ता संन्यासीकूं श्रवणादिकोंतैं आत्मज्ञान होता भया । या प्रकारकी गाथा लोकपरंपरातैं सिद्ध है इति । और दूसरा भावप्रितिबंध तौ प्रारब्ध कर्मका शेष १ तथा ब्रह्मलोककी इच्छा २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है ता भावी प्रतिबंधके विद्यमान हुए इस पुरुषकूं श्रवणादिकोंके करते हुए भी सो आत्मज्ञान उत्पन्न होता नहीं । शंका—प्रारब्ध कर्मकूं जो ज्ञानका प्रतिबंधक मानोगे तौ किसी भी पुरुषकूं सो ब्रह्मसाक्षात्कार नहीं होवैगा । जिस कारणतैं शरीरकी स्थिति पर्यंत सो प्रारब्धकर्म नाश होता नहीं और ता प्रारब्धकर्मरूप प्रतिबंधके वशतैं जभी किसीकूं भी सो ब्रह्मसाक्षात्कार नहीं भया तभी ता ब्रह्मसाक्षात्कारके श्रवणादि असाधनोंकूं विधान करणेहारे 'आत्मा

या अरे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इत्यादिक श्रुतिवचन अप्रमाण होवैंगे। समाधान–सो प्रारब्धकर्म दो प्रकारका होवै है। एक तौ फलाभिसंधिकृत प्रारब्ध होवै है दूसरा केवल प्रारब्ध होवै है। तहां इस कर्म करिकै हमारेकूं स्वर्गरूप फलकी प्राप्ति होवै है या प्रकारकी जा फलकी इच्छा है ताका नाम फलाभिसंधि है। ता फलाभिसंधि करिकै कर्या जो कर्म है ताका नाम फलाभिसंधिकृत है और ता फलाभिसंधितैं विना कर्या जो कर्म है ताका नाम केवल प्रारब्ध है। तहां फलाभिसंधिकृत प्रारब्ध कर्मका तौ ता फलके भोग करिकै ही नाश होवै है अन्य किसी उपाय करिकै नाश होता नहीं। तिस फलाधिसंधिकृत कर्मके विद्यमान हुए इस पुरुषकूं श्रवणादिकोंके करते हुए भी सो ब्रह्म साक्षात्कार उत्पन्न होता नहीं। काहेतैं इच्छा घटित सामग्री सर्वत्र प्रबल ही होवै है। जैसे लोकविषे दो वस्तुके ज्ञानकी सामग्रीके विद्यमान हुए भी इस पुरुषकूं जिस वस्तुके ज्ञानकी इच्छा होवै है तिसी वस्तुका प्रथम ज्ञान होवै है अन्य वस्तुका ज्ञान होता नहीं। यातैं ता फल इच्छा-सहित प्रारब्ध कर्मकूं प्रबल होणेतैं ताके विद्यमान हुए इस पुरुषकूं श्रवणादिकोंके करते हुए भी सो ब्रह्मसाक्षात्कार उत्पन्न होवै नहीं। किंतु ता फलाभिसंधिकृत प्रारब्ध कर्मके फल भोगतैं अनंतर ही इस पुरुषकूं सो ब्रह्मसाक्षात्कार उत्पन्न होवै है। अब ता फलाभिसंधिकृत कर्मकी प्रबलताविषे श्रुतिप्रमाण भी कहे हैं 'स यत्कामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्मकुरुते तदभिसंपद्यते' अर्थ–यह पुरुष जिस जिस फलकी कामनावाला होवै है तिस तिस फलके अनुकूल कर्मके संकल्पवाला होवै है और जिस जिस कर्मके संकल्पवाला होवै है तिस तिस कर्मकूं करै है। और जिस जिस कर्मकूं करै है

तिस तिस कर्मके अनुसार तिस तिस स्वर्गादिकरूप फलकूं प्राप्त होवै है इति । इस प्रकारका फलाभिसंधिकृत प्रारब्ध कर्म ही भावी प्रतिबंधक कह्या जावै है और दूसरा जो फलकी इच्छातें रहित केवल प्रारब्ध कर्म है सो भी पुण्य १ पाप २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है । जिन दोनोंविषे केवल पुण्य प्रारब्ध तौ पापकी निवृत्तिद्वारा इस पुरुषके तत्त्वज्ञानका ही हेतु होवै है तहां श्रुति स्मृति ।'धर्मेण पापमपनुदति । ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः। कषाये कर्मभिः पक्के ततो ज्ञानं प्रवर्त्तते'अर्थ—यह पुरुष धर्मकरिकै पापकूं निवृत्त करै और इन अधिकारी पुरुषोंकूं पापकर्मके नाशतें ही आत्मज्ञान उत्पन्न होवै है और पुण्य कर्मोंकरिकै पापादिकोंके निवृत्त हुएतें अनंतर इस पुरुषकूं ता शुद्ध अंतःकरणविषे आत्मज्ञान उत्पन्न होवै है इति । इत्यादिक श्रुति स्मृति वचनोंकरिकै ताके बल पुण्य प्रारब्धकूं पापकी निवृत्तिद्वारा आत्मज्ञानकी कारणता सिद्ध होवै है । और दूसरा जो पाप प्रारब्ध है सो तौ फलाभिसंधिकृत होवै अथवा ता फलाभिसंधितैं रहित केवल होवै दोनों प्रकारका सो पाप प्रारब्ध आत्मज्ञानका प्रतिबंधक होवै है। तहां सो पाप प्रारब्ध किसी प्रबल पुण्य कर्म करिकै तिरोभावकूं प्राप्त हुआ निवृत्त होवै अन्यथा ज्ञानके उत्पत्तिका प्रतिबंध करे है यातैं यह सिद्ध भया । सो प्रारब्ध शेषरूप भावीप्रतिबंध जब पर्यन्त फल भोग करिकै निवृत्त नहीं होता तब पर्यंत श्रवणादिकोंके करते हुए भी इस पुरुषकूं आत्मज्ञान उत्पन्न होता नहीं । और जभी फलके भोग करिकै सो भावी प्रतिबंध निवृत्त होवै है तभी इस पुरुषकूं तिन श्रवणादिक साधनों करिकै सो आत्मज्ञान उत्पन्न होवै है । यातैं ता आत्मसाक्षात्कारवासतें तिन श्रवणादिक साधनोंके विधान करणेहारी श्रुतिकूं भी अप्र-

माणता होवै नहीं इति । शंका-यह उक्त भावीप्रतिबंध कितने-काल पीछे निवृत्त होवै है । समाधान-इस भावीप्रतिबंधकी निवृत्तिविषे कालका नियम नहीं है किंतु किसीका तौ एक जन्म करिकै भी सो प्रतिबंध निवृत्त होवै है और किसीका दो तीन जन्मों करिकै भी निवृत्त होवै है। यह वार्त्ता अन्य ग्रंथविषे भी कही है । तहां श्लोक-' आगमीप्रतिबंधो हि वामदेवे समीरितः । एकेन जन्मना क्षीणो भरतस्य त्रिजन्मभिः ' अर्थ-सो पूर्व उक्त प्रारब्ध शेषरूप भावीप्रतिबंध वामदेवविषे तथा भरतविषे होता भया है । तहां वामदेवका तौ सो प्रतिबंध एक जन्म करिकै निवृत्त होता भया है और भरतका तीन जन्मों करिकै निवृत्त होता भया है । यातैं ता भावीप्रतिबंधकी निवृत्तिविषे कोई कालका नियम नहीं है । सो वामदेवका वृत्तांत आत्मपुराणके प्रथम अध्यायविषे विस्तारतैं कथन कऱ्या है इति । तहां पूर्व प्रारब्धशेष ब्रह्मलोककी इच्छा यह दो प्रकारका भावी प्रतिबंध कह्या था ताकेविषे प्रारब्ध शेषरूप प्रथम प्रतिबंधका अबपर्यन्त निरूपण कऱ्या । अब ब्रह्म-लोककी इच्छारूप दूसरे भावीप्रतिबंधका निरूपण करे हैं । जिस पुरुषकूं मनविषे ब्रह्मलोकके प्राप्तिकी इच्छा है सो पुरुष श्रवणा-दिकोंकूं करता हुआ भी आत्मज्ञानकूं प्राप्त होता नहीं । यातैं सा ब्रह्मलोककी इच्छा भी ता आत्मज्ञानकी उत्पत्तिविषे भावीप्रतिबंध है । यह वार्त्ता श्रीविद्यारण्यस्वामीने भी कही है तहां श्लोक । 'ब्रह्मलो-काभिवांछायां सम्यक् सत्यां निरुध्यताम् । विचारयेद्य आत्मानं नतु साक्षात्करोत्ययम्' अर्थ-जिस पुरुषकूं ब्रह्मलोकके प्राप्तिकी अ-त्यंत उत्कटइच्छा है सो पुरुषता इच्छाकूं रोकिकै श्रवणादिकोंकूं कर-ताहुआ भी आत्माकूं साक्षात्कार करता नहीं इति। शंका-ब्रह्मलोक-के प्राप्तिका साधनरूप जे उपासना हैं ते उपासना भी तिस पुरुषने

करी नहीं । जिस करिकै ब्रह्मलोककूं जावै और जे श्रवणादिक तिस पुरुषनैं कर्‍ये हैं तिन श्रवणादिकोंतैं तिस पुरुषकूं ता इच्छा-रूप प्रतिबंधके वशतैं आत्मज्ञानकी भी प्राप्ति हुई नहीं । यातैं सो पुरुष दोनों फलोंतैं भ्रष्ट हुआ अधःपतन ही होवैगा ।समाधान-सो पुरुष मरणतैं अनंतर तिन श्रवणादिकोंके प्रभावतैं ब्रह्मलोक-विषे जाइकै तहां निर्गुण ब्रह्मकूं 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकार साक्षा-त्कार करे है ता साक्षात्कारतैं तहां विदेह कैवल्यरूप मोक्षकूं प्राप्त होवै है । यहवार्त्ता श्रुतिविषे भी कथन करीहै। तहां श्रुति-'वेदांत-विज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयःशुद्धसत्त्वाः।ते ब्रह्मलोकेषु परांतकाले परामृतात्परिमुच्यंति सर्वे' अर्थ-वेदांतके श्रवणजन्य ज्ञान करिकै भली प्रकारतैं निश्चय कर्‍या है अद्वितीय ब्रह्मरूप अर्थ जिनोंने तथा श्रुतिस्मृतिविहित सर्व कर्मोंके त्यागपूर्वक ज्ञानाभ्या-सरूप योगतैं शुद्ध हुआ है अंतःकरण जिनोंका ऐसे जे संन्यासी हैं ते संन्यासी किसी प्रतिबंधके वशतैं इहां ब्रह्मसाक्षात्कारके नहीं उत्पन्न हुए भी तिन श्रवणादिकोंके प्रभावतैं ब्रह्मलोकविषे जाइकै तहां निर्गुण ब्रह्मकूं साक्षात्कार करे हैं और ता ब्रह्मलोकके अधिपति हिरण्य-गर्भके अंतकालविषे ते संन्यासी ता उत्पन्न हुए ब्रह्मसाक्षात्कारतैं विदेहकैवल्यरूप मोक्षकूं प्राप्त होवे हैं इति । यह उक्त अर्थ ही 'ब्रह्म णा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे । परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशंति परं पदम्' इस स्मृतिविषे भी कथन कर्‍या है तथा यह उक्त अर्थ ही 'नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति' इत्यादिक वचनों करिकै श्रीभगवान्‌ने गीताविषे भी कथन कर्‍या है । यातैं तिस पुरुषके ते श्रवणादिक निष्फल नहीं हैं किंतु ब्रह्मलोककी प्राप्तिद्वारा आत्मज्ञानकी उत्पत्ति करिकै मोक्षके ही साधन होवै हैं इति । अब तीसरे वर्त्तमान प्रतिबंधका निरूपण करे हैं । तहां

सो वर्त्तमान प्रतिबंध विषयासक्ति १ बुद्धिमंदता २ कुतर्क ३ विपर्यय दुराग्रह ४ इन भेदों करिके चारि प्रकारका होवै है। तहां शब्द स्पर्शादिक विषयोंविषे जो राग है ताका नाम विषयासक्ति है और श्रवण कऱ्ये हुए अर्थके ग्रहण करणेविषे तथा धारण करणेविषे जो बुद्धिकी अकुशलता है ताका नाम बुद्धिमंदता है और श्रुतितें विरोधी जे तर्क हैं तिनोंका नाम कुतर्क है और वास्तवतें अकर्त्ता अभोक्ता आत्माके कर्त्ता भोक्तापणेविषे जो दुराग्रह है अर्थात् आत्मा ही कर्त्ता भोक्ता है या प्रकारका जो अभिमान है ताका नाम विपर्यय दुराग्रह है। इन चारों प्रतिबंधोंविषे कोई भी प्रतिबंधके विद्यमान हुए इस पुरुषकूं श्रवणादिकोंके करते हुए भी सो आत्मसाक्षात्कार उत्पन्न होता नहीं। यातें ते चारों ता आत्मज्ञानके वर्त्तमान प्रतिबंध कहे जावें हैं।इन प्रतिबंधोंकी जभी निवृत्ति होवै है तभी ही इस पुरुषकूं तिन श्रवणादिकों करिके सो आत्मज्ञान उत्पन्न होवै है यातें अब तिन चारि प्रतिबंधोंके निवृत्तिका उपाय कथन करे हैं। तहां शम दमादिकों करिके तौ विषयासक्तिरूप प्रतिबंधकी निवृत्ति होवै है और वेदांतके श्रवण करिकै बुद्धिमंदतारूप प्रतिबंधकी निवृत्ति होवै है और मनन करिके कुतर्करूप प्रतिबंधकी निवृत्ति होवै है और निदिध्यासन करिके विपर्यय दुराग्रहरूप प्रतिबंधकी निवृत्ति होवै है।यह उक्त सर्व अर्थ श्रीविद्यारण्यस्वामीने 'प्रतिबंधो वर्त्तमानो विषयासक्तिलक्षणः। प्रज्ञामांद्यं कुतर्कश्च विपर्ययदुराग्रहः।शमाद्यैः श्रवणाद्यैर्वा तत्र तत्रोचितैः क्षयम्। नीतेऽस्मिन्प्रतिबंधे तु स्वस्य ब्रह्मत्वमश्नुते' इन दो श्लोकों करिके कथन कऱ्या है। तहां श्रवण मनन निदिध्यासन इन तीनोंका स्वरूप पूर्व द्वितीय परिच्छेदविषे निरूपण करि आये हैं सो इहां भी जानि लेणा। अब शम दमादिकोंका स्वरूप

वर्णन करे हैं। तहां शम १ दम २ उपरति ३ तितिक्षा ४ श्रद्धा ५ समाधान ६ यह शमादि षट्संपत्ति कही जावै हैं। तहां जैसे श्रवण मनन निदिध्यासन यह तीनों ता उक्त प्रतिबंधकी निवृत्तिद्वारा आत्मज्ञानकी उत्पत्तिविषे अंतरंग साधन हैं तैसे यह शमादिषट्संपत्ति भी ता उक्त प्रतिबंधकी निवृत्तिद्वारा अंतरंग साधन नहीं हैं। तहां अंतर मनका जो विषय चिंतनतैं निग्रह है ताका नाम शम है। और श्रोत्रादिक बाह्य इंद्रियोंका जो शब्दादिक विषयोंतैं निग्रह है ताका नाम दम है और विधिपूर्वक सर्व कर्मोंका जो संन्यास है ताका नाम उपरति है और शीत उष्ण सुख दुःख मान अपमान निंदा स्तुति इत्यादिक द्वंद्व धर्मोंका जो सहन है ताका नाम तितिक्षा है और गुरु वेदांत वचनोंविषे जो विश्वास है ताका नाम श्रद्धा है और श्रवणादिकोंके करणेविषे जो चित्तकी एकाग्रता है ताका नाम समाधान है। तहां विजातीय वृत्तियोंका तिरस्कार करिकै जो लक्ष्य वस्तुगोचर सजातीय वृत्तियोंका प्रवाह है यह ही ता चित्तकी एकाग्रता जानणी । किंवा इस शमादिषट् संपत्तिविषे आत्मज्ञानकी अंतरंग साधनता श्रुतिनैं भी कथन करी है। तहां श्रुति–'शांतो दांत उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्यति' अर्थ–शम दम उपरति तितिक्षा श्रद्धा समाधान इन षट्संपत्तिवाला पुरुष आपणे अंतःकरणविषे आत्माकूं साक्षात्कार करे है इति । इसी उक्त अर्थकूं श्रीव्यासभगवान्नें भी 'शमदमाद्युपेतः स्यात्' इत्यादिक सूत्र करिकै कथन कर्‍या है। यातैं श्रवणादिकोंकी न्याईं ता शमादि षट्संपत्तिविषे आत्मज्ञानकी अंतरंग साधनता संभवै है इति। अब ता आत्मज्ञानके बहिरंग साधनोंका निरूपण करे हैं। तहां स्वर्गादिक फलकी इच्छातैं रहित होइकै कर्‍ये जे यज्ञ दानादिक कर्म हैं ते यज्ञ दानादिक कर्म ता

आत्मज्ञानके बहिरंग साधन हैं । काहेतैं निष्काम दानादिक कर्मों करिकै इस पुरुषके अंतःकरणकी शुद्धि होवै है । ता शुद्ध अंतः-करणविषे आत्माके जाननेकी इच्छारूप विविदिषा उत्पन्न होवै है । ता विविदिषातैं अनंतर श्रवणादिकों करिकै इस पुरुषकूं आत्मसा-क्षात्कार होवै है । इस प्रकारकी परंपरा करिकै तिन यज्ञ दानादिक कर्मोंकूं भी ता आत्मज्ञानकी साधनता है । यातैं तिन यज्ञ दाना-दिकोंविषे आत्मज्ञानकी बहिरंग साधनता संभवै है । तहां श्रुति-- 'तमेवं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसानाश-केन' अर्थ--अधिकारी ब्राह्मण इस आत्माकूं वेदानुवचन करिकै तथा यज्ञ करिकै तथा दान करिकै जाननेकी इच्छा करे हैं । तहां इस श्रुतिविषे वेदानुवचन इस शब्द करिकै वेदके अध्ययनका ग्रहण करणा और यज्ञ शब्द करिकै अग्निहोत्रादिक यज्ञोंका ग्रहण करणा और दान शब्द करिकै ता यज्ञतैं बाह्य दानका ग्रहण करणा । और हितकारी तथा परिमित तथा पवित्र ऐसे अन्नका जो भोजन है ताका नाम तप है इसी कारणतैं श्रुतिविषे तिस उक्त तपका अनाशक यह विशेषण कथन कऱ्या है । तहां जो तप शरीरके नाशका हेतु नहीं होवै सो तप अनाशक कह्या जावै है । इहां के एक ग्रंथकार तौ 'तपसा नाशकेन' इस उक्त श्रुति वचनविषे 'अनाशकेन' इस प्रका-रका पदच्छेद नहीं करते । किंतु 'नाशकेन' इस प्रकारका पदच्छेद करिकै ता वचनका यह अर्थ करे हैं । शरीरके नाशका हेतु जो अनशन व्रत है तथा श्रीगंगा यमुनाके संगमरूप प्रयागविषे जो बुद्धिपूर्वक शरीरका त्याग है तथा शरीरकूं क्षीण करणेहारे जे कृच्छ्र चांद्रायणादिक व्रत हैं तिनोंका नाम तप है या कारणतैं ही 'तपो ना-नशनात्परम्' यह श्रुति अनशन व्रतकूं सर्व तपोंतैं उत्कृष्ट तप कहे हैं । और प्रयागविषे बुद्धिपूर्वक शरीरके त्याग करणेहारे पुरुषकूं विवि-

दिषा द्वारा ब्रह्म साक्षात्कारकी प्राप्ति श्रुति स्मृति इतिहास पुराणों-विषे कथन करी है। यातैं ता श्रुतिविषे स्थित तप शब्द करिकै ता अनशनादिरूप तपका ही ग्रहण करणा इति। इहां कै एक ग्रंथकार तो ऐसा कहे हैं। प्रयागादिकोंविषे बुद्धिपूर्वक मरण जो शास्त्रोंमें कह्या जावै है सो यथार्थ है। परन्तु इस कलियुगतैं भिन्न त्रेतादिक युगोंविषे सो मरण कथन कर्‍या है। इस कलियुगविषे तौ सो बुद्धि-पूर्वक मरण सर्व प्रकारतैं निषिद्ध ही है और तिस मरणविधायक वचनोंकी जो युगभेदतैं व्यवस्था नहीं करिये तौ भी ते वचन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन वर्णोंतैं भिन्न शूद्रादिकोंके मरणका विधान करे हैं। त्रैवर्णिक पुरुषोंके मरणका विधान करते नहीं। या कारणतैं ही धर्मशास्त्रविषे ब्राह्मणादिकोंकूं मरणांतिक प्रायश्चित्तका निषेध कर्‍या है इति। तहां पूर्व उक्त श्रुतिविषे कथन कर्‍ये जे वेदा-ध्ययन यज्ञ दान तपरूप कर्म हैं ते सर्व समुच्चित हुए ता विविदि-षाके साधन होवै हैं। इस प्रकार कै एक ग्रन्थकार माने हैं और कै-एक ग्रन्थकार तौ तिन यज्ञादिक कर्मोंकूं विकल्प करिकै ता विवि-दिषाका हेतु मानै हैं। अर्थात् वेदाध्ययनरूप कर्म करिकै भी सा विविदिषा होवै है। तथा यज्ञ दानादिरूप कर्म करिकै भी सा विवि-दिषा होवै है इति। शंका—पूर्व उक्त यज्ञ दानादिक कर्मोंकूं साक्षात् ही मुक्तिका साधनपणा संभवै है। यातैं तिन कर्मोंकूं विविदिषाका हेतुपणा कहणा असंगत है। समाधान—अविद्याकी जा निवृत्ति है अथवा ब्रह्म भावकी जा प्राप्ति है ताका नाम मुक्ति है। सा मुक्ति केवल आत्मज्ञान करिकै ही संभवै है कर्म करिकै सा मुक्ति संभवती नहीं। काहेतैं रजतभ्रमका कारणरूप जो शुक्तिका अज्ञान है ता अज्ञानकी निवृत्ति ता शुक्तिरूप अधिष्ठानके साक्षात्कारतैं ही होवै है अन्य किसी उपायतैं होवै नहीं और ब्रह्मात्मभावरूप मोक्ष तौ

अनादि है । यातैं ता मोक्षकूं भी कर्म करिकै साध्यपणा संभवता नहीं । यह वार्ता अन्य शास्त्रविषे भी कही है। तहाँ श्लोक-' भ्रांत्या प्रतीतः संसारो विवेकान्न तु कर्मभिः । न रज्ज्वारोपितः सर्पो घण्टाघोषान्निवर्तते ' अर्थ-जैसे भ्रांति करिकै रज्जुविषे आरोपण कऱ्या जो सर्प है सो सर्प ता रज्जुरूप अधिष्ठानके ज्ञानतैं ही निवृत्त होवै है । घण्टाघोष मन्त्रादिकोंतैं निवृत्त होता नहीं । तैसे आत्माविषे भ्रांति करिकै आरोपित जो संसार है सो संसार ता अधिष्ठान आत्माके साक्षात्काररूप विवेकतैं ही निवृत्त होवै है कर्मों करिकै सो संसार निवृत्त होता नहीं इति । किंवा 'न कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः । नास्त्यकृतः कृतेन' इत्यादिक श्रुतियोंनैं कर्माकूं साक्षात् मोक्षकी साधनताका निषेध कऱ्या है। और ' ज्ञानादेव तु कैवल्यम् । नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय 'इत्यादिक श्रुतियोंनैं आत्मज्ञानकूं ही साक्षात् मोक्षका साधन कह्या है । या कारणतैं भी तिन कर्मोंकूं साक्षात् मोक्षकी साधनता संभवती नहीं । किंतु पूर्व उक्त रीतिसे तिन कर्मोंकूं अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा विविदिषाका ही हेतुपणा संभवै है । शंका-पूर्व उक्त श्रुतिविषे कथन कऱ्ये हुए यज्ञादिक कर्मोंकूं ता विविदिषाका हेतुपणा रहो तथापि ते यज्ञादिक कर्म नित्य नैमित्तिक काम्य प्रायश्चित्त इस भेद करिकै चारि प्रकारके होवे हैं । ते चारों प्रकारके यज्ञादिक कर्म ता विविदिषाके हेतु होवै हैं । अथवा केवल नित्यकर्म ही ता विविदिषाके हेतु होवै हैं । ऐसी शंकाके प्राप्त हुए तहां कै एक ग्रन्थकार तौ ऐसा कहे हैं । ता उक्त श्रुतिविषे विविदिषाका हेतुरूप करिकै केवल यज्ञ दानादिक कर्ममात्र कथन करे हैं तिन कर्मोंविषे नित्यरूपता वा नैमित्तिकादिरूपता ता श्रुतिनैं कही नहीं ।यातैं फलकी इच्छातैं रहित होइकै कऱ्ये हुए नित्य नैमित्तिक काम्य प्रायश्चित्तरूप सर्व यज्ञादिक कर्म अंतः-

करणकी शुद्धिद्वारा ता विविदिषाके हेतु होवै हैं । और सगुण ब्रह्मकी उपासना तौ चित्तकी एकाग्रताका हेतु होवै है इति । और आचार्य तौ ऐसा कहे हैं । 'काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः' इत्यादिक स्मृतिने काम्य कर्मोंके अनुष्ठानका निषेध करिकै फलकी इच्छातैं रहित अग्निहोत्रादिक नित्य कर्मोंके अनुष्ठानका विधान कऱ्या है । यातैं ता उक्त श्रुतिने भी निष्काम अग्निहोत्रादिक नित्यकर्म ही ता विविदिषाका हेतुरूप करिकै विधान कऱ्ये हैं । नैमित्तिक काम्य प्रायश्चित्तरूप कर्म विधान कऱ्ये नहीं इति । तहां तिन यज्ञादिक कर्मोंविषे आत्मज्ञानकी बहिरंग साधनता श्रीव्यास भगवान्‌ने भी ब्रह्मसूत्रोंविषे कही है । तहां सूत्र— 'सर्वापेक्षा च यज्ञादि श्रुतेरश्ववत्' अर्थ—ब्रह्मविद्याकूं आपणी उत्पत्तिविषे तिन यज्ञादि कर्मोंकी अपेक्षा होवै है । जिस कारणतैं सा पूर्व उक्त श्रुति ब्रह्मविद्याकी उत्पत्तिविषे तिन यज्ञादिक कर्मोंकूं साधनता कथन करे है परंतु सा ब्रह्मविद्या मोक्षरूप फलकी उत्पत्तिविषे तिन यज्ञादिक कर्मोंकी अपेक्षा करती नहीं । जिस कारणतैं ता मोक्षरूप फलविषे तिन कर्मोंकी योग्यता नहीं है और जिस पदार्थकी जहां योग्यता होवै है तिस पदार्थकी ही तहां अपेक्षा होवै है। जैसे अश्वकी हलके आकर्षण करणेविषे योग्यता होती नहीं किंतु रथके आकर्षण करणेविषे ही योग्यता होवै है । यातैं सो अश्व रथविषे जोडया जावै है ता हलविषे जोडया जाता नहीं । तैसे तिन यज्ञादिक कर्मोंकूं ता मोक्षके उत्पत्ति करणेकी योग्यता नहीं है किंतु चित्तकी शुद्धिद्वारा विविदिषाकूं उत्पन्न करिकै ता ब्रह्मविद्याके उत्पत्ति करणेकी ही योग्यता है । यातैं तिन यज्ञ दानादिक कर्मोंकूं आत्मज्ञानकी बहिरंग साधनता संभवै है इति । इस प्रकार अंतरंग बहिरंग साधनों करिकै सर्व प्रतिबंधोंतैं रहित हुए पुरुषका मनन निदिध्यासन करिकै संस्कृत जो चित्तरूप दर्पण है ता शुद्धचित्त

सहकृत जो विचार कर्‌या हुआ 'तत्त्वमसि' आदिक महावाक्य है ता महावाक्यतैं उत्पन्न हुआ जो 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका अप्रतिबद्ध साक्षात्कार है ता आत्मसाक्षात्कार करिकै इस अधिकारी पुरुषका अज्ञान नाश होइ जावै है और पूर्व अनेक जन्मोंविषे संपादन कर्‌ये जे पुण्य पापरूप कर्म हैं ते संचित कर्म भी ता आत्मज्ञान करिकै नाश होइ जावै हैं और ता आत्मज्ञानतैं अनन्तर कर्‌ये जे आगामि कर्म हैं तिन आगामि कर्मोंका तौ इस विद्वान् पुरुषकूं ता आत्मज्ञानके प्रभावतैं स्पर्श ही नहीं होता और प्रारब्ध कर्मने व्याप्त कर्‌ये जे अन्नपानादिक विषय हैं तिन विषयोंकूं अनुभव करता हुआ यह विद्वान् पुरुष अखंड एकरस सच्चिदानंद ब्रह्मात्मरूप करिकै स्थित होवै है। यह ही आत्मज्ञानका मोक्षरूप फल है इति। शंका—आत्मज्ञान करिकै अज्ञानके निवृत्त हुएतैं अनंतर विद्वान् पुरुषकूं तुमने विषयोंका अनुभव कहा सो संभवता नहीं। काहेतैं ता विषयानुभवका कारण जो देहाभिमान है सो ता विद्वान् पुरुषविषे है नहीं और जो ऐसा कहो ता देहाभिमानतैं विना ही प्रारब्ध कर्मके वशतैं ता विद्वान् पुरुषकूं सो विषयानुभव संभवै है सो यह तुम्हारा कहणा भी संभवता नहीं। काहेतैं लोकविषे ता देहाभिमानकूं ही अन्वय व्यतिरेक करिकै ता विषयानुभवकी कारणता सिद्ध है तहां जाग्रत् स्वप्नविषे ता देहाभिमानके विद्यमान हुए सो विषयानुभव होवै है और सुषुप्ति अवस्थाविषे तादेहाभिमानके अभाव हुए सो विषयानुभव होता नहीं। इस प्रकारके अन्वय व्यतिरेक करिकै ता देहाभिमानकूं ही ता विषयानुभवके प्रति करणता सिद्ध होवै है। ता देहाभिमानके अभाव हुए केवल प्रारब्ध कर्मके वशतैं ज्ञानवान् पुरुषकूं सो विषयानुभव संभवता नहीं। तात्पर्य यह—सो प्रारब्धकर्म ता विषयानुभवका अदृष्ट

कारण है । और सो देहाभिमान ता विषयानुभवका दृष्ट कारण है और अदृष्ट कारणसामग्री दृष्ट कारण सामग्रीतैं विना कोई कार्यकूं उत्पन्न करि सकती नहीं, जो उत्पन्न करती होवै तौ मृत्तिका कुलालादिक दृष्ट सामग्रीतैं विना ही ता अदृष्ट सामग्रीतैं घटादिक कार्य उत्पन्न होणे चाहिये । यातैं ता देहाभिमानके अभाव हुए ज्ञानवान् पुरुषकूं केवल प्रारब्धकर्मतैं सो विषयानुभव संभवता नहीं । किंवा ता देहाभिमानतैं विना ही ज्ञानवान् पुरुषका जो विषयानुभवादिक व्यवहार मानोंगे तौ श्रीभाष्यकारोंनें 'तमेतमविद्याख्यमात्मानात्मनोरितरेतराध्यासं पुरस्कृत्य सर्वे प्रमाणप्रमेयव्यवहारा लौकिका वैदिकाश्च प्रवृत्ताः' इस वचन करिकै सर्व लौकिक वैदिक व्यवहारोंकी अध्यासपूर्वक प्रवृत्ति कथन करी है । ता भाष्यवचनका भी विरोध होवैगा । किंवा 'व्यवहारः अध्यासपूर्वकः व्यवहारत्वात्' इस अनुमान करिकै सर्व व्यवहारोंविषे अध्यासपूर्वकता सिद्ध करी है सो यह अनुमान भी व्यभिचारी होवैगा । जिस कारणतैं ज्ञानवान् पुरुषके व्यवहारविषे ता व्यवहारत्वरूप हेतुके विद्यमान हुए भी सो अध्यासपूर्वकत्वरूप साध्य है नहीं और जो ऐसा कहो कि ज्ञानवान् पुरुषविषे भी बाधितानुवृत्ति करिकै सो देहाभिमान रहे है यातैं ता ज्ञानवान्के व्यवहारविषे अध्यासपूर्वकत्वरूप साध्यके विद्यमान हुए सो व्यवहारत्वरूप हेतु तहां व्यभिचारी होवै नहीं । तथा ता भाष्यवचनका भी विरोध होवै नहीं। सो यह तुम्हारा कहणा भी संभवता नहीं । काहेतैं जैसे शुक्तिके साक्षात्कार करिकै ता शुक्तिको अज्ञानकी निवृत्तितैं रजत भ्रमकी निवृत्ति हुए पुनः ता रजत भ्रमकी अनुवृत्ति देखणेमें आवती नहीं तैसे आत्मसाक्षात्कार करिकै अज्ञानकी निवृत्तितैं देहाभिमानके निवृत्त हुए पुनः ता देहाभिमानकी अनुवृत्ति कहणी अत्यंत विरुद्ध है । जो कदाचित् आत्मज्ञान करिकै बाधित देहाभिमानकी

भी पुनः अनुवृत्ति मानोंगे तौ शुक्तिज्ञान करिकै बाधित रजत भ्रमकी भी पुनः अनुवृत्ति होणी चाहिये । और जो ऐसा कहो जैसे सोपाधिक भ्रमस्थलविषे 'शुक्लः स्फटिकः' इस प्रकारके अधिष्ठानके साक्षात्कारके विद्यमान हुए भी जपाकुसुमादिरूप उपाधिके समीप स्थित हुए 'लोहितः स्फटिकः' या प्रकारका अनुभव सर्व जनोंकूं प्रसिद्ध है तैसे इहां भी अधिष्ठान आत्माके साक्षात्कार करिकै अज्ञानके निवृत्त हुए भी उपाधिकी स्थितिपर्यंत ज्ञानवान् पुरुषकूं सो देहाभिमान तथा ता देहाभिमानपूर्वक सो विषयानुभव संभवै है । सो यह तुम्हारा कहणा भी असंगत है । काहेतैं ता जपाकुसुमकी न्याईं इहां कोई उपाधि निरूपण होइ सकता नहीं । तात्पर्य यह—अज्ञानकूं वा अज्ञानके कार्यकूं ही उपाधि कहणा होवैगा । ते दोनों आत्मज्ञान करिकै निवृत्त होइ गये हैं । यातैं आत्मज्ञान करिकै अज्ञानके निवृत्त हुए ता अज्ञानके कार्यकी भी निवृत्ति होणेतैं ता ज्ञानवान् पुरुषकूं प्रारब्ध कर्मके वशतैं विषयोंका अनुभव कहणा सर्वथा असंगत है। समाधान—'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारके आत्मज्ञान करिकै निवृत्त हुआ है अज्ञान जिसका ऐसे ज्ञानवान् पुरुषकूं ता प्रारब्ध कर्मके वशतैं सो विषयानुभव संभवै है और ता विषयानुभवका कारणरूप जो देहाभिमान है सो देहाभिमान भी ता ज्ञानवान् पुरुषविषे बाधितानुवृत्ति करिकै रहै है । शंका—ता देहाभिमानका कारणरूप जो अज्ञान है सो आत्मज्ञान करिकै निवृत्त होइ गया है और उपादान कारणके नाश हुएतैं अनंतर कार्यकी अनुवृत्ति कहीं भी देखणेविषे आवती नहीं । यातैं ज्ञानवान् पुरुषविषे ता देहाभिमानकी अनुवृत्ति कहणी असंगत है । समाधान—उपादान कारणके नाश हुए भी कार्यकी अनुवृत्ति देखणेमें आवै है । जैसे नैयायिकोंके मतविषे तंतु

आदिक उपादान कारणके नाशतैं अनंतर एकक्षण पर्यंत पटादिक कार्यकी अनुवृत्ति अंगीकार करी है। तैसे सिद्धांतविषे भी अज्ञान-रूप उपादान कारणके नाशतैं अनंतर देहाभिमानादिरूप कार्यकी अनुवृत्ति संभवे है। शंका—नैयायिकोंका सिद्धांत तौ श्रुति स्मृति आदिक प्रमाणतैं रहित है तिस सिद्धांतकूं जो तुम अंगीकार करोगे तौ तुम्हारे सिद्धांतविषे भी अप्रमाणता प्राप्त होवैगी। समा-धान—अज्ञानकी निवृत्तितैं अनंतर भी ज्ञानवान् पुरुषविषे बाधिता-नुवृत्ति करिके देहाभिमानादिक रहै हैं इस अर्थकूं हम केवल नैयायि-कोंके सिद्धांतमात्रतैं ही सिद्ध नहीं करते। किंतु इस हमारे सिद्धांतके साधक श्रुति स्मृति युक्ति अनुभव आदिक अनेक प्रमाण विद्यमान हैं यातैं नैयायिकोंके मतकी न्याईं हमारे सिद्धांतविषे अप्रमाणता प्राप्त होवै नहीं। शंका—जो पदार्थ उपादान कारणका निवर्त्तक होवे है सो पदार्थ ताके कार्यका भी निवर्तक होवे है। जैसे अग्नि तंतुरूप उपादान कारणकी निवृत्ति करता हुआ ताके पटरूप कार्य-की भी निवृत्ति करे है तैसे सो आत्मज्ञान भी अज्ञानरूप उपादान कारणकी निवृत्ति करता हुआ ता अज्ञानके कार्यकी भी अवश्य नि-वृत्ति करैगा और सो देहाभिमान भी ता अज्ञानका कार्य है यातैं ता देहाभिमानके निवृत्त हुए ज्ञानवान् पुरुषकूं सो विषयानुभव संभवता नहीं। समाधान—यद्यपि सो आत्मज्ञान अज्ञानका तथा ता अज्ञानके कार्यका निवर्त्तक है तथापि धनुषतैं छूटे हुए बाणकी न्याईं आपणे फल देणेविषे प्रवृत्त हुआ प्रारब्ध कर्म ता ज्ञानतैं प्रबल है यातैं सो प्रारब्ध ता अज्ञानके कार्यकी निवृत्ति विषे प्रतिबंधक होवे है। शंका—ता प्रारब्ध कर्मकूं जो आत्मज्ञानतैं प्रबल मानोगे तौ ता प्रबल प्रारब्ध कर्मरूप प्रतिबंधके विद्यमान हुए ता आत्मज्ञानतैं अज्ञानकी भी निवृत्ति नहीं होणी चाहिये। समा-धान—ता आत्मज्ञानविषे एक तौ अज्ञानका निवर्त्तकत्व अंश है

और दूसरा अज्ञानके कार्यका निवर्त्तकत्व अंश है। तहां अज्ञानतैं विना भी ज्ञानवान् पुरुषकूं प्रारब्धकर्मके फलका भोग बनिसकै है। यातैं ता आत्मज्ञानविषे जो अज्ञान निवर्त्तकत्व अंश है ताका सो प्रारब्धकर्म प्रतिबंधक होता नहीं और ता अज्ञानके कार्यरूप जे देह इंद्रियादिक हैं तिनोंतैं विना इस पुरुषकूं सो प्रारब्ध कर्मके फलका भोग संभवता नहीं। यातैं ता आत्मज्ञानविषे जो अज्ञानके कार्यका निवर्त्तकत्व अंश है ताका सो प्रारब्धकर्म प्रतिबंधक होवै है। अर्थात् सो प्रारब्धकर्म आपणे फलभोग देणेवासतैं ता देहइंद्रियादिरूप कार्यकूं निवृत्त होणे देता नहीं। यातैं ता आत्मज्ञान करिकै अज्ञानके निवृत्त हुए भी ज्ञानवान् पुरुषकूं बाधितानुवृत्तिकरिकै ता देहाभिमानके विद्यमान हुए सो प्रारब्ध कर्म करिकै प्राप्त कऱ्या हुआ विषयानुभव संभवै है। यह वार्ता श्रीव्यास भगवान्ने भी ब्रह्मसूत्रोंविषे कही है तहां सूत्र-'भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा संपद्यते' अर्थ-आत्मज्ञानकरिकै संचित कर्मोंके नाश हुए तथा आत्मज्ञानतैं अनंतर करेहुए आगामि कर्मोंके स्पर्श हुए बाकी रहे हुए प्रारब्धकर्मोंकूं भोगतैं निवृत्त करिकै यह ज्ञानवान् पुरुष निर्विशेष ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है। अर्थात् विदेहकैवल्यरूप मोक्षकूं प्राप्त होवै है इति। किंवा यह उक्त अर्थ श्रीवार्त्तिककारने भी कह्या है। तहां श्लोक-'शास्त्रार्थस्य समाप्तत्वान्मुक्तिः स्यात्तावताऽपि ते। रागादयःसंतु कामं न तद्भावोऽपराध्यते' अर्थ-वेदांत शास्त्रका अर्थरूप जो जीव ब्रह्मका एकत्व है ता एकत्व साक्षात्कार करिकै ही इस पुरुषकूं मुक्तिकी प्राप्ति होवै है। ऐसे ज्ञानवान् पुरुषविषे रागद्वेषादिक बाधितानुवृत्ति करिकै रहो। तिन रागादिकोंके विद्यमान हुए ता ज्ञानवान् पुरुषकूं मुक्तिविषे किंचित् मात्र भी हानि नहीं है इति। किंवा यह उक्त अर्थ वेदांत रहस्यके जाननेहारे श्रीविद्यारण्य स्वामीने भी कह्या है। तहां श्लोक-'अपेक्ष्य च चिदात्मानं पृथक् पश्यन्नहं कृतिम्। इच्छंस्तु कोटिवस्तूनि न

बाधो ग्रंथिभेदतः॥ १॥ग्रंथिभेदेऽपि संभाव्या इच्छाः प्रारब्धदोषतः। बुद्धाऽपि पापबाहुल्यादसंतोषो यथा तव॥२॥अर्थ-जो पुरुष चैतन्य आत्माकूं अहंकारादिकोंतैं पृथक् जानै है तथा तिन अहंकारादिकोंकूं ता चैतन्य आत्मातैं पृथक् जानै है सो ज्ञानवान् पुरुष जो कदाचित् कोटि वस्तुवोंकी भी इच्छा करै तौ भी ता अध्यासरूप ग्रंथिके भेदनतैं ता ज्ञानवान् पुरुषकी किंचित्मात्र भी हानि होती नहीं और ता अध्यासरूप ग्रंथिके निवृत्त हुए भी तिस ज्ञानवान् पुरुषविषे प्रारब्ध दोषतैं इच्छा संभवै है । जैसे अहंकारादिकोंतैं आत्माकूं पृथक् जानिकै भी पापकर्मोंकी बाहुल्यतातैं तुम्हारेकूं असंतोष हुआ है इति । यातैं ज्ञानवान् पुरुषकूं भी प्रारब्ध कर्मके फल भोग वासतैं बाधितानुवृत्ति करिकै सो देहाभिमान तथा अरागद्वेषादिक संभवै हैं। शंका--तिन विद्यारण्य स्वामी आदिक आचार्योंने ही किसी स्थलविषे ता ज्ञानवान् पुरुषविषे रागादिकोंका निषेध भी कऱ्या है ।तहां श्लोक--'रागो लिंगमबोधस्य चित्तव्यायामभूमिषु । न चाध्यात्माभिमानोऽपि विदुषोऽस्त्यासुरत्वतः।विदुषोऽप्यासुरत्वं चेन्निष्फलं ब्रह्मदर्शनम्' अर्थ-इस पुरुषके चित्तविषे जो विषयोंका राग है सो राग ही इस पुरुषके अज्ञानके जनावणेहारा चिह्न है। अर्थात् ता रागरूपलिंगतैं ही इस पुरुषके अज्ञानका अनुमान कऱ्या जावै है और इस पुरुषविषे अभिमान ही असुरभावकी प्राप्ति करै है यातैं विद्वान् पुरुषकूं अध्यात्म अभिमान भी होता नहीं जो कदाचित् ता अभिमान करणेतैं विद्वान् पुरुषविषे भी सो असुरभाव होवैगा तौ सो ब्रह्मसाक्षात्कार ही निष्फल होवैगा इति॥ इत्यादिक वचनों करिकै ता ज्ञानवान् पुरुषविषे रागादिकोंका तथा देहाभिमानका निषेध कऱ्या है। यातैं ता ज्ञानवान् पुरुषविषे ते रागादिक संभवते नहीं । समाधान--उक्त वचनों करिकै आचर्योंने ज्ञानवान्विषे जो रागादिकोंका निषेध कऱ्या है सो दृढ अध्यासपूर्वक रागादिकोंका

निषेध कन्या है अर्थात् जैसे अज्ञानी पुरुषविषे आत्मा अहंकारादिकोंके दृढ अध्यासपूर्वक रागादिक होवै हैं तैसे ज्ञानवान् पुरुष विषे दृढ अध्यासपूर्वक ते रागादिक होते नहीं जो कदाचित् इन वचनोंका ऐसा अभिप्राय नहीं मानिये तौ ज्ञानवान्विषे रागादिकोंकूं कहणेहारे पूर्व उक्त वचनोंके साथ इन वचनोंका विरोध होवैगा। तथा 'सर्वथा वर्त्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते' इस वचन करिकै श्रीभगवान्ने सर्व प्रकारतैं वर्त्तमान हुए भी ज्ञानवान्कूं जन्मका भाव कथन कन्या है। ता भगवान्के वचनका भी विरोध होवैगा ता विरोधके निवृत्त करणेवासतैं तिन रागके निषेधक वचनोंका ता दृढ अध्यास पूर्वक रागादिकोंके निषेधविषे ही तात्पर्य मान्या चाहिये। शंका—जभी ज्ञानवान् पुरुषविषे रागादिक तुमने अंगीकार करे तभी ता ज्ञानवान्का यथेष्टाचरण भी तुम्हारेकूं अंगीकार होवैगा। तहां शास्त्रमर्यादाका उल्लंघन करिकै निषिद्ध विषयोंविषे जो प्रवृत्ति है ताका नाम यथेष्टाचरण है। समाधान—ता ज्ञानवान् पुरुषका यथेष्टाचरण हम अंगीकार करते नहीं। किंतु प्रारब्ध कर्मके फलभोगविषे अनुकूल जे आभासमात्र राग द्वेषादिक हैं तिनोंकी अनुवृत्ति हम ज्ञानवान्विषे अंगीकार करैं हैं। सो आभासमात्र रागद्वेषकी अनुवृत्ति आत्मज्ञानका विरोधी होवै नहीं। जो कदाचित् सा आभासमात्र रागद्वेषादिकोंकी अनुवृत्ति भी ता आत्मज्ञानका विरोधी होती होवै तौ किसी भी पुरुषकूं सो आत्मज्ञान नहीं होवैगा। यह वार्त्ता अन्य शास्त्रविषे भी कही है। तहां श्लोक-'कादाचित्कं रागलेशं चिकित्सितुमशक्नुवन्। यो ब्रह्मनिष्ठां संद्वेष्टि कदा स्यात्तत्त्वनिश्चयः' अर्थ--चित्तविषे कदाचित् उत्पन्न हुआ जो लेशमात्र राग है ता रागकी निवृत्ति करणेविषे असमर्थ हुआ जो पुरुष ब्रह्मनिष्ठाविषे द्वेष करे है तिस पुरुषकूं कोई कालविषे

भी आत्माका निश्चय होता नहीं इति। यातैं प्रारब्धकर्मकी समाप्तिपर्यंत ज्ञानवान् पुरुषविषे सो देहाभिमान तथा रागद्वेषादिक बाधितानुवृत्ति करिकै रहै हैं यह सिद्ध भया। शंका-ज्ञानवान् पुरुषकूं जो बाधित देहाभिमानकी अनुवृत्ति मानोंगे तौ शुक्ति साक्षात्कारवान् पुरुषकूं बाधित रजत भ्रमकी भी पुनः अनुवृत्ति होणी चाहिये। समाधान-शुक्तिविषे जो रजत भ्रम है सो निरुपाधिक भ्रम है। यातैं ता शुक्तिके ज्ञानकूं ता रजत भ्रमकी निवृत्ति करणेविषे कोई प्रतिबंधक नहीं है यातैं ता शुक्तिके ज्ञान करिकै निवृत्त हुए रजत भ्रमकी पुनः आवृत्ति होती नहीं। और यह देहाभिमानादिक तौ सोपाधिक भ्रम है तहां प्रारब्धकर्म ही उपाधिरूप है यातैं आत्मज्ञान करिकै अज्ञानके निवृत्त हुए भी ता प्रारब्धकर्मरूप उपाधिकी स्थितिपर्यंत ज्ञानवान् पुरुषविषे बाधितानुवृत्तिरूपतैं तिन देहाभिमानादिकोंकी स्थिति संभवै है इति। अथवा ऐसा मानणा--आत्मज्ञान करिकै अज्ञानके निवृत्ति हुए भी ता अज्ञानका लेशमात्र बाकी रहै है जिस अज्ञान लेशकूं लेशाऽविद्या कहै हैं। ता अज्ञान लेशकी अनुवृत्ति करिकै ही ज्ञानवान् पुरुषकूं सो प्रारब्धकर्मका भोग होवै है यह वार्ता अन्य शास्त्रविषे भी कही है। तहां श्लोक-'द्वैतच्छायारक्षणायास्ति लेशश्चास्मिन्नर्थे स्वानुभूतिः प्रमाणम्' अर्थ—आत्मज्ञान करिकै अज्ञानके निवृत्त हुए भी आभासमात्र द्वैतके रक्षण करणेवास्तैं ता अज्ञानका लेश बाकी रहै है। इस अर्थविषे आपणा अनुभव ही प्रमाण है इति। शंका—आत्मज्ञान करिकै निवृत्त हुए अज्ञानका बाकी लेश रहै है यह पूर्व आपनैं कह्या तहां सो अज्ञानका लेश क्या है अर्थात् ता अज्ञानके किसी अवयवका नाम लेश है अथवा ता अज्ञानके शक्तिका नाम लेश है। तहां प्रथम पक्ष जो अंगीकार करो सो संभवता नहीं। काहेतैं सिद्धांतविषे ता अज्ञानकूं

निरवयव तथा सावयव अंगीकार कऱ्या नहीं किंतु दोनोंतैं विलक्षण अनिर्वचनीय अंगीकार कऱ्या है। और ता ज्ञानकूं सावयव मानिके ता अज्ञानके अवयवकूं जो लेश मानिये तौ भी आत्मज्ञान करिके ता अज्ञानरूप अवयवीके निवृत्त हुएतैं अनंतर ता अवयवकी अनुवृत्ति संभवती नहीं और अज्ञानके शक्तिका नाम लेश है यह द्वितीय पक्ष जो अंगीकार करो सो भी संभवता नहीं। काहेतैं आत्मज्ञान करिके ता शक्तिवाले अज्ञानके नाश हुएतैं अनंतर ता अज्ञानरूप आश्रयतैं विना ता शक्तिकी स्थिति ही संभवती नहीं। यातैं अज्ञानलेशकी अनुवृत्ति करिकै ज्ञानवान् पुरुषकूं प्रारब्धकर्मका भोग संभवता नहीं। समाधान—आत्मज्ञान करिकै आवरण शक्ति तथा तादात्म्य अध्यास यह दोनों निवृत्त होइ जावै हैं और विक्षेप शक्तिवाला अज्ञान ता आत्मज्ञानतैं अनंतर भी रहै है। ता विक्षेप शक्तिवाले अज्ञानकूं ही लेश कहै हैं। और जैसे आवरण शक्तिका आत्मज्ञानके साथ विरोध है तैसे ता विक्षेप शक्तिका आत्मज्ञानके साथ विरोध है नहीं। यातैं ता विक्षेप शक्तिवाले अज्ञानकी अनुवृत्ति करिकै ज्ञानवान् पुरुषकूं सो प्रारब्धकर्मका भोग संभवै है। शंका—ता विक्षेप शक्तिवाले अज्ञान करिकै ज्ञानवान् पुरुषकूं जैसे प्रारब्ध भोगकी प्राप्ति होवै है तैसे जन्मांतरकी भी प्राप्ति होवैगी। समाधान—ता ज्ञानवान्कूं जन्मांतरके प्राप्तिका कोई निमित्त है नहीं। काहेतैं सो अज्ञान आपणे स्वरूपतैं तौ जन्मका हेतु होता नहीं किन्तु धर्म अधर्म यह दोनों ही इस पुरुषके जन्मके हेतु होवै हैं। सो धर्माधर्म भी संचितरूप ही जन्मका हेतु होवै है। ता संचित धर्माधर्मके स्थितिका हेतु आवरण शक्तिवाला अज्ञान है। ता अज्ञानकी आत्मज्ञान करिकै निवृत्ति हुए ते संचित कर्म भी नाश होइ जावै हैं और आत्मज्ञानतैं अनंतर करे हुए आगामि कर्मोंका ता ज्ञानवान् पुरुषकूं लेप होता नहीं और प्रारब्ध कर्मोंका

भोग करिके नाश होवै है। इस प्रकार शरीरके आरंभक कारणके अभावतैं ता ज्ञानवान् पुरुषकूं जन्मांतरकी प्राप्ति संभवै नहीं। और जैसे अग्नि करिकै दग्ध कऱ्या हुआ व्रीहि यवादिक बीज तृप्तिका हेतु हुआ भी अंकुरका हेतु होता नहीं तैसे सो विक्षेप शक्तिवाला अज्ञान इस ज्ञानवान् पुरुषके प्रारब्ध कर्मके फलभोग-विषे उपयोगी विषय दर्शनका हेतु हुआ भी जन्मांतरका हेतु होता नहीं। और आत्मज्ञान करिकै ता आवरण शक्तिवाले अज्ञानकी निवृत्तिकालविषे जिस प्रारब्धकर्मपना आपणे फल भोग देणेवासतैं ता विक्षेप शक्तिवाले अज्ञानलेशका रक्षण कऱ्या था तिस प्रारब्धकर्मरूप प्रतिबंधकके निवृत्त हुएतैं अनंतर सो अज्ञानलेश आप ही निवृत्त होइ जावै है ता अज्ञानलेशकी निवृत्तिवासतैं पुनः आत्मज्ञानकी अपेक्षा होवै नहीं जिस कारणतैं ता अज्ञानलेशके स्थितिका प्रयोजक जो आवरणशक्तिवाला अज्ञान था सो पूर्व ही आत्मज्ञान करिकै निवृत्त होइ गया है। यातैं आत्मज्ञान करिकै अज्ञानके निवृत्त हुए भी ता उक्त अज्ञानलेशकी अनुवृत्ति करिकै ज्ञानवान् पुरुषकूं सो प्रारब्धकर्मका भोग संभवै है इति। अथवा इहां ऐसी व्यवस्था करणी आत्माका आवरण तथा अहंकारादिकोंके साथ आत्माका तादात्म्य अध्यास यह दोनों केवल अज्ञान करिकै ही कऱ्ये हुए हैं या कारणतैं ही आत्मज्ञानकी उत्पत्ति करिकै ते दोनों नाश होइ जावै हैं अर्थात् ते दोनों निरुपाधिक भ्रमरूप हैं यातैं अधिष्ठान आत्माके साक्षात्कार करिक तिन दोनोंकी निवृत्ति संभवै है और विक्षेप तौ कर्मसहित अविद्या करिकै कऱ्या हुआ है। यातैं ब्रह्मविद्या करिकै ता अविद्याके निवृत्त हुए भी ता प्रारब्धकर्मके नाशपर्यंत सो विक्षेप नाश होता नहीं ता विक्षेपकूं सोपाधिक भ्रमरूपता होणेतैं तहां कर्मस-

हित विक्षेपशक्तिवाला अज्ञान ही उपाधि है और जिस कालविषे फलभोग करिके सो प्रारब्धकर्म नाश होवै है तिस कालविषे सो विक्षेप शक्तिवाला अज्ञान आप ही नाश होइ जावै है। ताकी निवृत्तिवास्तैं ज्ञानकी वा योगकी अपेक्षा होती नहीं। जैसे तैल-वर्तिके नाश हुएतें अनंतर प्रदीप आप ही नाश होइ जावै है तैसे आत्मज्ञान करिके ता आवरण शक्तिवाले अज्ञानके निवृत्त हुए तथा संचितकर्मोंके निवृत्त हुए तथा फलभोग करिके प्रारब्धकर्मके निवृत्त हुए सो विक्षेप शक्तिवाला अज्ञान आप ही निवृत्त होइ जावै है। यह उक्त अर्थ अन्य ग्रंथविषे भी कह्या है। तहां श्लोक–'अविद्यावृत्तितादात्म्ये विद्ययैव विनश्यतः। विक्षेपस्य स्वरूपं तु प्रारब्धक्षयमीक्षते' अर्थ–अविद्याकृत आवरण तथा अहंकारादिकोंके साथ आत्माका तादात्म्य अध्यास यह दोनों 'तौ अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारकी विद्या करिके ही नाश होवै है और विक्षेपका स्वरूप तौ प्रारब्धकर्मके नाशकूं देखता है अर्थात् प्रारब्धकर्मके नाशतैं पूर्व सो विक्षेपका स्वरूप नाश होता नहीं किंतु ता प्रारब्धकर्मके नाशतैं अनंतर ही नाश होवै है इति। यातैं यह सिद्ध भया, ज्ञानवान् पुरुषकूं जो विषयोंका अनुभव होवै सो स्फटिकविषे लोहित भ्रमकी न्याईं सोपाधिक भ्रम है। यातैं सो विषयानुभव ता आत्मसाक्षात्कारका विरोधी नहीं है। यातैं आत्मज्ञान करिकै अज्ञानके निवृत्त हुएतैं अनंतर प्रारब्धकर्मने प्राप्त करचे हुए अन्नशनादिक विषयोंकूं अनुभव करता हुआ भी ज्ञानवान् पुरुष अखंड एकरस सच्चिदानंदब्रह्मरूपतैं स्थित होवै है यह पूर्व उक्त आत्मज्ञानका फल संभवै है इति। सो यह उक्त फल शारीरक मीमांसाशास्त्रके चतुर्थ अध्यायके पठन करिकै सिद्ध होवै है। तहां शारीरक मीमांसाशास्त्रके प्रथम अध्यायके पठन करणेतैं श्रवणकी सिद्धि और द्वितीय अध्यायके पठन करणेतैं मननकी

सिद्धि और तृतीय अध्यायके पठन करणेतैं निदिध्यासनकी और चतुर्थ अध्यायके पठन करणेतैं आत्मसाक्षात्काररूप फलकी सिद्धि। यह पूर्व उक्त प्रकार सांप्रदायिक आचार्य माने हैं इति। और के एक ग्रंथकार तौ यह कहे हैं—श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ गुरुके मुखतैं जो ता चतुर्थ अध्यायरूप संपूर्ण शारीरक मीमांसाशास्त्रका पठन है ताका नाम श्रवण है। और ता पठन कऱ्ये हुए शास्त्रके अर्थका जो युक्तियों करिकै चिंतन है ताका नाम मनन है।और ता मनन कऱ्ये हुए शास्त्रके अर्थकी जो पुनः पुनः चित्तविषे आवृत्ति है ताका नाम निदिध्यासन है। ता श्रवण मनन निदिध्यासनतैं अनंतर इस पुरुषकूं 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका साक्षात्कार होवै है इति। शंका—उपनयनरूप संस्कारतैं रहित होणेतैं ता वेदांतशास्त्रके अध्ययनके अनधिकारी जे मैत्रेयी आदिक स्त्री हैं तथा विदुरादिक शूद्र हैं तिनोंकूं भी श्रुति स्मृति इतिहास पुराणोंविषे आत्मज्ञानकी उत्पत्ति कथन करी है और ता वेदांत शास्त्रके अधिकारी जे जनक जड भरतादिक हैं तिनोंकूं भी ता शारीरक मीमांसा शास्त्रके श्रवणादिकोंतैं विना ही केवल सिद्ध गीतादिकोंके श्रवणमात्र करिकै आत्मज्ञानकी उत्पत्ति कथन करी है यातैं संपूर्ण शारीरक मीमांसा शास्त्रके पठनतैं सो श्रवण सिद्ध होवै है यह पूर्व उक्त नियम संभवता नहीं। समाधान—शुद्ध है अंतःकरण जिनोंका ऐसे जे व्युत्पन्न वा अव्युत्पन्न मुख्य अधिकारी हैं तिन मुख्य अधिकारियोंकूं तौ जीव ब्रह्मके एकत्वकूं प्रतिपादन करणेहारे एक श्लोकमात्र करिकै अथवा अर्द्ध श्लोकमात्र करिकै ही सो ब्रह्मसाक्षात्कार उत्पन्न होवै है। तहां इस पदकी इस अर्थविषे शक्ति है और इस पदकी इस अर्थविषे लक्षणा है या प्रकारतैं जिन पुरुषोंकूं पदपदार्थके शक्तिलक्षणारूप

संगतिका ज्ञान है ते पुरुष व्युत्पन्न कहे जावै हैं। और जे पुरुष ता पदपदार्थके संगतिज्ञानतैं रहित हैं ते पुरुष अव्युत्पन्न कहे जावै हैं। और जिन पुरुषोंने सगुण ब्रह्मके साक्षात्कारपर्यंत उपासना करी है ऐसे कृतोपासक पुरुष मुख्य अधिकारी कहे जावै हैं। अथवा पूर्वजन्मविषे श्रवण मननादिक सामग्री करिके संपन्न हुए भी जे पुरुष किसी प्रतिबंधकके वशतैं पुनः मनुष्यशरीरकूं प्राप्त हुए हैं ते पुरुष मुख्य अधिकारी कहे जावै हैं। ऐसे व्युत्पन्न मुख्य अधिकारीकूं तथा अव्युत्पन्न अधिकारीकूं आत्मज्ञानकी उत्पत्तिविषे ता संपूर्ण शास्त्रके श्रवणादिकोंकी अपेक्षा है नहीं। किंतु वाक्यमात्रके श्रवणतैं ही तिनोंकू सो आत्मसाक्षात्कार उत्पन्न होवै है। शंका--पूर्व उक्त रीतिसैं व्युत्पन्न मुख्य अधिकारियोंकूं तौ ता वाक्यमात्रतैं ता ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्ति होवो परंतु अव्युत्पन्न मुख्य अधिकारियोंकुं ता वाक्यमात्रतैं ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्ति संभवती नहीं। समाधान--शब्दकी अचिंत्य शक्ति होवै है यातैं ता अव्युत्पन्न मुख्य अधिकारीकूं भी ता वाक्यमात्रके श्रवणतैं ता ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्ति बनि सकै है। जैसे निद्राविषे सोये हुए पुरुषकूं तहां ता संगतिज्ञानके अभाव हुए भी अन्य पुरुषके वाक्यमात्र श्रवणतैं जाग्रत् होवै है तैसे ता अव्युत्पन्न मुख्य अधिकारीकूं ता वाक्यमात्रके श्रवणतैं ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्तिविषे कोई भी बाधक नहीं है इहां यह तात्पर्य है। जैसे निद्रातैं उठचे हुए पुरुषकूं घटादिकोंके साथ चक्षु आदिक इंद्रियके सन्निकर्ष हुएतैं अनंतर 'अयं घटः' या प्रकारका चाक्षुष साक्षात्कार उत्पन्न होवै है तैसे पूर्व अनेक जन्मोंके पुण्यकर्मके परिपाकवशतैं परमेश्वरअनुगृहीत शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषकूं एक श्लोकमात्रके श्रवण करिके अथवा अर्ध श्लोकमात्रके श्रवण करिकै अथवा वाक्यमात्रके श्रवण करिकै सो ब्रह्मसाक्षात्कार अवश्य उत्पन्न होवै है। और जैसे विक्षिप्त चित्तवाले

उन्मत्त पुरुषोंकूं घटादिक पदार्थोंके साथ चक्षु आदिक इंद्रियोंके संबंध हुए भी तिन घटादिकोंविषे विपरीत व्यवहार ही देखणेमें आवै है तैसे स्वस्थ चित्तवाले पुरुषोंकूं भी ता इंद्रिय अर्थके सन्निकर्षतैं अनंतर सो विपरीत व्यवहार ही होता होवैगा या प्रकारकी कल्पना करी जावै नहीं । इस प्रकार विषयोंके प्राप्तिकी इच्छावाले तथा राजस तामस वृत्तियों करिकै स्थूल चित्तवाले ऐसे जे कैएक पंडित हैं तिन पंडितोंकूं ता ब्रह्मसाक्षात्कारके उत्पत्तिका अभाव देखिकै तिन मुख्य अधिकारियोंकूं वाक्यमात्रके श्रवणतैं ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्तिविषे असंभावना करी जाती नहीं। यातैं तिन पूर्व उक्त मुख्य अधिकारियोंकूं ता वाक्यमात्रके श्रवणतैं ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्तिविषे कोई भी बाधक नहीं है शंका—जबी पूर्व उक्त रीतिसे मुख्य अधिकारियोंकूं वाक्यमात्रके श्रवणतैं ही ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्ति भई तभी अनुपयोगी होणेतैं ता शारीरक मीमांसादिक शास्त्रका आरंभ ही निष्फल होवैगा । समाधान—पूर्व उक्त मुख्य अधिकारियोंतैं भिन्न जे अमुख्य अधिकारी हैं तिनोंके बोधवासतैं ही ता शारीरक मीमांसादिक शास्त्रका आरंभ है । अर्थात् तिन अमुख्य अधिकारियोंकूं ता वाक्यमात्रके श्रवणतैं सो ब्रह्मसाक्षात्कार होता नहीं किंतु ता शारीरक मीमांसादिक शास्त्रके पठनतैं ही सो ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है । यातैं अमुख्य अधिकारियोंके वासतैं ता शारीरक मीमांसादिक शास्त्रका आरंभ भी सफल ही है । तहां मुख्य अधिकारी पुरुषोंकूं श्लोक करिकै वा अर्द्ध श्लोक करिकै ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है यह वार्ता महाभारतविषे श्रीव्यास भगवान्ने भी कही है । तहां श्लोक—'आत्मानं विंदते यस्तु सर्वभूतगुहाशयम्। श्लोकेन यदि वार्द्धेन क्षीणं तस्य प्रयोजनम्' अर्थ--देशकाल वस्तु परिच्छेदतैं रहित तथा सर्व

भूतोंके बुद्धियोंका साक्षी ऐसा जो सच्चिदानंदस्वरूप आत्मा है तिस आत्माकूं जो अधिकारी पुरुष एक श्लोक करिकै अथवा अर्द्ध श्लोक करिकै 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारतैं साक्षात्कार करे है तिस ज्ञानवान् पुरुषका सर्व प्रयोजन क्षीण होवै है अर्थात् मनुष्यलोकतैं आदि लैके ब्रह्मलोक पर्यंत जितने कि आनंद लोकोंकूं प्रयोजनरूप करिके प्रसिद्ध है ते सर्व आनंद ब्रह्मानंदके अंतर्भूत ही हैं। ता ब्रह्मानंदके प्राप्त हुए इस ज्ञानवान् पुरुषकूं किसी भी लोकके आनंदकी इच्छा होती नहीं इति। किंवा यह उक्त अर्थ ही नैष्कर्म्य सिद्धिग्रंथविषे आचार्योंनैं 'वाक्यश्रवणमात्रेण पिशाचवदवाप्नुयात्' इत्यादिक वचन करिकै कथन कऱ्या है यातैं तिन मुख्य अधिकारियोंकूं वाक्यमात्रके श्रवणतैं ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्ति संभवै है। शंका—पूर्व कथन कऱ्ये जे व्युत्पन्न तथा अव्युत्पन्न यह दो प्रकारके मुख्य अधिकारी हैं तिन दोनोंकूं वाक्यमात्रके श्रवणतैं उत्पन्न हुए ब्रह्मसाक्षात्कारतैं अनंतर किंचित् कर्त्तव्य रहे है अथवा नहीं रहे है। समाधान--तिन दोनों प्रकारके मुख्य अधिकारियोंविषे जे अव्युत्पन्न मुख्य अधिकारी हैं तिनोंकूं तो ता ब्रह्मसाक्षात्कारतैं अनंतर ब्रह्माकार वृत्तियोंकी प्रवाहरूप ध्याननिष्ठा अपेक्षित है। काहेतैं तिन अव्युत्पन्न अधिकारियोंकी बुद्धि आप शास्त्रविषे कुशल नहीं है। किंतु अन्य पुरुषोंके उपदेशके अधीन है। यातैं तिन अव्युत्पन्न पुरुषोंकूं वाक्यमात्रके श्रवणतैं उत्पन्न हुआ भी सो ब्रह्मसाक्षात्कार भेदवादी पुरुषोंके संगके दोषतैं उत्पन्न भई असंभावना विपरीतभावना करिकै प्रतिबद्ध होइ जावै है। और प्रतिबद्ध ज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति तथा परम पुरुषार्थकी प्राप्ति होती नहीं। और ते अव्युत्पन्न मुख्य अधिकारी जभी ता ध्याननिष्ठाविषे रहैंगे तभी तिनोंकूं भेदवादी पुरुषोंका संग होवैगा

नहीं। ता संगके अभावना तथा विपरीतभावना भी तिनोंकूं होवैगी नहीं। यातैं ता प्रतिबंधतैं रहित ब्रह्मसाक्षात्कार करिकै तिन अव्युत्पन्न मुख्य अधिकारियोंकूं अज्ञानकी निवृत्ति तथा परमपुरुषार्थकी प्राप्ति अवश्य होवै है। यातैं तिन अव्युत्पन्न मुख्य अधिकारियोंकूं ब्रह्मसाक्षात्कारतैं अनंतर सा ध्याननिष्ठा अवश्य अपेक्षित है इति। यह उक्त अर्थ गीताविषे श्रीभगवान्‌ने भी कह्या है। तहां श्लोक--'अन्ये त्वेवमजानंतः श्रुत्वान्येभ्य उपासते। तेपि चातितरंत्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः' अर्थ-जे पुरुष आप शास्त्रके विचार करणेविषे कुशल नहीं हैं ते पुरुष जभी दूसरे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुवोंके मुखतैं ब्रह्मके स्वरूपकूं श्रवण करिकै ता ब्रह्मका निरंतर ध्यान करैं हैं तभी ते श्रवणपरायण पुरुष भी ब्रह्मसाक्षात्कार करिकै अज्ञानकूं नाश करैं हैं इति। किंवा यह उक्त अर्थ श्रीविद्यारण्यस्वामीने भी ध्यानादिविषे कह्या है। तहां श्लोक--'अत्यंतबुद्धिमांद्याद्वा सामग्र्या वाप्यसंभवात्। यो विचारं न लभते ब्रह्मोपासीत सोऽनिशम्। मरणेब्रह्मलोके वा तत्त्वं ज्ञात्वा विमुच्यते।' अर्थ—बुद्धिकी अत्यन्त मन्दतातैं अथवा विचारकी सामग्रीके अभावतैं जो पुरुष ब्रह्मके विचारकूं नहीं प्राप्त होवै है सो पुरुष निरन्तर ता निर्गुण ब्रह्मके ध्यानकूं करै। सो ध्यानकर्ता पुरुष मरणकालविषे अथवा ब्रह्मलोकविषे ता निर्गुण ब्रह्मके स्वरूपकूं साक्षात्कार करिकै मोक्षकूं प्राप्त होवै है इति। किंवा यह उक्त अर्थ पतंजलि भगवान्‌ने भी योगसूत्रोंविषे कह्या है। तहां सूत्र—'ततः प्रत्यक्‌चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च' अर्थ—तिस परमात्माके ध्यानतैं इस पुरुषकूं प्रत्यक्‌ आत्माका साक्षात्कार होवै है और ता आत्मसाक्षात्कारकी उत्पत्तिविषे जितने कि प्रतिबंधक होवै हैं तिन सर्व प्रतिबंधकोंकी भी ता ध्यानतैं निवृत्ति होवै है इति। यातैं तिन अव्युत्पन्न मुख्य अधिकारियोंकूं ता ब्रह्मसाक्षात्कारतैं अनन्तर ता ध्याननिष्ठाकी अपेक्षा अवश्य है यह सिद्ध भया। शंका—पूर्व

उक्त रीतिसे अव्युत्पन्न मुख्य अधिकारियोंकूं ब्रह्मसाक्षात्कारतैं अनंतर ता ध्याननिष्ठाकी अपेक्षा रहो। परन्तु जे अधिकारी शास्त्रविषे व्युत्पन्न हैं तिनोंकू ता ध्याननिष्ठाकी अपेक्षा नहीं होवैगी। समाधान –सर्व व्युत्पन्न अधिकारियोंकू ता ध्याननिष्ठाकी अपेक्षाका अभाव कहते हो, अथवा कोई व्युत्पन्न अधिकारीकूं ता ध्याननिष्ठाकी अपेक्षाका अभाव कहते हो 'तहां जो दूसरा पक्ष अंगीकार करो सो तौ हमारे कूं भी अंगीकार है और जो प्रथम पक्ष अंगीकार करो सो संभवता नहीं। काहेतैं न्याय मीमांसादिक नानाशास्त्रोंके विचार करिकै तथा पूर्व जन्मोंके पाप कर्म वशतैं जे पंडितजन संशय विपरीतभावना करिकै ग्रस्त हैं तिन व्युत्पन्न पंडितोंकूं वेदांतके विचारतैं उत्पन्न हुआ भी सो ब्रह्मसाक्षात्कार अप्रमाण्य शंका करिकै दूषित ही होवै है। या कारणतैं सो ब्रह्मसाक्षात्कार अज्ञानकी निवृत्ति करणेविषे समर्थ होवे नहीं। ऐसे व्युत्पन्न पंडितोंकूं तौ ता संशयविपरीत भावनारूप प्रतिबंधकी निवृत्ति करणेवासतैं सा ध्याननिष्ठा अवश्य अपेक्षित होवै है। ता ध्याननिष्ठा करिकै ता संशय विपरीतभावनारूप प्रतिबंधके निवृत्त हुए ता अप्रतिबद्ध ब्रह्मसाक्षात्कार करिकै तिन व्युत्पन्न पंडितोंकू मोक्षरूप परमपुरुषार्थकी प्राप्ति होवे है और जे व्युत्पन्न अधिकारी परमेश्वरके अनुग्रह करिकै ता असंभावना विपरीत भावनातैं रहित हैं तिन व्युत्पन्न अधिकारी पुरुषोंकूं तौ ता ब्रह्मसाक्षात्कारतैं अनंतर ता ध्याननिष्ठाकी अपेक्षा होती नहीं इति। किंवा ध्यानकूं ब्रह्मसाक्षात्कारकी हेतुता श्रीव्यास भगवान्ने भी ब्रह्मसूत्रोंविषे कही है। तहां सूत्र–,अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' अर्थ–यह अधिकारी पुरुष ध्यान कालविषे एकाग्र चित्त करिकै आपणे आत्मारूपतैं ब्रह्मकूं साक्षात्कार करे है। जिस कारणतैं श्रुतिने तथा स्मृतिने ता ध्यानतैं ही ब्रह्मसाक्षात्का-

रकी प्राप्ति कथन करी है । तहां श्रुति–'ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यति निष्कलंध्यायमानः।कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मा नमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्' अर्थ–शुद्ध अंतःकरणवाला पुरुष निर्गुण ब्रह्मका ध्यान करता हुआ ता निर्गुण ब्रह्मकूं साक्षात्कार करे है और बाह्यरूपादिक विषयोंतें निवृत्त कन्ये हैं चक्षु आदिक इंद्रिय जिसने ऐसा जो कोई ध्याननिष्ठ पुरुष है सोई ही मोक्षकी इच्छा करता हुआ प्रत्यक् आत्माकूं साक्षात्कार करे है इति । तहां स्मृति-'यंविनिद्रा जितश्वासाः संतुष्टाः संजितेंद्रियाः । ज्योतिः पश्यंति युंजानास्तस्मै योगात्मने नमः' अर्थ–निद्रातैं रहित तथा; प्राणायाम करिकै जीत्ये हैं श्वास जिनोंने तथा यथालाभविषैं संतुष्ट तथा जीत्ये हैं चक्षु आदिक इंद्रिय जिनोंने ऐसे पुरुष ध्यानयोगकू करते हुए जिस परमात्माज्योतिकूं साक्षात्कार करे हैं तिस योगरूप परमात्माके ताईं हमारा नमस्कार है इति । किंवा यह उक्त अर्थ अन्य ग्रथविषे भी कह्या है। तहां श्लोक–'बहुव्याकुलचित्तानां विचारात्तत्त्वधीन चेत् । योगो मुख्यस्ततस्तेषां धीदर्पस्तेन नश्यति' अर्थ–बहुत व्याकुल है चित्त जिनोंका ऐसे पुरुषोंकू जो कदाचित विचार करणेतैं आत्मज्ञान नहीं होवै तौ ऐसे पुरुषोंकूं सो ध्यानरूप योग ही मुख्य साधन है । जिस कारणतें तिन पुरुषोंकी बुद्धिके संशय विपरीत भावनादिक दोष ता ध्यान करिकै ही निवृत्त होवै हैं इति। शंका-पूर्व उक्त रीतिसे संशय विपरीत भावनावाले पुरुष तौ ता संशय विपरीत भावनाकी निवृत्ति करणेवासतैं ता ध्यानकूं करो । परंतु जे ज्ञानवान् पण्डित ता संशय विपरीत भावनातैं रहित हैं ते भी ध्यान करते हुए देखणेमें आवै हैं । ते ज्ञानवान् पण्डित किस वासतैं ध्यान करै हैं समाधान–संशय विपरीत भावनातैं रहित ते ज्ञानवान् पण्डित जभी

'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारकी वृत्तियोंका प्रवाहरूप ध्यानकूं करैं हैं तभी तिनोंकूं बाह्यविक्षेपकी निवृत्ति करिकै ब्रह्मानंदरूप दृष्ट सुख विशेष होवैं है ता दृष्टसुखवासतें ही ते ज्ञानवान् पुरुष ध्यानकूं क" हैं दूसरा कोई ता ध्यानका प्रयोजन नहीं है। जिस कारणतें संशय विपरीत भावनारूप प्रतिबंधकी निवृत्ति तथा आत्माका साक्षात्कार यह दोनों तिन विद्वान् पुरुषोंकूं पूर्व प्राप्त ही हैं। परिशेषतैं ता ध्यानका सो दृष्ट सुख ही फल है। यह वार्त्ता श्रीभगवान्ने भी गीता विषे कही है तहां श्लोक—'अनन्याश्चिंतयंतो मां-ये जनाः पर्य्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्' अर्थ—मैं परमेश्वरतें भिन्न मायिक पदार्थोंविषे नहीं है राग जिनोंका तिनोंका नाम अनन्य है। ऐसे अनन्य होइकै मैं प्रत्यक् अभिन्न परमात्माकूं चिंतन करते हुए जे साधन चतुष्टय संपन्न अधिकारी पुरुष मैं निर्गुण परमात्माका निरंतर ध्यान करैं हैं अर्थात् विजातीय वृत्तियोंका परित्याग करिकै सजातीय वृत्तियोंका प्रवाहरूप ध्यानकूं करैं हैं ऐसे मेरे ध्यानपरायण तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकूं मैं परमेश्वर योगकी तथा क्षेमकी प्राप्ति करूं हूं। तहां अप्राप्त अर्थकी जा प्राप्ति है ताका नाम योग है। और प्राप्त अर्थका जो परिरक्षण है ताका नाम क्षेम है। शंका—अखंड एक रस आनंदरूप ब्रह्मात्माविषे निष्ठावाले जे ज्ञानवान् पुरुष हैं तिनोंकूं कोई अप्राप्त आनंद है नहीं काहेतें मनुष्यलोकतें लेके ब्रह्मलोकपर्यंत सर्व आनंदोंका जिस ब्रह्मानंद-विषे अंतर्भाव है सो ब्रह्मानंद तिन ज्ञानवान् पुरुषोंकूं आपणा आत्मा रूप करिकै नित्य प्राप्त ही है। और उत्पत्तिविनाशतें रहित होणेतें ता ब्रह्मानंदका रक्षण भी संभवता नहीं अनित्य वस्तुका ही रक्षण होवै है। यातैं ज्ञानवान् पुरुषोंकूं मैं परमेश्वर योगक्षेमकी प्राप्ति करूं हूं यह भगवान्का वचन असंगत है। समाधान—यद्यपि तिन ज्ञानवान् पुरुषोंकूं कोई अप्राप्त अंश है नहीं और सो ब्रह्मानंद तिनोंकूं

नित्य ही प्राप्त है । यातें तिन ज्ञानवानोंका कोई योग क्षेम है नहीं तथापि इहां योग क्षेम शब्द करिकै यह अर्थ ग्रहण करणा । देहादिक सर्व अनात्म पदार्थोंविषे आत्मत्व बुद्धिका परित्याग करिकै इस ज्ञानवान् पुरुषकी जो ब्रह्मानंदरूप करिकै स्थिति है ताका नाम योग है और प्रबल प्रारब्धके योग करिकै भी जो ता ब्रह्मनिष्ठातैं अप्रच्युति है ताका नाम क्षेम है । इस प्रकारका योगक्षेम ता ज्ञानवान् पुरुषविषे भी संभवै है । यातैं 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' इस उक्त वचन करिकै श्रीभगवान् इस प्रकारके योगक्षेमकूं ही कहता भया है यातैं ध्याननिष्ठ ज्ञानवान् पुरुषकूं निरंतर सो इष्टसुख प्राप्त होवै है । यह अर्थ इस उक्त गीता वचनतैं सिद्ध होवै है इति । यह ही अर्थ श्रीभगवान्नें 'मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् । कथयंतश्च मां नित्यं तुष्यंति च रमंति च' इस श्लोकविषे भी कथन कऱ्या है इन गीता श्लोकोंका अर्थ हमने गीतागूढार्थदीपिका नाम टीकाविषे विस्तारतैं कथन कऱ्या है । जिसकूं जिज्ञासा होवै तिसनैं तहांसे जानि लेणा इति । शंका--जैसे मुमुक्षुजनोंके प्रति श्रवणादिकोंकी अवश्य कर्त्तव्यताका बोधक विधि होवै है तैसे संशयविपरीत भावनातैं रहित ज्ञानवान् पुरुषोंके प्रति भी ता ध्यानकी अवश्य कर्त्तव्यताका बोधक विधि क्यों नहीं होवै । अर्थात् ज्ञानवान् पुरुषोंनैं भी सो ध्यान अवश्य करणा या प्रकारकी वेदकी आज्ञा क्यों नहीं होवै और जो ऐसा कहो कि ता ज्ञानवान् पुरुषकूं ध्यानका विधान करणेहारा कोई वेदका वाक्य है नहीं यातैं ता ज्ञानवान् पुरुषकूं ता ध्यानका विधि नहीं सो यह तुम्हारा कहणा भी संभवता नहीं । काहेतैं 'तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः' अर्थ—धैर्यवान् ब्राह्मण तिस परमात्माकूं साक्षात्कार करिकै पश्चात् ता परमात्माका ध्यान करै । इस श्रुतिनें ता ज्ञानवान् पुरुषकूं भी ध्यानका विधान कऱ्या है और जो ऐसा कहो कि उत्पन्न हुए आत्मसाक्षात्कार करिकै ही इस

ज्ञानरूप पुरुषकूं मोक्षरूप परम पुरुषार्थकी प्राप्ति होवै है यातैं ता आत्मज्ञानतैं अनंतर सो ध्यान करणा निष्फल ही है। सो यह तुम्हारा कहणा संभवता नहीं। काहेतैं इदानीं कालविषे ब्रह्म साक्षात्कारके विद्यमान हुए भी ता ध्यानरहित पुरुषोंकूं पूर्व अज्ञान अवस्थाकी न्याई सुख दुःखादिरूप संसारकी प्रतीति बनी रहै है यातैं ता ब्रह्म-साक्षात्कारमात्र करिकै इस पुरुषकूं ता मोक्षरूप पुरुषार्थकी प्राप्ति होती नहीं। किंतु ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाइकै श्रवणादिकोंतैं ब्रह्मकूं साक्षात्कार करिकै यह पुरुष जभी जीवत्कालपर्यंत ता ब्रह्मके ध्यानका अभ्यास करै है तभी ही इस पुरुषकूं ता मोक्षकी प्राप्ति होवै है। यातैं ता मोक्षकी प्राप्ति वासतैं ज्ञानवान् पुरुषकूं भी जीवत्कालपर्यंत सो ध्यान अवश्य कर्त्तव्य है। जो कदाचित् सो ज्ञानवान् पुरुष ध्यानपरायण नहीं होवैगा तो यथेष्टाचरणकी प्राप्ति करिकै नरककूं ही प्राप्त होवैगा। यह वार्त्ता अन्य ग्रंथविषे भी कही है। तहां श्लोक–'निसंगता मुक्तिपदं यतीनां संगादशेषाः प्रभवंति दोषाः। आरूढयोगोऽपि निपात्यतेऽधःसंगेन योगी किमुताल्पसिद्धिः' अर्थ–विषयासक्त बहिर्मुख जनोंके संगका जो परित्याग है ताका नाम निःसंगता है। सा निःसंगता ही संन्यासियोंकूं मुक्तिके प्राप्तिका मार्ग है। जिस कारणतैं ता संगतैं इस पुरुषकूं कामादिक अनेक दोष उत्पन्न होवै हैं तिन दोषोंकी प्राप्तितैं ज्ञान-वान् पुरुष भी अधःपतन होवै है। तौ मुमुक्षुजनकी क्या वार्त्ता है इति। यातैं ता यथेष्टाचरणकी निवृत्ति करणे वासतैं संशयविपरीत भावनातैं रहित ज्ञानवान् पुरुषोंकूं भी जीवत्कालपर्यंत सो ब्रह्मका ध्यान अवश्य करणे योग्य है। समाधान–संशय विपरीत भाव-नातैं रहित ज्ञानवान् पुरुषकूं ता ध्यान करणेका विधि नहीं है। काहेतैं जिस पुरुषकूं दृढ अध्यासपूर्वक देहाभिमान होवै है तिस

पुरुषकूं ही आपणे आत्माविषे कर्तृत्व बुद्धि होवै है। और सो आत्माविषे कर्तृत्व बुद्धिवाला पुरुष ही शास्त्रके विधिनिषेधका अधिकारी होवै है जैसे अज्ञानी पुरुष हैं। और ज्ञानवान् पुरुषकूं ता देहाभिमानके अभावतैं सा कर्तृत्वबुद्धि है नहीं। यातैं सो ज्ञानवान् पुरुष ता शास्त्रके विधिनिषेधका अधिकारी नहीं है तात्पर्य यह–सो देहाभिमान दो प्रकारका होवै है। एक तौ कर्मजन्य होवै है दूसरा भ्रांतिजन्य होवै है। तहां कर्मजन्य देहाभिमान तौ ता कर्मके नाशतैं अनंतर ही निवृत्त होवै है और दूसरा भ्रांतिजन्य देहाभिमान तौ अज्ञानकालविषे रहे है। जभी आत्मज्ञान करिके ता अज्ञानकी निवृत्तितैं भ्रांतिकी निवृत्ति होवै है तभी सो भ्रांतिजन्य देहाभिमान भी निवृत्त होइ जावै है। ऐसे देहाभिमानतैं रहित होणेतैं कर्तृत्वबुद्धितैं रहित जो ज्ञानवान् है तिस ज्ञानवान् पुरुषतैं शास्त्रप्रतिपादित सर्व अधिकार निवृत्त होवै है ऐसे ज्ञानवान् पुरुषकूं सो ध्यानविधि कैसे संभवैगा किंतु नहीं संभवैगा इसी अभिप्राय करिके श्रीविद्यारण्य स्वामीने पंचदशी ग्रंथविषे तिन ज्ञानवान् पुरुषोंका अनुभव कह्या है तहां श्लोक– 'व्याचक्षतांते शास्त्राणि वेदानध्यापयंतु वा येऽत्राधिकारिणो मर्त्या नाधिकारोऽक्रियत्वतः। १। शृण्वंत्वज्ञाततत्त्वास्ते जानन्कस्माच्छृणोम्यहम्। मन्यंतां संशयापन्ना न मन्येऽहमसंशयः॥ २॥ विपर्यस्तो निदिध्यासेत्किं ध्यानमविपर्यये' अर्थ–जे पुरुष कर्तृत्व बुद्धिवाले होणेतैं अधिकारी हैं ते पुरुष ही शास्त्रोंकूं व्याख्यान करैं तथा वेदोंकूं पढावैं। और मैं तो अक्रिय हूं यातैं हमारेकूं कोई भी अधिकार नहीं है। और जिन पुरुषोंने प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकूं नहीं जान्या है ते पुरुष वेदांत शास्त्रके श्रवणकूं करो। और मैं तौ ता प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकूं अपरोक्ष जानता

हूं यातें मैं किसवासते श्रवणकूं करूं । और जे पुरुष ता आत्माविषे संशयवाले हैं ते पुरुष ता संशयकी निवृत्ति करणे वासतें मननकूं करो । और मैं तौ सर्व संशयोंतैं रहित हूं यातैं मैं किसवासते मननकूं करूं । और जे पुरुष विपरीतभावनावाले हैं ते पुरुष तौ ता विपरीतभावनाकी निवृत्तिवासते निदिध्यासनकूं करो । और मैं तौ ता विपरीतभावनातैं रहित हू यातैं हमारेकूं ता ध्यान करणेका क्या प्रयोजन है ? इति । शंका—ज्ञानवान् पुरुषकूं जो ध्यानकी कर्त्तव्यता नहीं मानोंगे तौ आत्मज्ञानतैं अनंतर ता ध्यानका विधान करणेहारी जा 'तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ।' यह पूर्व उक्त श्रुति है सा अप्रमाण होवैगी। समाधान—सा श्रुति आत्माके अपरोक्ष ज्ञानतैं अनंतर ता ध्यानका विधान करती नहीं । किंतु वेदांतके श्रवणमात्रजन्य ब्रह्मके परोक्षज्ञानतैं अनंतरही ता ब्रह्मके अपरोक्ष ज्ञानकी प्राप्तिवासतें ता निदिध्यासनरूप ध्यानका विधान करे है । यातें ता श्रुतिकूं भी अप्रमाणता होवै नहीं । शंका—ब्रह्मसाक्षात्कारतैं अनंतर ज्ञानवान् पुरुषकूं जो ध्यानकी कर्त्तव्यता नहीं मानोगे तौ ता ज्ञानवान् पुरुषकूं चित्तकी बहिर्मुखता करिकै यथेष्टाचरणकी प्राप्ति होवैगी । समाधान—सो ज्ञानवान् पुरुष भ्रांतिजन्य देहाभिमानतैं रहित है यातैं यथेष्टाचरण विषे प्रवृत्त होवै नहीं । ता देहाभिमानवाले पुरुष ही यथेष्टाचरणविषे प्रवृत्त होवै हैं । तात्पर्य यह, जो पुरुष मुमुक्षुदशाविषे भी शम दमादिकों करिकै ता यथेष्टाचरणतैं निवृत्त होवै है सो पुरुष ज्ञानदशाविषे ता यथेष्टाचरणविषे कैसे प्रवृत्त होवैगा किंतु नहीं प्रवृत्त होवैगा। और 'निःसंगता मुक्तिपदं यतीनां' यह पूर्व उक्त वचन तौ आत्मज्ञानतैं रहित साधक पुरुषविषयक है, तत्त्ववेत्ता सिद्ध पुरुषविषयक सो वचन नहीं है। यातें ता वचनतैं ध्यानतैं रहित ज्ञानवान् पुरुषका अधःपतन सिद्ध होवै नहीं ।

किंवा ज्ञानवान् पुरुषकूं ध्यानका विधि नहीं है यह उक्त अर्थ श्रीव्यास भगवान्ने भी ब्रह्मसूत्रोंविषे कथन कऱ्या है। तहां सूत्र। 'अनुज्ञापरिहारौ देहसंबंधाज्ज्योतिरादिवत्' अर्थ—यह कार्य अवश्य करणेयोग्य है या प्रकारका जो शास्त्रकृतविधि ताका नाम अनुज्ञा है और यह कार्य नहीं करणेयोग्य है या प्रकारका जो शास्त्रकृत निषेध है ताका नाम परिहार है। सो अनुज्ञा परिहाररूप विधिनिषेध इस पुरुषकूं आत्मज्ञानतैं पूर्व देहाभिमानतैं प्राप्त होवै है। और आत्मज्ञानकालविषे ता देहाभिमानके निवृत्त हुए ता ज्ञानवान् पुरुषकूं सो शास्त्रकृत विधिनिषेध प्राप्त होता नहीं जैसे श्मशानका अग्नि तौ परित्याग कऱ्या जावै है और दूसरा अग्नि ग्रहण कऱ्या जावै है। तथा जैसे मनुष्य शरीरका विष्ठामूत्र परित्याग कऱ्या जावै है और गौ शरीरका विष्ठामूत्र ग्रहण कऱ्या जावै है। तैसे देहाभिमानी अज्ञानी पुरुषोंकूं तौ सो शास्त्रकृत विधिनिषेध होवै है। और ता देहाभिमानतैं रहित ज्ञानवान् पुरुषोंकूं सो विधि निषेध होता नहीं इति। किंवा ज्ञानवान् पुरुषकूं किंचित्मात्र भी कर्त्तव्य नहीं है यह उक्त अर्थ श्रीभगवान्ने भी गीताविषे 'यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः। आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं नविद्यते। १। नैव तस्य कृते नार्थो नाकृते नेह कश्चन। न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः' ॥२॥ इन दो श्लोकों करिकै कथन करया है किंवा यह उक्त अर्थ पुराणविषे भी कथन कऱ्या है। तहां श्लोक— ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः। नैवास्ति किंचित्कर्त्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित्' अर्थ—जो पुरुष 'अहंब्रह्मास्मि' या प्रकारके आत्मज्ञानरूप अमृतको पान करिकै तृप्त भया या कारणतैं ही कृतकृत्य है। अर्थात् जो संपादन करणे योग्य था सो संपादन कऱ्या है जिसनैं ऐसे ज्ञानवान् पुरुषकूं किंचित्मात्र भी कर्त्तव्य नहीं है

और जिस पुरुषकूं किंचित्मात्र भी कर्त्तव्य है सो पुरुष ज्ञानवान् ही नहीं है इति । किंवा यह उक्त अर्थ श्रीभगवान् भाष्यकारने भी 'अहं ब्रह्मास्मीत्येतदवासानाएव सर्वे विधयः सर्वाणि च शास्त्राणि विधिप्रतिषेधमोक्षपराणि' इत्यादिक वचन करिकै कथन कऱ्या है। इस भाष्यवचनका यह अर्थ है। इस पुरुषकूं जबपर्यंत 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका साक्षात्कार नहीं उत्पन्न भया तब पर्यंत ही इस पुरुष उपरि सर्व विधियां हैं। और विधिनिषेध मोक्ष इन तीनोंके प्रतिपादक शास्त्र भी तब पयत ही हैं । और ता ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्तितैं अनंतर ता ज्ञानवान् पुरुष उपरि ते विधियां भी नहीं हैं तथा ते शास्त्र भी नहीं हैं। काहेतैं देह इंद्रियादिकोंविषे अहं मम अभिमानतैं रहित जो ज्ञानवान् पुरुष है ता ज्ञानवान् पुरुषकूं प्रमाणतापणा संभवता नहीं और प्रमातातैं विना प्रमाणकी प्रवृत्ति होती नहीं । यातैं ता ज्ञानवान् पुरुषकूं किंचित् मात्र भी कर्त्तव्य नहीं है इति । किंवा यह उक्त अर्थ ब्रह्मवेत्ता विद्वान् पुरुषोंने भी कथन कऱ्या है ॥ तहां श्लोक ॥ 'गौणमिथ्यात्मनोऽसत्त्वे पुत्रदेहादिबाधनात् । तत्सद्ब्रह्माहमस्मीति बोधे कार्यं कथं भवेत्' अर्थ आत्मा तीन प्रकारका होवै है। एक तौ गौण आत्मा होवै है, दूसरा मिथ्या आत्मा होवै है । तीसरा मुख्य आत्मा होवै है । तहां पुत्र-भार्यादिक तौ गौण आत्मा कह्या जावै हैं और अन्नमयादिक पंचकोश मिथ्या आत्मा कह्या जावै हैं और तिन पंचकोशोंका अधिष्ठानरूप जो सत् चित् आनंद एकरस साक्षी आत्मा है सो मुख्य आत्मा कह्या जावैं है तहां गौणआत्मा मिथ्या आत्मा इन दोनोंके मिथ्यात्व निश्चय हुए इस पुरुषकी तिन पुत्र भार्यादिकोंविषे तथा अन्नमयादिक पंचकोशोंविषे आत्मत्व बुद्धि निवृत्त होइ जावै है। तिसतैं अनंतर सर्वका अधिष्ठानभूत सच्चिदानंद एकरस ब्रह्म मैं हूं या प्रकारका साक्षात्कार उत्पन्न होवै है । ता साक्षात्कारके उत्पन्न हुए इस ज्ञानवान् पुरुषकूं

किंचित्मात्र भी कर्त्तव्य रहता नहीं इति । किंवा इस उक्त अर्थकूं 'एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्द्धते कर्मणा नो कनीयान् । एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत' इत्यादिक अनेक श्रुति स्मृतियां कथन करे हैं । यातैं संशय विपरीत भावनातैं रहित ज्ञानवान् पुरुषकूं किंचित्मात्र भी ध्यानादिकोंकी कर्त्तव्यता नहीं है । परंतु सो ज्ञानवान् पुरुष जभी ध्यानपरायण होवै है तभी तिसकूं ब्रह्मानंदरूप दृष्टसुख अधिक होवै है । और सो ज्ञानवान् पुरुष जभी ध्यानपरायण नहीं होवै है तभी तिसकूं बाह्य व्यवहारकी बाहुल्यता करिकै केवल दृष्टदुःखमात्र ही होवै है। कोई संशय विपरीत भावनाकी उत्पत्ति करिकै मोक्षका प्रतिबिंब होता नहीं । काहेतैं बहुकाल श्रवण मनन निदिध्यासन करिकै निश्चय कऱ्या है ब्रह्मात्म तत्त्व जिसने ऐसा जो करतलामलककी न्याई आपणे अद्वयानंद स्वरूपकूं अनुभव करणे हारा ज्ञानवान् पुरुष है तिस ज्ञानवान् पुरुषकूं प्रारब्ध कर्मके वशतैं किंचित्मात्र बाह्य व्यवहार करिकै ते संशय विपरीत भावनादिक संभवते नहीं । यातैं प्रारब्धकर्मके वशतैं खानपानादिक व्यवहारोंके हुए भी ता ज्ञानवान् पुरुषकूं मोक्ष अवश्य प्राप्त होवै है। ता मोक्षका कोई भी प्रतिबंध करि सकता नहीं इति । यह वार्त्ता श्रीव्यास भगवान्ने भी ब्रह्मसूत्रोंविषे कही है । तहां सूत्र । 'तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्' अर्थ– तिस ब्रह्मात्माविषे है निष्ठा जिसकी ऐसा जो ज्ञानवान् पुरुष है तिस ज्ञानवान् पुरुषकूं ही श्रुति स्मृतिने मोक्षकी प्राप्ति कथन करी है । तहां श्रुति । 'तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्षेऽथ संपत्स्ये' अर्थ– तिस ज्ञानवान् पुरुषकूं विदेह मोक्षविषे तबपर्यंत ही विलंब है जबपर्यंत भोग करिकै प्रारब्ध कर्मतैं रहित नहीं भया । ता प्रारब्ध कर्मकी निवृत्तितैं अनंतर सो ज्ञानवान् पुरुष निर्विशेष ब्रह्मभावरूप विदेह मोक्षकूं अवश्य प्राप्त होवै है इति । तहां स्मृति । 'य एवं वेत्ति पुरुषं

प्रकृतिं च गुणैःसह। सर्वथावर्त्तमानोऽपि न सभूयोऽभिजायते' अर्थ-हे अर्जुन! जो पुरुष देशकाल वस्तु परिच्छेदतैं रहित आनंदस्वरूप परमात्माकूं 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकार आपणा आत्मरूप करिकै जाने है तथा सत्व रज तम इन तीनों गुणोंसहित मायारूप प्रकृतिकूं मिथ्या जाने है सो विद्वान् पुरुष सर्व प्रकारतैं वर्त्तमान हुआ भी अर्थात् प्रबल प्रारब्ध कर्मके वशतैं कदाचित् यथेष्टाचरणकूं करता हुआ भी पुनः जन्मकूं प्राप्त होता नहीं इति। इसी आपणे अभिप्रायकूं श्रीभगवान् अष्टादश अध्यायविषे प्रगट करता भया है। तहां श्लोक। 'यस्य नाहं कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते। हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते' अर्थ--हे अर्जुन। जिस ज्ञानवान् पुरुषकूं मैं कर्मका कर्त्ता हूं या प्रकारकी भावना नहीं है तथा मैं इस कर्मके फलकूं भोगूंगा या प्रकारतैं जिस ज्ञानवान् पुरुषकी बुद्धि कर्मके फलविषे लिपायमान होती नहीं सो ज्ञानवान् पुरुष जो कदाचित् इन सर्व लोकोंकूं हनन भी करै तौ भी ता हनन क्रियाका कर्ता होता नहीं। तथा हनन क्रियाजन्य अनिष्टफलके साथ भी संबंधवाला होता नहीं इति। किंवा यह उक्त अर्थ शेष भगवानने भी कह्या है। तहां श्लोक 'हयमेधशतसहस्रा-ण्यथ कुरुते ब्रह्मघातलक्षणानि परमार्थविन्न पुण्यैर्न चपापैः स्पृश्यते विमलः' अर्थ-'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारके साक्षात्कारवाला जो तत्त्व वेत्ता पुरुष है सो तत्त्ववेत्ता पुरुष जो कदाचित् शतसहस्र अश्वमेध यज्ञोंकूं करै है अथवा लक्ष ब्राह्मणोंकूं हनन करे है तौ भी सो तत्त्व-वेत्ता पुरुष ता अश्वमेधजन्य पुण्यों करिकै तथा ता ब्रह्महत्याजन्य पापों करिकै लिपायमान होता नहीं। जिस कारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष विमल है अर्थात् अविद्यादिक मलतैं रहित है इति। किंवा यह उक्त अर्थ श्रीविद्यारण्य स्वामीनें भी कथन कर्या है। तहां-

श्लोक।'पूर्णे बोधे तु द्वन्यौ द्वौ प्रतिबद्धौ यदा तदा। मोक्षो विनिश्चितः किंतु दृष्टदुःखं न नश्यति' अर्थ–वैराग्य १ बोध २ उपरति ३ इन तीनोंविषे इस पुरुषकूं जबी आत्माका साक्षात्काररूप बोध तौ पूर्ण होवै और किसी पाप प्रारब्धके वशतैं वैराग्य उपरति यह दोनों प्रतिबद्ध होवै हैं तबी इस पुरुषकूं मोक्ष तौ निश्चय करिकैं होवै है परंतु ता वैराग्य उपरतिके अभावतैं इस पुरुषका दृष्टदुःख निवृत्त होता नहीं इति। इहां यह तात्पर्य है वैराग्य बोध उपरति यह तीनों परस्पर सहायक होणेतैं विशेष करिकैं तौ इकट्ठे ही रहे हैं परंतु कोई स्थलविषे इन तीनोंका परस्पर वियोग भी होवै है। तहां महान् तप करिकै युक्त तथा परमेश्वरके अनुग्रहवाला ऐसा जो उत्तम अधिकारी है तिसविषे तौ ते तीनों इकट्ठे ही रहे हैं। और मध्यम अधिकारीविषे किसी पाप प्रारब्धके वशतैं तिनोंका वियोग भी होवै है। ता वियोगविषे भी इतना भेद है। जिस पुरुषकूं वैराग्य उपरति यह दोनों तौ पूर्ण होवै हैं और आत्मसाक्षात्काररूप बोध प्रतिबद्ध होवै है तिस पुरुषकूं मोक्षकी प्राप्ति होती नहीं किंतु तिस तपके बलतैं उत्तम लोककी प्राप्ति होवै है। और जिस पुरुषकूं सो बोध तौ पूर्ण होवै है और किसी प्रारब्धके वशतैं वैराग्य उपरति यह दोनों प्रतिबद्ध होवै हैं तिस पुरुषकूं मोक्ष तौ अवश्य होवै है परन्तु दृष्टदुःख निवृत्त होता नहीं इति। अब प्रसंगतैं वैराग्य बोध उपरति इन तीनोंके साधन तथा स्वरूप तथा फल पूर्णताका अवधि यह चारों निरूपण करे हैं। तहां इस लोकके तथा परलोकके विषयोंविषे सातिशय अनित्यता आदिक दोषोंकी जा दृष्टि है सा दोषदृष्टि तौ वैराग्यका साधन है और इस लोक परलोकके विषयोंके त्यागकी जा इच्छा है सो वैराग्यका स्वरूप है और विना प्रयत्नतैं प्राप्त हुए भोगोंविषे जो चित्तकी अदीनता है सो

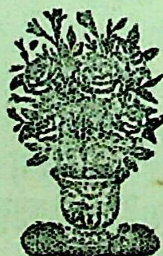
वैराग्यका फल है और सर्व लोकोंतैं उत्कृष्ट जो ब्रह्मलोक है तिसकूं भी तृणकी न्याईं तुच्छ जानंणा यह वैराग्यके पूर्णताकी अवधि है इति । और श्रवण मनन निदिध्यासन यह तीनों ता बोधके समाधान हैं और मिथ्या देहादिकोंतैं जो प्रत्यक् आत्माका विवेचन है सो बोधका स्वरूप है । और अहंकारादिकोंके साथ आत्माका तादात्म्य अध्यासरूपग्रन्थिका जो पुनः अनुदय है सो ता बोधका फल है । जैसे अज्ञानी पुरुषोंकूं देहविषे दृढ आत्मत्व बुद्धि होवै है तैसे परमात्माविषे जा दृढ आत्मत्व बुद्धि है सो ता बोधके पूर्णताकी अवधि है इति । और यम नियमादिक उपरतिके साधन हैं और मनके सर्व वृत्तियोंका जो निरोध है सो उपरतिका स्वरूप है और लौकिक वैदिक सर्व व्यवहारोंका जो अभाव है सो ता उपरतिका फल है और सुषुप्तिकी न्याईं सर्व पदार्थोंकी जा स्मृति है सो ता उपरतिके पूर्णताकी अवधि है इति । तहां असंभावना विपरीत भावनातैं जो रहितपणा है यह ही ता ब्रह्म साक्षात्काररूप बोधके पूर्णताकी अवधि है । सो बोधके पूर्णताकी अवधि विष्णुपुराणविषे पराशर मुनिने भी कह्या है तहां श्लोक 'अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनो नान्यत्ततः कारणकार्यजातम् । इदं मनो यस्य न तस्य भूयो भवोद्भवाद्वंद्वगदा भवंति अर्थ—मैं तथा यह सर्व जगत् परमात्मारूप ही है तिस परमात्मातैं भिन्न कोई भी कारण तथा कार्य है नहीं इस प्रकारकी सर्वात्मबुद्धि जिस पुरुषकूं प्राप्त भई है तिस पुरुषकूं पुनः संसारतैं उत्पन्न भये शीत उष्ण मान अपमानादिक द्वंद्वरूप रोग प्राप्त होते नहीं इति । किंवा यह बोधके पूर्णताकी अवधि स्कंदपुराणविषे स्थित ब्रह्मगीताविषे ब्रह्माके प्रति महादेवने भी कह्या है । तहां श्लोक 'अहं हि सर्वन्न च किंचिदन्यन्निरूपणायामनिरूपणायाम् । इयं हि वेदस्य परा हि निष्ठा ममानुभूतिश्च न संशयश्च' अर्थ—मैं ही सर्व जगत्‌रुपहूं मेरे तैं भिन्न कोई भी

वस्तु नहीं है । या प्रकारका जो सर्वात्मभाव है यह ही सर्व वेदोंका परम तात्पर्य है और हमारा भी यह ही अनुभव है । इस सर्वात्मभावविषे तुमने कदाचित भी संशय नहीं करणा इति । किंवा यह बोधके पूर्णताका अवधि उपदेश साहस्री ग्रन्थविषे आचार्योंने भी कथन कऱ्या है तहां श्लोक ।'देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम् । आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छन्नपिमुच्यते' अर्थ—जैसे अज्ञानी पुरुषोंकूं आपणे देहविषे अहं मनुष्यः या प्रकारका दृढ ज्ञान होवै है तैसे जिस पुरुषकूं प्रत्यक् आत्माविषे 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका संशय विपरीत भावनातैं रहित दृढ ज्ञान भया है जो ज्ञान ता देहात्मज्ञानका नाश करणेहारा है ऐसे ज्ञानवाला पुरुष मोक्षकी नहीं इच्छा करता हुआ भी अवश्य मोक्षकूं प्राप्त होवै है इति । किंवा यह बोधके पूर्णताकी अवधि श्रीविद्यारण्य स्वामीने भी तृप्तिदीपविषैं कह्या है । तहां श्लोक । असंदिग्धाविपर्यस्त बोधो देहात्मनीक्ष्यते । तद्वदत्रेति निर्णेतु मय मित्यभिधीयते' अर्थ लौकिक पुरुषोंकूं आपणे देहरूप आत्माविषे जैसे संशय विपरीत भावनातैं रहित मैं मनुष्य हूं मैं ब्राह्मण हूं या प्रकारका ज्ञान देखणेविषे आवै है तैसे इस अधिकारी पुरुषने मुक्तिकी सिद्धिवासतैं प्रत्यक् आत्माविषे संशय विपरीत भावनातैं रहित अहं ब्रह्मास्मि या प्रकारका बोध ही संपादन करणे योग्य है । इस प्रकारके निर्णय करणे वासते ही श्रुतिविषे अयं यह पद कथन कऱ्या है सा श्रुति आगे कथन करेंगे इति । इत्यादिक अनेक श्रुति स्मृति आचार्यवाक्यरूप प्रमाणों करिकै सो बोधके पूर्णताकी अवधि सिद्ध है यातें यह अर्थ सिद्ध भया । पूर्व उक्त विवेकादिक चतुष्टय साधन संपन्न पुरुषकूं श्रवण मनन निदिध्यासन करिकै अहं ब्रह्मास्मि या प्रकारका ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है ता ब्रह्मसाक्षात्कारतैं अविद्याकी निवृत्ति तथा ब्रह्मभावरूप मुक्ति होवै है शंका-ब्रह्मसाक्षात्कारतैं इस पुरुषकूं अवि-

याकी निवृत्ति तथा ब्रह्मभावरूप मुक्ति होवै है इस अर्थविषे कौन प्रमाण है। समाधान—इस अर्थकूं साक्षात् वेदकी श्रुति तथा स्मृति कथन करे हैं तहां श्रुति 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति तरति-शोकमात्मवित् । ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति । एवमेवैष संप्रसादाऽस्माच्छ-रीरात्समुत्थाय परंज्योतिरुपसंपद्यस्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते।सउत्तमः। पुरुषः । आत्मानं चेद्विजानीयादहमस्मीतिपुरुषःकिमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् । यत्पूर्णानंदैकबोधस्तद्ब्रह्माहमस्मीतिकृ-तकृत्योभवति अर्थ—यह अधिकारी पुरुष तिस परमात्माकूं अहं ब्रह्मास्मि या प्रकारका साक्षात्कार करिकै संसारके कारणभूत अज्ञानरूप मृत्युकूं नाश करे है। और आत्माके साक्षात्कारवाला पुरुष शोककूं तरे है अर्थात् संसारके कारणरूप अज्ञानकूं नाश करे है । और ब्रह्मके साक्षात्कारवाला पुरुष ब्रह्मरूप ही होवै है । और यह संप्रसादनामा जीव विचारतैं स्थूल सूक्ष्म शरीरके अभि-मानकूं परित्याग करिकै'अहं ब्रह्मास्मि'या प्रकारतैं परब्रह्मकूं आपणा आत्मारूप जानिकै ता परब्रह्मरूप होवै है । और जो अधिकारी ब्रह्म साक्षात्कार करिकै ब्रह्मरूप हुआ है सो अधिकारी उत्तम है तथा पुरुष है। तहां ब्रह्मसाक्षात्कार करिकै निवृत्त होइ गया है अज्ञानरूप तम जिसका ताका नाम उत्तम है। और सर्वत्र पूर्णका नाम पुरुष है। और नित्य अपरोक्षरूप तथा सर्वका साक्षीरूप पर-मात्मा मैं हूँ या प्रकारतैं जबी कोई पुरुष प्रत्यक् आत्माकूं साक्षा-त्कार करे है तभी सो ज्ञानवान् पुरुष किसीकी इच्छा करता हुआ किसीके वास्तै शरीरकूं आश्रय करिकै तपायमान होवैगा । किंतु नहीं तपायमान होवैगा । और जो ब्रह्म अपरिच्छिन्न आनंदरूप है तथा एक है तथा बोधरूप है सो ब्रह्म मैं हूं या प्रकारके ज्ञानवाला पुरुष कृतकृत्य ही होवै है इति । किंवा यह उक्त अर्थ गीताविषे श्रीकृष्ण भगवान्ने भी कह्या है ।'एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्य-

श्च भारत । ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्' अर्थ—हे अर्जुन ! इस ब्रह्मात्मतत्त्वकूं 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका साक्षात्कार करिकै यह पुरुष बुद्धिमान् होवे है तथा कृतकृत्य होवे है। और ज्ञानवान् पुरुष मैं परमेश्वरका आत्मारूप ही है इति । किंवा यह उक्त अर्थ शेष भगवान्ने भी कह्या है। तहां 'वृक्षाग्राच्युतपादो यद्वदनिच्छन्नपि क्षितौ पतति तद्वद्गुणपुरुषज्ञोऽनिच्छन्नपि केवलीभवति' अर्थ—जैसे वृक्षके उपरितैं गिरया हुआ पुरुष भूमिविषे पतनकी नहीं इच्छा करता हुआ भी ता भूमिविषे अवश्य पडे है तैसे आत्मसाक्षात्कारवान् पुरुष मोक्षकी नहीं इच्छा करता हुआ भी अवश्य मोक्षकूं प्राप्त होवे है इति । इत्यादिक अनेक श्रुति स्मृति वचन ब्रह्मसाक्षात्कारतैं अविद्याकी निवृत्ति तथा ब्रह्मभावरूप मुक्तिकी प्राप्ति कथन करे हैं । यातैं विचार कर्‌ये हुए तत्त्वमसि आदिक महावाक्यतैं उत्पन्न हुए 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारके साक्षात्कार करिकै इस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं नित्य निरतिशय अखंड एकरस आनंदब्रह्मभावरूप मुक्ति प्राप्त होवे है यह सिद्ध भया इति ।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीस्वामिउद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचिते प्राकृततत्त्वानुसंधाने तृतीयः परिच्छेदः समाप्तः ॥ ३ ॥



ॐ श्रीगणेशाय नमः।

अथ

तत्त्वानुसंधान-

चतुर्थपरिच्छेदः।

तहां पूर्व तृतीय परिच्छेदके अंतविषे ब्रह्मसाक्षात्कारतैं मुक्तिकी प्राप्ति कथन करी सा मुक्ति जीवन्मुक्ति १ विदेहमुक्ति २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है। तहां के एक ग्रंथकार जीवन्मुक्तिकूं अंगीकार करते नहीं किंतु एक विदेहमुक्ति ही माने हैं। तिनोंके मतके खंडन करणेवास्तैं प्रथम तिनोंका मत निरूपण करे हैं ब्रह्मसाक्षात्कार करिकै इस विद्वान् पुरुषकूं एक विदेहमुक्ति ही होवै है जीवन्मुक्ति होती नहीं। काहेतैं ता जीवन्मुक्तिविषे कोई भी प्रमाण नहीं है। तथा ता जीवन्मुक्तिका कोई लक्षण भी संभवता नहीं तथा ता जीवन्मुक्तिका कोई साधन भी संभवता नहीं तथा ता जीवन्मुक्तिका कोई अधिकारी भी संभवता नहीं। तथा ता जीवन्मुक्तिका कोई फलरूप प्रयोजन भी संभवता नहीं और लक्षणप्रमाणादिकोंतैं ही वस्तुकी सिद्धि होवै है तिन लक्षण प्रमाणादिकोंका अभाव होणेतैं सा जीवन्मुक्ति अंगीकार करणे योग्य नहीं है। अब प्रमाणके अभावतैं ता जीवन्मुक्तिके अभावकूं सिद्ध करे हैं। ता जीवन्मुक्तिविषे कोई भी श्रुति स्मृति वचन प्रमाण नहीं है। शंका—'विमुक्तश्च विमुच्यते। स जीवन्मुक्त उच्यते। स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते' इत्यादिक श्रुति स्मृति वचन ही ता जीवन्मुक्तिविषे प्रमाणरूप है। यातैं ता जीवन्मुक्तिविषे प्रमाणका अभाव कहणा असंगत है। समाधान—तिन श्रुति स्मृति-वचनोंका ब्रह्मविद्याकी स्तुति करिकै ब्रह्मविषे ही तात्पर्य है। ता जीवन्मुक्तिविषे तात्पर्य नहीं है। यातैं तिन वचनोंतैं ता जीवन्मुक्तिकी सिद्धि होइ सकै नहीं अब लक्षणके अभावतैं ता जीवन्मुक्तिके अभावकूं

सिद्ध करे हैं। अज्ञानके निवृत्तिका नाम तहां जीवन्मुक्ति है, अथवा ब्रह्मभावका नाम जीवन्मुक्ति है। अथवा जीवत् अवस्था-विषे कर्तृत्व भोक्तृत्वादिरूप बंधकी निवृत्तिका नाम जीवन्मुक्ति है तहां प्रथम लक्षण वा द्वितीय लक्षण जो अंगीकार करो सो संभवता नहीं। जिस कारणतें विदेह मुक्तिविषे भी सा अज्ञानकी निवृत्ति तथा सो ब्रह्मभाव विद्यमान ही है, ता विदेह मुक्तिविषे तिन दोनों लक्षणोंकी अतिव्याप्ति होवैगी। और अतिव्याप्ति दोषवाला लक्षण आपणे लक्ष्य अर्थकी सिद्धि करि सकता नहीं। यातें ता प्रथम द्वितीय लक्षणतें ता जीवन्मुक्तिकी सिद्धि होइ सकती नहीं। और जो तृतीय लक्षण अंगीकार करो सो भी संभवता नहीं। काहेतें जीवत् अवस्थाविषे भोग देणेहारे प्रारब्ध कर्मके विद्यमान हुए ता कर्तृत्वादिक बंधकी निवृत्ति संभवती नहीं यातें सो तृतीय लक्षण भी असंभव दोषवाला होणेतें ता जीवन्मुक्तिकी सिद्धि करि सके नहीं। किंवा जीवत् अवस्थाविषे सो कर्तृत्वादिक बंध साक्षीचैतन्यतें निवृत्त करते हो अथवा अहंकारतें निवृत्त करते हो तहां जो प्रथम पक्ष अंगीकार करो सो संभवता नहीं। काहेतें ता साक्षीचैतन्यविषे वास्तवतें तो सो बंध है नहीं। किंतु अंतःकरणके तादात्म्य अध्यासतें सो बंध प्रतीत होवै है। जबी आत्मसाक्षात्कार करिके तिस तादात्म्य अध्यासकी निवृत्ति होवै है तभी सो आरोपित बंध भी निवृत्त होइ जावै है। यातें ता साक्षीतें बंधकी निवृत्ति करणेवासतें जीवन्मुक्तिका संपादन करणा व्यर्थ ही है। और जो द्वितीय पक्ष अंगीकार करो सो भी संभवता नहीं। काहेतें भोगके देणेहारे प्रारब्ध कर्मके विद्यमान हुए ता अहंकारगत स्वाभाविक बंधकी निवृत्ति संभवती नहीं। तात्पर्य यह जिस धर्मीका जो स्वा-

भाविक धर्म होवै है सो स्वाभाविक धर्म ता धर्मीके विद्यमान हुए निवृत्त होता नहीं। जैसे अग्निका उष्णत्वधर्म तथा जलका द्रवत्वधर्म ता अग्नि जलरूप धर्मीके विद्यमान हुए निवृत्त होता नहीं। तैसे अहंकारका स्वाभाविक धर्मरूप सो कर्तृत्वादिकबंध भी ता अहंकाररूप धर्मीके विद्यमान हुए निवृत्ति होवैगा नहीं। शंका—ता अहंकारगत कर्तृत्वादिक बंधका यद्यपि स्वरूपतैं नाश नहीं होता तथापि योगाभ्यास करिकै ता बंधका अभिभव होवै है। समाधान--जैसे आत्मज्ञानतैं सो प्रारब्धकर्म प्रबल होवै है तैसे ता योगाभ्यासतैं भीसो प्रारब्ध कर्म प्रबल होवै है। और ता प्रारब्धकर्मका भोग कर्तृत्वादिक अभिमानतैं विना संभवता नहीं। यातैं ता प्रबल प्रारब्धकर्मके विद्यमान हुए सो योगाभ्यास ता कर्तृत्वादिक बंधका अभिभव करि सकैगा नहीं। यातैं जीवत् अवस्थाविषे कर्तृत्वादिक बंधके निवृत्ति नाम जीवन्मुक्ति है यह उक्त जीवन्मुक्तिका लक्षण संभवता नहीं इति। अब साधनके अभावतैं ता जीवनमुक्तिके अभावकूं सिद्ध करे हैं। तहां जीवन्मुक्तिकूं मानणेहारे वादीसे यह पूँछा चाहिये। ता जीवन्मुक्तिका आत्मज्ञान साधन है अथवा योग साधन है। तहां प्रथम पक्ष जो अंगीकार करो सो संभवता नहीं। काहेतें आत्मज्ञान विदेह मुक्तिका ही साधन है ता जीवनमुक्तिका साधन नहीं। और 'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्'इत्यादिक श्रुतियोंनें आत्मज्ञानतें मुक्तिकी प्राप्ति कथन करी है। कोई जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति कथन करी नहीं। यातैं सो आत्मज्ञान विदेहमुक्तिका ही साधन है तैसे द्वितीय पक्ष भी संभवता नहीं। काहेतें जैसे श्रवणादिक आत्मज्ञानके साधन हैं तैसे सो योग भी आत्मज्ञानका ही साधन है। यातें ता योगकूं भी जीवन्मुक्तिकी साधनता संभवै नहीं। अब अधिकारीके अभावतें ता जीवन मुक्तिके अभावकूं सिद्ध करे हैं। तहां ता जीवन्मुक्तिविषे

मुमुक्षुकूं तौ अधिकारीपणा संभवता नहीं किंतु ज्ञानवानकूं ही ता जीवन्मुक्तिका अधिकारी कहणा होवैगा सो भी संभवता नहीं। काहेतैं 'ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः । नैवास्ति किंचित्कर्त्तव्यमस्तिचेन्न स तत्त्ववित् । तस्य कार्यं न विद्यते' इत्यादिक वचनोंनें ज्ञानकूं कर्त्तव्यताका निषेध कऱ्या है। जो ज्ञानवान्कूं जीवन्मुक्तिका अधिकारी मानोंगे तौ ता ज्ञानवान्कूं ता जीवन्मुक्तिके साधनोंकी कर्त्तव्यता अवश्य होवैगी ता करिकै तिन उक्त वचनोंका विरोध होवैगा । किंवा देहाभिमानवाला पुरुष ही कर्त्ता होवै है। और ज्ञानवान् पुरुष ता देहाभिमानतैं रहित है यातैं कर्त्तापणेतैं भी रहित है। ता कर्त्तापणेके अभाव हुए ता ज्ञानवान् पुरुषकी ता जीवन्मुक्तिके साधनोंविषे प्रवृत्ति संभवती नहीं । यातैं ता ज्ञानवान् पुरुषकूं ता जीवन्मुक्तिविषे अधिकार संभवतानहीं और अधिकारतैं विना ता जीवन्मुक्तिके साधनोंका अभ्यास भी संभवता नहीं इति । अब फलरूप प्रयोजनके अभावतैं ता जीवन्मुक्ति अभावकूं सिद्ध करे हैं । तहां जीवन्मुक्तिकूं मानणेहारे वादीतैं यह पूँछा चाहिये । ता जीवन्मुक्तिका क्या प्रयोजन है अर्थात् प्रयोजनतैं विना मंद पुरुषकी भी प्रवृत्ति होती नहीं तौ बुद्धिमान् पुरुषकी ता प्रयोजनतैं विना कैसे प्रवृत्ति होवैगी ? यातैं ता जीवन्मुक्तिके संपादनविषे पुरुषकी प्रवृत्तिवासतैं ता जीवन्मुक्तिका कोई प्रयोजन अवश्य कह्या चाहिये । तहां उत्पन्न हुए आत्मज्ञानका रक्षण ता जीवन्मुक्तिका प्रयोजन है अथवा दुःखका नाश प्रयोजन है। अथवा स्वरूप सुखका आविर्भाव प्रयोजन है। तहां प्रथम पक्ष जो अंगीकार करो सो संभवता नहीं । काहेतैं 'तत्त्वमसि' आदिक प्रमाण करिकै जन्य तथा अज्ञानके निवृत्त करणेविषे समर्थ जो आत्मज्ञान है तिस आत्मज्ञानका कोई भी बाधक है नहीं । और बाधकतैं ही रक्षण होवै है । यातैं ता ज्ञानका रक्षण ही निरूपण होइ सकता

नहीं। इस प्रकार दुःखका नाश तथा सुखका आविर्भाव यह दोनों भी ता जीवन्मुक्तिका प्रयोजन नहीं है। जिस कारणतैं ते दोनों आत्मज्ञान करिकै ही प्राप्त होवै हैं। और जो वस्तु जिस साधन कारक प्राप्त होवै है सो वस्तु तिस साधनका ही फल होवै है अन्य साधनका फल होता नहीं यातैं दुःखका नाश तथा सुखका आविर्भाव यह दोनों आत्मज्ञानका ही फल हैं ता जीवन्मुक्तिका फल नहीं हैं। इस प्रकार प्रमाण स्वरूप लक्षण साधन अधिकारी प्रयोजन इन पांचोंके अभाव होणेतैं ता जीवन्मुक्तिका अंगीकार निरर्थक ही है। यातैं आत्मज्ञानतैं एक विदेह मुक्ति ही होवै है जीवन्मुक्ति होती नहीं इति। इस प्रकार कोई ग्रंथकार जीवन्मुक्तिका खंडन करिकै एक विदेहमुक्ति ही अंगीकार करे हैं। तिनोंके मतके खंडन करणेवासतैं अब ता मुक्तिका विभाग वर्णन करे हैं। सा पूर्व उक्त मुक्ति दो प्रकारकी होवै है एक तो विदेहमुक्ति होवै है दूसरी जीवन्मुक्ति होवै है। यद्यपि जीवन्मुक्तित पश्चात् विदेहमुक्ति होवै है यातैं प्रथम ता जीवन्मुक्तिका ही निरूपण करणा उचित है। तथापि सा जीवन्मुक्ति विवाद करिकै ग्रस्त है। यातैं ताका निरूपण अतिविस्तारतैं होवै है और विदेहमुक्तिविषे विवाद है नहीं यातैं ताका निरूपण थोडेमें होवै है यातैं सूचीकटाहन्याय करिकै प्रथम विदेहमुक्तिका निरूपण करे हैं। तहां 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारके तत्त्वज्ञानवाले पुरुषका भोग करिकै प्रारब्ध कर्मके नाश हुए जो वर्त्तमान शरीरका नाश है ताका नाम विदेहमुक्ति है। यह विदेहमुक्ति श्रीव्यास भगवान्‌ने भी ब्रह्मसूत्रोंविषे कथन करी है। तहां सूत्र—'भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा संपद्यते' अर्थ—ज्ञानवान् पुरुष सुखदुःखके अनुभवरूप भोगतैं पुण्यपापरूप प्रारब्ध कर्मका नाश करिकै शरीर नाशतैं अनंतर अखंड एकरस आनंद ब्रह्मात्मरूपतैं

स्थित होवै है। पुनः जन्मकूं प्राप्त होता नहीं। काहेतें तिस ज्ञानवान् पुरुषका आत्मज्ञान करिकै अज्ञान तथा संचित कर्म नाश होइ जावे है। और ता आत्मज्ञानके प्रभावतें ता ज्ञानवान् पुरुषकूं आगामि पुण्य पाप कर्मका स्पर्श ही होता नहीं और प्रतिबंधरूप प्रारब्धकर्मका भोग करिकै नाश हुएतें अनंतर वासनासहित विक्षेप शक्तिवाला अज्ञान भी नाश होइ जावै है। यातें जन्मकी प्राप्ति करणेहारा संचित कर्मादिक कारणके अभाव हुए सो ज्ञानवान् पुरुष पुनः जन्मकूं प्राप्त होता नहीं। किंतु इस वर्त्तमान शरीरके नाशतें अनंतर सो ज्ञानवान् पुरुष निर्विशेष ब्रह्मरूप ही होवै है इति। यह उक्त विदेह मुक्तिका स्वरूप 'तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथसंपत्स्ये' इस श्रुतिनैं भी कथन कर्‍या है। यातें सा विदेहमुक्ति श्रुति सूत्रप्रमाण करिकै सिद्ध है। शंका-जिस पुरुषकूं अनेकजन्मोंकी प्राप्ति करणेहारा प्रारब्धकर्म विद्यमान होवै है तिस पुरुषकूं प्रथम जन्मविषे आत्मज्ञानके उत्पन्न हुए दूसरा जन्म होवै है अथवा नहीं होवै है। तहां प्रथम पक्ष जो अंगीकार करोगे तौ ज्ञानकूं पाक्षिकपणा होवैगा अर्थात् ता आत्मज्ञानकूं नियमतें जन्म निवृत्तिका हेतुपणा नहीं होवैगा। और दूसरा पक्ष जो अंगीकार करोगे तौ 'नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि' इस वचनका विरोध प्राप्त होवैगा ऐसी शंकाके प्राप्त हुए इहां के एक ग्रंथकार तो ऐसा समाधान करे हैं 'यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणां' इस सूत्रविषे श्रीव्यास भगवान्ने तथा श्रीभाष्यकारोंने यह अर्थ निरूपण कर्‍या है। सृष्टिके आदिकालविषे जगत् व्यवहारके चलावणेवासतें परमेश्वरने स्थापन कर्‍ये जो देवतादिक अधिकारी पुरुष हैं तिन अधिकारी पुरुषकूं जितने कालपर्यंत सो अधिकार होवै है तितने कालपर्यंत तिनोंकी स्थिति होवै है। मध्यविषे किसी वर शापके वशतें तिन

अधिकारी पुरुषोंकू जन्मांतरकी प्राप्ति हुए भी आत्मज्ञानका बाध होता नहीं। तथा ता अधिकारकी समाप्तिकालविषे तिनोंकू मोक्ष भी अवश्य होवै है इति। इस प्रकार जिस पुरुषका प्रारब्धकर्म अनेक जन्मके देणेहारा है तिस पुरुषकूं प्रथम जन्मविषे 'तत्त्व मसि' आदिक महावाक्य प्रमाणके बलतैं आत्मसाक्षात्कारकी उत्पत्ति हुएतैं अनंतर ता प्रबल प्रारब्ध कर्मके वशतैं जन्मांतरकी प्राप्ति हुए भी ता ज्ञानका बाध होता नहीं। जिस कारणतैं सो प्रारब्ध कर्मका फल ता आत्मज्ञानका विरोधी होता नहीं। जो कदाचित् सो प्रारब्ध कर्मका फल ता आत्मज्ञानका विरोधी होता होवै ता देवतादिक अधिकारी पुरुषोंके आत्मज्ञानका भी ता प्रारब्ध कर्मके फल करिकै बाध होणा चाहिये। और तिस पुरुषकूं ता आत्मसाक्षात्कारतैं सो ब्रह्मभावरूप मोक्ष भी अवश्य प्राप्त होवै है। यातैं ता आत्मज्ञानका सोपाधिकपणा भी होवै नहीं। तथा 'नाभुक्तं क्षीयते कर्म' इस वचनका भी विरोध होवै नहीं इति। और कै एक ग्रंथकार तौ ता उक्त शंकाका यह समाधान करे हैं। 'यस्तु विज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाशुचिः। स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह। सर्वथा वर्त्तमानोऽपि न सभूयोऽभिजायते' इत्यादिक श्रुति स्मृतियोंनैं ज्ञानवान् पुरुषके जन्मका निषेध कऱ्या है। यातैं जिस पुरुषका सो प्रारब्धकर्म अनेक जन्मका हेतु होवै है तिस पुरुषकूं ता प्रथम जन्मविषे श्रवणादिकोंतैं सो आत्मज्ञान उत्पन्न होता नहीं। किंतु अंत्य जन्मविषे ही सो आत्मज्ञान उत्पन्न होवै है। यह वार्त्ता श्रीवसिष्ठ भगवान्ने भी कही है तहां श्लोक। 'यस्येदं जन्मपाश्चात्यं तमाश्वेव महामते। विशन्ति विद्या विमला मुक्ता वेणुमिवोत्तमम्'। अर्थ—हे महामतिवाले राम!

जिस पुरुषका यह अंत्य जन्म होवै है तिस पुरुषविषे ही यह निर्मल ब्रह्मविद्या प्रवेश करे है जैसे उत्तम जातिवाले वेणुविषे मोती प्रवेश करे है इति । यातैं पूर्व उक्त दोनों पक्षोंविषे भोग करिकै प्रारब्ध कर्मके नाश हुए तथा देहके पात हुए सो ज्ञानवान् पुरुष ब्रह्मात्मरूप करिकै स्थित होवै है यह अर्थ सिद्ध भया इति । और कै एक ग्रंथकार तौ ता विदेह मुक्तिका यह स्वरूप कहे हैं । भावीशरीरका जो अनारंभकपणा है ताका नाम विदेहमुक्ति है सो यह विदेहमुक्ति ज्ञानकी उत्पत्तिके समकाल ही होवै है । अर्थात् इस पुरुषकूं जिस कालविषे आत्मज्ञान होवै है तिसी कालविषे सो विदेहमुक्ति होवै है । काहेतैं आत्मज्ञान करिकै निवृत्त हुए संचित कर्मका भी नाश होइ जावै है और सो संचित कर्म ही भावीशरीरका आरंभक होवै है । यातैं इस पुरुषकूं आत्मज्ञानकी उत्पत्तिकालविषे सा भावी शरीरका अनारंभकत्वरूप विदेह मुक्ति बनि सकै है । यह वार्त्ता अन्य ग्रन्थविषे भी कही है । तहां श्लोक—'तीर्थे श्वपचगृहे वा नष्टस्मृतिरपि त्यजन्देहम् । ज्ञानसमकालमुक्तः कैवल्यं याति हतशोकः' अर्थ—श्रीकाशी आदिक तीर्थविषे अथवा चांडालके गृहविषे शरीरकूं परित्याग करता हुआ तथा सन्निपातादिक दोषके वशतैं ब्रह्मात्म स्मृतितैं रहित हुआ भी ज्ञानवान् पुरुष कैवल्य मोक्षकूं ही प्राप्त होवै है । जिस कारणतैं सो तत्त्ववेत्ता पुरुष आत्मज्ञानके समकाल ही मुक्त है तथा सर्व शोकोंतैं रहित है इति । तहां इतनैं पर्यंत विदेहमुक्तिका निरूपण कर्या अब जीवन्मुक्तिका निरूपण करे हैं । तहां प्रथम ता जीवन्मुक्तिका लक्षण कहे हैं । श्रवणादिकों करिकै उत्पन्न भया है ब्रह्मसाक्षात्कार जिसकूं ऐसा जो विद्वत्संन्यासी है तिस विद्वत्संन्यासीकूं जीवत् अवस्थाविषे जो कर्तृत्व भोक्तृत्वादिरूप सर्व बन्ध प्रतीतिकी निवृत्ति है ताका नाम जीवन्मुक्ति है। शंका—यह जीवन्मुक्तिका लक्षण संभवता नहीं ।

काहेतैं भोग देणेहारे प्रारब्ध कर्मके विद्यमान हुए ज्ञानवान् पुरुषकूं भी सा कर्तृत्वादिक बंधकी प्रतीति अवश्य करिकै होवैगी। जिस कारणतैं ता कर्तृत्व भोक्तृत्व बुद्धितैं विना सो प्रारब्ध कर्मके फलका भोग संभवता नहीं। यद्यपि सो कर्तृत्वादिक बंध साक्षी आत्मातैं तौ ज्ञान करिकै ही निवृत्त होइ गया है तथापि जलगत द्रवत्व धर्मकी न्याईं तथा अग्निगत उष्णत्व धर्मकी न्याईं अंतःकरणका स्वाभाविक धर्मरूप सो कर्तृत्वादिक बंध ता अंतःकरणतैं निवृत्त होणेकूं अशक्य है। यातैं कर्तृत्वादिक सर्व बंध प्रतीतिके निवृत्तिका नाम जीवन्मुक्ति है यह लक्षण संभवता नहीं। समाधान—जैसे तत्त्वज्ञानतैं प्रारब्धकर्म प्रबल होवै है तैसे ता प्रारब्धकर्मतैं भी योगाभ्यास प्रबल होवै है। यातैं ता योगाभ्यास करिकै यद्यपि ता प्रारब्ध भोगके अनुकूल कर्तृत्वादिक बंध प्रतीतिकी आत्यंतिक निवृत्ति होती नहीं तथापि ता योगाभ्यास करिकै ता कर्तृत्वादिक बंध प्रतीतिका अभिभव अवश्य होवै है यातैं सो पूर्व उक्त जीवन्मुक्तिका लक्षण संभवै है। जो कदाचित् प्रारब्ध कर्मतैं योगाभ्यासकूं प्रबल नहीं मानिये तौ पुरुष प्रयत्नकूं ही व्यर्थता होवैगी ता पुरुष प्रयत्नके व्यर्थ हुए चिकित्सा शास्त्रतैं आदि लैके मोक्षशास्त्रपर्यंत सर्व शास्त्रोंका आरंभ निष्फल होवैगा। शंका—योगाभ्यास करिकै जो प्रारब्ध कर्मका प्रतिबंध मानोंगे तौ 'नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि' इस वचनका विरोध होवैगा। समाधान—ता प्रारब्धकर्मके विरोधी जे योगाभ्यासादिक हैं तिनोंके नहीं विद्यमान हुए ही सो उक्त वचन सार्थक होवै है। अर्थात् जिस प्रारब्धकर्मका कोई योगाभ्यासादिक प्रतिबंधक नहीं है सो प्रारब्धकर्म भोगतैं विना निवृत्त होता नहीं। जो कदाचित् किसी उपाय करिकै भी ता प्रारब्धकर्मका प्रतिबंध नहीं होता होवै तौ

प्रारब्ध कर्मविषे अत्यंत भक्तिवाले वादीकूं भी शास्त्रके वचनोंका विरोध होवैगा। सो वचन यह है। श्लोक-'जन्मांतरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते। तच्छांतिरौषधैर्दानैर्जपहोमार्चनादिभिः' अर्थ-इस पुरुषनें पूर्व जन्मविषे कन्या जो पापकर्म है सो पापकर्म इस पुरुषकूं इस जन्मविषे ज्वरादिक व्याधिरूप करिकै दुःखकी प्राप्ति करे है। तिसकी शांति औषधों करिकै तथा दानों करिकै तथा जप होम अर्चन आदिकों करिकै होवै है इति। इत्यादिक वचनोंने ता प्रारब्ध पापकर्मके शांतिवासतैं औषधादिक उपाय कथन कन्ये हैं तिन सर्व वचनोंका विरोध होवैगा। यातैं योगाभ्यास करिकै ता प्रारब्धकर्मका अभिभव संभवै है किंवा प्रारब्धकर्मकी अपेक्षा करिकै योगाभ्यासादिकशास्त्रीय प्रयत्नकी प्रबलता वसिष्ठ भगवान्नें भी कही है तहां श्लोक-'आबाल्यादलमभ्यस्तः शास्त्रसत्संगमादिभिः। गुणैः पुरुषयत्नेन सोऽर्थः संप्राप्यते हितः' अर्थ-पुरुषप्रयत्न दो प्रकारका होवै है। एक तौ अशास्त्रीय होवै है दूसरा शास्त्रीय होवै है। तहां श्रुति स्मृतिरूप शास्त्र करिकै निषिद्ध जो प्रयत्न है ताका नाम अशास्त्रीय प्रयत्न है जैसे चोरी हिंसादिक प्रयत्न हैं और श्रुति स्मृतिरूप शास्त्रने विधान कन्या जो प्रयत्न है ताका नाम शास्त्रीय प्रयत्न है जैसे यज्ञ दानादिक प्रयत्न हैं। तहां यह पुरुष अशास्त्रीय पुरुष प्रयत्न करिकै तौ नरककूं प्राप्त होवै है और बाल्यावस्थातैं लेकै अभ्यास कन्ये जे अध्यात्म शास्त्रसत्समागम शांत दांत आदिक गुण हैं तिन गुणों करिकै युक्त दूसरे शास्त्रीय पुरुष प्रयत्न करिकै यह पुरुष मोक्षरूप परमपुरुष पुरुषार्थकूं प्राप्त होवै है इति। यह उक्त अर्थ ही 'उच्छास्त्रं शास्त्रितं चेति पौरुषं द्विविधं स्मृतम्। तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम्' इस श्लोक करिकै भी कथन कन्या है। यातैं योगाभ्यासरूप शास्त्रीय प्रयत्न करिकै ता प्रारब्ध

कर्मका अभिभव संभवै है । यातैं सो पूर्व उक्त कर्तृत्वादिक बंध प्रतीतिकी निवृत्तिरूप जीवन्मुक्तिका लक्षण निर्दोष है इति । अब ता जीवन्मुक्तिके अधिकारीका निरूपण करे हैं । तहां श्रवणादिकों करिकै उत्पन्न भया है ब्रह्मसाक्षात्कार जिसकूं तथा चित्तके विश्रांतिकी है कामना जिसकूं ऐसा जो विद्वत्संन्यासी है सोई ही ता जीवन्मुक्तिका अधिकारी है । अर्थात् ता जीवन्मुक्तिकी प्राप्तिवासतैं ताके साधनरूप मनोनाश वासना क्षयकूं करणेहारा है। शंका—ता ब्रह्मसाक्षात्कार करिकै निवृत्त होगया है अज्ञान तथा देहाभिमान जिसका ऐसा जो विद्वत्संन्यासी है तिसकूं कोई कार्यका कर्त्तापणा ही संभवता नहीं । ता कर्त्तापणेतैं विना तिस विद्वत्संन्यासीकूं ता जीवन्मुक्तिका अधिकारीपणा कैसे संभवेगा किंतु नहीं संभवेगा। समाधान—आत्मज्ञान करिकै आवरण शक्तिवाले अज्ञानके नाश हुए भी प्रारब्ध कर्मके वशतैं विक्षेप शक्तिवाले अज्ञानलेशकी स्थिति सर्व ग्रंथकारोंने अंगीकार करी है । यह वार्त्ता तृतीय परिच्छेदविषे विस्तारतैं कथन करि आये हैं । यातैं ता विद्वान् पुरुषकूं भी बाधितानुवृत्ति करिकै सो देहाभिमान तथा कर्त्तापणा बनि सकै है । ता करिकै तिस विद्वान् पुरुषकूं जीवन्मुक्तिका अधिकारीपणा भी संभवै है । शंका—'ज्ञानामृतेनतृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः । नैवास्ति किंचित्कर्त्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् तस्य कार्यं न विद्यते' इत्यादिक पूर्व उक्त स्मृति वचनोंने कृतकृत्यरूप ज्ञानवान्कूं सर्व कर्तव्यताका निषेध कर्‍या है । जबी ज्ञानवान् पुरुषकूं भी जीवन्मुक्तिवासतैं मनोनाश वासनाक्षयरूप साधनोंकी कर्तव्यता मानोंगे तभी तिन वचनोंका विरोध प्राप्त होवैगा । समाधान—सो ज्ञानवान् दो प्रकारका होवै है। एक तौ कृतोपास्ति होवै है दूसरा अकृतोपास्ति होवै है तहां जिस पुरुषनें आत्मसाक्षात्कारतैं पूर्व सगुण ब्रह्मके साक्षात्कार पर्यंत

उपासना करी है सो ज्ञानवान् पुरुष तौ कृतोपास्ति कह्या जावै है और जिसने सा उपासना नहीं करी है सो ज्ञानवान् अकृतोपास्ति कह्या जावै है । तहां कृतोपास्ति ज्ञानवान्कूं तौ ता ज्ञानतैं उत्तर जीवन्मुक्तिवासतैं किंचित्मात्र भी कर्तव्यता होती नहीं । जिस कारणतैं ता कृतोपास्ति ज्ञानवान्का सो मनोनाश तथा वासनाक्षय पूर्व ही सिद्ध है । यातैं आत्मज्ञानकी प्राप्तिकालविषे ही सो कृतोपास्ति पुरुष जीवन्मुक्तिकूं प्राप्त होवै है । और ज्ञानवान् पुरुषके प्रति कर्तव्यताका निषेध करणेहारे जे श्रुति स्मृति वचन पूर्व कहे हैं ते वचन भी इस कृतोपास्ति ज्ञानवान् पुरुषके प्रति ही सर्व कर्त्तव्यताका निषेध करे हैं।और लौकिक वैदिक व्यापार करिकै चित्तकी विश्रांतितैं रहित जो अकृतोपास्ति ज्ञानवान् है तिसकूं तौ ज्ञानतैं उत्तर जीवन्मुक्तिके वासतैं मनोनाश वासनाक्षयकी कर्त्तव्यताहोणेतैं निरंकुश कृतकृत्यपणा नहीं है । यातैं ता अकृतोपास्ति ज्ञानवान्कूं जीवन्मुक्तिवासतैं सो मनोनाश तथा वासनाक्षय अवश्य कर्तव्य है। शंका—ऐसे चित्त विश्रांतितैं रहित अकृतोपास्ति पुरुषकूं आत्मज्ञान ही नहीं उत्पन्न होवैगा । समाधान—ज्ञान तौ प्रमाण वस्तु दोनोंके अधीन होवै है । यातैं सर्वकूं साधारण होवै है । जैसे घटादिक वस्तुके साथ चक्षु आदिक प्रमाणके संबंध हुए सर्व लोकोंकूं 'अयं घटः' यह ज्ञान समान ही होवै है । तैसे तत्त्वमसि आदिक महावाक्यके श्रवणतैं 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका ज्ञान कृतोपास्ति नामा अकृतोपास्ति नामा सर्व अधिकारियोंकूं तुल्य ही होवै है । जो कदाचित् ऐसा नहीं मानिये तौ याज्ञवल्क्य कहोळ जनक अजातशत्रु इत्यादिक गृहस्थोंकूं सो आत्मज्ञान नहीं होणा चाहिये जो इस अर्थविषे इष्टापत्ति करोगे तौ तिन याज्ञवल्क्यादिकोंके दृष्टांत करिकै अस्मदादिक पुरुषोंविषे कोई भी पुरुषकी ज्ञानके श्रवणादिक साधनोंविषे प्रवृत्ति नहीं होवैगी । अर्थात् जबी याज्ञवल्क्यादिक महान्

पुरुषोंकूं भी श्रवणादिकों करिकै आत्मज्ञानकी उत्पत्ति नहीं भई तभी अस्मदादिकोंकूं ता ज्ञानकी उत्पत्ति कैसी होवैगी। या प्रकारकी असंभावना करिकै किसी भी पुरुषकी श्रवणादिकोंविषे प्रवृत्ति नहीं होवैगी। यातैं यह सिद्ध भया। श्रवणादिकों करिकै उत्पन्न भया है ब्रह्मसाक्षात्कार जिसकूं तथा चित्तके विश्रांतिकी है इच्छा जिसकूं ऐसा जो विद्वत्संन्यासी है सोई ही ता जीवन्मुक्तिका अधिकारी है। यातैं अधिकारीके अभावतैं जीवन्मुक्तिका अभाव कहणा मिथ्या है इति। अब ता जीवन्मुक्तिविषे प्रमाणका निरूपण करे हैं तहां ता जीवन्मुक्तिविषे श्रुति स्मृति इतिहास पुराण इन चारोंके वचन प्रमाण हैं ते वचन यथाक्रमतैं दिखावै हैं। तहां श्रुति-'विमुक्तश्च विमुच्यते' अर्थ-यद्यपि यह पुरुष आत्मज्ञानतैं पूर्व ही मुमुक्षुदशाविषे राग द्वेषादिकोंतैं मुक्त है जिस कारणतैं 'शांतो दांतः' इत्यादिक श्रुतिनैं शम दमादिक साधनयुक्त पुरुषकूं ही श्रवणादिकोंका अधिकारी कह्या है तथापि ता आत्मज्ञानतैं पूर्व तिन रागद्वेषादिकोंतैं मुक्ति यत्नसाध्य होवै है। और आत्मज्ञानतैं अनंतर तौ योगाभ्यास करिकै वासनाक्षय तथा मनोनाश दोनों अतिदृढ होवै हैं। यातैं ता ज्ञानवान् पुरुषविषे आभासरूप रागद्वेषादिक भी संभवते नहीं। यातैं ता ज्ञानकालविषे तिन रागद्वेषादिकोंतैं मुक्ति स्वतः सिद्ध होवै है। इसी अभिप्राय करिकै ता जीवन्मुक्त पुरुषकूं श्रुतिनैं विमुक्त कह्या है। ऐसा विमुक्त जीवन्मुक्त पुरुष भोग करिकै प्रारब्ध कर्मके नाश हुए इस शरीरके नाशतैं अनंतर भावी बन्धतैं विशेष करिकै मुक्त होवै है इति। यह श्रुति तत्त्वज्ञानतैं अनंतर विदेहमुक्तितैं विलक्षण जीवन्मुक्तिकूं कथन करे है। तथा 'तद्यथाऽहिनिर्ल्वयिनीवल्मीके मृताप्रत्यस्ताशयीत एवमेवेदं शरीरं शेते अथायमशरीरोऽमृतः प्राणो ब्रह्मैव तेज एव' इत्यादिक श्रुतियां भी ता जीवन्मुक्तिकूं कथन करे हैं

यातैं सा जीवन्मुक्ति ता उक्त श्रुतिप्रमाण करिकै सिद्ध हैं इति। किंवा वसिष्ठ भगवान्‌ने भी सा जीवन्मुक्ति कथन करी है । तहां श्लोक 'यो जागर्त्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते।यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते' अर्थ–जो ब्रह्मवेत्ता पुरुष इंद्रियोंके नहीं लय हुए जागता है अर्थात् जाग्रत् अवस्थाकूं अनुभव करे है और ता जाग्रत् अवस्थाविषे भी चक्षु आदिक इंद्रियों करिकै रूपादिक विषयोंकूं ग्रहण करता नहीं यातैं सो ब्रह्मवेत्ता पुरुष ता जाग्रत् अवस्थाविषे स्थित हुआ भी सुषुप्तिविषे स्थित कह्या जावै है। या कारणतैं ही इंद्रियों करिकै अर्थका ज्ञानरूप जाग्रत् जिस ब्रह्मवेत्ता-कूं नहीं विद्यमान है और जिस ब्रह्मवेत्ताका आपणे अखंड एकरस आनंदका अनुभव शुभ अशुभ सर्व वासनावोंतैं रहित है सो ब्रह्मवे-त्ता पुरुष जीवन्मुक्त कह्या जावै इति। किंवा गीताके द्वितीय अ-ध्यायविषे श्रीभगवान्‌ने भी सो जीवन्मुक्त पुरुष स्थितप्रज्ञ नाम करिकै कथन कऱ्या है। तहां श्लोक–'प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्। आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते' अर्थ–हे अ-र्जुन। जिस अवस्थाविषे यह विद्वान् पुरुष मनविषे स्थित सर्वका-मोंका परित्याग करे है तथा अखंड एकरस आनंदरूप प्रत्यक् आत्माविषे योगाभ्यासतैं वश करये हुए मन करिकै आपणे स्वरू-पानंदकूं अनुभव करता हुआ संतुष्ट होवै है तिस कालविषें सो विद्वान् पुरुष स्थितप्रज्ञ कह्या जावै है तहां नहीं चलायमान है। 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारकी प्रज्ञा जिसकी ताका नाम स्थितप्रज्ञ है इहां यह तात्पर्य है। प्रज्ञा दो प्रकारकी होवै है एक तौ स्थिरप्र-ज्ञा होवै है और दूसरी अस्थिरप्रज्ञा होवै है । तहां जन्मांतरोंके पुण्यसमूहके परिपाकतैं आकाशतैं पतन हुए फलकी न्याई तत्त्व-मसि आदिक महावाक्यके श्रवणमात्र करिकै इस पुरुषकूं जीव

ब्रह्मके एकत्वकूं विषय करणेद्वारा जो 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका ज्ञान उत्पन्न होवै है सो ज्ञान तौ व्यवहारकी बाहुल्यता करिकै तथा विषयोंकी आसक्ति करिकै विस्मरण होइ जावै है। यातैं सो ज्ञान अस्थिरप्रज्ञ कह्या जावै है। और योगाभ्यास करिकै वश कऱ्या है चित्त जिसनैं ऐसे पुरुषकी बुद्धि जभी परपुरुषविषे आसक्त स्त्रीकी बुद्धिकी न्याईं निरंतर ब्रह्मात्मतत्त्वकूं ही चिंतन करे है अन्य वस्तुकूं चिंतन करती नहीं तभी सा बुद्धि स्थिरप्रज्ञा कह्या जावै है। इसी अभिप्राय करिकै श्रीवसिष्ठ भगवान्नैं भी कह्या है तहां श्लोक-'परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मणि।तदेवास्वादयत्यंतः परसङ्गरसायनम्॥ १ ॥एवं तत्त्वे परे शुद्धे धीरो विश्रांतिमागतः।तदेवास्वादयत्यंतबर्हिर्व्यवहरन्नपि' ॥ २॥ अर्थ—परपुरुषविषे आसक्त जा नारी है सा नारी बाह्यतैं गृहके सर्वकार्योंकू करती हुई भी अंतरचित्तविषे ता परपुरुषके संगजन्य सुखकूं चिंतन करे है। इस प्रकार जो ज्ञानवान् पुरुष शुद्ध परमात्मतत्त्वविषे विश्रांतिकूं प्राप्त भया है सो ज्ञानवान् पुरुष बाह्यतैं लौकिक वैदिक व्यवहारोंकूं करता हुआ भी अंतर चित्तविषे तिस परमात्मतत्त्वकू ही निरंतर चिंतन करे है इति। किंवा यह उक्त जीवन्मुक्त पुरुष ही गीताके द्वादश अध्यायविषे श्रीभगवान्ने भगवद्भक्त नाम करिकै कथन कऱ्या है। तहां श्लोक-'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥ १॥ संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः। मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः'॥ २॥ अर्थ—जो पुरुष सर्वभूतोंके द्वेषतैं रहित है तथा मैत्री करुणावाला है तथा अहं मम अभिमानतैं रहित है तथा समान है सुखदुःख जिसकूं तथा क्षमावाला है तथा सर्वदा संतुष्ट है तथा मनके निग्रहवाला है तथा दृढ निश्चयवाला है तथा मैं परमात्माविषे अर्पण कऱ्या है मन बुद्धि जिसने ऐसा जो

मैं परमेश्वरका भक्त हूं सो मैं परमेश्वरकूं अत्यंत प्रिय होऊं इति । शंका—इस गीतावचनविषे श्रीभगवान्‌ने कथन करये जे अद्वेष्टादिक गुण हैं ते गुण तो साधक मुमुक्षुविषे भी 'शांतो दांतः' इत्यादिक श्रुतिप्रमाणतैं सिद्ध हैं।यातैं ता साधक मुमुक्षुतैं ता जीवन्मुक्त पुरुषविषे कोई विशेषता सिद्ध होवै नहीं । समाधान—साधक मुमुक्षुविषे ते अद्वेष्टादिक गुण प्रयत्नसाध्य होवै हैं।और जीवन्मुक्त पुरुषविषे ते अद्वेष्टादिक गुण स्वभावसिद्ध होवै हैं । यातैं ता साधक मुमुक्षुतैं ता जीवन्मुक्त पुरुषविषे विशेषता संभवै है यह वार्त्ता अन्य ग्रंथविषे भी कही है।तहां श्लोक—'उत्पन्नात्मैक्यबोधस्य ह्यद्वेष्टृत्वादयो गुणाः । अयत्नतो भवंत्यस्य न तु साधनरूपिणः' अर्थ—'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका बोध जिस पुरुषकूं उत्पन्न भया है तिस विद्वान् पुरुषकूं ते अद्वेष्टृत्वादिक गुण विना ही प्रयत्नतैं होवै हैं । मुमुक्षुकी न्याईं साधनरूप होते नहीं इति । किंवा यह उक्त जीवन्मुक्त पुरुष ही श्रीभगवान्‌ने गीताके चतुर्दश अध्यायविषे 'प्रकाशं च प्रवृत्तिञ्च मोहमेव च पांडव । न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति॥ १॥ उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते। गुणा वर्तंत इत्येवं योऽवतिष्ठति नेंगते ॥ २ ॥ समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः। तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ॥ ३ ॥ मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः । सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥४॥ इन चारि श्लोकों करिकै गुणातीत नाम करिकै कथन कऱ्या है । इन गीताके श्लोकोंका अर्थ गीतागूढार्थदीपिकाविषे हमने विस्तारतैं निरूपण कऱ्या है सो तहांसे जानि लेणा इति । किंवा यह उक्त जीवन्मुक्त पुरुष ही महाभारतविषे श्रीव्यास भगवान्‌ने ब्राह्मण नाम करिकै कथन कऱ्या है । तहां श्लोक—'निराशिषमनारंभं निर्नमस्कारमस्तुतिम्।अक्षीणं क्षीणकर्माणं तं देवा ब्राह्मणं विदुः' अर्थ—जो पुरुष इष्टवस्तुकी प्रार्थनातैं रहित है तथा सर्व

आरंभतैं रहित है तथा नमस्कारतैं रहित है तथा आपणी परकी स्तुति निंदातैं रहित है तथा विना प्रयत्नतैं प्राप्त हुए वस्तुविषे भी दीनतातैं रहित है तथा निवृत्त हो गये हैं सर्व लौकिक वैदिककर्म जिसके ऐसे तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं देवता ब्राह्मण कहे हैं इति । किंवा यह उक्त जीवन्मुक्त पुरुष ही स्कंदपुराणविषे अतिवर्णाश्रमी नाम करिकै कथन कर्‍या है । तहां श्लोक–'यथास्वप्नप्रपंचोऽयं मयि मायाविजृंभितः । एवं जाग्रत्प्रपंचोऽपि मयि मायाविजृंभितः। इतियो वेदवेदांतैः सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत्' अर्थ–जैसे मैं प्रत्यक्‍ आत्माविषे यह स्वप्न प्रपंच मायाकरिकै कल्पित है तैसे यह जाग्रत प्रपंच भी मेरेविषे माया करिकै कल्पित है । इस प्रकार जो पुरुष वेदांतवचनों करिकै सर्व प्रपंच कल्पनाके अधिष्ठानरूप आत्माकूं साक्षात्कार करै है सो तत्त्ववेत्ता पुरुष अतिवर्णाश्रमी कह्या जावै है इति । इस प्रकार ता जीवन्मुक्तिविषे श्रुति स्मृति इतिहास पुराण इन चारोंके अनेक वचन प्रमाण हैं । यातैं ता विदेह मुक्तिकी न्याईं सा जीवन्मुक्ति भी अवश्य अंगीकार करी चाहिये इति । अब ता जीवन्मुक्तिके साधनोंका निरूपण करे हैं । तहां सा पूर्व उक्त जीवन्मुक्ति तत्त्वज्ञान १ वासनाक्षय २ मनोनाश ३ इन तीनोंके अभ्यासतैं सिद्ध होवै है यातैं ये तीनों ता जीवन्मुक्तिके साधन हैं । तहां तिन तत्त्वज्ञानादिक तीनोंके जा अतिप्रयत्नतैं पुनः पुनः आवृत्ति है यह ही तिन तीनोंका अभ्यास है सो तत्त्वज्ञानादिक तीनोंका अभ्यास भी एक कालविषे कर्‍या हुआ ही जीवन्मुक्तिका हेतु होवै है । जिस कारणतैं अन्वयव्यतिरेक करिकै तिन तीनोंका परस्पर कार्यकारणभाव सिद्ध है ताके विषे प्रथम तत्त्वज्ञान वासनाक्षय इन दोनोंका परस्पर कार्यकारणभाव दिखावै हैं । तहां यह दृश्यमान सर्व प्रपंच मिथ्या है और अद्वितीय आत्मा पारमार्थिक है । यातैं यह आत्मा ही सर्वरूप है

ता आत्मातैं भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है। या प्रकारके तत्त्वज्ञानके उत्पन्न हुए विषयके अभावतैं रागद्वेषादिरूप वासनाक्षय होइ जावै है। और ता तत्त्वज्ञानके अभाव हुए विषयोंविषे सत्यपणा निवृत्त होवै नहीं यातैं उत्तरोत्तर सो रागद्वेषादिरूप वासनाका प्रवाह बना रहे है। इस प्रकारके अन्वय व्यतिरेक करिकै तिस तत्त्वज्ञानकूं वासनाक्षयके प्रति कारणता सिद्ध होवै है। इस प्रकार वासनाक्षयकूं भी तत्त्वज्ञानके प्रति कारणता है तहां विवेक करिकै तथा दोष-दर्शन करिकै तथा मैत्री करुणादिक विरोधीवासना करिकै जभी इस पुरुषकी रागद्वेषादिरूप वासना क्षय होवै है तभी ही इस पुरुषकूं श्रुति आचार्यके प्रसादतैं निर्मल मनविषे सो तत्त्वज्ञान उत्पन्न होवै है और ता वासनाक्षयके अभाव हुए सो मन रागद्वेषादिकों करिकै दूषित होवै है ता दूषित मनवाले पुरुषकूं शम दमादिक साधन संपत्तिके अभावतैं श्रवणादिक संभवैंगे नहीं। ता करिकै सो तत्त्वज्ञान उत्पन्न होवैगा नहीं। इस प्रकारके अन्वय व्यतिरेक करिकै ता वासनाक्षयकूं ता तत्त्वज्ञानके प्रति कारणता सिद्ध होवै है इति। अब तत्त्वज्ञान मनोनाश इन दोनोंका परस्पर कार्यकारण भाव दिखावै हैं। तहां तत्त्वज्ञानके हुए इस पुरुषकूं प्रपंचके मिथ्यात्वका निश्चय होवै है। ता मिथ्यात्व निश्चय करिकै शुक्ति रजतकी न्याईं ता प्रपंचका बाध होवे है। ता बाधित प्रपंचविषे सो मन प्रवृत्त होता नहीं और सत्यरूप करिकै निश्चय कऱ्या जो आत्मा है सो आत्मा ता मनका विषय है नहीं। यातैं ता आत्माविषे भी सो मन प्रवृत्त होइ सकता नहीं। इस प्रकार अंतर्बाह्य प्रवृत्तितैं रहित हुआ सो मन काष्ठोंतैं रहित वह्निकी न्याईं आप ही लय होइ जावै है। तहां श्रुति—'यथा निरिंधनो वह्निः स्वयोनावुपशाम्यति। तद्वद्वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्वयोनावुपशाम्यति' अर्थ—जैसे काष्ठा-

दिरूप इंधनतैं रहित हुआ वह्नि आपणे सामान्य तेजरूप कारणविषे लय होवै है तैसे अंतर्बाह्य सर्व वृत्तियोंके नाशतैं चित्त भी आपणे अधिष्ठानरूप कारणविषे लय होवै है। यह ही ता मनका नाश है इति। और ता तत्त्वज्ञानके अभाव हुए ता प्रपंचविषे सत्यपणा निवृत्त होता नहीं। तिसतैं पदार्थाकार वृत्तियोंकरिकै वृद्धिकूं प्राप्त हुआ सो मन अत्यंत स्थूल होवै है। ऐसे स्थूलताकूं प्राप्त हुए मनका नाश होता नहीं। इस प्रकारके अन्वय व्यतिरेक करिकै ता तत्त्वज्ञानकूं ता मनोनाशके प्रति कारणता सिद्ध होवै है इस प्रकार ता मनोनाशकूं भी तत्त्वज्ञानके प्रति कारणता है। तहां मनके नाश हुए सर्व द्वैत वृत्तियोंकी निवृत्ति होणेतैं सर्व उपाधियोंतैं रहित इस पुरुषकूं श्रुति आचार्यके प्रसादतैं ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है। और ता मनोनाशके अभाव हुए विक्षिप्त चित्तवाले पुरुषकूं सो ब्रह्मसाक्षात्कार होता नहीं। इस प्रकारके अन्वय व्यतिरेक करिकै ता मनोनाशकूं तत्त्वज्ञानकी कारण ता सिद्ध होवै है इति। अब वासनाक्षय मनोनाश इन दोनोंका परस्पर कार्य कारण भाव दिखावैं हैं। तहां वासनाक्षयके अभाव हुए रागद्वेषादिकों करिकैं स्थूलभावकूं प्राप्त हुआ चित्त विषयोंके सम्मुख होइकै तिस तिस विषयके आकार परिणामकूं प्राप्त होवै है। ता विषयाकार हुए मनका कदाचित् भी नाश होता नहीं। और वासनाके क्षय हुए वृत्तियोंकी उत्पत्ति होती नहीं। जिस कारणतैं ते वासना ही वृत्तियोंके उत्पत्तिका बीज है। बीजके नाश हुए अंकुरकी उत्पत्ति होती नहीं यातैं मनका नाश होवै है। इस प्रकारके अन्वय व्यतिरेक करिकै ता वासनाक्षयकूं मनोनाशकी कारणता सिद्ध होवै है। इस प्रकार ता मनोनाशकूं भी ता वासनाक्षयके प्रति कारणता है। तहां मनके नाश हुए कोई प्रकारकी भी वृत्ति उत्पन्न होती नहीं। यातैं सर्ववासना क्षय होवैं हैं और ता मनोनाशके अभाव हुए प्रारब्ध-

कर्मके वशतैं विषय भोगविषे प्रवृत्त हुए चित्तविषे रागादिक अनेक वासना उत्पन्न होवै हैं । अर्थात् जैसे घृतादिक हविष करिकै अग्नि वृद्धिकूं प्राप्त होवै है तैसे विषय भोग करिकै ते रागादिक वासना भी वृद्धिकूं प्राप्त होवै हैं । इस प्रकारके अन्वय व्यतिरेक करिकै ता मनोनाशकूं वासनाक्षयकी कारणता सिद्ध होवै है इति । इस प्रकार तत्त्वज्ञान वासनाक्षय मनोनाश इन तीनोंका परस्पर कार्य कारण भाव होणेतैं तिन तीनोंका एक कालविषे ही अभ्यास करणा उचित है । तिस अभ्यासतैं इस पुरुषकूं जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति होवै है । यह वार्त्ता वसिष्ठ भगवान्ने भी कही है । तहां श्लोक 'वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महामते । समकालं चिराभ्यस्ता भवंति फलदायिनः' अर्थ—हे महामति राम । वासनाक्षय तत्त्वज्ञान मनोनाश यह तीनों इकट्ठे ही बहुत कालपर्यंत अभ्यास करे हुए इस पुरुषकूं जीवन्मुक्तिरूप फलकी प्राप्ति करे हैं इति:शंका—विवेकादिक साधन चतुष्टयकी प्राप्तितैं अनंतर तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिवासतैं विविदिषा संन्यासकूं करिकै श्रवण मनन निदिध्यासनकूं करणेहारे पुरुषकूं सो तत्त्वज्ञान उत्पन्न होवै है । और ता तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तितैं अनंतर जीवन्मुक्तिकी प्राप्तिवासतैं विद्वत्संन्यासकूं करिकै तत्त्वज्ञान वासनाक्षय मनोनाश इन तीनोंके अभ्यासकूं करणेहारे पुरुषकूं ता जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति होवै है या प्रकारका अर्थ पूर्व कहणेतैं सिद्ध होवै है । तहां श्रवण मननादिकोंतैं अनंतर तत्त्वमसि आदिक प्रमाणजन्य तत्त्वज्ञानका अभ्यास किस प्रकारका होवै है । तहां प्रथम ज्ञानवान् पुरुषकूं तिस तत्त्वज्ञानकी कर्त्तव्यता ही संभवती नहीं । काहेतैं सो तत्त्वज्ञान महावाक्यरूप प्रमाणका फलरूप होणेतैं पूर्व सिद्ध ही है असिद्ध वस्तुकी ही कर्त्तव्यता होवै है । सिद्ध वस्तुकी कर्त्तव्यता होती नहीं । और सो ज्ञान विषयरूप वस्तुके अधीन होवै है । यातैं सो

ज्ञान करणेकूं वा नहीं करणेकूं वा अन्यथा करणेकूं शक्य होता नहीं । यातैं ता ज्ञानकी कर्त्तव्यता संभवती नहीं । इस प्रकार ता ज्ञानवान् पुरुषकूं ज्ञानके साधनरूप श्रवणादिकोंकी भी कर्त्तव्यता युक्त नहीं है । जिस कारणतैं फलरूप ज्ञानके उत्पन्न हुए तिन श्रवणादिकोंका अनुष्ठान व्यर्थ ही है यातैं उत्पन्न हुए तत्त्वज्ञानका अभ्यास निरूपण होइ सकता नहीं । समाधान—श्रवणादिकोंतैं उत्पन्न भया जो 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका तत्त्वज्ञान है ता तत्त्वज्ञानका यह ही अभ्यास है । जो कोई भी प्रकार करिकै ता ब्रह्मात्मतत्त्वका पुनःपुनः चिंतन करणा अर्थात् वेदांतशास्त्रके श्रवण करिकै अथवा कथन करिकै अथवा पुस्तकके अवलोकन करिकै अथवा पठन पाठन करिकै जो ता ब्रह्मात्मतत्त्वका पुनःपुनः अनुसंधान है यह ही ता तत्त्वज्ञानका अभ्यास जानणा । यह तत्त्वज्ञानके अभ्यासका स्वरूप अन्य ग्रंथविषे भी कह्या है । तहां श्लोक— 'तच्चिंतनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम् । एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः' अर्थ—जीव ब्रह्मका एकत्वरूप जो तत्त्व है तिस तत्त्वका जो पुनः पुनः चिंतन है तथा अधिकारी मुमुक्षु जनोंके प्रति जो तिस तत्त्वका कथन है तथा आपणे समान विद्वान् पुरुषोंके साथ मिलिकै जो तिस तत्त्वका परस्पर बोधन है इत्यादिक कोई प्रकार करिकै भी जो एक ब्रह्मात्मतत्त्वके चिंतनपरायणता है तिसकूं विद्वान् पुरुष ब्रह्माभ्यास कहे हैं इति । शंका—कोई प्रकार करिकै भी ब्रह्मात्मतत्त्वके चिंतनकूं जो ब्रह्माभ्यास कहोगे तौ अनधिकारी पुरुषोंके प्रति ता ब्रह्मात्मतत्त्वके उपदेशकूं भी ब्रह्माभ्यासरूपता होणी चाहिये ऐसी शंकाके निवृत्त करणेवासतैं अत्र प्रसंगतैं ता ब्रह्मविद्याके अधिकारीका तथा अनधिकारीका निरूपण करे हैं । तहां जो पुरुष विवेकादिक चतुष्टय साधनों करिकै संपन्न होवै है तथा नम्रतावाला होवै है तथा शिष्यभाव करिकै युक्त होवै है तथा गुरु ईश्व-

रविषे भक्तिवाला होवै है तथा गुरु वेदांतवाक्योंविषे विश्वासवाला होवै है सो पुरुष ही ब्रह्मविद्याका अधिकारी होवै है ऐसे अधिकारी पुरुषके प्रति ही तत्त्ववेत्ता पुरुषने ब्रह्मविद्याका उपदेश करणा। और ऐसा अधिकारी पुरुष ही ता ब्रह्मविद्याके श्रवणादिकोंतैं आत्मज्ञानकूं तथा मोक्षकूं प्राप्त होवै है । इसी अर्थकूं 'तस्मै स विद्वानुपसन्नाय प्राहेति सम्यक्प्रशांतचित्ताय शमान्विताय येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्यांतस्मै मृदितकषायाय तमसः पारं दर्शयति भगवान्सनत्कुमारः' इत्यादिक श्रुतियां कथन करे हैं तथा इसी अर्थकूं 'य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति। भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥ १॥ न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः । भविता न च मेतस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ २ ॥' इत्यादिक गीतावचन भी कथन करे हैं । और जो पुरुष पूर्व उक्त अधिकारीके लक्षणोंतैं रहित है सो पुरुष अनधिकारी कह्या जावै है । ऐसे अनधिकारी पुरुषके ताईं तत्त्ववेत्ता पुरुषने ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं करणा । और ऐसा अनधिकारी पुरुष ता ब्रह्मविद्याकूं श्रवण करता हुआ भी आत्मज्ञानकूं तथा मोक्षकूं प्राप्त होता नहीं यह अर्थ भी 'वेदांते परमं गुह्यं पुरा कल्पे प्रचोदितम्।नाप्रशांताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वै पुनः' इत्यादि श्रुतिवचनोंकरिकै सिद्ध है तथा 'इदं तेनातपस्काय नाभक्ताय कदाचन। नचाशुश्रूषवे वाच्यं नच मां योऽभ्यसूयति' इत्यादिक गीतावचन करिकै भी सिद्ध है तथा अन्य स्मृतिविषे भी कह्या है । तहां श्लोक–'अशिष्यायाविरक्ताय यत्किंचिदुपदिश्यते । तत्प्रयात्यपवित्रत्वं गोक्षीरं श्वदृतौ यथा' अर्थ–जो पुरुष शिष्यभावतैं रहित है तथा वैराग्यतैं रहित है ऐसे अनधिकारी पुरुषके ताईं जो कोई उपदेश करता है सो उपदेश अपवित्रभावकूं ही प्राप्त होवै है । जैसे श्वानकी त्वचाविषे पाया हुआ गोका क्षीर

अपवित्रताकूं प्राप्त होवै है इति। किंवा यह उक्त अर्थ अन्य स्मृति-विषे भी कह्या है। तहां श्लोक—'नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्नचान्यायेन पृच्छतः। जानन्नपि च मेधावी जडवल्लोकमाचरेत्' अर्थ-यह विद्वान् पुरुष प्रश्न करेतैं विना कोईकूं भी उपदेश नहीं करे। तथा अन्याय करिकै पूँछणेहारे पुरुषके प्रति भी उपदेश नहीं करे किंतु सर्व अर्थकूं जानता हुआ भी यह विद्वान् पुरुष लोकविषे जडकी न्याईं विचरै है इति। यातैं अधिकारी पुरुषोंके प्रति जो ब्रह्मात्मतत्त्वका उपदेश है सो उपदेश ही ब्रह्माभ्यास कह्या जावै है। अनधिकारी पुरुषोंके प्रति ब्रह्मात्मतत्त्वका उपदेश ब्रह्माभ्यास कह्या जावै नहीं यह सिद्ध भया इति। शंका—तत्त्वज्ञानतैं पूर्व भी मुमुक्षु जनकूं वासनाक्षयका अभ्यास तथा मनोनाशका अभ्यास अपेक्षित ही है। काहेतैं जिस पुरुषका चित्त विषयोंविषे आसक्त है तथा शम दमादिकोंतैं रहित है तथा एकाग्रतातैं रहित है तिस पुरुषकूं सो तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता नहीं। यातैं तत्त्वज्ञानतैं पूर्व भी सो वासना-क्षय मनोनाशका अभ्यास अवश्य कर्या चाहिये। जभी आत्मज्ञा-नतैं पूर्व ही सो वासनाक्षय मनोनाश सिद्ध भया तभी ता आत्मज्ञा-नतैं पश्चात् जीवन्मुक्तिवासतैं ता वासनाक्षय मनोनाशके अभ्या-स करणेका कुछ प्रयोजन नहीं है। ता पूर्व सिद्ध वासनाक्षय मनोना-शके अभ्यासतैं ही इस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति होवैगी समाधान—यद्यपि तत्त्वज्ञानतैं पूर्व भी ता तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिवासतैं सो वासनाक्षय मनोनाशका अभ्यास अपेक्षित है तथापि तत्त्वज्ञानतैं पूर्व विविदिषा संन्यासीकूं सो वासनाक्षय मनोनाशका अभ्यास तौ गौण होवै है और श्रवण मननादिकोंका अभ्यास प्रधान होवै है। काहेतैं श्रवण मनन निदिध्यासन यह तीनों तौ तत्त्वमसि आदिक वेदांतवाक्योंका विचाररूप होणेतैं आत्मज्ञानके प्रति अंतरंग साधन

हैं और वासनाक्षय मनोनाश तौ अंतःकरणका शोधक होणेतैं तिन श्रवणादिकोंके सहकारी हैं। यातैं तत्त्वज्ञानतैं पूर्व यथाकथंचित् वासनाक्षय मनोनाशका अभ्यास करिकै निरंतर श्रवणा मननादिकोंकूं करणेहारे विविदिषा संन्यासीकूं आत्मज्ञान उत्पन्न होवै है। और विद्वत्संन्यासीकूं तौ सो तत्त्वज्ञानका अभ्यास गौण होवै है। और वासनाक्षय मनोनाशका अभ्यास प्रधान होवै है। काहेतैं तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तितैं पूर्व ही वेदांत श्रवणादिकोंके अभ्यासका प्रयोजन होवै है। तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तितैं अनंतर तिन श्रवणादिकोंके अभ्यासका कोई प्रयोजन होता नहीं। किंतु प्रारब्ध कर्मने प्राप्त कन्या विषय भोगकाल विषे ही वासनाके अभिभव करणेवासतैं किंचित्मात्र श्रवणादिकोंका अभ्यास अपेक्षित होवै है यातैं विद्वत्संन्यासीकूं सो तत्त्वज्ञानका अभ्यास गौण होवै है। और ता विद्वत्संन्यासीने तत्त्वज्ञानतैं पूर्व वासनाक्षय मनोनाशका दृढ अभ्यास कन्या नहीं यातैं ताके चित्तकी विश्रांति होती नहीं। और चित्तकी विश्रांतितैं विना दृढ दुःखकी निवृत्ति होती नहीं। यातैं ता चित्तकी विश्रांतिवासतैं तिस विद्वत्संन्यासीकूं आत्मज्ञानतैं अनंतर सो वासनाक्षय मनोनाशका अभ्यास अवश्य अपेक्षित है। यातैं ता विद्वत्संन्यासीकूं सो वासनाक्षय मनोनाशका अभ्यास प्रधान है। ता अभ्यासतैं ही तिस विद्वत्संन्यासीकूं जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति होवै है। इति। शंका—चतुष्टय साधन संपन्न अधिकारी पुरुषकूं श्रवण मननादिकों करिकै असंभावना विपरीतभावनारूप प्रतिबन्धके निवृत्त हुए तत्त्वमसि आदिक महावाक्यतैं 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका अपरोक्षज्ञान उत्पन्न होवै है। ता अपरोक्षज्ञानतैं अज्ञानकृत आवरणकी निवृत्ति होइकै ब्रह्मानंदरूप परम पुरुषार्थकी प्राप्ति होवै है। और ता परम पुरुषार्थकी प्राप्तितै परे दूसरा कोई कर्त्तव्य बाकी रहता

नहीं। और 'तस्य कार्यं न विद्यते' इत्यादिक श्रुति स्मृति वचन भी ता ज्ञानवान्कूं कर्त्तव्यताका निषेध करे हैं। और जो ऐसा कहो चित्तकी विश्रांतिवास्तैं तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं भी वासनाक्षय मनोनाशका अभ्यास बाकी कर्त्तव्य है सो यह कहणा भी संभवता नहीं। काहेतैं महावाक्यजन्य अपरोक्षज्ञानकी विषयभूत जो नित्य निरतिशय ब्रह्मानंद है ता ब्रह्मानंदविषे संलग्न हुए मनकी अन्य तुच्छविषयोंविषे प्रवृत्ति संभवती नहीं। यातैं ता ज्ञानवान्कूं सा चित्तकी विश्रांति स्वभावसिद्ध ही है। तात्पर्य यह जैसे सार्वभौम राज्यके आनंदकूं अनुभव करणेहारा चक्रवर्त्ती राजा एक ग्रामके अधिपतिके तुच्छ सुखकी इच्छा करता नहीं तैसे अखंड एकरस ब्रह्मानंदकूं अनुभव करणेहारा ज्ञानवान् पुरुषका चित्त तुच्छ विषय सुखकी इच्छा करैगा नहीं यातैं ज्ञानवान् पुरुषकूं सा चित्तकी विश्रांति स्वभावसिद्ध ही है। ता चित्तविश्रांतिके वास्तैं ता ज्ञानवान्कूं किंचित् भी कर्त्तव्य नहीं है। यातैं तत्त्वज्ञानतैं अनंतर वासनाक्षय मनोनाशके अभ्यासकी कर्त्तव्यताका नियम करणा व्यर्थ है। समाधान—वेदांतशास्त्रके दो प्रकारके अधिकारी होवै हैं एक तौ मुख्य अधिकारी होवै है दूसरा अमुख्य अधिकारी होवै है। तहां जे पुरुष सगुण ब्रह्मके साक्षात्कारपर्यंत उपासनाकूं करिके परमेश्वरके प्रसादतैं विषयोंविषे दोषदृष्टि करिके विवेक वैराग्यादिक साधन संपन्न हुए श्रवणादिकोंविषे प्रवृत्त होवै हैं ते पुरुष तौ मुख्य अधिकारी कहे जावै हैं। ऐसे मुख्य अधिकारियोंकूं तौ एकवार श्रवणादिकों करिकैं जीवन्मुक्तिविषे पर्यवसानवाला तत्त्वज्ञान उत्पन्न होवै है अर्थात् तिन मुख्य अधिकारियोंकूं तत्त्वज्ञानके समकाल ही जीवन्मुक्ति होवै है। जिस कारणतैं तिन मुख्य अधिकारियोंकूं ता तत्त्वज्ञानतैं पूर्व ही ता उपासना करिके सा चित्तकी एकाग्रतारूप चित्त विश्रांति सिद्ध है। ऐसे कृतोपास्ति मुख्य अधिकारियोंकूं तत्त्वज्ञानतैं अनं-

तर सो वासनाक्षय मनोनाशका अभ्यास अपेक्षित नहीं है और पूर्व उक्त श्रुति स्मृति वचन भी ऐसे मुख्य अधिकारीकूं ही तत्त्वज्ञानतैं अनंतर कर्त्तव्यताका निषेध करे हैं और ता सगुण ब्रह्मकी उपासनातैं रहित जे इदानींकालके पुरुष विवेकादिक साधन संपन्न होइके ब्रह्मजिज्ञासातैं श्रवणादिकोंविषे प्रवृत्त होवैहैं ते अकृतोपास्ति पुरुष अमुख्य अधिकारी कहे जावै हैं ऐसे अमुख्य अधिकारियोंकूं तिन श्रवणादिकों करिकै सो तत्त्व साक्षात्कार तौ अवश्य उत्पन्न होवै है परंतु ता ज्ञानतैं पूर्व तिनोंनैं वासनाक्षय मनोनाशका अभ्यास भली प्रकारतैं कऱ्या नहीं । यातैं तिन पुरुषोंके चित्तकी विश्रांति होती नहीं और तिन अमुख्य अधिकारी पुरुषोंकूं श्रवणादिकोंतैं उत्पन्न भया जो ब्रह्मसाक्षात्कार है सो साक्षात्कार महावाक्यरूप प्रमाण करिकै जन्य होणेत तथा ब्रह्मात्मरूप विषयके अबाधतैं प्रमारूप भी है तथा अज्ञानकी निवृत्ति करणेविषे योग्य भी है परंतु वायुवाले देशविषे स्थित दीपकी न्याइं प्रारब्धकर्म संपादित भोगवासना करिकै कंपायमान होणेतैं सो साक्षात्कार कदाचित् असंभावना विपरीत भावनारूप प्रतिबंधके संभवतैं अज्ञानकी निवृत्ति करणेविषे समर्थ नहीं होवै है यातैं तिन अकृतोपास्ति अमुख्य अधिकारियोंकूं ता संभाविता प्रतिबंधकी निवृत्ति करणेवासतैं तत्त्वज्ञानतैं अनंतर सो वासनाक्षय मनोनाशका अभ्यास अवश्य करणेयोग्य है इसी अभिप्राय करिकै श्रीव्यासभगवान्‌ने ब्रह्मसूत्रोंविषे 'आवृत्तिरसकृदुपदेशात्। आप्रायणात्तत्रापि हि दृष्टम्' इस सूत्र करिकै अमुख्य अधिकारियोंके प्रति अभ्यासकी आवृत्ति कथन करी है यातैं यह सिद्ध भया । पूर्व उक्त मुख्य अधिकारियोंकूं तत्त्वज्ञानतैं अनंतर वासनाक्षय मनोनाशके अभ्यासकी नहीं अपेक्षा हुए भी तिन अमुख्य अधिकारियोंकूं तत्त्वज्ञानतैं अनंतर चित्तकी विश्रांतिवासतैं सो वासनाक्षय मनोनाशका अभ्यास अवश्य अपेक्षित है इति।

शंका-- वासनाके क्षय करणेविषे इस पुरुषकी तभी प्रवृत्ति संभवै जभी इस पुरुषकूं ता वासनाके स्वरूपका ज्ञान होवै है। ता वासनाके ज्ञानतें विना ता वासनाके निवृत्ति करणेविषे इस पुरुषकी प्रवृत्ति संभवती नहीं. समाधान-ता वासनाका साधारण लक्षण तथा ता वासनाका विभाग तथा ता वासनाका फल तथा तिस वासनाका विशेष लक्षण श्रीवसिष्ठ भगवान्ने कथन कऱ्या है सो सर्व ता वशिष्ठ भगवान्के वचनों करिकै इहां दिखावै हैं ताकेविषे प्रथम ता वासनाका साधारण लक्षण कहे हैं । तहां श्लोक- 'दृढभावनया त्यक्तपूर्वापरविचारणम्।यदा दानं पदार्थस्य वासना सा प्रकीर्त्तिता' अर्थ-जिस दृढ भावनाकरिकै पूर्व अपरके विचारतें विना ही पदार्थोंका ग्रहण होवै है अर्थात् हमारी भाषा सर्व भाषावोंतैं समीचीन है तथा हमारा देश सर्व देशोंतैं समीचीन है तथा हमारा कुल सर्व कुलोंतैं उत्तम है तथा हमारे पुत्रादिक सर्वतैं समीचीन हैं इत्यादिक अभिनिवेश जिस भावना करिकै होवै है सा भावना विद्वान् पुरुषोंनैं वासना कही है इति । अब ता वासनाका विभाग तथा फल वर्णन करे हैं । तहां श्लोक 'वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा । मलिना जन्मनो हेतुः शुद्धा जन्मविनाशिनी' अर्थ-सा उक्त वासना दो प्रकारकी होवै है एक तौ शुद्धवासना होवै है और दूसरी मलिनवासना होवै है । तहां मलिन वासना तौ इस पुरुषके जन्मका कारण होवै है और शुद्ध वासना जन्मके निवृत्तिका कारण होवै है इति । अब ता मलिनवासनाका स्वरूप लक्षण कहे हैं। तहां श्लोक-' अज्ञानसुघनाकारघनाहंकारशालिनी । पुनर्जन्मकरी प्रोक्ता मलिना वासना बुधैः' अर्थ-ब्रह्मके स्वरूपका आवरक जो अज्ञान है ता अज्ञान करिकै घनीभूत हुआ है आकार जिसका ऐसा जो घन अहंकार है ता अहंकार सहित जा

वासना है सा वासना विद्वान् पुरुषोंने मलिनवासना कही है । सा मलिनवासना ही इस पुरुषकूं पुनः जन्मकी प्राप्ति करे है । तहां भ्रांतिज्ञानकी जा परंपरा है यह ही ता अहंकारका घनाकार है सो अहंकारका घनाकारपणा श्रीभगवान्ने गीताके षोडश अध्यायविषे आसुरसंपत्के निरूपणप्रसंगविषे 'इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् । इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥ १॥असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि । ईश्वरोहमहं भोगी सिद्धोहं बलवान्सुखी॥२॥आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योस्ति सदृशो मया । यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः'॥ ३॥इन तीन श्लोकोंकरिकै कथन कऱ्या है इति। अब शुद्धवासनाका स्वरूप लक्षण वर्णन करे हैं। तहां श्लोक 'पुनर्जन्मांकुरं त्यक्त्वा स्थितं संभृष्टबीजवत्।देहार्थं ध्रियते ज्ञातज्ञेया शुद्धेति चोच्यते' अर्थ-जा वासना जन्मके मूलकूं नाश करिकै दग्धबीजकी न्याई देहकी स्थितिवासतें स्थित होवै है तथा जिस वासना करिकै अखंड एकरस आनंद वस्तु जान्या जावै है सा वासना शुद्ध वासना कही जावै है इति। अब पूर्व उक्त मलिन वासनाका विभाग वर्णन करे हैं। तहां जन्मकी प्राप्ति करणेहारी सा मलिन वासनायद्यपि अनंत होवै है तथापि स्मृतिविषे सा मलिन वासना संक्षेपतें तीन प्रकारकी कथन करी है । तहां श्लोक-'लोकवासनया जंतोर्देहवासनयापि च । शास्त्रवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते' अर्थ-सा पूर्व उक्त मलिन वासना लोकवासना १ शास्त्रवासना २ देहवासना ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारकी होवै है । तिन तीनों वासनाओंविषे कोई भी वासना जिस पुरुषकूं होवै है तिस पुरुषकूं ता वासनारूप प्रतिबंधके वशतें आत्माका यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता नहीं इति । अब लोकवासनाका निरूपण करे हैं-तहां जिस आचरणके धारण करणेतें सर्वलोक हमारी स्तुति करैं कोई भी लोक हमारी निंदा नहीं करै ऐसे आचरणकूं मैं धारण करूं या प्रकारकाजो अभि-

निवेश है ताका नाम लोकवासना है सा लोकवासना शतकोटि जन्मों करिकै भी संपादन करणेकूं अशक्य है। काहेतैं सर्वदूषणोंतैं रहित तथा सर्वशुभगुणों करिकै संपन्न तथा नमस्कार स्मरणादिकोंकरिकै सर्व पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करणेहारे जे रामकृष्णादिक ईश्वर हैं तिनोंकी भी सर्व लोक स्तुति करते नहीं। किंतु केएक श्रेष्ठ पुरुष तौ स्तुति करे हैं और केएक नीच पुरुष निंदा भी करे हैं जभी रामकृष्णादिक ईश्वरोंकी भी सर्व लोक स्तुति नहीं करे हैं तभी अस्मदादिक जीवोंकी सर्वलोक स्तुति कैसे करेंगे किंतु नहीं करेंगे। यातैं सा लोकवासना संपादन करणेकूं अशक्य है। यातैं इस अधिकारी पुरुषने ता लोकवासनाका परित्याग करिकै आपणे हितकूं ही संपादन करणा। यह वार्त्ता अन्य ग्रंथविषे भी कही है। तहां श्लोक–'विद्यते न खलु कश्चिदुपायः सर्वलोकपरितोषकरो यः। सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः' अर्थ–जिस उपाय करिकै सर्व लोक स्तुति करै ऐसा कोई उपाय लोकशास्त्रविषे है नहीं. यातैं इस अधिकारी पुरुषने ता लोकवासनाका परित्याग करिकै सर्व प्रकारतैं आपणे हितकूं संपादन करना लोकोंकी निंदा स्तुतिकी तरफ नहीं देखना। जिस कारणतैं ते लोक निंदा स्तुति करिके कोई हानि लाभ करि सकते नहीं इति। किंवा यह उक्त अर्थ भर्तृहरिने भी कह्या है। तहां श्लोक–'निंदन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवंतु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्। अद्यैव वा मरणमस्तु युगांतरे वा न्याय्यात्पथः प्रविचलंति पदं न धीराः' अर्थ–नीतिविषे कुशल पुरुष निंदा करो अथवा स्तुति करो और लक्ष्मी प्राप्त होवो अथवा चली जावो और आज दिनविषे मरण होवो अथवा युगांतरविषे होवो परंतु धैर्यवान् विवेकी पुरुष शास्त्रविहित मार्गतैं एक पदमात्र भी चलायमान होते हीं। अर्थात् लोककृत निंदा स्तुति आदिकांकी उपेक्षा

करिकै विवेकी पुरुष आपणे हितकूं ही संपादन करे हैं इति किंवा ता लोकवासनाविषे अभिनिवेशवाले पुरुषकूं आत्मज्ञान नहीं उत्पन्न होवै है यह वार्त्ता अन्य शास्त्रविषे भी कही है । तहां श्लोक'न लोकचित्तग्रहणे रतस्य न भोजनाच्छादनतत्परस्य । न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो नचातिरम्यावसथप्रियस्य'अर्थ–जो पुरुष सर्व प्रकारतैं लोकोंके चित्तरंजन करणेविषे प्रीतिवाला है तथा जो पुरुष भोजन आच्छादनविषे ही तत्पर है तथा जो पुरुष व्याकरणादिक अनात्मशास्त्रविषे अभिनिवेशवाला है तथा जो पुरुष अत्यंत रमणीक गृहोंविषे प्रीतिवाला है ऐसे पुरुषकूं मोक्ष प्राप्त होता नहीं । यातैं मोक्षकी इच्छावाले पुरुषने सा लोकवासना सर्व प्रकारतैं परित्याग करणी इति । अब शास्त्रवासनाका निरूपण करे हैं । तहां शास्त्रके तात्पर्यकूं न ग्रहण करिकै ता शास्त्रके अध्ययनादिकोंकी जा वासना है ताका नाम शास्त्रवासना है । सा शास्त्रवासना भी पाठवासना १ अर्थवासना २ अनुष्ठानवासना ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारकी होवै है । तहां समग्र आयुषपर्यंत वेदशास्त्रोंके पाठका ही अध्ययन करते रहणा ता शास्त्रके तात्पर्यकूं नहीं जानणा याका नाम पाठवासना है सा पाठवासना भरद्वाजकूं होती भई है । तहां भरद्वाज ऋषि आयुषके तीन भाग पर्यंत अर्थात् ७५ पंचसप्तति वर्षपर्यंत वेदोंके पाठकूं अध्ययन करता भया । तथा अतिजीर्ण वृद्ध अवस्थाकूं प्राप्त होता भया । ऐसे भरद्वाजकूं देखिकै देवराज इंद्र ता भरद्वाजके समीप आइकै कहता भया । हे भरद्वाज! जो कदाचित् मैं तुम्हारे ताईं आयुषका चतुर्थभाग देवों तौ तिस चतुर्थभाग आयुष्य करिकै तू क्या संपादन करैगा । ऐसे इंद्रके वचनकूं श्रवण करिकै सो भरद्वाज ऋषि ता चतुर्थ आयुष्य भागविषे भी मैं वेदोंके पाठका ही अध्ययन करूंगा या प्रकारका वचन कहता भया । तिसतैं अनंतर सो इंद्र ता भरद्वाजकी पाठवासनाके

निवृत्त करणेवासतैं ता भरद्वाजके प्रति वेदोंकूं पर्वतरूप करिकै दिखावता भया। तिन वेदरूप पर्वतोंतैं एक एक मुष्टि लेकै ता भरद्वाजके प्रति कहता भया। हे भरद्वाज! अब पर्यंत तुमने यह मुष्टिमात्र वेद अध्ययन करे हैं यह पर्वतरूप वेद बाकी अध्ययन करणेकूं रहते हैं। ऐसे इंद्रके वचनकूं श्रवण करिकै सो भरद्वाज ता पाठवासनातैं निवृत्त होता भया। तिसतैं अनंतर सो इंद्र ता भरद्वाजके प्रति ब्रह्मविद्याका उपदेश करता भया। यह गाथा तैत्तिरीयक श्रुतिविषे भरद्वाजोपाख्यानविषे प्रसिद्ध है इति। और वेदशास्त्रोंके तात्पर्यकूं न जानिकरिकै समग्र आयुषपर्यंत तिन वेदशास्त्रोंके अर्थका अध्ययन करीजाणा याका नाम अर्थवासना है। सा अर्थवासना भी ता पाठवासनाकी न्याई दुःसंपाद्य होणेतैं मलिनवासना ही है या कारणतैं ही विद्वान् पुरुषोंने यह कह्या है।तहां श्लोक 'अनंतशास्त्रं बहुवेदितव्यमल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः। यत्सारभूतं तदुपासितव्यं हंसो यथा क्षीरमिवांबुमिश्रम्॥ १॥ अधीत्यचतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः। यस्तु ब्रह्म न जानाति दर्वी पाकरसं यथा॥ २॥ 'अर्थ–शास्त्र अनन्त हैं तथा शास्त्र प्रतिपादित पदार्थ भी अनंत हैं। ते पदार्थ अल्पकाल करिकै जाने जाते नहीं और इस पुरुषकी आयुष अत्यंत अल्प है ता अल्प आयुषविषे भी रोगादिक अनेकविघ्न प्राप्त होवै हैं। ऐसे विघ्नयुक्त अल्प आयुष करिकै तिन सर्व शास्त्रोंका अर्थ जानणेकूं अशक्य है। यातैं जैसे हंसपक्षी जलमिश्रित क्षीरतैं क्षीरमात्रकूं ही ग्रहण करे है तैसे इस अधिकारी पुरुषने भी सर्व शास्त्रोंका सारभूत जो ब्रह्मात्मरूप अर्थ है सोई ही ग्रहण करणेयोग्य है इति। किंवा जो पुरुष चारि वेदोंके अर्थकूं अध्ययन करे है तथा अनेक धर्मशास्त्रोंके अर्थकूं अध्ययन करे है परंतु 'अहं ब्रह्मास्मि' या

प्रकारतें ब्रह्मकूं जानता नहीं सो पुरुष दर्वीके तुल्य है अर्थात् जसे दर्वी अनेक प्रकारके व्यंजनोंविषे फिरै है परंतु तिन व्यंजनोंके रसकूं जानती नहीं कडछीका नाम दर्वी है इति । और श्रुति-स्मृतिरूप शास्त्रने विधान करे जे कर्म हैं तिन कर्मोंके अनुष्ठान-विषे ही समग्र आयुष व्यतीत करणी याका नाम अनुष्ठान वासना है । सा अनुष्ठानवासना निदाघकूं होती भई है । तहां ऋभुनामा ऋषिने पुनःपुनः उपदेश कऱ्या हुआ भी सो निदाघ ता अनुष्ठान-वासना करिकै ब्रह्मात्मतत्त्वकूं नहीं जानता भया । तीसरे वार ता ऋभुके उपदेशतैं अतिक्लेशतैं सर्व अनुष्ठानका परित्याग करिकै ब्रह्मा-त्मतत्त्वकूं साक्षात्कार करता भया । यह वार्त्ता विष्णुपुराणविषे विस्तारतैं कथन करी है । यातैं सा पूर्व उक्त तीनों प्रकारकी शास्त्र-वासना आत्मज्ञानका प्रतिबंधक ही है इति । अब देहवासनाका निरूपण करे हैं तहां इस भौतिक स्थूल शरीरविषे जो अभिनि-वेश है ताका नाम देहवासना है । सा देहवासना भी दो प्रकारकी होवै है । एक तौ देहविषयक होवै है दूसरी देहसंबंधी गुणविषयक होवै है । तहां 'मनुष्योऽहं ब्राह्मणोऽहम्' या प्रकारकी जा वासना है सा देहविषयक वासना कही जावै है और दूसरी देहसंबंधी वासना भी शास्त्रीय १ लौकिक २ इस भेद करिकै दो प्रकारकी होवै है । तहां प्रथम शास्त्रीय वासना भी दो प्रकारकी होवै है । एक तौ गुणा-धान प्रयुक्त होवै है दूसरी दोष निवृत्तयुक्त होवै है । तहां शास्त्र-विहित गंगास्नानादिकों करिकै जो देहविषे सद्गुणोंके धारणकी वासना है सा वासना गुणाधान प्रयुक्त कही जावै है और शौच आचमनादिकों करिकै जो देहतैं दोषोंके निवृत्त करणेकी वासना है सा वासना दोषनिवृत्ति प्रयुक्त कही जावै है, इस प्रकार सा लौकिक वासना भी दो प्रकारकी होवै है । तहां तैल पान मरिच भक्षणादिकों करिकै जो देहविषे सौंदर्यादिक गुणोंके धारण करणेकी

वासना है सा प्रथम है। और मलनिवर्त्तक औषध जलादिकों करिकै जो देहतैं मलके निवृत्त करणेकी वासना है सा दूसरी है। यह सर्व देहवासना ज्ञानका प्रतिबंधक होणेतैं तथा जन्मांतरका हेतु होणेतैं मलिनवासना ही है इति। किंवा लोकवासना शास्त्रवासना देहवासना इन उक्त तीन वासनाओंतैं अन्य भी ज्ञानके प्रतिबधक मलिनवासना गीताके षोडश अध्यायविषे श्रीभगवान्नें 'दंभो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च' इत्यादिक वचनकरिकै दंभदर्पादि आसुः संपतरूप करिकै कथन करी है। इस प्रकार स्त्रीपुत्रादिक विषयोंकी जे अभिलाषा हैं ते भी मलिन वासना ही हैं। ते सर्व मलिनवासना ज्ञानका प्रतिबंधक होणेतैं मुमुक्षु जनोंने निवृत्त करणेयोग्य हैं। शंका–तिन मलिन वासनावोंकी निवृत्ति किस उपायतैं होवै है। समाधान–ते मलिन वासना पूर्व उक्त रीतितैं अनेक प्रकारकी हैं। यातैं वसिष्ठादिक मुनियोंने तिन वासनाओंके निवृत्तिके उपाय भी अनेक प्रकारके कहे हैं। तहां नित्य अनित्य वस्तुका विवेक तथा विषयोंविषे दोषोंका दर्शन तथा महात्मा जनोंका सत्संग तथा विषयीजनोंके संगका परित्याग तथा मैत्रीकरुणादिक विरोधीवासनाकी उत्पत्ति इत्यादिक उपायोंकरिकै तिन मलिनवासनाओंकी निवृत्ति होवै है। यातैं तिन विवेकादिक उपायों करिकै आपणे अंतःकरणविषे जो तिन मलिनवासनाओंकी उत्पत्ति नहीं होणे देणी यह ही ता वासनाक्षयका अभ्यास है। तहां श्लोक 'दृश्यासंभवबोधेन रागद्वेषादितानवे। रतिर्नवोदिता या तु बोधाभ्यासं विदुः परम्' अर्थ–यह दृश्यमान सर्व प्रपंच अधिष्ठान आत्मातैं भिन्नरूप करिकै वास्तवतैं नहीं है। या प्रकारका जो दृश्य प्रपंचके असंभवका बोध है ता बोध करिकै प्रपंचरूप विषयके अभावतैं रागद्वेषादिरूप वासनाके निवृत्त हुए इस पुरुषकी आपणे स्वरूपा-

नन्दके अनुभवविषे जा दृढ प्रीति उत्पन्न होवै है तिसकूं विद्वान् पुरुष वासनाक्षयका अभ्यास कहे हैं इति । अब अन्य प्रकारतें तिस मलिनवासनाके निवृत्तिके उपायकूं प्रतिपादन करणेहारे वाक्यकूं कहे हैं । तहां श्लोक–'असंगव्यवहारित्वाद्भवभावनवर्ज्जनात् । शरीरनाशदर्शित्वाद्वासना न प्रवर्त्तते' अर्थ–मैं असंग हूं या प्रकारके वृत्तियोंका प्रवाहरूप जो व्यवहार है ता व्यवहारके निरंतर करणेतैं इस पुरुषविषे दूसरी वासना प्रवृत्त होती नहीं । तथा प्रपंचके स्मरणका जो परित्याग है तिसतैं भी दूसरी वासना प्रवृत्त होती नहीं । तथा निरंतर आपणे शरीरके मरणका जो दर्शन है तिसतैं भी दूसरी रागादिरूप वासना प्रवृत्त होती नहीं इति । तहां आपणे मरणके दर्शनतैं रागादिरूप वासना नहीं होवै है यह वार्त्ता अन्य ग्रंथविषे भी कही है।तहां श्लोक–'मस्तकस्थायिनं मृत्युं यदि पश्येदयं जनः'। आहारोऽपि न रोचेत किमुतान्यविभूतयः'अर्थ–आपणे मस्तक ऊपरि स्थित जो मृत्यु है तिस मृत्युकूं जो कदाचित् यह पुरुष देखे तौ इस पुरुषकूं भोजन भी प्रिय नहीं लगेगा । तौ अन्य विभूतियां कैसे प्रिय लगेंगी किंतु नहीं लगेंगी इति । अब संसारविषे दोषका प्रतिपादक वचन कहे हैं।तहां श्लोक 'दुःखं जन्म जरा दुःखं दुःखं मृत्युःपुनःपुनः।संसारमंडलं दुःखं पच्यंते यत्र जंतवः' अर्थ–जन्म भी दुःखरूप है तथा जरा भी दुःखरूप है तथा पुनः पुनः मरण भी दुःखरूप है । इहां बहुत क्या कहैं यह सर्व संसारमंडल दुःखरूप ही है । जिस संसारमंडलविषे यह सर्व अज्ञानी जीव पुनःपुनः जन्म मरणादिकोंकूं प्राप्त होवै हैं इस प्रकार आत्मातैं भिन्न सर्व जगत्कूं दुःखरूप करिकै चिंतन करणेहारे पुरुषकी राग द्वेषादिरूप सर्व मलिनवासना निवृत्त होवै है इति । किंवा विषयलंपट पुरुषोंके संगका जो परित्याग है सो भी मलिन वासनाकी निवृत्तिद्वारा इस पुरुषके मोक्षका साधन

होवै है । यह वार्त्ता विष्णुपुराणविषे भी कथन करी है। तहां श्लोक–'निःसंगता मुक्तिपदं यतीनां संगादशेषाः प्रभवंति दोषाः।आरूढयोगोऽपि निपात्यतेऽधः संगेन योगी किमुताल्पसिद्धिः' अर्थ–विषयासक्त पुरुषोंके संगका परित्यागरूप जा निःसंगता है सा निःसंगता ही संन्यासियोंकूं मुक्तिके प्राप्तिका मार्ग है। जिस कारणतैं तिन विषयासक्त पुरुषोंके संगतैं इस पुरुषविषे राग द्वेष मोहादिक सर्व दोष प्राप्त होवै हैं तिन मलिन वासनारूप दोषोंने योगारूढ पुरुष भी अधःपतन करता है । तौ योगारूढ होणेकी इच्छावाला पुरुषक्यूं नहीं अधःपतन करियेगा इति।किंवा इस तत्त्ववेत्ता पुरुषने सर्व प्रकारतैं विषयलपट पुरुषोंके संगतैं रहित होणा यह वार्त्ता अन्य ग्रंथविषे भी कही है। तहां श्लोक–'तस्माचरेत वै योगी सतां धर्ममगर्हयन् । जना यथावमन्येरन्गच्छेयुर्नैव संगतिम्' अर्थ–यह तत्त्ववेत्ता पुरुष श्रेष्ठ पुरुषोंके धर्मकूं नहीं दूषित करता हुआ इस प्रकारतैं लोकविषे विचरे । जैसे यह विषयासक्त लोक अपमान करते हुए संगतिकूं नहीं प्राप्त होवैं इति । किंवा यह वार्त्ता भारतविषे भी कही है । तहां श्लोक--'अहेरिव गणाद्भीतः सन्मानान्नरकादिव । कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः' अर्थ–जैसे देहाभिमानी पुरुष सर्पतैं भयकूं प्राप्त होवै है तैसे जो विद्वान् पुरुष लोकोंके समूहतैं भयकूं प्राप्त होवै है और जैसे लोक नरकतैं भयकूं प्राप्त होवै हैं तैसे जो विद्वान् पुरुष सन्मानतैं भयकू प्राप्त होवै है और जैसे लोक मृतक शरीरत भयकूं प्राप्त होवै हैं तैसे जो पुरुष स्त्रीजनोंतैं भयकूं प्राप्त होवै है तिस विद्वान् पुरुषकूं देवता ब्राह्मण कहे हैं अर्थात् जीवन्मुक्त कहे हैं इति । किंवा यह उक्त अर्थ श्रीभागवतविषे भी कह्या है तहां श्लोक–'संगं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः सर्वात्मना तु विसृजेद्बहिरिंद्रिया-

णि । एकश्चरन्रहसि चित्तमनंत ईशे युंजीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्प्रसंगः ॥ १ ॥ स्त्रीणां तत्संगिनां संगं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् । क्षमी विविक्त आसीनश्चिंतयेन्मामतंद्रितः'॥२॥ अर्थ—मुमुक्षुजन विषयासक्त स्त्री पुरुषोंके संगकूं सर्वप्रकारतैं परित्याग करे । तथा चक्षु आदिक एकादश इंद्रियोंकूं बाह्यरूपादिक विषयोंविषे प्रवृत्त नहीं करैं। जिस कारणतैं इंद्रियोंकूं विषयोंविषे प्रवृत्त करणेतैं मनु भगवान्ने'अकुर्वन्विहितं कर्म निंदितं च समाचरन्। प्रसज्जन्निंद्रियार्थेषु नरः पतनमृच्छति' इस वचन करिकै नरककी प्राप्ति कथन करी है किंतु यह मुमुक्षुजन एकांत देशविषे एकाकी स्थित होइकै अपरिच्छिन्न ईश्वरविषे चित्तकूं जोडे अर्थात् निरंतर ब्रह्मका ध्यान करे और जो कदाचित् सो चित्त आपणे चंचल स्वभावतैं ता परब्रह्मविषे स्थित नहीं होवै तौ ता परब्रह्मविषे प्रीतिवाले जे महात्मा हैं तिनोंका संग करै ॥१॥ किंवा यह मुमुक्षुजन स्त्रियोंके तथा स्त्री आसक्त पुरुषोंके संगकूं दूरतैं परित्याग करिकै एकांत देशविषे स्थित होइकै मैं परमेश्वरकूं'अहं ब्रह्मास्मि'या प्रकारतैं ध्यान करे। इति ॥२॥ ता ध्यानका फल स्मृतिविषे भी कह्या है। तहां श्लोक 'अहमस्मि परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययः । इति यस्य स्थिरा बुद्धिः स मुक्तो नात्र संशयः'अर्थ—वासुदेव है नाम जिसका ऐसा जो उत्पत्ति विनाशतैं रहित परब्रह्म है सो परब्रह्म मैं हूं इस प्रकारकी स्थिर बुद्धि जिस पुरुषकी है सो पुरुष मुक्त ही है। इस अर्थविषे किंचित्मात्र भी संशय नहीं है इति। किंवा यह ब्रह्मध्यानका फल विष्णुपुराणविषे यमराजने भी मृत्युके प्रति कह्या है तहां श्लोक—सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान्परमेश्वरः स एकः। इति मतिरचला भवत्यनंते हृदयगते व्रज तान्विहाय दूरात्'अर्थ-यह सर्व जगत् तथा मैं वासुदेवरूप ही हैं सो वासुदेव परम पुरुष है तथा परमेश्वर है तथा एक अद्वितीय है।इस प्रकारकी अचल बुद्धि जिन पुरुषोंकी हृदयदेशविषे

स्थित परमात्माविषे होवै है । हे मृत्यु! तिन पुरुषोंकूं तुमनें दूरतैं परित्याग करिकै चलना । अर्थात् परब्रह्मके ध्यानपरायण पुरुषोंकूं पुनः मृत्युकी प्राप्ति होती नहीं इति । यातैं यह सिद्ध भया जो पुरुष विषयासक्त स्त्री पुरुषोंके संगका परित्याग करिकै ब्रह्मका चिंतन करे है तिस पुरुषकी ते सर्व मलिनवासना निवृत्त होवै हैं इति । अब सत्संगकूं वासनाकी निवृत्ति द्वारा मोक्षकी साधनताका प्रतिपादक वचन कहे हैं । तहां श्लोक–'महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां संगिसंगम्।महांतस्ते समचित्ताः प्रशांता विमन्यवः सुहृदः साधवो यं' अर्थ-विद्वान् पुरुष महात्मापुरुषोंके सेवाकूं मुक्तिका साधन कहे हैं स्त्रियोंके संगी पुरुषोंके संगकूं नरकके प्राप्तिका साधन कहे हैं । तहां और महत्पुरुष किसका नाम है जे पुरुष समचित्त हैं अर्थात् सम ब्रह्मविषे है चित्त जिनोंका अथवा शत्रुमित्रविषे है समचित्त जिनोंका तथा जे पुरुष अतिशयकरिकै शांत स्वभाववाले हैं तथा क्रोधतैं रहित हैं तथा सुहृद हैं अर्थात् अनुपकारीपर भी उपकार करणेहारे हैं तथा साधु हैं अर्थात् शम दम करिकै संपन्न हैं ऐसे गुणोंवाले पुरुष ही महत्पुरुष कहे जावे हैं । ऐसे महत्पुरुषकी जो श्रद्धा भक्तिपूर्वक संग है सो संग भी ता मलिनवासनाका निवृत्तिद्वारा मोक्षका ही साधन होवै है इति।किंवा स्त्री सत्संगियोंके संगविषे नरककी साधनता भी शास्त्रविषे कही है। तहां श्लोक 'योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः। प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतंगवन्नश्यति नष्टदृष्टिः' अर्थ–स्त्री सुवर्ण आभूषण वस्त्र इत्यादिक जे मायारचित पदार्थ हैं तिन पदार्थोंविषे लोभकूं प्राप्त भया है मन जिसका ऐसा जो अविवेकी पुरुष है सो तिन पदार्थोंविषे उपभोग बुद्धि करिकै पतंगकी न्याई नाश होवै है जिस कारणतैं सो पुरुष विवेक दृष्टितैं रहित है इति । अब मैत्री करुणादिक विरोधी वासना

करिके तिन मलिनवासनाओंकी निवृत्ति कहे हैं ते मैत्री आदिक विरोधी वासना पतंजलि भगवान्ने योगसूत्रोंविषे कही है । तहां सूत्र–'मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्' अर्थ–मैत्री १ करुणा २ मुदिता ३ उपेक्षा ४ यह चारि प्रकारकी शुभ वासना होवै हैं । तहां सुखी प्राणियोंविषे यह सर्व हमारे ही हैं या प्रकारकी जा भावना है ताका नाम मैत्री है । और दुःखी प्राणियोंविषे जैसे हमारेकूं दुःख मत होवै तैसे इन प्राणियोंकूं भी दुःख मत होवै या प्रकारकी जा भावना है ताका नाम करुणा है और पुण्यवान् पुरुषोंकूं देखिके जा प्रसन्नता है ताका नाम मुदिता है और पापीपुरुषोंतें जा उदासीनता है ताका नाम उपेक्षा है । इस प्रकारकी मैत्री आदिक चारि भावनावाले पुरुषकी राग द्वेष असूया मद मात्सर्य आदिक सर्वमलिन वासना निवृत्त होइ जावै हैं । तिसतें इस पुरुषका चित्त शुद्ध होवै है इति । इस प्रकार गीताके षोडश अध्यायविषे श्रीभगवान्ने 'अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः । दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥ अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम् । दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥ तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता । भवंति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥' इन तीन श्लोकों करिके कथन करी जा दैवीसंपत् है ता दैवीसंपत्रूप विरोधी वासनाके अभ्यास करिके दंभ दर्पादिक आसुरी संपत्रूप मलिनवासना निवृत्त होइ जावै है इस प्रकार ता गीताके त्रयोदश अध्यायविषे श्रीभगवान्ने 'अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम् । आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः । इंद्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च । जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ २ ॥ असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु । नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ३ ॥ मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभि-

चारिणी। विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ ४ ॥ अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्। एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ५ ॥' इन पंच श्लोकोंकरिकै कथन करे जे अमानित्व अदंभित्व आदिक ज्ञानके साधन हैं तिन अमानित्वादिक साधनोंके अभ्यास करिकै तिनोंतैं विपरीत भ्रांतिज्ञानके साधन मानदंभादिक निवृत्त होइ जावै हैं। इन गीताश्लोकोंका अथ गीतागूढार्थदीपिकाविषे हमने विस्तारतैं निरूपण कर्‍या है सो तहांसे जानि लेणा। ग्रंथविस्तारके भयतैं इहां लिख्या नहीं इति। इस प्रकार सो विद्वत्संन्यासी जभी संकल्पपूर्वक तिन मैत्री आदिक शुभवासनावोंकूं तथा अमानित्वादिक धर्मोंकूं अभ्यास करिकै संपादन करे है तभी सूर्यके उदय हुए जैसे तम निवृत्त होवै है तैसे ता विद्वत्संन्यासीकी ते पूर्व उक्त सर्व मलिनवासना निवृत्त होवै हैं। तिसतैं अनंतर सो विद्वत्संन्यासी अजिह्वत्वादिक षट्धर्मोंकूं अभ्यास करिकै संपादन करै ते अजिह्वत्वादिकधर्म स्मृतिविषे कथन करे हैं। तहां श्लोक 'अजिह्वः षंडकः पंगुरंधो बधिर एव च। मुग्धश्च मुच्यते भिक्षुः षड्भिरेतैर्न संशयः' अर्थ—अजिह्व १ षंडक २ पंगु ३ अंध ४ बधिर ५ मुग्ध ६ इन षट्धर्मोंके सेवन करणेतैं संन्यासी जीवन्मुक्तिकूं प्राप्त होवै है। यातैं ता संन्यासीने ते षट् धर्म अवश्य संपादन करणे इति। अब तिन अजिह्वत्वादिक षट् धर्मोंके शास्त्रप्रमाण करिकै यथाक्रमतैं लक्षण कहे हैं। अथ अजिह्वलक्षणम्। श्लोक—'इदमिष्टमिदं नेति योऽश्नन्नपि न सज्जते। हितं सत्यं मितं वक्ति तमजिह्वं प्रचक्षते' अर्थ—जो संन्यासी अन्नादिकोंकूं भक्षण करता हुआ भी यह अन्न स्वादु है यह अन्न अस्वादु है या प्रकारका वचन कहता नहीं तथा हितकारी सत्य प्रमित या प्रकारके वचनकूं उच्चारण करे है सो संन्यासी अजिह्व कह्या जावै है इति। अथ षंडकलक्षणम्। श्लोक-'अद्यजातां यथा नारीं तथा षोडशवार्षिकीम्। शतवर्षां च यो दृष्ट्वा नि-

विकारः स षंडकः । अर्थ–जैसे आज दिनविषे जन्मी हुई अतिबालिका स्त्रीकूं देखिके तथा शतवर्षकी अति वृद्ध स्त्रीकूं देखिके कामरूप विकार उत्पन्न होता नहीं तैसे जो संन्यासी षोडशवर्षकी युवा स्त्रीकूं देखिके भी कामरूप विकारतैं रहित होवै है। सो संन्यासी षंडक कह्या जावै है। नपुंसकका नाम षंडक है इति। अथ पंगुलक्षणम्। श्लोक 'भिक्षार्थमटनं यस्य विण्मूत्रकरणाय च। योजनं न परं याति सर्वथा पंगुरेव सः' अर्थ–जिस संन्यासीका भिक्षाके वासतैं ही गमन होवै है तथा विष्ठा मूत्रके परित्याग करणेवासतैं गमन होवै है अन्य किसी प्रयोजनवासतैं गमन होता नहीं । तथा जो संन्यासी एक योजनतैं अधिक मार्ग चलता नहीं सो संन्यासी पंगु कह्या जावै है इति। अथ अंधलक्षणम्। श्लोक 'तिष्ठतो व्रजतो वापि यस्य चक्षुर्न दूरगम्। चतुर्युगां भुवं त्यक्त्वा परिव्राट्सोऽध उच्यते' अर्थ–जिस संन्यासीका स्थित हुए वा चलते हुए चक्षु इंद्रिय चतुर्युग भूमिकूं छोडिकै दूर नहीं जावै है सो संन्यासी अंध कह्या जावै है इहां चारि हस्तका नाम युग है । चतुर्युग भूमि षोडश हस्त परिमाण होवै है इति। अथ बधिरलक्षणम् । श्लोक 'हिताहितं मनोरमं वचः शोकावहं च यत्। यः शृणोति न श्रुत्वापि बधिरः स प्रकीर्तितः' अर्थ–जो सन्यासी हर्षकी प्राप्ति करणेहारे अनुकूल वचनकूं तथा शोककी प्राप्ति करणेहारे प्रतिकूल वचनकूं श्रवण करिकै भी नहीं श्रवण करे है अर्थात् हर्ष शोककूं प्राप्त होता नहीं सो संन्यासी बधिर कह्या जावै है इति। अथ मुग्धलक्षणम् । श्लोक 'सान्निध्ये विषयाणां च समर्थोऽविकलेंद्रियः। सुप्तवद्वर्त्तते नित्यं स भिक्षुर्मुग्ध उच्यते' अर्थ–विषयोंके समीप प्राप्त हुए जो संन्यासी समर्थ हुआ भी तथा सर्व इंद्रियों करिकै संपन्न हुआ भी तिन विषयोंविषे प्रवृत्त होता नहीं किंतु सुषुप्त पुरुषकी न्याईं तिन विषयोंतैं उपराम

रहे है सो संन्यासी मुग्ध कह्या जावै है इति । इस प्रकार अजिह्वत्वादिक षट् धर्मोंका अभ्यास करिकै पश्चात् चिन्मात्र वासनाका अभ्यास करै। तहां यह नामरूपात्मक सर्व जगत् चैतन्यविषे कल्पित होणेतैं स्वतः सत्तास्फुरणतैं रहित है । यातैं ता अधिष्ठान चैतन्यके सत्तास्फुरणपूर्वक ही ता जगत्का सत्तास्फुरण होवै है । इस प्रकार जगत्विषे नामरूप दोनों अंशोंकूं मिथ्यात्व निश्चयतैं उपेक्षा करिकै सर्वत्र परिपूर्ण अस्ति भाति प्रियरूप अधिष्ठान चैतन्य मैं हूं या प्रकारकी जा निरंतर भावना है ताका नाम चिन्मात्र वासना है । सा चिन्मात्र वासना भी दो प्रकारकी होवै है । एक तौ कर्त्ता कर्म करण इस त्रिपुटीके स्मरणपूर्वक चिन्मात्र वासना होवै है और दूसरी ता त्रिपुटीके स्मरणतैं रहित केवल चिन्मात्र वासना होवै है तहां इस सर्वजगतकूं मैं आपणे मन करिकै चिन्मात्ररूप जानता हूं । इस प्रकारतैं करी हुई जा भावना है सा भावना तौ प्रथम त्रिपुटीपूर्वक चिन्मात्र वासना है । इस चिन्मात्र वासनाका संप्रज्ञात समाधिकोटिविषे अंतर्भाव है । अर्थात् इस प्रथम चिन्मात्र वासनाकूं ही योगशास्त्रवाले संप्रज्ञात समाधि कहे हैं । और कर्त्ता कर्म करण इस त्रिपुटीके स्मरणतैं रहित मैं चिन्मात्र हूं या प्रकारकी जा भावना है सा भावना केवल चिन्मात्र वासना कही जावै है । इस केवल चिन्मात्र वासनाका असंप्रज्ञात समाधिकोटिविषे अंतर्भाव है अर्थात् इस केवल चिन्मात्र वासनाकूं ही योगशास्त्रवाले असंप्रज्ञात समाधि कहे हैं । तहां सर्व जगतकूं चिन्मात्ररूपता शुक्रने बलिके प्रति कही है तहां श्लोक ' चिदिहास्तीह चिन्मात्रं सर्वचिन्मयमेव तत् । चित्त्वं चिदहमेते च लोकाश्चिदिति संग्रहः ' अर्थ—हे राजन् । इस सर्व जगतविषे चैतन्य ही अधिष्ठानरूपतैं व्याप्य करिकै रह्या है । यातैं यह सर्व जगत् चैतन्यमात्र ही है, तू भी चैतन्यरूप ही है तथा मैं भी चैतन्यरूप ही हूं

तथा यह सर्व लोक भी चैतन्य ही है इति। इस प्रकार चिन्मात्र वासनाके दृढ अभ्यास किये हुए पूर्व उक्त सर्व मलिन वासना निवृत्त होवे हैं। यह ही वासनाक्षयका अभ्यास है इति। अब मनोनाशके कहणेवासतें प्रथम मनका स्वरूप कहै हैं। लाक्षा सुवर्णादिकोंकी न्याई सावयव तथा कामादिक वृत्तिरूप करिके परिणामवाला जो अंतःकरण है सो अंतःकरण ही मननरूप होणेतें मन कह्या जावे है। सो मन सत्त्व रज तम यह तीन गुणरूप होवे है। काहेतें सत्त्व रज तम इन तीनों गुणोंके यथाक्रमतें विकाररूप जे सुख दुःख मोह यह तीन धर्म हैं ते तीनों धर्म ता मनके आश्रित हुए प्रतीत होवे हैं। यातें ता मनविषे सत्त्वादि त्रिगुणरूपता ही सिद्ध होवे है। तहां सो मन राजस तामस वृत्तियों करिके वृद्धिकूं प्राप्त हुआ अतिस्थूल होवे है। सो स्थूल मन आत्माके साक्षात्कारवासतें योग्य नहीं होवे है। काहेतें दुर्विज्ञेय होणेतें आत्मा अति सूक्ष्म है। ऐसे सूक्ष्म आत्माका स्थूल मन करिके साक्षात्कार संभवता नहीं। जैसे स्थूल कुदाल करिके सूक्ष्म वस्त्रका सीवना संभवता नहीं किंतु सूक्ष्म सूची करिके ही ता सूक्ष्म वस्त्रका सीवना संभवे है तैसे सूक्ष्म मन करिके ही ता सूक्ष्म आत्माका साक्षात्कार सम्भवे है और 'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः' यह श्रुति भी अति सूक्ष्म बुद्धि करिके ही आत्माका साक्षात्कार कहे है। यातें आत्माके साक्षात्कारवासतें मनकी सूक्ष्मता अवश्य अपेक्षित है। सा मनकी सूक्ष्मता राजस तामस वृत्तियोंके निरोध करिके सिद्ध होवे है। यातें तिन वृत्तियोंके निरोध करिके जो मनके सूक्ष्मताका संपादन है यह ही ता मनका नाश है इहां यह तात्पर्य है। सो मनका नाश अरूपनाश १ सरूपनाश २ इस भेद करिके दो प्रकारका होवे है। तहां ता मनका पुनः उत्थानतें रहित जो स्वरूपतें ही नाश है ताकूं अरूप-

नाश कहे हैं। और स्वरूपतें ता मनके विद्यमान हुए भी उपायकरिकै जो ता मनके वृत्तियोंका नाश है ताकूं सरूपनाश कहे हैं। तहां मनके अरूप नाश करिकै तौ इस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं विदेह मुक्तिकी प्राप्ति होवै है और मनके सरूपनाश करिकै जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति होवै है। यातैं इहां मनोनाश शब्द करिकै सो सरूपनाश ही विवक्षित है इति। शंका—राजस तामस वृत्तियोंके निरोध करिकै मनकी सूक्ष्मताके सम्पादनकूं आपने मनोनाश कह्या सो वृत्तियोंका निरोध किस उपायतैं होवै है। समाधान—ता वृत्ति निरोधके उपाय वशिष्ठ भगवान्नें चारि प्रकारके कहे हैं। तहां श्लोक'अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगम एव च। वासनासंपरित्यागः प्राणस्पंदनिरोधनम्। एतास्तु युक्तयः पुष्टाः संति चित्तजये किल' अर्थ—अध्यात्मविद्याधिगम १साधुसंगम २ वासनासंपरित्याग ३ प्राणस्पंदनिरोधन ४ यह चारि प्रकारके उपाय चितके जय करणेविषे प्रबल कारण हैं। तहां प्रत्यक् आत्माकूं ब्रह्मरूप करिकै कथन करणेहारी जा विद्या है ताका नाम अध्यात्मविद्या है। ता अध्यात्मविद्याकी जा प्राप्ति है ताका नाम अध्यात्मविद्याऽधिगम है सोभी चित्तके जयका साधन है। काहेतैं यह नामरूपात्मक सर्व जगत् मिथ्या ही है। मैं ही सर्वत्र परिपूर्ण परमानंद एकरस हूं,मेरेतैं भिन्न कोई भी कारण वा कार्य नहीं है मैंही सर्वरूप हूँ या प्रकारकी अध्यात्मविद्याके प्राप्त हुए यह तत्त्ववेत्ता पुरुष सर्वदृश्य प्रपंचकूं मिथ्या रूप करिकै जानै है। यातैं ता विद्वान् पुरुषका मन तादृश प्रपंच विषे भी प्रवृत्त होवै नहीं और आत्मा तो मन वाणीका अविषय है यातैं ता आत्माविषे भी सो मन प्रवृत्त होवै नहीं। इस प्रकार अंतर बाह्य प्रवृत्तितैं रहित हुआ सो मन सर्व वृत्तियोंके अनुदयतैं इंधन रहित अग्निकी न्याईं आपणे अधिष्ठानरूप कारणविषे लय होवै है यातैं सा अध्यात्म विद्याकी प्राप्ति ता मनोनाशविषे मुख्य

कारण है और जो पुरुष बुद्धिकी मंदता करिकै ता अध्यात्म विद्याके संपादन करणेविषे असमर्थ है तिस पुरुषके प्रति दूसरा साधुसंगम उपाय है । काहेतैं ते महात्मा पुरुष इस अधिकारी पुरुषकूं पुनः पुनः प्रत्यक् आत्माकी ब्रह्मरूपता तथा जगत्का मिथ्यापणा स्मरण करावे हैं तथा बोधन करे हैं । ता करिकैं इस अधिकारी पुरुषकूं अध्यात्म विद्याकी प्राप्ति होइक सो मनोनाश होवै है । यातैं सो साधुसंगम भी ता अध्यात्म विद्याकी प्राप्ति द्वारा ता मनोनाशका उपाय है । किंवा जो पुरुष विद्यामद धनमद कुलमद आचारमद इत्यादिक मदों करिकै युक्त हुआ ता साधुसंगमकूं भी नहीं करि सकता तिस पुरुषके प्रति ता मनके निरोधका वासना सम्परित्यागरूप उपाय है । तहां विवेक करिकै जो ता मदादिरूप मलिनवासनाकी निवृत्ति है ताका नाम वासनासंपरित्याग है । अब तिन विद्यामदादिकोंका स्वरूप तथा ता मदके निवर्त्तक विवेकका स्वरूप वर्णन करे हैं । इस भूमिलोकविषे एक मैं ही पण्डित हूं मेरेतैं अन्य दूसरा कोई पण्डित है नहीं जे पुरुष पण्डित कहावते हैं ते कुछ भी नहीं जानते । या प्रकारका जो मानस अभिमान है सो अभिमान विद्यामद कह्या जावै है ता विद्यामदकी या प्रकारके विवेकतैं निवृत्ति होवै है । पण्डितपणेके अभिमानवाले जे बालाकि शाकल्य आदिक हुए हैं तिनोंका भी अजातशत्रु याज्ञवल्क्यादिक विद्वान् पुरुषों करिकै पराभव होता भया है और मनुष्योंतैं लेकै श्रीदक्षिणा मूर्ति पर्यंत तारतम्यता करिकै विद्याका उत्कर्षपणा देखणेविषे आवै है । सर्वका आदिगुरु जो श्रीदक्षिणामूर्ति सदाशिव है तिसविषे ही निरतिशय विद्याका उत्कर्षपणा है । दूसरे सर्व पण्डितोंविषे सातिशय विद्याका उत्कर्षपणा है । यातैं हमारेकूं भी कोई अधिक पण्डित पराभव करैगा । इस प्रकारके निरंतर चिंतन करणेतैं सो विद्यामद निवृत्त होइ जावै

है । और मैं ही धनवान् हूं मेरे समान कोई धनवान् नहीं है या प्रकारका जो मानस अभिमान है ताका नाम धनमद है। ता धनमदकी इस प्रकारके विवेकतैं निवृत्ति होवै है-लक्षपति पुरुषने जो व्यवहार करता है सो व्यवहार अलक्षपति पुरुष करि सकता नहीं । यातैं ता लक्षपति पुरुष करिकै ता अलक्षपति पुरुषका पराभव होवै है । इस प्रकार कोटिपति पुरुष करिकै ता लक्षपति पुरुषका भी पराभव होवै है । मैं रंककी क्या गणती है । मेरेतैं अधिक कुबेरके तुल्य बहुत धनवान् हैं । या प्रकारके निरंतर चिंतन करणेतैं सो धनमद निवृत्त होइ जावै है । इस प्रकार हमारा कुल सर्वतैं श्रेष्ठ है या प्रकारका अभिमानरूप जो कुलमद है तथा हमारा आचार सर्वतैं श्रेष्ठ है या प्रकारका अभिमानरूप जो आचारमद है तिन दोनों मदोंकी भी यथायोग्य विवेकतैं निवृत्ति होइ जावै है। इस प्रकार विवेक करिकै जो पुरुष विद्यामदादिक मलिन वासनावोंकी निवृत्ति करे है तिस पुरुषका साधुसंगमादिकोंकी प्राप्ति करिकै सो मनोनाश सिद्ध होवै है । यातैं सो वासनासंपरित्याग भी ता मनोनाशका उपाय है इति । किंवा तिन मलिन वासनावोंकी अति प्रबलतातैं जो पुरुष ता उक्त विवेक करिकै तिन वासनावोंके परित्याग करणेविषे समर्थ नहीं होइ सके है तिस पुरुषके प्रति शास्त्रने प्राणस्पंदका निरोधनरूप उपाय कथन कर्‍या है । अर्थात् सो पुरुष प्राणके निरोध करिकै ता मनोनाशकूं सिद्ध करै । अब ता प्राण निरोधके उपायका निरूपण करे हैं । तहां श्लोक'-प्राणायामदृढाभ्यासाद्युक्त्या च गुरुदत्तया । आसनाशनयोगेन प्राणस्पंदे निरुध्यते'।अर्थ-योगाभ्यास करणेहारे गुरुने प्राप्त करी जा युक्ति है ता युक्तिकरिकै कर्‍या जो प्राणायामका दृढ अभ्यास है तिस अभ्यासतैं तथा आसनयोग करिकै तथा अशनयोग करिकै प्राणोंके गतिका

निरोध होवै है इति। अब इसी श्लोकके अर्थकूं विस्तारतैं कथन करे हैं ताके विषे प्रथम प्राणायामका प्रकार दिखावै हैं। सो प्राणायाम पूरक १ रेचक २ कुंभक ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां वाम नासिका करिकै बाह्य वायुका जो अंतर पूरक है ताका नाम पूरक है और दक्षिण नासिका करिकै ता अंतर वायुका जो बाह्य परित्याग है ताका नाम रेचक है और ता प्राणवायुका जो रोकणा है ताका नाम कुंभक है। सो कुंभक भी अंतर १ बाह्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है। तहां पूरक कर्‍ये हुए वायुका जो हृदय देशविषे रोकणा है ताका नाम अंतर कुंभक है और रेचन कर्‍ये हुए प्राणवायुका जो शरीरके बाह्य देशविषे रोकणा है ताका नाम बाह्यकुंभक है। तहां षोडश मात्रावों करिकै तौ पूरक करणा और बत्तीस मात्रावों करिकै रेचक करणा। और चौंसठ मात्रावों करिकै कुंभक करणा। अर्थात् पूरकतैं द्विगुणा रेचक करणा और रेचकतैं द्विगुणा कुंभक करणा। इहां मात्रा नाम काल परिमाणका है सो आत्मपुराणके एकादश अध्यायविषे विस्तारतैं निरूपण कर्‍या है। इस प्रकारके प्राणायामके अभ्यासतैं सो प्राणके गतिका निरोध होवै है ता प्राण निरोधतैं सो मनोनाश होवै है। किंवा ता प्राणायामकूं प्राण निरोधद्वारा मनोनाशकी उपायता श्रुतिविषे भी कथन करी है सो दिखावै हैं—योगी दो प्रकारका होवै है। एक तौ दैवीसंपत्‌रूप शुभ वासनावाला योगी होवै है और दूसरा ता दैवीसंपत्‌तैं रहित आसुरी संपत्‌रूप मलिन वासनावाला योगी होवै है। तहां प्रथम योगीकूं तौ श्रुतिने पूर्व मंत्र करिकै निरंतर ब्रह्मका चिंतनरूप राजयोग उपदेश कर्‍या है सो पूर्व मंत्र यह है। 'त्रिभिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदींद्रियाणि मनसा सन्निवेश्य। ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्

स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि' अर्थ–यह विद्वान् योगी पुरुष एकांत देशविषे पवित्र आसन ऊपरि आपणे शरीरकूं कटि ग्रीवादिक देशतैं सम स्थापन करिकै तथा आपणे हृदयविषे मनसहित सर्व इंद्रियोंका निरोध करिकै 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका निरंतर चिंतन करे ता ब्रह्मचिंतनरूप नौकाकरिकै सो विद्वान् योगी भयकी प्राप्ति करणेहारे मायारूप नदीके प्रवाहोंकूं तरै इति। और दूसरे योगीके प्रति तौ श्रुतिने दूसरे मंत्र करिकै प्राणनिरोधका उपायरूप हठयोग उपदेश कऱ्या है। सो द्वितीय मंत्र यह है 'प्राणान्प्रपीडयेह सुयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत। दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेदप्रमत्तः' अर्थ–युक्त हैं आहार विहारादिक चेष्टा जिसकी ऐसा योगी पुरुष पूर्व उक्त पूरक रेचक कुंभक क्रमतैं प्राणायामकूं करिकै प्राणोंके गतिका निरोध करै। तिसतैं अनंतर जैसे प्रमादतैं रहित सारथी पुरुष दुष्ट अश्वयुक्त रथकूं बलात्कारतैं श्रेष्ठ मार्गविषे धारण करे है तैसे प्रमादतैं रहित सो विद्वान् योगी दुष्ट इंद्रिययुक्त मनकूं विषयोंतैं निवृत्त करिकै आनंद एकरस ब्रह्मविषे धारण करै। अर्थात् तिस ब्रह्मविषे एकाग्र चित्तवाला होवै है इति। अब आसनयोगका निरूपण करे हैं। तहां आसनयोगका स्वरूप तथा ता आसनयोगके साधन तथा ता आसनयोगका फल यह तीनों पतंजलि भगवान्ने यथाक्रमतैं 'स्थिरसुखमासनम्॥ १॥ प्रयत्नशैथिल्यानंतसमापत्तिभ्याम्॥ २॥ ततो द्वंद्वानभिघातः'॥ ३॥ इन तीन सूत्रों करिकै कथन करे हैं। इन तीन सूत्रोंका यह अर्थ है–चलायमानतातैं रहित तथा सुखकी प्राप्ति करणेहारा जो आसन है सोई ही योगका अंगभूत आसन कह्या जावै है॥ १॥ सो आसन प्रयत्नशैथिल्य अनंतसमापत्ति इन दोनों साधनोंतैं सिद्ध होवै है तहां लौकिक वैदिक कर्मोंका जो त्याग है ताका नाम प्रयत्नशैथिल्य है। तहां जो पुरुष लौकिक वैदिक कर्मोंविषे प्रवर्त्तमान है तिस पुरुषका सो

स्थिर आसन होइ सकता नहीं। यातें ता लौकिक वैदिक कर्मका त्याग भी ता आसनका साधन है और जो अनंत भगवान् आपणे सहस्र फणों ऊपरि इस पृथिवीकूं धारण करिकै वर्त्तमान है सो अनंत भगवान् मैं हूं या प्रकारका जो चिंतन है ताका नाम अनंत-समापत्ति है। इस अनंतसमापत्ति करिकै ता आसनके प्रतिबंधक दुरित नाश होवै हैं॥२॥ और तिस आसनके जय करणेतें इस योगीका शीत उष्णादिक द्वंद्वोंकरिकै ताडन होवै नहीं अर्थात् शीत उष्णादिक द्वंद्वोंकी जा निवृत्ति है यह ही ता आसनयोगका फल है इति॥३॥ अब अशनयोगका निरूपण करे हैं तहां श्लोक-'द्वौभागौ पूरयेदन्नैर्जलेनैकं प्रपूरयेत्। मारुतस्य प्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत्' अर्थ-योगाभ्यास करणेहारा पुरुष आपणे उदरके दो भागोंकूं तौ अन्न करिकै पूरण करै और एक भागकूं जलकरिकै पूरण करै और प्राण-वायुके सुखपूर्वक संचारवासतें एक भागकूं खाली राखै इति। इस प्रकार प्राणायाम आसनयोग अशनयोग इन तीनों करिकै प्राणके गतिका निरोध होवै है। ता प्राणके निरोध हुए सर्व चित्तकी वृत्तियां निरुद्ध होवै हैं। जिस कारणतें चित्तके वृत्तियोंका उदय प्राणकी गतिके अधीन ही होवै है। तात्पर्य यह—जो पदार्थ जिस वस्तुके अधीन होवै है सो पदार्थ ता वस्तुके निरोध हुए निरुद्ध होवै है। जैसे पट तन्तुवोंके अधीन होणेतें तिन तन्तुवोंके निरोध हुए निरुद्ध होवै है तथा जैसे बाह्य इंद्रियचित्तके अधीन होणेतें ता चित्तके निरोध हुए निरुद्ध होवै है तैसे चित्तकी वृत्तियां प्राण-गतिके अधीन होणेतें ता प्राणके निरोध हुए निरुद्ध होवै हैं। तिसतें अनंतर स्वभावतें ही आत्मा अनात्माकार जो अंतःकरण है सो अंतःकरण अनात्माकार वृत्तियोंके निरोध हुए एक आत्माकार ही होवै है। इस प्रकारतें जो चित्तकी वृत्तियोंका निरोध है सो निरोध ही मनोनाश कह्या जावै है। ऐसे मनोनाशके प्राप्त

हुए इस विद्वान् पुरुषकूं ता आत्म एकाकार मन करिके आनंद एकरस अपरिच्छिन्नरूप प्रत्यक् आत्मा अनुभव होवे है।इसी उक्त अर्थकूं पूर्व वृद्ध आचार्योंने 'आत्मानात्माकारं स्वभावतोऽवस्थितं सदा चित्तम् आत्मैकाकारतया तिरस्कृतानात्मदृष्टिं विदधीत' इस श्लोक करिके कथन कऱ्या है। और इसी उक्त वृत्तियोंके निरोधकूं पातंजल शास्त्रवाले योगनाम करिके कहे हैं। तहां पतंजलि सूत्र-'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' अर्थ-चित्तके सर्व वृत्तियोंका जो निरोध है ताका नाम योग है। तहां प्रमाण १ विपर्यय २ विकल्प ३ निद्रा ४ स्मृति ५ यह पांच प्रकारकी चित्तकी वृत्तियां होवे हैं। तहां प्रमाणजन्य जो प्रमाज्ञान है ताका नाम प्रमाणवृत्ति है। तहां योगशास्त्रविषे तौ प्रत्यक्ष १ अनुमान २ शब्द ३ यह तीन ही प्रमाण माने हैं। यातें तिनोंके मतविषे सा प्रमावृत्ति भी तीन प्रकारकी होवे है और वेदांत सिद्धांतविषे सो प्रमाण प्रत्यक्ष १ अनुमान २ उपमान ३ शब्द ४ अर्थापत्ति ५ अनुपलब्धि ६ इस भेद करिके षट्प्रकारका मान्या है यातें वेदांतसिद्धांतविषे सा प्रमावृत्ति भी षट् प्रकारकी ही होवे है। सा षट्प्रकारकी प्रमावृत्ति द्वितीय परिच्छेदविषे विस्तारतें निरूपण करि आये हैं और मिथ्याज्ञानका नाम विपर्यय है और संशयका नाम विकल्प हैऔर संस्कारजन्य ज्ञानका नाम स्मृति है।इन तीनोंका स्वरूप पूर्व तृतीय परिच्छेदविषे विस्तारतें निरूपण करि आये हैं और तामसी वृत्तिका नाम निद्रा है।इन पंच प्रकारकी वृत्तियोंका जो निरोध है ताका नाम योग है। अथवा पूर्व कथन करी जे मैत्री करुणादिक दैववृत्तियां हैं तथा दंभ दर्पादिक आसुर वृत्तियां हैं तिन सर्व वृत्तियोंके निरोधका नाम योग हैइति। शंका-तिन वृत्तियोंके निरोधका कौन साधन है।समाधान-पतंजलि भगवान्ने

'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः' इस सूत्र करिकै अभ्यास वैराग्य इन दोनोंकूं ही ता वृत्तिनिरोधका साधन कह्या है। तथा श्रीभगवान्‌ने भी गीताविषे 'असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्। अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते' इस श्लोक करिकै ता अभ्यासवैराग्यकूं ही मनके निग्रहका साधन कह्या है तहां जिस वस्तुविषै दोषदृष्टितैं वैराग्य होवै है तिस वस्तुविषे मनकी प्रवृत्ति होती नहीं। यातैं ता वैराग्यकूं मनके निग्रहकी साधनता संभवै है। ता वैराग्यका स्वरूप द्वितीय परिच्छेदविषे विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं यातैं पुनः इहां निरूपण करते नहीं। और अभ्यास तौ ता योगके प्रति अंतरंग साधन है। ता अंतरंग साधनकी बहिरंग साधनोंतैं विना सिद्धि संभवती नहीं। यातैं उपायसहित तिन बहिरंग साधनोंका निरूपण करिकै ता अभ्यासके निरूपण करणेवासतैं प्रथम ता फलरूप वृत्तिनिरोधका विभाग वर्णन करे हैं सो चित्तकी वृत्तियोंका निरोधरूप योग दो प्रकारका होवै है। एक तौ संप्रज्ञात समाधिरूप निरोध होवै है, दूसरा असंप्रज्ञात समाधिरूप निरोध होवै है। तहां कर्त्ता कर्म करण इस त्रिपुटीके अनुसंधानतैं रहित जो एक लक्ष्य वस्तुविषयक सजातीय वृत्तियोंका प्रवाह है ताका नाम संप्रज्ञात समाधि है। तहां इस संप्रज्ञात समाधिका अंगभूत जो समाधि है ताकेविषे ता त्रिपुटीके अनुसंधान पूर्वक सजातीय वृत्तियोंका प्रवाह होवै है। ता अंगसमाधिविषे इस संप्रज्ञात समाधिके लक्षणकी अतीव्याप्तिके निवृत्त करणेवासतैं इहां त्रिपुटीके अनुसंधानतैं रहितपणा कह्या है। यह संप्रज्ञात समाधिस्वरूप अन्य ग्रंथविषे भी कह्या है। तहां श्लोक 'विलाप्य विकृतिं कृत्स्नां संभवव्यत्ययक्रमात्। परिशिष्टं तु चिन्मात्रं सदानंदं विचिंतयेत्॥ १॥ ब्रह्माकारमनोवृत्तिप्रवाहोऽहंकृतिं विना। संप्रज्ञातः समाधिः स्याद्ध्यानाभ्यास-

प्रकर्षजः॥२॥' अर्थ—चेतनविषे अध्यस्त जितना कि अज्ञान तथा ता अज्ञानका कार्य प्रपंच है तिस सर्व प्रपंचकूं उत्पत्ति क्रमतें विपरीत क्रमतें स्थूल सूक्ष्मादि क्रम करिकें चिदात्माविषे लय करिकें अर्थात् ता चिदात्मातें यह प्रपंच भिन्न नहीं है या प्रकारका निश्चय करिकें बाकी रह्या जो सदानंदरूप चिन्मात्र है तिसकूं गुरु उपदिष्ट महावाक्यतें अभेदरूप करिकें चिंतन करै अर्थात् मैं सच्चिदानंद ब्रह्मरूप ही हूं या प्रकारका चिंतन करै ॥ १ ॥ और त्रिपुटीका अनुसंधानरूप अहंकृतितें विना जो 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारकी मनकी वृत्तियोंका प्रवाह है सो प्रवाह संप्रज्ञात समाधि कह्या जावे है। सो संप्रज्ञात समाधि ध्यानाभ्यासके प्रकर्षतें उत्पन्न होवे है इति । अब योगशास्त्रकी रीतिसे इस संप्रज्ञात समाधिरूप योगके अष्ट अंगोंका वर्णन करे हैं । तहां यम १ नियम २ आसन ३ प्राणायाम ४ प्रत्याहार ५ धारणा ६ ध्यान ७ समाधि ८ यह अष्ट ता संप्रज्ञातसमाधिके अंग होवे हैं। ताकेविषे भी यमादिक पंच तौ ता संप्रज्ञात समाधिके बहिरंग साधन हैं और धारणादिक तीन अंतरंग साधन हैं । अथ यमवर्णनम् । अहिंसा १ सत्य २ अस्तेयं ३ ब्रह्मचर्यं४अपरिग्रह५इस भेद करिकें सो यम पंच प्रकारका होवे है। तहां शरीर मन वाणी इन तीनों करिकें कोई भी प्राणीकूं पीडा नहीं करणी याका नाम अहिंसा है और यथार्थ वचनका जो उच्चारण है ताका नाम सत्य है । और बलात्कारसे वा छल कपटसे जो पराये धनादिकोंका नहीं हरण है ताका नाम अस्तेय है और शरीरयात्राविषे उपयोगी पदार्थोंतें अधिक पदार्थोंका जो संग्रह है ताका नाम अपरिग्रह है और अष्टांग मैथुनतें जो रहितपणा है ताका नाम ब्रह्मचर्य है ता अष्टांग मैथुनका स्वरूप शास्त्रविषे यह कह्या है तहां श्लोक—'स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेव च॥ १ ॥एतन्मैथुनमष्टांगं प्रव-

दंति मनीषिणः। विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः॥ २ ॥ सत्संगसन्निधित्यागदोषदर्शनतो भवेत्' अर्थ—स्मरण १ कीर्त्तन २ केलि ३ प्रेक्षण ४ गुह्यभाषण ५ संकल्प ६ अध्यवसाय ७ क्रियानिवृत्ति ८ इन अष्टका नाम अष्टांग मैथुन है। तहां भोग्यबुद्धि करिकै स्त्रियोंका चित्तविषे चिंतन करणा याका नाम स्मरण है और वाणीसे तिन स्त्रियोंके गुणोंका कथन करणा याका नाम कीर्त्तन है और तिन स्त्रियोंके साथ द्यूतादिक क्रीडा करणी याका नाम केलि है और भोग्य बुद्धि करिक जो तिन स्त्रियोंका देखणा है ताका नाम प्रेक्षण है और एकांत देशविषे जो तिन स्त्रियोंके साथ भाषण है ताका नाम गुह्य भाषण है और तिन स्त्रियोंके प्राप्तिकी जा इच्छा है ताका नाम संकल्प है और तिन स्त्रियोंके प्राप्तिका जो बुद्धिविषे निश्चय करणा है ताका नाम अध्यवसाय है और तिन स्त्रियोंका जो संभोग है ताका नाम क्रियानिवृत्ति है। इन अष्टोंकूं विद्वान् पुरुष अष्टांगमैथुन कहे हैं और इस अष्टांगमैथुनतें जो रहितपणा है तिसकूं ब्रह्मचर्य कहे हैं। सो ब्रह्मचर्य मुमुक्षुजनोंने अवश्य संपादन करणा। जिस कारणतें 'यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरंति सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा। सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यमंतःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यंति यतयः क्षीणदोषाः' इत्यादिक श्रुतियां ता ब्रह्मचर्यकूं ही आत्मज्ञानका तथा मोक्षका साधन कहे हैं। सो ब्रह्मचर्य सत्संगतें सिद्ध होवै है। तथा विषयासक्त स्त्री पुरुषोंके सन्निधि त्यागतें सिद्ध होवै है। तथा देहके दोषदर्शनतें सिद्ध होवै है। तहां सत्संगकूं ब्रह्मचर्यकी साधनता आचार्योंने 'का तव कांताघरगतचिंता वातुलत व किं नास्तिनियंता। त्रिजगति सज्जनसंगतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका' इस वचन करिकै कथन करी है। यातें ता सत्संगकूं ब्रह्मचर्यकी साधनता संभवे है। और देहविषे दोषोंका दर्शन प्रह्लादने कथन कऱ्या है।

तहां श्लोक–'मांसासृक्पूयविण्मूत्रस्नायुमज्जास्थिसंहतौ। देहे चेत्प्रीतिमान्मूढो भविता नरकेऽपि सः' अर्थ–मांस रुधिर पूय विष्ठा मूत्र नाडी मज्जा अस्थि इत्यादिक मलिन पदार्थोंका समूहरूप जो यह देह है ता देहविषे जो मूढपुरुष प्रीतिवाला है सो मूढपुरुष नरकविषे भी प्रीतिवाला होवैगा इति । किंवा यह उक्त अर्थ भगवान्नें भी कह्या है । तहां श्लोक–'स्वदेहाशुचिगंधेन न विरज्येत यः पुमान्। वैराग्यकारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यते' अर्थ–जो पुरुष आपणे देहके अशुचिगंध करिके वैराग्यकूं नहीं प्राप्त होवै है तिस पुरुषकूं दूसरा वैराग्यका कारण क्या उपदेश करणा इति। इस प्रकार आपणे देहके तथा स्त्रीके देहके दोषोंकूं चिंतन करणेहारे पुरुषकूं ता देहविषे राग होवै नहीं।यातैं ता दोषदर्शनकूं ब्रह्मचर्यकी साधनता संभवै है । इस प्रकार ता सन्निधित्यागकूं भी ता ब्रह्मचर्यकी साधनता है । या कारणतैं ही स्मृतिने मुमुक्षुजनके प्रति स्त्रीके संभाषणादिकोंका निषेध कर्‍या है । तहां श्लोक–'न संभाषेत्स्त्रियं कांचित् पूर्वदृष्टां च न स्मरेत्। कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येल्लिखितामपि' अर्थ–यह मुमुक्षुजन किसी भी स्त्रीके साथ संभाषण नहीं करै। तथा पूर्व देखी हुई स्त्रीका चित्तविषे स्मरण भी नहीं करै और तिन स्त्रियोंकी कथाका भी परित्याग करै । तथा चित्रकी लिखी हुई स्त्रीकूं भी नहीं देखै इति ॥१॥ अथ नियमवर्णनम् । सो नियम शौच १ संतोष २ तप ३ स्वाध्याय ४ ईश्वरप्रणिधान ५ इस भेद करिके पंच प्रकारका होवै है । तहां शौच अंतर १ बाह्य २ इस भेद करिके दो प्रकारका होवै है तहां मैत्रीकरुणादिकोंकरिके अंतःकरणकूं रागद्वेषादिकोंतैं रहित करणा याका नाम अंतरशौच है । और जलमृत्तिकादिकों करिके शरीरकूं शुद्ध करणा याका नाम बाह्य शौच है और यथालाभविषे जा प्रसन्नता है ताका नाम संतोष

है और हित मित पवित्र ऐसे अन्नका जो भोजन है ताका नाम तप है और प्रणवादिक पवित्र मंत्रोंका जो जप है ताका नाम स्वाध्याय है और अनुष्ठान कऱ्ये हुए नित्यादिक कर्मोंका जो परमेश्वरविषे समर्पण है ताका नाम ईश्वरप्रणिधान है इति॥ २ ॥ अथ आसनवर्णनम् । ता आसनका स्वरूप तथा साधन तथा फल पूर्व वर्णन करि आये हैं सो इहां भी जानिलेणा । सो उक्त आसन शारीरक १ बाह्य २ इस भेद करिकै दो प्रकारका होवै है तहां पद्म स्वस्तिक भद्र इत्यादिक आसन शारीरक आसन कह्या जावै है । इन आसनोंका स्वरूप आत्मपुराणके अष्टम अध्यायविषे हमने निरूपण कऱ्या है सो तहांसे जानिलेणा । और सर्व उपद्रवोंतैं रहित एकांतदेशविषे जो कुशा मृगचर्म वस्त्रादिकरूप आसन है सो बाह्य आसन कह्या जावै है इति ॥ ३ ॥ अथ प्राणायामवर्णनम् । सो प्राणायाम पूरक १ रेचक २ कुंभक ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है । यह प्राणायाम पूर्व वर्णन करि आये हैं सो इहां भी जानि लेणा इति ॥ ४ ॥ और चक्षु आदिक इंद्रियोंका जो रूपादिक विषयोंतैं निवारण है ताका नाम प्रत्याहार है इति ॥ ५ ॥ इन यमादिक पंच बहिरंग साधनोंके सिद्ध हुएतैं अनंतर इस अधिकारी पुरुषनैं ता संप्रज्ञात समाधिके धारणा ध्यान समाधि इन तीन अंतरंग साधनोंविषे प्रयत्न करणा । तहां बहिरंग साधनोंके संपादनपूर्वक अंतरंग साधनोंका संपादन करणा यह शास्त्र उक्त अनुक्रम अजित चित्त पुरुषके वासते है और जिस पुरुषकूं पूर्व जन्मके पुण्यपरिपाकवशतैं अंतःकरणकी शुद्धि हुए प्रथम ही ते धारणादिक अंतरंग साधन प्राप्त हुए हैं तिस पुरुषने तिन यमादिक पंच बहिरंग साधनोंविषे पुनः प्रयत्न करणा नहीं इति । अथ धारणावर्णनम् । तहां मूलाधार १ मणिपूरक २ स्वाधिष्ठान ३ अनाहत ४ आज्ञा ५ विशुद्ध ६ इन षट् चक्रोंविषे

किसी एक चक्रविषे जो चित्तका स्थान है अथवा प्रत्यक् आत्मा-विषे जो चित्तका स्थापन है अर्थात् तिस एक प्रत्यक् आत्माका जो स्मरण है ताका नाम धारणा है। इन षट् चक्रोंका स्वरूप आत्मपुराणके एकादश अध्यायविषे विस्तारतैं निरूपण कऱ्या है सो तहांसे जानि लेणा इति ॥ ६ ॥ अथ ध्यानवर्णनम् ॥ तहां चैतन्य रूप लक्ष्य वस्तुविषे जो सजातीय वृत्तियोंका प्रवाह करणा है ताका नाम ध्यान है। सो सजातीय वृत्तियोंका प्रवाह भी दो प्रकारका होवै है। एक तौ विजातीय वृत्तियों करिकै विच्छिन्न होवै है, दूसरा विजातीय वृत्तियों करिकै अविच्छिन्न होवै है। तहां प्रथम प्रवाह तौ ध्यान कह्या जावै है, दूसरा प्रवाह समाधि कह्या जावै है। तहां सो समाधि भी दो प्रकारका होवै है। एक तौ कर्त्ता कर्म करण इस त्रिपुटीके अनुसंधान पूर्वक होवै है और दूसरा ता त्रिपुटीके अनुसंधानतैं होवै है। तहां प्रथम समाधि तौ अंगरूप समाधि कह्या जावै है और दूसरा समाधि अंगीरूप समाधि कह्या जावै है। तहां साधनका नाम अंग है और फलका नाम अंगी है इति ॥ ८ ॥ अब ता समाधिके विघ्नोंका निरूपण करे हैं। तहां संप्रज्ञात समाधिकी उत्पत्तिविषे लय १ विक्षेप २ कषाय ३ रसास्वाद ४ यह चारि विघ्न होवै हैं तिन विघ्नोंके विद्य-मान हुए सो संप्रज्ञात समाधि होता नहीं। तहां निद्राका नाम लय है और विषयोंका जो पुनः पुनः अनुसंधान है ताका नाम विक्षेप है और रागद्वेषादिकों करिकै जो चित्तका स्तब्धीभाव है ताका नाम कषाय है और समाधिके आरंभकालविषे जो सविकल्प आनंदका आस्वादन है ताका नाम रसास्वाद है इति। अब श्रीगौड पादाचार्यके वचनों करिकै तिन लयादिक विघ्नोंके निवृत्तिका उपाय वर्णन करे हैं। तहां श्लोक–'लये संबोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः।

सकषायं विजानीयात्समप्राप्तं न चालयेत् ॥ १ ॥ नास्वादयेद्रसं तत्र निःसंगः प्रज्ञया भवेत्' अर्थ–योगाभ्यास करते हुए इस पुरुषका चित्त जभी निद्रारूप लयके सम्मुख होवै तभी सो अभ्यासवान् पुरुष प्राणायाम करिकै तथा निद्राशेषकी निवृत्ति करिकै तथा स्वल्प भोजनादिकों करिकै ता चित्तकूं निद्रातैं जाग्रत् करै । और विक्षेपकूं प्राप्त हुए चित्तकूं विषयोंविषे दोषदर्शन ब्रह्मका चिंतन सत्संग उपासना आदिक उपाय करिकै एकाग्र करै । अर्थात् ता विषय चिंतनरूप विक्षेपतैं रहित करै तहां ब्रह्मके चिंतनतैं चित्त विक्षेपतैं रहित होवै है यह वार्त्ता भगवान्‌ने भी कही है । तहां श्लोक-'विषयान्ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते । मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते' अर्थ–विषयोंकूं चिंतन करणेहारे पुरुषका चित्त तिन विषयोंविषे ही संबंधवाला होवै है और मैं परमेश्वरकूं स्मरण करणेहारे पुरुषका चित्त मैं परमेश्वरविषे ही लय होवै है इति । किंवा सत्संगकूं विक्षेपके निवृत्तिकी कारणता वसिष्ठ भगवान्‌ने कथन करी है । तहां श्लोक–'संतः सदैव गंतव्याः यद्यप्युपदिशंति न । या हि स्वैरकथास्तेषामुपदेशा भवंति ताः' अर्थ–इस मुमुक्षु जनने महात्मा जनोंके समीप सर्वदा गमन करणा । यद्यपि ते महात्मा जन इस मुमुक्षुके प्रति साक्षात् उपदेश नहीं करते होवैं तथापि तिन महात्माजनोंकी जे स्वाभाविक कथा हैं ते कथा ही इस मुमुक्षुके प्रति उपदेशरूप होवै हैं इति । किंवा आचार्योंने भी ' संगः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढाधीयतां' इत्यादिक वचन करिकै ता सत्संगकी कर्त्तव्यता कथन करी है। इस प्रकार विक्षेपकूं निवृत्त करिकै पश्चात् कषाय सहित चित्तकूं जानिकै ता कषायकी भी निवृत्ति करै और सम ब्रह्मविषे प्राप्त हुए चित्तकूं ता ब्रह्मतैं चलायमान नहीं करै और समाधिके आरंभकाल-

विषे प्राप्त हुए सविकल्पक आनंदकूं भी आस्वादन नहीं करै किंतु उदासीन ब्रह्म प्रज्ञा करिकै युक्त होवै है इति। इस प्रकारके उपायों करिकै जभी ते लयादिक विघ्न निवृत्त होवै हैं तभी सो संप्रज्ञात समाधि उत्पन्न होवै है। इस प्रकार संप्रज्ञात समाधिके अभ्यास करिकै जभी मन प्रत्यक् आत्माविषे एकाग्रताकूं प्राप्त होवै है तभी ता मनविषे एक ऋतंभरा नामा प्रज्ञा उत्पन्न होवै है। तहां अतीत अनागत दूर व्यवहित सूक्ष्म इत्यादिक सर्व पदार्थोंकूं विषय करणेहारा जो योगीका प्रत्यक्ष है ताका नाम ऋतंभरा प्रज्ञा है। ऐसी ऋतंभराप्रज्ञाविषे स्थित योगीकूं निर्विकल्पक समाधि प्राप्त होता नहीं। यातैं ता ऋतंभराप्रज्ञाकूं भी निरोध करिकै ता संप्रज्ञातसमाधिके अभ्यासकूं करणेहारे योगीकूं आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति होइके परवैराग्य उत्पन्न होवै है। ता परवैराग्यका स्वरूप पूर्व द्वितीय परिच्छेदविषे कथन करि आये हैं। तिस परवैराग्यतैं अनंतर भी इस पुरुषकूं अभ्यास करणेयोग्य है तहां किसी भी उपाय करिकै मैं सर्व वृत्तियोंके निरोधरूप असंप्रज्ञात समाधिविषे स्थित होवों या प्रकारका जो उत्साहरूप प्रयत्न है ताका नाम अभ्यास है। यह ही अभ्यासका लक्षण पतंजलि भगवान्ने योगसूत्रोंविषे 'तत्र स्थितौ प्रयत्नोऽभ्यासः' इस सूत्र करिकै कथन कऱ्या है। ता उत्साहरूप प्रयत्नके भी निरोध हुए सर्व वृत्तियोंका निरोध होवै है। सो सर्व वृत्तियोंका निरोध ही असंप्रज्ञात समाधि कह्या जावै है। शंका—ता उत्साहरूप प्रयत्नके निरोधविषे दूसरा कोई साधन है अथवा नहीं। तहां जो प्रथम पक्ष अंगीकार करोगे तौ अनवस्था दोषकी प्राप्ति होवैगी। काहेतैं ता उत्साहरूप प्रयत्नके निरोधवास्तैं अंगीकार कऱ्या जो दूसरा साधन है ताके विद्यमान हुए सो असंप्रज्ञात समाधि होवैगा नहीं। यातैं ता साधनके विरोधवास्तैं कोई तीसरा साधन मानणा होवैगा। ता तीसरं

साधनके निरोधवासतैं कोई चतुर्थ साधन मानणा होवैगा। इस प्रकार आगे आगे साधनोंकी धारा मानणेविषे अनवस्था दोषकी प्राप्ति होवैगी। और ता प्रयत्नके निरोधका कोई साधन नहीं है यह द्वितीय पक्ष जो अंगीकार करोगे तौ साधनतैं विना ता प्रयत्नका निरोध ही नहीं संभवैगा। और जो कहो सो प्रयत्न आप ही आपका निरोधक होवै है सो भी संभवता नहीं। काहेतैं आपणे करिकै आपणा निरोध अत्यंत विरुद्ध है। और लोकविषे भी ऐसा देखणेविषे आवता नहीं। समाधान—सो उत्साहरूप प्रयत्न सर्व वृत्तियोंके निरोधकूं करता हुआ आपणे निरोधकूं भी आप ही करै है जैसे कतकरज जलके मृत्तिकाकूं निवृत्त करिकै आप भी आपे ही निवृत्त होइ जावै है ता कतकरजके निवृत्त करणेवासतैं कोई दूसरे साधनकी अपेक्षा होती नहीं। तैसे ता उत्साहरूप प्रयत्नके निरोध करणेवासतैं कोई दूसरे साधनकी अपेक्षा होती नहीं। यातैं अनवस्था दोषकी तथा दृष्ट विरोधदोषकी प्राप्ति होवै नहीं। किंवा यह उक्त असंप्रज्ञात समाधिका स्वरूप अन्य शास्त्रविषे भी कह्या है। तहां श्लोक—मनसो वृत्तिशून्यस्य ब्रह्माकारतया स्थितिः। असंप्रज्ञातनामासौ समाधिरभिधीयते ॥ १ ॥ प्रशांतवृत्तिकं चित्तं परमानंददीपकम्। असंप्रज्ञातनामासौ समाधिर्योगिनां प्रियः' ॥ २ ॥ अर्थ—सर्व वृत्तियोंतैं शून्य मनकी जा ब्रह्माकारतारूपतैं स्थिति है सा स्थिति ही योगशास्त्रवेत्ता पुरुषोंने असंप्रज्ञातसमाधि नाम करिकै कही है ॥ १ ॥ किंवा उक्त अभ्यास करिकै निवृत्त होगई हैं सर्व वृत्तियां जिसकी ऐसा जो परमानंदका प्रकाशक चित्त है सोई ही योगी जनोंकूं प्रिय असंप्रज्ञात समाधि है इति। अब ता असंप्रज्ञातसमाधिका अन्य साधन भी कहै हैं सो असंप्रज्ञात समाधि पूर्व उक्त रीतिसैं केवल परवैराग्यतैं ही नहीं प्राप्त होवै है किंतु ईश्वरके

प्रणिधानतैं भी सो समाधि प्राप्त होवै है। तहां योगसूत्र 'ईश्वर प्रणिधानाद्वा' अर्थ–सो असंप्रज्ञात समाधि पूर्व :उक्त क्रमतैं भी प्राप्त होवै है तथा ईश्वर प्रणिधानतैं भी प्राप्त होवै है अब ता ईश्वर-प्रणिधानके स्वरूप कहणेवासतैं प्रथम ईश्वरका स्वरूप वर्णन करे हैं। तहां योगसूत्र 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टपुरुषविशेष ईश्वरः' अर्थ–क्लेश १ कर्म २ विपाक ३ आशय ४ इन चारों करिकै असंबद्ध जो पुरुष विशेष है ताका नाम ईश्वर है तहां प्रथम क्लेश अविद्या १ अस्मिता २ राग३द्वेष४अभिनिवेश५इस भेद करिकै पंच प्रकारका होवै है सो पंचप्रकारका क्लेश प्रथम परिच्छेदविषे निरूपण करि आये हैं। और कर्म तौ शुक्ल१कृष्ण२ मिश्र३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां शास्त्रविहित पुण्य कर्मका नाम शुक्ल कर्म है और शास्त्र निषिद्ध पाप कर्मका नाम कृष्ण कर्म है और पुण्य पाप दोनोंका नाम मिश्रकर्म है। यह तीन प्रकारका कर्म तौ अयोगी पुरुषोंका होवै है और योगी पुरुषोंका तौ अशुक्ल कृष्ण यह चतुर्थ कर्म होवै है। यह उक्त अर्थ पतंजलि भगवान्‌ने 'कर्माशुक्लकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्' इस सूत्र करिकै कथन कऱ्या है और कर्मके फलका नाम विपाक है। सो विपाक जाति १ आयुष २ भोग३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। और ता कर्मफलके भोग-जन्य जे संस्काररूप वासना हैं ताका नाम आशय है ऐसे क्लेश कर्म विपाक आशय इन चारों करिकै संबद्ध जीव होवै है। और ईश्वर तौ तिन चारों करिकै असंबद्ध होवै है तथा सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् होवै है इति। अब ता ईश्वर प्रणिधानका स्वरूप वर्णन करे हैं। तहां योगसूत्र 'तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थभावनम्' अर्थ–ता उक्त ईश्वरका वाचक प्रणव शब्द है ता ॐकाररूप प्रणवका जो जप है तथा मांडूक्य उपनिषद् पंचीकरण वार्तिक उक्त प्रकारतैं ता प्रणवके अर्थका जो चिंतन है ताका नाम ईश्वर प्रणिधान है सो

प्रणव अर्थके चिंतनका प्रकार पूर्व प्रथम परिच्छेदविषे निरूपण करि आये हैं इति । अब अन्य प्रकारतैं दृष्टांत सहित ता प्रणवशब्दके अर्थकूं कहे हैं।तहां'तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहं'इस श्रुति विषे स शब्दकरिके परमात्माका कथन कऱ्या है। और'अहं शब्द करिकै प्रत्यक् आत्माका कथन कऱ्या है। तहां'सः अहम्' इन दोनों शब्दोंका परस्पर सामानाधिकरण्य है । यातैं तिन दोनों शब्दोंनैं ता ब्रह्म आत्माका एकत्व ही कथन करता है यातैं'सोऽहम्' इस वाक्यका जैसे परमात्मा मैं हूं या प्रकारका जीव ब्रह्मका एकत्वरूप अर्थ है तैसे ता ॐकाररूप प्रणवका भी सो जीव ब्रह्मका एकत्व ही अर्थ है सो दिखावै हैं ।'सोऽहम्'इस वाक्यविषे व्याकरणकी रीतिसे सकार हकार इन दोनों वर्णोंके लोप किये हुए बाकी ॐअंऐसा वाक्य रहे है । ताके विषे भी व्याकरणकी रीतिसे पूर्वरूपनामा संधि करिकै अकारके लोप किये हुए ॐ ऐसा शब्द सिद्ध होवै है । यह वार्त्ता अन्य शास्त्रविषे भी कही है। तहां श्लोक'सकारं च हकारं च लोपयित्वा प्रयोजयेत् । संधिं च पूर्वरूपाख्यं ततोऽसौ प्रणवोभवेत्' अर्थ— 'सोऽहम्'इस वाक्यविषे सकारकूं तथा हकारकूं लोप करिकै तिसतैं अनंतर पूर्वरूपनामा संधिके किये हुए ता सोऽहं शब्दते ॐ यह प्रणव सिद्ध होवै है इति । यातैं'सोऽहम्'शब्दकी न्याईं ॐ इस प्रणव शब्दका भी सो परमात्मा मैं हूं यह ही अर्थ सिद्ध होवै है । इस प्रकारके जीव ब्रह्मका एकत्वरूप प्रणवके अर्थका जो चिंतन है ताका नाम ईश्वर प्रणिधान है। इस प्रकारके ईश्वर प्रणिधानतैं इस अधिकारी पुरुष ऊपरि ईश्वरका अनुग्रह होवै है । ता ईश्वरके अनुग्रहतैं इस पुरुषकूं ता असंप्रज्ञात समाधिकी प्राप्ति अवश्य होवै है । यातैं ता पर वैराग्यकी न्याईं यह ईश्वर प्रणिधान भी ता असंप्रज्ञात समाधिका साधन है इति ।

अथवा इस अधिकारी पुरुषनै भूमिका जयक्रमकरिकै ता समाधिका अभ्यास करणा। सो भूमिकावोंके जयका क्रम श्रुतिविषे कथन कऱ्या है। तहां श्रुति'यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञानमात्मनि। ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेच्छांतआत्मनि'.अर्थ–यह लौकिक वैदिक सर्व शब्दोंके उच्चारणका हेतुरूप जो वाक्इंद्रिय है तिस वाक् इंद्रियकूं यह अधिकारी पुरुष मनविषे लय करै अर्थात् वागादिक इंद्रियोंके सर्व व्यापारोंका परित्याग करिकै केवल मनके व्यापार-मात्र करिकै स्थित होवै है। तथापि इस अधिकारी पुरुषनै समाधिके उत्पत्तिकालपर्यंत प्रणवमंत्रके जपका परित्याग नहीं करणा किंतु ता प्रणवजपतैं अन्य वाक् व्यापारतैं रहित होणा। इस प्रकार गोमहिषादिकोंकी न्याई जो वाणीका सम्यक् निरोध है सो निरोध प्रथम भूमिका कही जावै है।१।ता प्रथम भूमिकाके जय हुएतैं अनंतर ता मनका निरोधरूप दूसरी भूमिकाविषे प्रयत्न करै अर्थात् ता संकल्प विकल्परूप मनकूं ज्ञानात्माविषे लय करै। तहां 'मनुष्योऽहं ब्राह्मणोऽहम्' इत्यादिक जो विशेष अहंकार है ताका नाम ज्ञानात्मा है ता ज्ञानात्ममात्ररूप करिकै स्थित होवै है। इस प्रकार सर्व संकल्प विकल्पोंका परित्याग करिकै बालमूकादिकोंकी न्याई जा निर्मनस्ता है सा द्वितीय भूमिका कही जावै है॥ २॥ ता द्वितीय भूमिकाके जय हुएतैं अनंतर यह अधिकारी पुरुष ता विशेष अहंकारका निरोधरूप तृतीय भूमिकाविषे प्रयत्न करै। अर्थात् ता विशेष अहंकारकूं महत् आत्मविषे लय करै। अर्थात् 'मनुष्योऽहं ब्राह्मणोऽहम्'इत्यादिकविषे अहंकारका परित्याग करिकै अस्मिता-मात्र बाकी रहै तहां अहंकारकी जा सूक्ष्म अवस्था है ताका नाम अस्मिता है। इसी अस्मिताकूं महत्तत्त्व कहै हैं तथा सूक्ष्म अहंकार कहै हैं। इस प्रकार आलसी उदासीनकी न्याई जो विशेष अहंकारतैं

रहितपणा है सा तृतीय भूमिका कही जावै है ॥ ३ ॥ ता तृतीय भूमिकाके जय हुएतैं अनंतर यह अधिकारी पुरुष ता अस्मिताका निरोधरूप चतुर्थ भूमिकाविषे प्रयत्न करे अर्थात् ता अस्मितारूप महत् आत्माकूं एकरस चैतन्यरूप शांत आत्माविषे लय करै अर्थात् ता अस्मिताका भी परित्याग करिकै केवल चैतन्यमात्र बाकी रहे। यद्यपि अन्य श्रुतिविषे महत्तत्त्वतैं अव्यक्त पर कह्या है और ता अव्यक्ततैं चैतन्य पुरुष पर कह्या है । यातैं इहां भी ता महत्तत्त्वका अव्यक्तविषे ही लय कहणा उचित था तथापि कारणविषे निरुद्ध हुआ कार्य लयकूं ही प्राप्त होवै है । यातैं ता अव्यक्तरूप कारणविषे ता महतत्त्वरूप कार्यके लय करणेतैं इस पुरुषकूं निद्रा ही प्राप्त होवैगी । सो निरोधसमाधि प्राप्त होवैगा नहीं। या कारणतैं ता अव्यक्तका परित्याग करिकै ता महत्तत्त्वका चैतन्य आत्माविषे लय कह्या है। इस प्रकार चैतन्य आत्माविषे जो चित्तका सर्व प्रकारतैं निरोध है सो निरोध ही असंप्रज्ञात समाधिरूप चतुर्थ भूमिका कही जावै है ॥ ४ ॥ इस प्रकार उक्त चारि भूमिकावोंविषे पूर्व पूर्व भूमिकाके जय हुएतैं अनंतर उत्तर उत्तर भूमिका जयक्रम करिकै जो समाधिका अभ्यास है तिसतैं भी सो असंप्रज्ञात समाधि प्राप्त होवै है इति । तहां पूर्व कथन कर्‍ये जे समाधि अभ्यासके प्रकार तिनोंविषे कोई प्रकारके समाधि अभ्यास करिकै जो अंतःकरणके अतिसूक्ष्मताका आपादन है इसीका नाम मनोनाश है। और ता सूक्ष्म मन करिकै इस अधिकारी पुरुषकूं प्रथम त्वंपदके लक्ष्य अर्थरूप प्रत्यक् आत्माका साक्षात्कार होवै है। तिसतैं अनंतर तत्त्वमसि आदिक महावाक्य करिकै 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारका ता प्रत्यक् आत्माके ब्रह्मरूपत्वका साक्षात्कार होवै है । इस प्रकारतैं

ता समाधि अभ्यासकूं भी ब्रह्मसाक्षात्कारकी साधनता है इति ।
शंका श्रीव्यास भगवान्‌ने ब्रह्मसूत्रोंविषे 'एतेन योगः प्रत्युक्तः'
इस सूत्र करिकै सांख्य शास्त्रकी न्याईं योगशास्त्रका भी खंडन्
कऱ्या है और सो पूर्व उक्त समाधिका अभ्यास योगशास्त्रविषे
ही कथन कऱ्या है । यातैं ता समाधि अभ्यासकूं ब्रह्मसाक्षात्कारकी
साधनता मानणेविषे ता व्याससूत्रका विरोध होवैगा । समाधान–
सांख्यशास्त्रकी न्याईं योगशास्त्रवाले भी अचेतन प्रधानकूं ही
महत्तत्त्वादिक क्रम करिकै जगत्‌का कारण माने हैं सो प्रधान कारण
वाद सिद्धांतविषे अंगीकार है नहीं । यातैं ता प्रधानकारणवादके
खंडन अभिप्राय करिकै ही ता सूत्रकारने योगशास्त्रका खंडन
कऱ्या है कोई निरोध समाधिरूप योगके खंडन अभिप्राय करिकै
ता योगशास्त्रका खंडन नहीं कऱ्या । जिस कारणतैं सिद्धांतविषे भी
चित्तके निरोधतैं रहित विक्षिप्त पुरुषकूं ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्ति
संभवती नहीं यातैं ब्रह्मसाक्षात्कारवासतैं सो चित्तका निरोध
अवश्य अपेक्षित है । किंवा 'समाध्यभावाच्च। अपि संराधने प्रत्य-
क्षानुमानाभ्यां निदिध्यासितव्यः । विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वन्ति । ध्या-
नेनात्मनि पश्यंति । ध्यानयोगेन संपश्यन्नात्मन्यात्मानमात्मना'
इत्यादिक सूत्र श्रुति स्मृतिवचनों करिक भी ता निरोधरूप योगकूं
ब्रह्म साक्षात्कारकी साधनता सिद्ध होवै है । यातैं महावाक्यजन्य-
ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्ति विषे सो समाधि अभ्यास अवश्य अपे-
क्षित है । शंका–ता समाधिकूं जो ब्रह्मसाक्षात्कारका साधन मानोंगे
तौ ता समाधितैं रहित पुरुषोंकूं सो ब्रह्मसाक्षात्कार नहीं होणा चाहिये
और वासिष्ठादिक ग्रंथोंविषे जनकादिकोंकूं ता समाधितैं विना ही
केवल सिद्धगीताके श्रवणमात्रतैं ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्ति कथन
करी है सो सर्व असंगत होवैगा । समाधान–केवल समाधि
करिकै ही सो ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है यह नियम नहीं है । किंतु

विवेक करिकै भी सो ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है तहां अंतःकरणका तथा ता अंतःकरणके वृत्तियोंका प्रकाशक जो त्वं पदका लक्ष्य अर्थ-रूप प्रत्यक् साक्षी है ता साक्षी आत्माकूं अन्नमयादिक पंचकोशोंतैं पृथक् करिकै निश्चय करणा याका नाम विवेक है। ता विवेक करिकै इस अधिकारी पुरुषकूं तत्त्वमसि आदिक महावाक्यतैं अहं ब्रह्मास्मि या प्रकारका ब्रह्म साक्षात्कार अवश्य होवै है। यातैं ता समाधिकी न्याइं सो विचाररूप विवेक भी ता ब्रह्मसाक्षात्कारका हेतु है इहां यह तात्पर्य है। ता ब्रह्म साक्षात्कारके दो प्रकारके अधिकारी होवै हैं। एक तौ बहुव्याकुल चित्तवाले होवै हैं और दूसरे अव्याकुल चित्तवाले होवै हैं। तहां प्रथम अधिकारियोंकूं तौ ता निरोधसमाधिके अभ्यासतैं ही सो ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है और दूसरे अधिकारियोंकूं तौ ता समाधिके अभ्यासतैं विना ही केवल विचारमात्र करिकै सो ब्रह्मसाक्षात्कार होवै है। यह वार्त्ता अन्य ग्रंथविषे भी कही है। तहां श्लोक 'अव्याकुलधियांमोहमात्रेणाच्छादितात्मनाम् । सांख्यनाम विचारोऽयं मुख्यो झटिति सिद्धिदः' अर्थ-जिन पुरुषोंकी बुद्धि व्याकुलतातैं रहित है तथा अज्ञानमात्र करिकै आवृत है आत्मा जिनोंका ऐसे पुरुषोंकूं यह सांख्य नाम विचार ही ब्रह्मसाक्षात्कारका मुख्य साधन है।जिस कारणतैं सो सांख्यनामा विचार इस अधिकारी पुरुषकूं ता समाधि अभ्यासकी अपेक्षा करिकै शीघ्र ही ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति करे है इति। इस प्रकार समाधिकूं तथा विचाररूप विवेककूं अधिकारीके भेद करिकै अर्थवत्ता होणेतैं विकल्प करिकै ब्रह्मसाक्षात्कारकी साधनता है। यातैं समाधितैं विना केवल विचारमात्रतैं ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिकूं कथनकरणेहारे वचनोंका तथा समाधितैं ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिकूं कथन करणेहारे वचनोंका परस्पर विरोध होवै नहीं

किंतु उक्त अधिकारीके भेद करिकै ते दोनों प्रकारके वचन सार्थक हैं इति। किंवा यह उक्त अर्थ श्रीवसिष्ठ भगवान्‌ने भी कथन कर्‌या है। तहां श्लोक'द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं च राघव। योगस्तद्वृत्तिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्॥ १॥ असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचिज्ज्ञाननिश्चयः। प्रकारौ द्वौ ततो देवो जगाद परमेश्वरः'॥ २॥ अर्थ—हे राघव! ब्रह्मसाक्षात्कारविषे उपयोगी जा चित्तकी सूक्ष्मता है ता सूक्ष्मताका आपादनरूप जो चित्तका नाश है ता चित्तनाशके दो कारण होवैं हैं। एक तौ योग कारण होवै है दूसरा विवेक कारण होवै है। तहां चित्तके सर्व वृत्तियोंका जो निरोध है ताका नाम योग है और अन्नमयादिक पंचकोशोंतैं प्रत्यक् आत्माकूं जो पृथक् करिकै देखणा है ताका नाम विवेक है। तिन दोनों उपायोंविषे किसी अधिकारीकूं तौ सो योग कठिन पडे है और सो विवेक सुगम पडे है और किसी अधिकारीकूं तौ सो विवेक कठिन पडे है और सो योग सुगम पडे है। इसी कारणतैं गीताविषे श्रीभगवान् ता अधिकारीके भेदतैं ते दोनों प्रकार कथन करता भया है। तहां गीताके तृतीय अध्यायविषे 'इंद्रियाणि पराण्याहुः' इस वचनतैं लेके 'कामरूपं दुरासदम्' इस वचनपर्यंत श्रीभगवान् ता विवेकरूप उपायकूं कथन करता भया है और गीताके षष्ठ अध्यायविषे ता योगरूप उपायकूं कथन करता भया है और गीताके पंचम अध्यायविषे 'यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते' इत्यादिक वचन करिकै ता विवेकरूप सांख्य विचारकूं तथा योगकूं एक ही फलकी साधनता कथन करता भया है इति। शंका—ता योगाभ्यास करिकै साध्य मनोनाशकूं जो ब्रह्मसाक्षात्कारका हेतु मानोगे तौ ता मनोनाश करिकै ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्तितैं अनंतर इस विद्वान् पुरुषकूं सर्व बंधकी निवृत्ति होइकै कृतकृत्यता ही होवैगी। ऐसे विद्वान् पुरुषकूं पुनः वासनाक्षयादिकोंके अभ्यास

करणेका कोई प्रयोजन नहीं है। समाधान—जिस अधिकारी पुरुषकूं ता योगाभ्यास पूर्वक महावाक्यतैं ब्रह्मसाक्षात्कार उत्पन्न भया है तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं तौ ता ब्रह्मसाक्षात्कारतैं अनंतर ता तत्त्वज्ञान वासना क्षयमनोनाशके अभ्यासकी अपेक्षा होती नहीं। परंतु जिस अधिकारी पुरुषकूं ता विवेकपूर्वक महावाक्यनैं सो ब्रह्मसाक्षात्कार उत्पन्न भया है तिस पुरुषकूं ता ब्रह्मसाक्षात्कारतैं अनंतर प्रारब्ध भोग करिकै आपादित कर्तृत्वभोक्तृत्वादिकरूप बंध प्रतीत होवै है। बंधप्रतीतिके निवृत्ति करणेवासतैं सो तत्त्वज्ञान वासनाक्षय मनोनाशका अभ्यास अवश्य अपेक्षित है। तिन तीनोंके अभ्यासतैं ही तिस पुरुषकूं जीवन्मुक्ति सिद्ध होवै है। यातैं तत्त्वज्ञान वासनाक्षय मनोनाश यह तीनों ता जीवन्मुक्तिके साधन हैं यह सिद्ध भया। इतनैं कहणे करिकै साधनोंके अभावतैं ता जीवन्मुक्तिका अभाव है यह वादीका कहणा खंडन हुआ इति। अब ता जीवन्मुक्तिके प्रयोजनका वर्णन करे हैं। तहां ता जीवन्मुक्तिके ज्ञानरक्षा १ तप २ विसंवादाभाव ३ दुःखनिवृत्ति ४ सुखाविर्भाव ५ यह पंच प्रयोजन होवैं हैं। तहां उत्पन्न भया है ब्रह्मसाक्षात्कार जिसकूं ऐसा जो तत्त्ववेत्ता पुरुष है तिस तत्त्ववेत्ता पुरुषकूं जो पुनः संशय विपर्ययकी अनुत्पत्ति है ताका नाम ज्ञानरक्षा है, सा ज्ञानरक्षा जीवन्मुक्तिके अभ्यासतैं ही सिद्ध होवै है। यातैं ता ज्ञानरक्षाकूं जीवन्मुक्तिका प्रयोजनपणा संभवै है। शंका—जिस पुरुषकूं वेदांत शास्त्ररूप प्रमाण करिकै ब्रह्मसाक्षात्कार उत्पन्न भया है तिस पुरुषकूं ता साक्षात्कारतैं अनंतर सो संशय विपर्यय प्राप्त ही नहीं है और प्राप्त वस्तुका ही निषेध होवै है अप्राप्त वस्तुका निषेध होता नहीं। यातैं सो ज्ञानरक्षारूप जीवन्मुक्तिका प्रयोजन संभवना नहीं। समाधान—यद्यपि शास्त्रप्रमाणविषे कुशल जे मुख्य अधिकारी हैं तिनोंकूं ता ब्रह्मसाक्षात्कारतैं अनंतर सो संशय विपर्यय संभवता नहीं तथापि

अन्य अधिकारियोंकूं निमित्तके वशतैं सो संशय विपर्यय संभवै है। तहां भ्रांत पुरुषोंके वचन ही ता संशय विपर्ययविषे निमित्त हैं सो दिखावै हैं। तहां कैएक भ्रांत पुरुष तौ यह कहे हैं जे पुरुष आपणेकूं ब्रह्मज्ञानी माने हैं तिन पुरुषोंविषे भी अज्ञानी पुरुषोंकी न्याईं 'मनुष्योऽहं ब्राह्मणोऽहम्' या प्रकारका व्यवहार देखणेविषे आवै है तथा रागद्वेषादिक भी देखणेविषे आवै हैं। जो कदाचित् इस पुरुषकूं वेदांत श्रवणादिकोंतैं ब्रह्मका अपरोक्ष साक्षात्कार होता तौ ते रागद्वेषादिक नहीं होते। यातैं तिन श्रवणादिकोंतैं इस पुरुषकूं आपातज्ञान ही होवै है। इस प्रकारके भ्रांत, वाचाल पुरुषोंके वचनोंकूं श्रवण करिकै ता अव्युत्पन्न अधिकारीकूं उत्पन्न हुए साक्षात्कारविषे भी संशय विपर्यय होइ जावै है और कैएक भ्रांत पुरुष तौ ऐसा कहे हैं। मरणपर्यंत वेदांतके श्रवणादिकों करिकै भी इस पुरुषकूं ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होता नहीं किंतु तिन वेदांत वाक्योंतैं इस पुरुषकूं परोक्षज्ञान ही उत्पन्न होवै है। जिस कारणतैं तिन पुरुषोंविषे ता परोक्षज्ञानका ही चिह्न देखणेविषे आवै है। अपरोक्षज्ञानका कोई चिह्न देखणेविषे आता नहीं। किंवा जो कदाचित् इस पुरुषकूं इदानीं कालविषे भी सो ब्रह्मसाक्षात्कार होता होवै तौ ता साक्षात्कार करिकै आवरण सहित अज्ञानके निवृत्त हुए ता ज्ञानवान् पुरुषकूं ईश्वरकी न्याईं सर्वज्ञतादिक होणे चाहिये। जिस कारणतैं शुक सनकादिक पूर्व ज्ञानियोंविषे ईश्वरकी न्याईं ते सर्वज्ञतादिक धर्मशास्त्रतैं प्रतीत होवैं हैं और जो कोई ऐसा कहै ते सर्वज्ञतादिक तपका वा योगका फल है ज्ञानका फल नहीं है ते शुक सनकादिक ज्ञानी तपयोगवाले हुए हैं। यातैं तिनोंविषे सर्वज्ञतादिक होते भये हैं और इदानीं कालके ज्ञानवान् ता तपयोगतैं रहित है। यातैं तिनोंविषे ते सर्वज्ञतादिक धर्म नहीं हैं सो यह कहणा भी संभवता नहीं। काहेतैं तपयोगवाले पुरुषोंकूं ही आत्म-

ज्ञान होवै है । ता तपयोगतैं रहित पुरुषोंकूं सो आत्मज्ञान ही होता नहीं। यातैं इदानीं कालविषे श्रवणादिकोंतैं उत्पन्न हुआ ज्ञान आपातरूप ही होवै है । अज्ञानकी निवृत्ति करणेविषे असमर्थ ज्ञानका नाम आपातज्ञान है। इस प्रकारके भ्रांत मूर्ख लोगोंके वचनोंकूं श्रवण करिके ता अव्युत्पन्न अधिकारीकूं उत्पन्न हुए साक्षात्कारविषे भी संशय विपर्यय होइ जावै है । और जभी ते अधिकारी पुरुष ब्रह्मसाक्षात्कारतैं अनंतर पूर्व उक्त रीतिसे ता जीवन्मुक्तिका अभ्यास करे है तभी तिन अधिकारी पुरुषोंकूं तिन भ्रांत पुरुषोंका संग ही होता नहीं । यातैं ते संशय विपर्यय उत्पन्न होते नहीं यह ही ता ज्ञानकी रक्षा है। यातैं ता ज्ञानरक्षाकूं जीवन्मुक्तिका प्रयोजनपणा संभवै है किंवा अस्मदादिक अकृतोपास्ति पुरुषोंकूं ब्रह्म साक्षात्कारतैं अनंतर उक्त निमित्ततैं ते संशयादिक होवै हैं इस वार्त्ताविषे कोई आश्चर्य नहीं है । किंतु पूर्व शुक राघव निदाघ भगीरथ आदिकोंकूं भी ता अपरोक्षज्ञानतैं अनंतर ते संशयादिक होते भये हैं । तहां शुकदेवकूं प्रथम आप ही विवेक करिके ब्रह्मसाक्षात्कार उत्पन्न होता भया । पश्चात् ता ज्ञानविषे संशयकूं प्राप्त होइकै सो शुकदेव आपणे व्यास पिताके समीप जाइकै पूँछता भया । तिस शुकदेवके प्रति सो व्यास भगवान् तिसी तत्त्वका उपदेश करता भया तोभी ता शुकदेवका सो संशय नहीं निवृत्त होता भया । तिसतैं अनंतर सो व्यास भगवान् ता शुकदेवकूं राजा जनकके समीप भेजता भया । तहां जनकके उपदेशतैं सो शुकदेव ता संशयतैं रहित होता भया तथा निर्विकल्पक समाधिकूं प्राप्त होइकै मुक्तिकूं प्राप्त होता भया। यह कथा वासिष्ठरामायणविषे प्रसिद्ध है । इस प्रकार निदाघादिकोंकी कथा भी पुराणादिकोंविषे प्रसिद्ध है । शंका—ता ज्ञानवान् पुरुषकूं सो संशय विपर्यय रहो ता करिके तिसकी क्या हानि है । समाधान—

जैसे अज्ञान मोक्षका प्रतिबंधक होवै है तैसे सो संशय विपर्यय भी मोक्षका प्रतिबंधक ही होवै है । यह वार्त्ता श्रीभगवान्ने भी गीताविषे 'अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति' इस वचनकरिकै कथन करी है । यातैं इस विद्वान् पुरुषने ता जीवन्मुक्तिके अभ्यास करिकै ता संशय विपर्ययकी निवृत्ति अवश्य करी चाहिये इति । शंका–जिस अधिकारी पुरुषकूं आत्माका तौ संशय विपरीत भावनातैं रहित दृढ अपरोक्षज्ञान भया है और व्यवहारकी बाहुल्यता करिकै सो पूर्व उक्त जीवन्मुक्तिका अभ्यास भया नहीं तिस अधिकारी पुरुषका मोक्ष होवै है अथवा नहीं होवै है । तहां तिसका मोक्ष होवै है । यह प्रथम पक्ष जो अंगीकार करो तौ ता जीवन्मुक्तिके अभ्यासकी व्यर्थता होवैगी । काहेतैं मोक्षतैं अधिक कोई पदार्थ है नहीं सो मोक्ष तौ आत्मज्ञान करिकै प्राप्त होवै है यातैं सो जीवन्मुक्तिका अभ्यास व्यर्थ ही है और दृढ अपरोक्षज्ञानवालेका मोक्ष नहीं होवै है यह द्वितीय पक्ष जो अंगीकार करो तौ आत्मज्ञानतैं मोक्षकी प्राप्तिकूं कथन करणेहारे 'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्' इत्यादिक श्रुति स्मृतिरूप शास्त्रका विरोध होवैगा । समाधान–यद्यपि दृढ अपरोक्षज्ञानीकूं मोक्षकी प्राप्ति अवश्य होवै है तथापि ता जीवन्मुक्तिके अभ्यासतैं विना दृष्टसुख प्राप्ति होती नहीं । यातैं ता दृष्टसुखकी प्राप्तिवासतै ता ज्ञानवान्कूं भी सो जीवन्मुक्तिका अभ्यास संभवै है । अर्थात् सो दृष्टसुख ही ता जीवन्मुक्तिका अभ्यासका प्रयोजन है । और जीवन्मुक्ति पुरुषोंकूं भी भूमिकाकी तारतम्यता करिकै ता दृष्टसुखकी तारतम्यता ही होवै है । तहां श्रुति 'आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः' अर्थ–आत्माविषे है अपरोक्ष अनुभव क्रीडा जिसकी ताका नाम आत्मक्रीड है अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारके अपरोक्षज्ञानवाले विद्वान्का नाम आत्मक्रीड है इसी आत्मक्रीड विद्वान्कूं शास्त्रविषे ब्रह्म-

वित् इस नाम करिकै कथन करे हैं और आत्माविषे है विजातीय वृत्तियोंके तिरस्कारपूर्वक साक्षात्काररूप रति जिसकी ताका नाम आत्मरति है । अर्थात् आत्माके आनंदका निरंतर अपरोक्ष अनुभव करणेहारेका नाम आत्मरति है । इसी आत्मरति विद्वान्कूं शास्त्रविषे ब्रह्मविद्वर इस नाम करिकै कथन करे हैं और ब्रह्मके ध्यानका नाम क्रिया है । सो ब्रह्मका ध्यान जिसकूं प्राप्त भया है ताका नाम क्रियावान् है । अर्थात् ब्रह्मात्म एकत्वविषे समाधिवाले पुरुषका नाम क्रियावान् है । इसी क्रियावान् विद्वान्कूं शास्त्रविषे ब्रह्मविद्वरीयान् इस नाम करिकै कथन करे हैं । यह ब्रह्मविद्वरीयान् आप करिकै उत्थानकूं प्राप्त होता नहीं किंतु परकरिकै उत्थानकूं प्राप्त होवै है और जो विद्वान् पुरुष आप करिकै वा पर करिकै उत्थानकूं प्राप्त होवै है सो विद्वान् पुरुष ब्रह्मविद्वरिष्ठ इस नाम करिकै कह्या जावै है इति । तहां ब्रह्मवित् १ ब्रह्मविद्वर २ ब्रह्मविद्वरीयान् ३ ब्रह्मविद्वरिष्ठ ४ यह श्रुति उक्त चारों विद्वान् वसिष्ठ भगवान् ज्ञानकी सप्तभूमिकावोंविषे चतुर्थ भूमिकातैं लैके यथाक्रमतैं कथन कऱ्ये हैं ते सप्तभूमिका यह हैं । श्लोक 'ज्ञानभूमिः शुभेच्छा स्यात्प्रथमा समुदाहृता । विचारणा द्वितीया स्यात्तृतीया तनुमानसा ॥ १ ॥ सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका । पदार्थाभाविनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता' ॥ २ ॥ अर्थ—शुभइच्छा १ विचारणा २ तनुमानसा ३ सत्त्वापत्ति ४ असंसक्ति ५ पदार्थाभाविनी ६ तुरीया ७ यह सप्त ज्ञानकी भूमिका कहीं जावैं हैं । तिन सप्त भूमिकावोंविषे प्रथम शुभ इच्छा तौ श्रवणरूप है और दूसरी विचारणा मननरूप है। और तीसरी तनुमानसा निदिध्यासनरूप है। ता श्रवण मनन निदिध्यासनका स्वरूप पूर्व द्वितीय परिच्छेदविषे कथन करि आये हैं यातैं ते तीनों भूमिका साधनरूप हैं और सत्त्वापत्तिनामा चतुर्थ भूमिकाविषे इस पुरुषकूं ब्रह्मसाक्षात्कार उत्पन्न होवै है । या

कारणतैं ही ता चतुर्थी भूमिकाविषे स्थित पुरुषकूं ब्रह्मवित् कहे हैं । और पञ्चमी आदिक भूमिकाविषे स्थित ज्ञानवान् पुरुषोंकूं चित्तके विश्रांतिकी तारतम्यता करिकै ता दृष्ट सुखकी भी तारतम्यता होवै है । यातैं पञ्चमी भूमिकावाला तौ ब्रह्मविद्वर कह्या जावै है और षष्ठी भूमिकावाला तौ ब्रह्मविद्वरीयान् कह्या जावै है । और सप्तमी भूमिकावाला ब्रह्मविद्वरिष्ठ कह्या जावै है। तहां ब्रह्मविद्वर १ ब्रह्मविद्वरीयान् २ ब्रह्मविद्वरिष्ठ ३ यह तीनों जीवन्मुक्त कहे जावै हैं। तहाँ 'भूयश्चांते विश्वमायानिवृत्तिः ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः' इत्यादिक श्रुति स्मृति वचनोंने 'अहं ब्रह्मास्मि' या प्रकारके ब्रह्मज्ञान करिकै अज्ञानकी निवृत्ति कथन करी है। और 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति। ब्रह्मविदाप्नोति परम्। ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' इत्यादिक श्रुति स्मृति वचनोंने ब्रह्मज्ञानतैं ब्रह्मभावकी प्राप्ति कथन करी है। और अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक जा ब्रह्मभावकी प्राप्ति है तिसीका नाम मोक्ष है। सो मोक्ष ब्रह्मवित् १ ब्रह्मविद्वर २ ब्रह्मविद्वरीयान् ३ ब्रह्मविद्वरिष्ठ ४ इन चारोंकूं समान ही होवै है । ता मोक्षविषे किंचित्मात्र भी विलक्षणता नहीं है। परंतु सो दृष्टसुख तारतम्यता करिकै होवै है। यह वार्त्ता अन्य ग्रन्थविषे भी कही है। तहां श्लोक–'तारतम्येन सर्वेषां चतुर्णां सुखमुत्तमम् । तुल्या चतुर्णां मुक्तिः स्याद्दृष्टसौख्यं विशिष्यते' अर्थ–ब्रह्मविदादिक चारोंकूं तारतम्यता करिकै सुख होवै है और मुक्ति तौ चारोंकूं समान होवै है । ता मुक्तिविषे किंचित्मात्र भी विशेषता होती नहीं । किंतु ता दृष्ट सुखविषे ही विशेषता होवै है इति । अब ता जीवन्मुक्तिके तपरूप द्वितीय प्रयोजनका निरूपण करे हैं । तहां चित्तकी जा एकाग्रता है ताका नाम तप है यह तपका स्वरूप स्मृतिविषे भी कथन कर्या है। तहां श्लोक 'मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः । स ज्यायः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते' अर्थ–मनका तथा चक्षु आदिक इंद्रियोंका जो एका-

अपणा है यह ही परम तप है और योगवेत्ता पुरुषोंने भी सो चित्तकी एकाग्रतारूप धर्म ही अग्निहोत्रादिक सर्व धर्मोतैं श्रेष्ठ कह्या है इति । इसी एकाग्रतारूप योगकूं गीताविषे श्रीभगवान्‌ने 'तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः । कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ' इस वचन करिकै सर्व धर्मोतैं अधिक कह्या है । शंका—प्रारब्ध कर्मके भोग करिकै विक्षिप्त चित्तवाला जो ज्ञानवान् है तिसकूं सो चित्तकी एकाग्रतारूप तप कैसे होवैगा । समाधान—यद्यपि चतुर्थ भूमिकावाले ज्ञानवान् पुरुषकूं भी प्रपंचके मिथ्यात्व निश्चय करिकै तथा चैतन्य आत्माके सत्यत्व निश्चय करिकै सा चित्तकी एकाग्रता विद्यमान है तथापि ता ज्ञानवान्‌कूं प्रारब्ध कर्मके भोगकालविषे बाधितानुवृत्ति करिकै नामरूपात्मक प्रपंचकी प्रतीति होवै है । यातैं ता ज्ञानवान्‌कूं निरंकुश चित्तकी एकाग्रता संभवती नहीं और जीवन्मुक्त ज्ञानवान्‌का तौ योगाभ्यास करिकै मन नष्ट हो गया है । यातैं ता जीवन्मुक्त पुरुषकूं सर्व वृत्तियोंके अनुदयतैं सा निरंकुश चित्तकी एकाग्रता संभवै है । सो निरंकुश चित्तकी एकाग्रतारूप तप ही ता जीवन्मुक्तिका प्रयोजन है । शंका—सो जीवन्मुक्त पुरुषोंका तप किसविषे उपयोगी है । समाधान—सो जीवन्मुक्तोंका तप लोकसंग्रहवासतैं होवै है । तहां आप सदाचारविषे प्रवृत्त होइकै लोकोंकूं भी ता सदाचारविषे प्रवृत्त करणा याका नाम लोकसंग्रह है । ता लोकसंग्रहवासतै ही ता विद्वान् पुरुषके तपादिक होवै हैं यह वार्त्ता गीताविषे श्रीभगवान्‌ने भी 'लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि' इस वचन करिकै कथन करी है। तहां ता संग्रहका अधिकारी लोक शिष्य १ भक्त २ तटस्थ ३ इस भेद करिकै तीन प्रकारका होवै है। तहां शास्त्रप्रतिपादित सतमार्गविषे वर्त्तनेहारा शिष्य कह्या जावै

है । सो शिष्य तौ ब्रह्मवेत्ता गुरुने उपदेश कर्‍ये हुए मार्ग करिकै वेदांत शास्त्रके श्रवणादिकोंतैं प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकूं साक्षात्कार करता हुआ मुक्तिकूं ही प्राप्त होवै है । तहां श्रुति 'आचार्यवान्पुरुषो वेद तस्यतावदेव चिरंयावन्नविमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये' अर्थ—ब्रह्मवेत्ता आचार्यके शरणकूं प्राप्त हुआ शिष्य ही ब्रह्मकूं साक्षात्कार करे है और तिस ज्ञानवान् पुरुषकूं तब पर्यंत ही विदेह मोक्षविषे विलंब है जब पर्यंत भोग करिकै प्रारब्धकर्मतैं रहित नहीं भया ता प्रारब्धकर्मके निवृत्त हुएतैं अनंतर सो ज्ञानवान् विदेह मोक्षकूं प्राप्त होवै है इति । और ता जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुषका जो भक्त है सो भक्त भी ता ज्ञानवान् पुरुषके पूजन अर्चन करिकै तथा अन्नपान वस्त्रादिक पदार्थोंके देणे करिकै मनवांछित पदार्थोंकूं प्राप्त होवै है । तहां श्रुति 'यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान् । तं लोकं जयते तांश्च कामान् तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः' अर्थ-श्रद्धा भक्तिपूर्वक शुद्ध अंतःकरणतैं ज्ञानवान् पुरुषके पूजनादिकोंकूं करता हुआ यह भक्तजन जिस जिस लोकके प्राप्तिकी इच्छा करे है तथा जिन जिन पदार्थोंके प्राप्तिकी कामना करे है तिस तिस लोककूं तथा तिन तिन पदार्थोंकूं प्राप्त होवै है । यातैं संपदाकी इच्छावाला पुरुष श्रद्धा भक्ति करिकै ब्रह्मवेत्ता पुरुषके ही पूजनादिक करै इति । यह वार्त्ता स्मृतिविषे भी कथन करी है तहां श्लोक 'यद्येको ब्रह्मविद्भुंक्ते जगत्तर्पयतेऽखिलम् । तस्माद्ब्रह्मविदे देयं यद्यस्ति वस्तु किंचन' अर्थ—जिस पुरुषके गृहविषे एक भी ब्रह्मवेत्ता पुरुष जभी भोजन करे है तभी सर्व जगत्कूं तृप्त करे है अर्थात् सर्व जगतकी तृप्ति करणेतैं जो पुण्य होवै है सो पुण्य एक ब्रह्मवेत्ता पुरुषके भोजन करावणेतैं होवै है यातैं इस पुरुषके पास जो कोई अन्न वस्त्रादिक प्रिय वस्तु होवै सो वस्तु इस पुरुषने ता ब्रह्मवेत्ता पुरुषके ताईं

ही देणा योग्य है इति । यह वार्त्ता अन्य स्मृतिविषे भी कही है। तहां श्लोक'यत्फलं लभते मर्त्यः कोटिब्राह्मणभोजनैः । तत्फलं समवाप्नोति ज्ञानिनं यस्तु भोजयेत्। ज्ञानिभ्यो दीयते यच्च तत्कोटिगुणितं भवेत्'अर्थ—यह जीव कोटि ब्राह्मणोंके भोजन करावणे करिकै जिस फलकूं प्राप्त होवै है तिस फलकूं यह पुरुष एक ज्ञानवान् पुरुषके भोजन करावणे करिकै प्राप्त होवै है और ज्ञानवान् पुरुषके ताईं जो वस्तु दिया जावै है सो कोटिगुणा अधिक होवै है इति। इत्यादिक अनेक श्रुति स्मृति वचन ज्ञानवान् पुरुषकी सेवातैं मनवांछित पदार्थोंकी प्राप्तिकूं कथन करे हैं इति। और तटस्थ पुरुष तौ दो प्रकारका होवै है। एक तौ सन्मार्गवर्त्ती होवै है और दूसरा असन्मार्गवर्त्ती होवै है। तहां सन्मार्गवर्ती तटस्थ तौ ता जीवन्मुक्त पुरुषकी सदाचारविषे प्रवृत्तिकूं देखिकै आप भी ता सदाचारविषे प्रवृत्त होवै है। यह वार्त्ता गीताविषे श्रीभगवान्ने भी'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते' इस श्लोककरिकै कथन करी है और दूसरा असत्मार्गवर्त्ती तटस्थ तौ ता जीवन्मुक्त पुरुषके दृष्टिपात करिकै सर्व पापोंतै रहित होवै है। तहां स्मृति'यस्यानुभवपर्यंता बुद्धिस्तत्त्वे प्रवर्त्तते। तदृष्टिगोचराः सर्वे मुच्यंते सर्वकिल्विषैः'अर्थ—'अहं ब्रह्मास्मि'या प्रकारके अपरोक्ष अनुभवपर्यंत जिस पुरुषकी बुद्धि प्रत्यक् तत्त्वविषे प्रवर्त्तमान है तिस ज्ञानवान् पुरुषकी दृष्टिके जे जे पुरुष विषय होवै हैं ते सर्व पुरुष सर्व पापोंतैं रहित होवै हैं इति। और ता जीवन्मुक्त ज्ञानवान् पुरुषका जे दुष्ट पुरुष द्वेष करे हैं तथा निंदा करे हैं ते दुष्ट पुरुष ता ज्ञानवान् पुरुषके पापकूं ग्रहण करे हैं । तहां श्रुति तस्य पुत्रा दायमुपयंति सुहृदः साधुकृत्यं द्विषंतः पापकृत्यम्'अर्थ—तिस ज्ञानवान् पुरुषके धनादिक पदार्थोंकूं पुत्र ले जावै हैं और

पुण्यकर्मकूं सेवा करणेहारे सुहृज्जन ले जावै हैं और पापकर्मकू द्वेष करणेहारे निंदक पुरुष ले जावै हैं इति। इस प्रकार ता जीवन्मुक्त पुरुषका सो तप लोकसंग्रहवासतैं होवै है सो तप ता जीवन्मुक्तिका द्वितीय प्रयोजन है इति। अब ता जीवन्मुक्तिके विसंवादाभावरूप तीसरे प्रयोजनका निरूपण करे हैं। तहां सो जीवन्मुक्त पुरुष व्युत्थान कालविषे दुष्ट पुरुषोंकृत निंदादिकोंकूं श्रवण भी करे है। तथा पाखंडी क्रूर निष्ठुर आदिक पुरुषोंकूं देखता है तौ भी ता जीवन्मुक्त पुरुषकूं रागद्वेषादिक वृत्तियां उत्पन्न होती नहीं यातैं ता जीवन्मुक्त पुरुषका तिन निंदक दुष्ट पुरुषोंके साथ कलहरूप विसंवाद होता नहीं और जो पुरुष ता जीवन्मुक्तिके अभ्यासतैं रहित है तिस पुरुषका तौ तिन दुष्ट जनोंके साथ सर्वदा सो कलहरूप विसंवाद होता रहे है। यातैं ता विसंवादाभावविषे जीवन्मुक्तिका प्रयोजनपणा संभवे है यह वार्त्ता वृद्ध आचार्योंनैं भी कहा है। तहां श्लोक'ज्ञात्वा सदा तत्त्वनिष्ठाननुमोदामहे वयम्। अनुशोचामहे चान्यान्न भ्रांतैर्विवदामहे' अर्थ— सर्वदा तत्त्वनिष्ठाविषे स्थित पुरुषोंकूं देखिकै हम आनंदकूं प्राप्त होवै हैं और ता तत्त्वनिष्ठातैं रहित पुरुषोंकूं देखिकै हम शोककूं करे हैं और भ्रांत पुरुषोंके साथ हम विवादकूं करते नहीं इति। यह विसंवादका अभाव ता जीवन्मुक्तिका तृतीय प्रयोजन है इति। अब ता जीवन्मुक्तिके दुःखनिवृत्तिरूप चतुर्थ प्रयोजनका वर्णन करे हैं। तहां सा दुःखनिवृत्ति दो प्रकारकी होवै है। एक तौ ऐहिक दुःखनिवृत्ति होवै है और दूसरी पारलौकिक दुःखनिवृत्ति होवै है। तहां आत्मज्ञान करिकै तिसकी निवृत्ति होणेतैं तथा योगाभ्यास करिकै सर्व वृत्तियोंका निरोध होणेतैं जीवन्मुक्त पुरुषका चित्त केवल आत्माकार ही होवै है अन्याकार होता नहीं यातैं प्रारब्ध भोगके विद्यमान हुए भी ता जीवन्मुक्त पुरुषकूं दुःख प्रतीत होता

नहीं किंतु सर्व दुःखोंकी निवृत्ति होवै है इसीका नाम ऐहिक दुःखनिवृत्ति हैं। यह ऐहिक दुःखनिवृत्ति ही'आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः । किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्'इस श्रुतिविषे कथन करी है। और आत्मज्ञान करिके अज्ञानके निवृत्त हुए संचित सर्व कर्मोंका नाश होइ जावै है और आत्मज्ञानके प्रभावतैं ज्ञानवान् पुरुषकूं आगामि कर्मोंका स्पर्श ही होता नहीं और सो अज्ञान सहित संचित कर्म ही ता पारलौकिक दुःखका हेतु होवैं है। ताके नाश हुए ता जीवन्मुक्त पुरुषके सर्व पारलौकिक दुःखोंकी निवृत्ति होवै है। तहां श्रुति'एतं ह वाव न तपति किमहं साधु नाकरवं पापमकरवम्'अर्थ-मैं पुण्यकर्मकूं किसवासतैंनहीं करता भया और मैं पापकर्मकूं किसवासतैं करता भया। या प्रकारकी चितारूप अग्नि जैसे अज्ञानी पुरुषकूं तपायमान करे है तैसे जीवन्मुक्त पुरुषकूं सो चितारूप अग्नि तपायमान करता नहीं इति। यद्यपि चतुर्थ भूमिकावाले ज्ञानवान् पुरुषकूं भी सा दुःखकी निवृत्ति होवै है तथापि ता ज्ञानवान् पुरुषकूं प्रारब्ध भोग कालविषे बाधितानुवृत्ति 'करिके अहं सुखी अहं दुःखी'इत्यादिक अनुभव होवै है यातैं ता ज्ञानवान्की सा दुःखनिवृत्ति सुरक्षित नहीं होवै है और जीवन्मुक्त पुरुषकूं योगाभ्यास करिके सर्व वृत्तियोंका निरोध होवै है । यातैं ता जीवन्मुक्त पुरुषकी सा दुःखनिवृत्ति सुरक्षित होवै है अर्थात् ता जीवन्मुक्त पुरुषकूं कोई कालविषे भी सो दुःख प्रतीत होता नहीं यातैं ता दुःखनिवृत्तिविषे जीवन्मुक्तिका प्रयोजनपणा संभवै है। यह दुःखनिवृत्ति ता जीवन्मुक्तिका चतुर्थ प्रयोजन है इति। अब ता जीवन्मुक्तिके सुखाविर्भावरूप पंचम प्रयोजनका निरूपण करे हैं। तहां ब्रह्मसाक्षात्कार करिकै तथा योगाभ्यास करिके ता जीवन्मुक्त पुरुषका अज्ञान तथा अज्ञानकृत आवरण तथा व्यवहाररूप विक्षेप निवृत्त होइ जावै है और सो

अज्ञानकृत आवरण तथा विक्षेप ही ब्रह्मानंदके अनुभवविषे प्रतिबंधक होवै है। ता प्रतिबंधककी निवृत्ति हुए ता जीवन्मुक्त पुरुषकूं जो परिपूर्ण ब्रह्मानन्दका निरंतर अनुभव होवै है ताका नाम सुखाविर्भाव है। तहां श्रुति 'समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्। न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदंतःकरणेन गृह्यते' अर्थ–यह समाधि करिकै निवृत्त हो गया है रागद्वेषादिकरूप मल जिसका तथा केवल आत्माविषे है स्थिति जिसकी ऐसा जो चित्त है तिस चित्तकूं ता समाधिकालविषे जो स्वरूपसुख प्राप्त होवै है सो सुख वाणी करिके वर्णन कऱ्या जाता नहीं किंतु सो सुख ता अंतःकरणने आपही ग्रहण कऱ्या हैं इति। यह सुखका आविर्भाव ता जीवन्मुक्तिका पंचम प्रयोजन है। इस प्रकार ता जीवन्मुक्तिके पंच प्रयोजनोंके सिद्ध हुए प्रयोजनके अभावतैं जीवन्मुक्तिका अभाव कहणा मिथ्या ही है इति। इस प्रकार स्वरूपलक्षण प्रमाण साधन अधिकारी फल इन पांचोंके निरूपण करिकै इस चतुर्थ परिच्छेदविषे विदेहमुक्ति जीवन्मुक्ति यह दोप्रकारकी मुक्ति निरूपण करी है तातैं यह अर्थ सिद्ध भया ब्रह्मवेत्ता जीवन्मुक्त पुरुष भोग करिकै प्रारब्धकर्मके नाश हुएतैं अनंतर इस वर्त्तमान शरीरके नाश हुए अखंड एकरस ब्रह्मानन्दरूपतैं स्थित होवै है। ता ब्रह्मवेत्ता पुरुषका पुनः उत्थान होता नहीं। तहां श्रुति'न तस्य प्राणा उत्क्रामंत्यत्रैव समवलीयंते। ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्यैति। ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति'अर्थ–तिस ज्ञानवान् पुरुषके प्राण अर्थात् लिंग शरीर मरणकालविषे इस शरीरतैं उत्क्रमण करता नहीं किंतु प्रत्यक् आत्माविषे ही लयकूं प्राप्त होवै है। तात्पर्य यह जैसे अज्ञानी पुरुषका लिंगशरीर इस शरीरके नाश हुएतैं अनंतर कर्मके फलभोगवासतैं परलोकविषे जावै है तैसे ज्ञानवान् पुरुषका सो लिंगशरीर परलोकविषे जाता नहीं। काहेतैं ता ज्ञानवान् पुरुषका प्रारब्धकर्म तौ भोग करिकै नष्ट होइ

जावै है और संचित कर्म ज्ञान करिके नष्ट होइ जावै है और आगामि कर्मका ज्ञानके प्रभावतैं स्पर्श होता नहीं और अज्ञानका भी आत्मज्ञान करिके नाश हो गया है और ते अज्ञान संचित कर्मादिक ही पुनः जन्मके कारण होवै हैं। ता कारणके नाश हुए ज्ञानवान् पुरुषका सो लिंगशरीर पुनः जन्मकी प्राप्तिवासतैं इस शरीरतैं उत्क्रमण करता नहीं किंतु इस प्रत्यक् आत्माविषे ही लयकूं प्राप्त होवै है इति। और सो ज्ञानवान् पुरुष जीवत् अवस्था-विषे ही ब्रह्मसाक्षात्कार करिके अज्ञानके निवृत्त हुए ब्रह्मरूप हुआ ही प्रारब्धकर्मकी निवृत्तितैं अनंतर ब्रह्मरूप करिके स्थित होवै है और ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्मरूप ही होवै है इति। किंवा यह आत्मज्ञानका मोक्षरूप फल विष्णुपुराणविषे भी कथन कर्‍या है। तहां श्लोक 'विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यंतिकं गते। आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसंतं कः करिष्यति॥१॥ तद्भावभावमापन्नस्ततोऽसौ परमात्मनः। भवत्य-भेदो भेदश्च तस्याज्ञानकृतोभवेत्॥२॥' अर्थ—जीव ब्रह्मके भेदका जनक जो अज्ञान है ता अज्ञानका ब्रह्मसाक्षात्कार करिके अत्यंत नाश हुए ता जीवात्माके तथा ब्रह्मके असत् भेदकूं कौन करेगा किंतु कोई भी करेगा नहीं और ब्रह्मसाक्षात्कार करिके ब्रह्मभावकूं प्राप्त हुआ यह जीवात्मा ता ब्रह्मके साथ अभिन्न ही होवै है और इस जीवा-त्माका जो ब्रह्मके साथ भेद प्रतीत होता था सो भेद अज्ञानकृत था। ता अज्ञानके नाश हुए सो भेद भी निवृत्त होइ जावै है यातैं सो ज्ञानवान् पुरुष अखंड एकरस ब्रह्मरूपतैं स्थित होवै है इति। किंवा यह उक्त फल श्रीव्यास भगवान्ने भी ब्रह्मसूत्रोंविषे कह्या है। तहां सूत्र 'अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति' अर्थ—इस ब्रह्मवेत्ता पुरुषका इस ब्रह्मविषे अभेद ही होवै है। इस अर्थकूं श्रुति कथन करे है सा श्रुति यह है 'यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिल-यनेऽभयं प्रतिष्ठांविंदतेऽथ सोऽभयंगतो भवति' अर्थ—यह साधन चतुष्टय संपन्न अधिकारी पुरुष जिस कालविषे स्थूल सूक्ष्म कारण

शरीरतै विलक्षण नित्य अपरोक्षरूप प्रत्यक् आत्माविषे अभय प्रतिष्ठाकूं प्राप्त होवै है तिस कालविषे सो अधिकारी पुरुष अखंड एकरस ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवै है इति । यातैं यह सिद्ध भया । 'अहंब्रह्मास्मि तत्त्वमसि' इत्यादिक महावाक्यजन्य अपरोक्षज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति पूर्वक ब्रह्मभावरूप मोक्ष प्राप्त होवै है और सो मुक्त पुरुष पुनरावृत्तिकूं प्राप्त होता नहीं अर्थात् पुनः जन्मकूं प्राप्त होता नहीं । तहां श्रुति'न स पुनरावर्त्तते'अर्थ—सो मुक्त पुरुष पुनः जन्मकूं प्राप्त होता नहीं इति । यह वार्त्ता गीताविषे श्रीभगवान्ने भी कही है । तहां श्लोक'तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः। गच्छंत्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः' अर्थ—तिस परमात्माविषे ही है बुद्धि तथा मन तथा निष्ठा जिनोंकी तथा सो परमात्मा ही है परमस्थान जिनोंका तथा आत्मज्ञान करिकै निवृत्त हो गये हैं सर्व पापरूप कल्मष जिनोंके ऐसे ज्ञानवान् पुरुष अपुनरावृत्तिकूं ही प्राप्त होवै हैं अर्थात् पुनः जन्मकूं प्राप्त होते नहीं इति । किंवा यह उक्त अर्थ श्रीव्यास भगवान्ने भी ब्रह्मसूत्रोंविषे कह्या है । तहां सूत्र 'अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्' अर्थ—तत्त्ववेत्ता पुरुषोंकूं पुनः जन्ममरणकी निवृत्तिरूप अनावृत्ति ही होवै है। जिस कारणतैं श्रुति स्मृतिरूप शास्त्र ही इस अर्थकूं कथन करे हैं । तात्पर्य—जिस पुरुषकूं तौ इसी मनुष्यशरीरविषे श्रवणादिकों करिकै ब्रह्मसाक्षात्कारकी उत्पत्ति भई है तिस पुरुषकूं तौ इसी मनुष्यशरीरविषे सो ब्रह्मभावरूप मोक्ष होवै है। इसी अर्थकूं'यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते' यह श्रुति कथन करे हैं और जे निष्काम पुरुष अहंग्रह उपासना करिकै ब्रह्मलोककूं जावै हैं तिन उपासक पुरुषोंकूं ता ब्रह्मलोकविषे ही ब्रह्मसाक्षात्कार होइकै ब्रह्मके साथ मोक्ष होवै है । इस अर्थकूं भी'ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे । परस्यांते

कृतात्मानः प्रविशंति परं पदम् । ' इत्यादिक स्मृति वचन कथन करे हैं और जे सकाम पुरुष पंचाग्नि विद्यादिकों करिकै ब्रह्मलोकविषे जावै हैं तिन सकाम पुरुषोंकूं ता ब्रह्मलोकविषे सो ब्रह्मसाक्षात्कार होता नहीं । या कारणतैं ही तिन सकाम पुरुषोंकी ता ब्रह्मलोकतैं पुनरावृत्ति होवै है । इस अर्थकूं भी 'इमं मानवमावर्त्तमावर्त्तते।आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन'इत्यादिक श्रुतिस्मृतिवचन कथन करे हैं।सर्वप्रकारतैं ब्रह्मसाक्षात्कारवाला पुरुष पुनरावृत्तितैं रहित ब्रह्मभावरूप मोक्षकूं ही प्राप्तहोवे है इति ।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीस्वामिउद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचिते प्राकृततत्त्वानुसंधाने चतुर्थःपरिच्छेदःसमाप्तः।। ४ ॥

समाप्तोऽयं तत्त्वानुसंधाननामा ग्रंथः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
मुंबई.

तथा-
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण-बम्बई.

इस पुस्तकको खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छाप कर यहीं प्रकाशित किया.

पञ्चदशी पं० भ हरचंदकृत
भाषाटीका ६) के वतनभ [illegible]

योगवाशिष्ठ पूर्वार्ध भाषा ६ प्रकरणोंमें
२ जिल्दोंमें १५)
भजन ईशादि ज्ञानानन्दी गुटका पी
दीपिका भाषाटीका सहित ८)
नीतिमिनौरखा [illegible]
कुन्त्रासाईकिसी द्वीप [illegible]